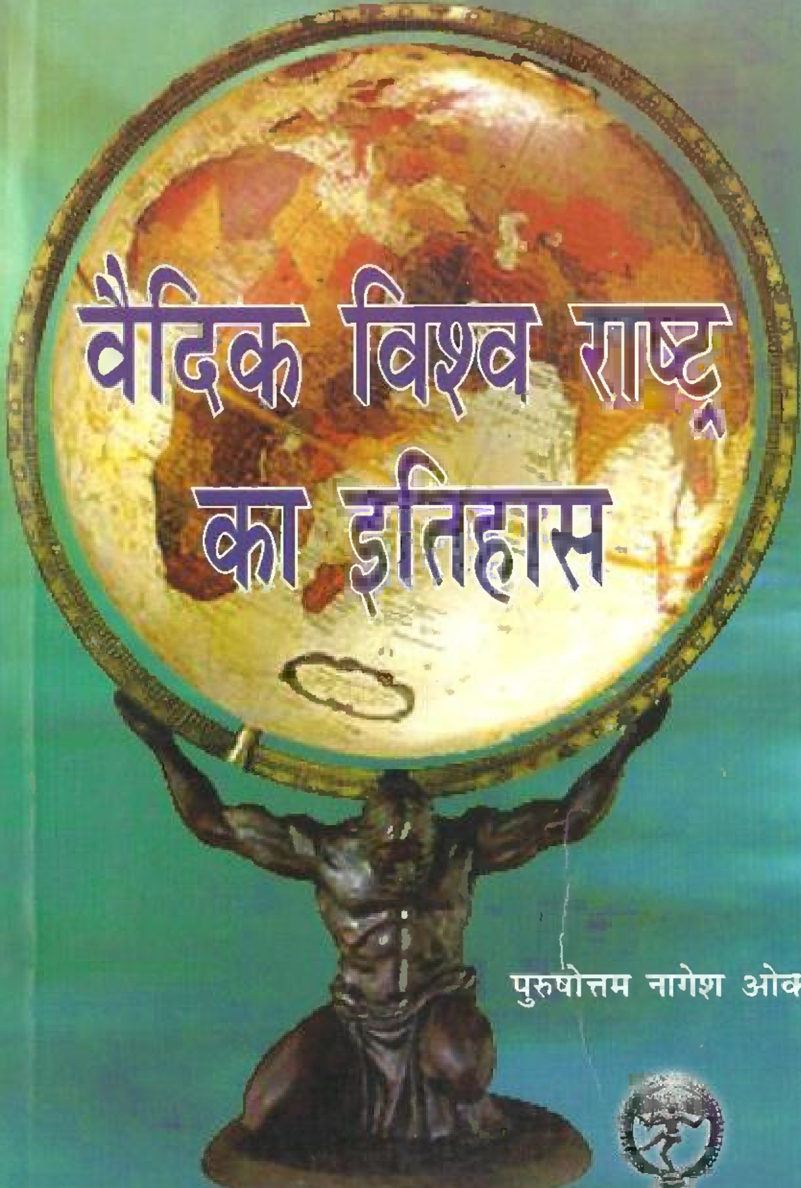
वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास



पुरुषोत्तम नागेश ओक

वैदिक विश्वराष्ट्र का इतिहास

भाग दो

लेखक

पुरुषोत्तम नागेश ओक

हिन्दी साहित्य सदन

नई दिल्ली-110005

पुस्तक	:	वैदिक विश्वराष्ट्र का इतिहास
लेखक	:	पुरुषोत्तम नागेश ओक
संस्करण	:	2012
सर्वाधिकार	:	प्रकाशक
प्रकाशक	:	हिन्दी साहित्य सदन, 2 बी.डी. चैम्बर्स 10/54 देशबन्धु गुप्ता रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-110005
E-mail	:	indiabooks@rediffmail.com
मूल्य	:	95/-
मुद्रक	:	गोयल इन्टरप्राईजिस, दिल्ली-110002

अर्पण

सार्वजनिक उपेक्षा, उदासीनता और विरोध के फलस्वरूप मेरे अनोखे इतिहास-संशोधन को बीस वर्ष पूरे हो जाने पर भी मुझे ऐसे धनी और पढ़े-लिखे लोग मिलते हैं जो कहते हैं हमने कभी आपके संशोधन की बाबत कुछ वार्ता तक नहीं सुनी। ऐसे अनेक संकटों में मेरा एकमेव जीवन-आधार एक विदेशी दूतावास के सम्पादक पद की मेरी नौकरी भी समाप्त कर दी गई। ऐसी कई संकट मालिकाओं का सामना करते हुए विश्व के झुठलाए इतिहास का भण्डाफोड़ करने का मेरा ज्ञानव्रत एवं सत्यव्रत अविरत और अविचलित चलाते रहने की क्षमता और दृढ़निश्चय जिस परमात्मा ने मुझे प्रदान किया उस भगवान् की कृपा में भी यह ग्रन्थ सादर समर्पित है।

—पुरुषोत्तम नागेश ओक

विषय-सूची

१

वैदिक संस्कृति ही मानवीय व्यवहारों का मूल स्रोत

सारे विश्व की मानवीय गतिविधियों पर दृष्टिक्षेप करने पर उनके वैदिक स्रोत जहाँ-तहाँ दिखाई देते हैं।

बाल-साहित्य का ही उदाहरण लें। प्राचीन विश्व में सर्वत्र गुरुकुल शिक्षा होने के कारण हितोपदेश, पंचतंत्र की कथाएँ पढ़ाई जाती थीं। इसी कारण आधुनिक यूरोप से जब संस्कृत शिक्षा धीरे-धीरे नष्ट होती गई तब उन्हीं संस्कृत कथाओं की नकल करने वाली **Aesop's Fables** नाम की कथा पुस्तक रूढ़ करा दी गई। उधर अरब देशों में भी उसी ढांचे पर Arabian **K**nights नाम की कथाएँ बनाई गईं।

बिखरे मोतियों की भाँति ऐसा एक-एक ऐतिहासिक नुक्ता विद्वानों को अवगत तो था किन्तु उन्हें वे किसी माला की तरह एक सूत्र में पिरो नहीं पाए थे।

रतिशास्त्र

अब रतिशास्त्र को देखें। उसे आँग्ल भाषा में erotics (एरॉटिक्स) कहा जाता है। इसका आद्य अक्षर निकालकर इस शब्द को पढ़ने पर वह स्पष्टतया 'रतिक' ऐसा संस्कृत शब्द ही जान पड़ता है। कुछ लोग 'स्कूल' और 'स्टेशन' जैसे आँग्ल शब्द पहले से 'इ' लगाकर 'इस्कूल' और 'इस्टेशन' उच्चारते हैं, ठेठ इसी प्रकार यूरोपीय लोगों के उच्चारण में भी आरम्भ में एक स्वर अधिक जोड़ दिया जाता है।

क्रीड़ा-स्पर्धा

आँग्ल भाषा में खेल-कूद को Sport कहा जाता है। वह 'स्पर्धा' शब्द का आँग्ल उच्चारण है। संस्कृत 'ध' का यूरोपीय भाषाओं में कई बार 'ट' उच्चार होता है। क्रीड़ा में हार-जीत की परस्पर स्पर्धा होने के कारण इसका नाम स्पर्ध उर्फ Sport (स्पोर्ट) पड़ा। महाभारत में कौरव-पांडवों की क्रीड़ा-स्पर्धा की जो बातें हम पढ़ते हैं ठेठ वैसी ही स्पर्धाएँ आगे चलकर ग्रीक वाङ्मय में भी पायी जाती हैं। ग्रीक लोगों की Olympics नाम की स्पर्धाएँ उसी वैदिक परम्परा से बनीं।

इसी प्रकार सतरंज का खेल सारे विश्व में फैलने का कारण भी यही था कि वह वैदिक संस्कृति के बौद्धिक कालक्रमण का एक अंग था और वैदिक संस्कृति सारे विश्व में फैली थी। हाथी, घोड़े, ऊँट और प्यादों की चतुरंग सेना का यह खेल अपभ्रष्ट उच्चारण से चतुरंग के बजाय शतरंज उसी प्रकार से कहलाया जैसे वज्रांगबली (हनुमान) को वर्तमान बिगड़े उच्चारण में बजरंगबली कहा जाता है।

साँप और सीढ़ियों का एक खेल बच्चे खेलते हैं। कई लोगों को भ्रम है कि किसी आधुनिक व्यक्ति ने उसे बनाया है। किन्तु एक संस्कृत विद्वान एस० वाय० वाकणकर के अनुसार साँप और सीढ़ियों का पट प्राचीन वैदिक मनोरंजन का माध्यम है। उसे महाराष्ट्र में ज्ञानदेव का मोक्षपट कहा जाता है। गुजराती जन उसे ज्ञानाचौपट कहते हैं। दक्षिणी प्रदेशों में उसे परमपद सोनपट कहा जाता है।[1]

वैदिक संगीत ही पाश्चात्य देशों में प्रचलित था, इसके प्रमाण Sing, (सिंग), Song (साँग), Singer (सिंगर), सिंगिंग आदि शब्दों में मिलता है।

इसी प्रकार आयुर्वेद, गुरुकुल शिक्षा पद्धति, चातुर्वर्ण्यधर्माश्रम समाज; वेदोपनिषद्, रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों का अध्ययन, वैदिक देवताओं

१. इतिहास पत्रिका त्रैमासिक, पृष्ठ ६४, खण्ड ३, अंक २, २६ जून, १९८३ में छपा एस०वाय० वाकणकर का पत्र; प्रकाशक डॉ० विजय बेडेकर, शिवशक्ति बेडेकर रुग्णालय, नौपाडा, ठाणे-४००६०२।

के मन्दिर, संस्कृत भाषा आदि वैदिक संस्कृति के सारे लक्षण पाश्चात्य देशों में उपलब्ध थे। कृस्ती और इस्लामी पंथों के प्रसार के कारण वे सारे प्रमाण दबे रह गए हैं। इनका विवरण यथासमय अगले प्रकरणों में आएगा।

संचार-साधन

सामान्य जन ऐसी कल्पना कर बैठते हैं कि विमान, रेडियो, दूरदर्शन आदि दूरसंचार और सम्पर्क साधन प्राचीन काल में न होने कारण वैदिक संस्कृति का विश्व-प्रसार कैसे हुआ होगा। उस विचार प्रणाली में दो-तीन प्रमाद हैं। एक प्रमाद तो यह है कि रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में विमान, दूरदर्शन आदि सारे आश्चर्यकारी संचार और सम्पर्क साधनों के विपुल उल्लेख हैं, उन्हें भूल जाना।

फिर भी आधुनिक दूरसंचार और सम्पर्क साधन प्राचीन काल में उपलब्ध नहीं थे यह मान भी लिया जाए तब भी वाचक यह सोचें कि मद्रास के पूर्व दो सहस्र मील का सागर पार कर भारतीय सेनाओं ने जावा, सुमात्रा, बोर्निओ, सिंगापुर, मलाया, कोरिया, व्हिएटनाम आदि प्रदेशों में भारतीय साम्राज्य और वैदिक संस्कृति का प्रसार किया था, यह बात तो सर्वविदित है ही। चंगेज खान, नेपोलियन आदि ने स्वपराक्रम से विशाल प्रदेश पर साम्राज्य प्रसार किया था। रोमन साम्राज्य भी विशाल था। स्थान-स्थान पर सैनिक अड्डे और चौकियाँ स्थापन कर कुशल संघटक विस्तीर्ण प्रदेशों पर शासन किया ही करते थे।

यदि सागर पार भारतीय सेनाएँ पूर्ववर्ती दूर-दूर के प्रदेशों पर निजी शासन जमा सकती थीं तो वायव्य दिशा में जहाँ अफगाणिस्थान, इराण, इराक, तुर्कस्थान ऐसे एक के आगे एक विविध प्रदेश सारे यूरोप और अफ्रीका से जुड़े हुए हैं तो क्या इन विशाल प्रदेशों में भारतीय सेनाएँ नहीं गई होंगी? वर्तमान संशोधन प्रणाली का एक दोष इस बात से स्पष्ट हो जाता है। उसमें ऐसे सर्वांगीण तौलनिक विचार द्वारा जो निष्कर्ष निकाले जाने थे वे नहीं निकाले गए हैं। इसी कारण वर्तमान इतिहास की अवस्था सर्वथैव त्रुटिपूर्ण, विकृत और भ्रामक हो गई है।

प्राचीनकाल में तो केवल पृथ्वी पर ही नहीं अपितु इन्द्रलोक, चन्द्र-

लोक आदि से भी सम्पर्क के साधन उपलब्ध होने के उल्लेख हैं। त्रैलोक्यनाथ, त्रिभुवन सुन्दर आदि वाक्प्रणाली से पृथ्वी के समान अन्य दो ग्रहों पर भी मानव बस्ती थी और उनका भी वैदिक साम्राज्य में समावेश था, ऐसा वर्णन बार-बार आता है। वह सारा वर्णन कपोलकल्पित नहीं है। क्योंकि आधुनिक युग में भी मानव ने अन्तरिक्ष यान आदि बनाकर चन्द्रमा पर पदन्यास किया ही है।

कृस्तयुग के पूर्व भी सारी पृथ्वी पर मानव संचार था, इसके प्रमाण सर्वत्र पाए जाते हैं। आस्ट्रेलिया के पास सागर में एक भारतीय नौका की घण्टा पाई गयी थी जिस पर तमिल लिपि के अक्षर खुदे थे।

उधर यूरोप के उत्तरी सागर में डेन्मार्क प्रदेश के निकट कृस्तयुग के पूर्व की एक नौका बरफ से ढकी हुई मिली थी जिसमें बुद्ध की मूर्ति और अन्य भारतीय वस्तुएँ मिली थीं।

इसी प्रकार पृथ्वी के विविध भागों में मूर्ति, मन्दिर, स्वस्तिक की आकृतियाँ, सूर्य रथ आदि विपुल ऐतिहाहिक सामग्री समय-समय पर मिलती रही है। तथापि इस सामग्री को पाने वाले यूरोपीय कृस्ती विद्वानों ने जान-बूझकर या अज्ञानवश उससे कोई मौलिक सिद्धान्त नहीं निकाले। उस सामग्री से एक बात स्पष्ट होती है कि कृस्तयुग के पूर्व विश्व में अखंड वैदिक संस्कृति ही फैली हुई थी। तथापि कृस्ती विद्वान उनको विभिन्न असंबंधित पन्थों की वस्तुएँ मानते रहे। इससे वर्तमान संशोधन पद्धति का एक बड़ा दोष दिखाई देता है। पूर्वाग्रह के कारण आधुनिक विद्वानों की गत इतिहास सम्बन्धी जो धारणाएँ बन जाती हैं उनसे उनकी संशोधन क्षमता क्षीण या नष्ट हो जाती है। वे विविध प्रमाणों की समानता और उनका पारस्परिक सम्बन्ध न देख पाते हैं, न समझ पाते हैं।

वास्को-द-गामा आदि पाश्चात्य पर्यटकों ने लिख रखा है कि इन्हें सप्तसागर पार कर दूर-दूर के प्रदेशों में पहुँचने के लिए भारतीय तज्ञों का मार्गदर्शन लेना पड़ता था।

नौसेना या नौकादल को योरोपीय भाषाओं में Navy (नेवी) कहते हैं। वास्तव में वह 'नावि' ऐसा संस्कृत मूलक शब्द है। सागर यात्रा या नौकाप्रवास सम्बन्धी बातों को (Nautical) 'नॉटिकल' कहा जाता है। वह

वास्तव में 'नौकिकल' ऐसा संस्कृत शब्द है। इससे एक बात यह दिखाई देती है कि यूरोपीय भाषाओं में कई स्थानों पर संस्कृत 'क' का 'ट' रूपांतर होता है। इसके हम आगे कई प्रमाण देखेंगे। यहाँ पाठक केवल हमारा कहा हुआ नियम ध्यान में रखें।

सारे विश्व में संस्कृतभाषी लोगों का वैदिक विश्व-साम्राज्य होने के कारण ही अमेरिका खण्डों को ऑस्ट्रेलिया से जोड़ने वाले विस्तीर्ण सागर का नाम Indian Ocean यानि 'भारतीय सागर' पड़ा है यद्यपि उस सागर के उत्तरी भाग में बड़े अन्तर पर भारत तो केवल एक लंगोटी जैसा छोटा-सा प्रदेश दिखाई पड़ता है।

वर्तमान समय में तो छोटे-छोटे सागरों के तटवर्ती देशों के नाम ही होने चाहिए ऐसा दुराग्रह स्थानिक लोग करते रहते हैं। इराणी और अरबी लोगों में ऐसी होड़ लगी रहती है। इण्डोनेशिया ने अपने तटवर्ती सागर को इण्डोनेशियन सागर कहना प्रारम्भ कर दिया है। ऐसी अवस्था में जब सारे विश्व के लोग बिना किसी हिचकिचाहट के एकमत से भारत से दूर दक्षिण में फैले विशाल सागर को हिन्द महासागर कहते हैं तो उससे कई मौलिक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। एक तो यह कि उस अतीत में सारे विश्व के लोगों की भाषा संस्कृत और सभ्यता वैदिक होने के कारण भारत ही उनका श्रद्धा-केन्द्र होता था। भारत ही सारे विश्व का कंद और केन्द्र माना जाता था। उस समय सारे विश्व को भारतवर्ष कहा जाता था। उस भारतवर्ष की आत्मा था जम्बूद्वीप (यानि वर्तमान हिन्दुस्थान)।

हिन्द महासागर नाम जैसा भारत से सम्बन्धित है उसी प्रकार Atlantic (अतल अन्तिक), Mediterranean (मध्यधरणीय), White Sea (क्षीरसागर), Red sea (लोहित सागर), जिसका उल्लेख रामायण में है, आदि सारे सागर संस्कृत नाम वाले हैं। सप्त सागरों का उल्लेख तथा सप्तखण्ड पृथ्वी का उल्लेख प्राचीन वैदिकपरिभाषा में बार-बार होता रहा है। ऐसे प्रमाणों से पता लगता है कि पृथ्वीतल का पूरा अध्ययन-निरीक्षण प्राचीन वैदिक सम्राटों के शासन में भी वैसा ही होता रहता था जैसा वर्तमान समय में होता हुआ हम देखते हैं।

सागर पार न जाने का बन्धन

कुछ लोगों की धारणा है कि हिन्दू परम्परा ने सागर पार जाने से लोगों पर रोक लगा रखी थी। ऐसी अवस्था में भारतीयों की वैदिक संस्कृति विश्व-भर में फैलना अशक्य था। वह धारणा और उससे निकाले गये निष्कर्ष पूर्णतया गलत हैं। हम पहले ही कह चुके हैं कि मद्रास के पूर्व में दो सहस्र मील का सागर पार कर कई देशों में भारतीय क्षत्रियों ने साम्राज्य-प्रसार किया था। इसके विपुल उल्लेख इतिहास में होते हुए हिन्दू लोग सागर पार जाने से झिझकते थे या डरते थे, यह धारणा निराधार है। उधर अफगानिस्तान की दिशा में तो बिना सागर पार किए ही भारतीय सेनाएँ यूरोप और अफ्रीका खण्डों के दक्षिण और पश्चिम कोनों से एशिया खण्ड की पूर्वतम सीमा तक संचार कर सकती थीं। तीसरा तर्क यह है कि अनादि काल से वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा केवल भारत में ही नहीं अपितु सारे विश्व में प्रसृत होने के कारण विविध प्रदेशों में लोगों का जाना-आना बना रहता था।

पश्चिम एशियाई प्रदेशों में इस्लाम की स्थापना होने पर अत्याचारों का जो आतंक मचा और भारत पर भी इस्लामी आक्रामकों के भीषण हमले होने लगे, उनसे कुछ समय तक भारत में ऐसा हल्ला मचना स्वाभाविक था कि भारत के बाहर जाने में भय है। गाँव में दंगा-फसाद होने पर माताएँ जैसे बालकों को दंगाग्रस्त प्रदेश में जाने से रोकती हैं उसी प्रकार इस्लामी आतंक के समय भारतीय लोगों में भारत की सीमा के बाहर न जाने का सावधानी का इशारा दिया जाना स्वाभाविक था। किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि भारतीय परम्परा में सीमा पार करना निषिद्ध माना जाता था। यदि वैसा होता तो वसुधैव कुटुम्बकम्, विश्वदिग्विजय, राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ आदि परिभाषा भारत में होती ही नहीं।

कर्नल टॉड ने लिखा है, "अनादि समय से हिन्दू लोग सागर पर्यटन करते रहे हैं। दूर-दूर के द्वीपों में उनकी सभ्यता का प्रसार होना हिन्दुओं की सागर यात्रा का ठोस प्रमाण है।"[1]

१. पृष्ठ ११३, खण्ड १, Annals and Antiquities of Rajasthan, लेखक कर्नल जेम्स टॉड।

दूसरे साहब एडवर्ड पोकॉक लिखते हैं कि "सिन्धु तट के लोग अति प्राचीन समय से सागर यात्रा के आदि थे। उसका उल्लेख मनुस्मृति में आया है। सागर पार देशों से लाई वस्तुएँ राजा को भेंट देने की प्रथा मनुस्मृति में उद्धृत है। रामायण में भी नौकानयन का उल्लेख है। हीरेन के लिखे Indians नाम के ग्रन्थ में पृष्ठ १२४ पर लिखा है कि सागर पार प्रवास करने पर हिन्दुओं में कोई प्रतिबन्ध नहीं था। मनुस्मृति में तो विदेशों से किये व्यापार या सौदे में यदि कोई हानि हुई हो तो उसकी पूर्ति के नियम दिए गए हैं जिससे यह बात स्पष्ट होती है कि विदेशों से लेन-देन और जाना-आना बराबर होता रहता था।"[1] सत्यनारायण की कथा में भी सागर पार व्यापार का उल्लेख है।

रामावतार के पूर्व हुए वीर परशुराम ने तो इक्कीस बार सारे विश्व में दिग्विजय किया था। उनमें उसने इराण में भी युद्ध किए। उनकी सेनाओं का परशु एक शस्त्र था। पोकॉक ने निजी ग्रन्थ के पृष्ठ ४५ पर उल्लेख किया है कि परशुधारी सेनाओं द्वारा जीते हुए प्रदेश का पारसिक उर्फ परशूय (पर्शिया) नाम पड़ा।

खाल्डीय (chaldeans) नाम के लोगों का जो प्राचीन राष्ट्र था वह पोकॉक के अनुसार कुलदेव यानि दादा-परदादा आदि पूर्वज या वरिष्ठ ब्राह्मण लोगों का निदर्शक था। "इराण उर्फ परशूय देश, कॉलचिस व अर्मेनिया देशों के प्राचीन नक्शों का निरीक्षण करने पर भारतीयों के वहाँ बसने के विपुल और आश्चर्यकारी प्रमाण मिलते हैं। रामायण, महाभारत आदि महाकाव्यों में उल्लेखित कई प्रसंगों के आश्चर्यकारी चिह्न उन प्रदेशों में पाए जाते हैं। विशाल मात्रा में प्राचीन समय में भारतीयों ने उन प्रदेशों में बस्ती की थी इसके वह नक्शे साक्षी हैं।"[2]

ऑक्सस् नदी का नाम ग्रीक भाषा का समझा जाता है। आधुनिक पाश्चात्य विद्या में यह बड़ा दोष है कि उसमें ग्रीक और लैटिन भाषाओं को ही सभ्यता का अन्तिम स्रोत माना जाता है। वस्तुतः वह 'ऊक्षश' यानि

१. पृष्ठ ४४, India in Greece, लेखक एवर्ड पोकॉक।
२. पृष्ठ ४४, पोकॉक का ग्रन्थ।

बैल इस अर्थ का संस्कृत शब्द है। आँग्ल भाषा में उसी का संक्षिप्त रूप(Ox) 'ऑक्स्' ऐसा प्रचलित है। ऑक्फर्ड नाम का नगर और लण्डन नगर का अक्स्ब्रिज (उर्फ उक्स्ब्रिथ) विभाग उसी 'बैल' (उर्फ उक्षस्) शब्द से पड़े हैं।

स्कंदनावीय

पोकॉक के ग्रन्थ में पृष्ठ ५५ पर लिखा है कि स्कंडिनेविया, यूरोप के अन्य प्रदेश और भारत के क्षत्रिय सारे एक ही कुल के सदस्य हैं।

पुराणों के अनुसार शिवजी के पुत्र का नाम स्कंद है। स्कंद देवों के सेनापति हैं। अत: यूरोप के उत्तरी भाग में नॉर्वे, स्वीडन, डेन्मार्क आदि भूप्रदेश को जो स्कंडिनेविया नाम दिया गया वह स्कंदनावीय ऐसा संस्कृत शब्द है। स्कंद के नाविक दल की उस परिसर में छावनी रही।

कैलास

ग्रीक लोग स्वर्ग को कॉयलान् (Koilon) कहते हैं। उनके पड़ोस के रोमन् लोग कोएलम् (Coelum) कहते हैं। दोनों वैदिक 'कैलास' शब्द के अपभ्रंश हैं ऐसा पोकॉक के ग्रन्थ में पृष्ठ ६८ पर उल्लेख है।

थेसालिआ

यूरोप के जिस प्रदेश को (Thessalia) थेसालिया नाम पड़ा है वह संस्कृत देश—शालि (यानि चावल निर्माण करने वाला प्रदेश) नाम था (पोकॉक के ग्रन्थ में पृष्ठ ८२ पर दिए विवरण के अनुसार)। ग्रीक परिभाषा में (Mount Othrys)ऑथ्रीस पहाड़ी का उल्लेख है जो स्पष्टतया 'अद्रि-ईश' ऐसा संस्कृत शब्द है।

काश्यपीय

ग्रीक लोगों में (Cassopoei) काश्यपीय लोगों का उल्लेख आता है। वे कश्यप ऋषि के अनुयायी या वंशज थे।

विश्व-भर की महान् इमारतें

'भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें' तथा 'विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय' नाम के मेरे दो ग्रन्थों में प्रस्तुत किए मेरे शोध के अनुसार विश्व-

भर में जितने प्रेक्षणीय भवन हैं जो क्रुस्ती गिरजाघर या इस्लामी कब्रें, मस्जिदें आदि कहलाते हैं वे सारे क्रुस्तपूर्व और मुहम्मदपूर्व वैदिक महल और मन्दिर थे। लण्डन नगर का (St. Paul's Cathedral) सेंट पॉल्स् कॅथेड्रल नाम का गिरजाघर प्राचीन काल में गोपाल कृष्ण का मन्दिर था। आग लगने से प्राचीन मन्दिर की इमारत को सन् १६४४ के आसपास क्षति पहुँची थी। कितनी हानि हुई यह ज्ञात नहीं। तथापि वह इमारत नयी बनी ऐसी जनसामान्य की धारणा है। फिर भी उस इमारत में प्राचीन कृष्ण परम्परा के कई चिह्न बड़े भक्तिभाव से जतन किए दिखाई देते हैं। उनका अधिक विवरण हम अगले पृष्ठों में देंगे।

मेरे इस शोध की पुष्टि पोकॉक के ग्रन्थ से भी होती है। वे लिखते हैं, "उत्तर भारत के सूर्यवंश के लोगों का विश्व-प्रसार उनके विशाल भवनों से पहचाना जा सकता है। उन (किले, बाड़े, मन्दिर, महल आदि) की मोटी दीवारें, (सरोवर आदि) सार्वजनिक सुविधाओं के विविध निर्माण-कार्य जो रोम, इटली, ग्रीस, पेरू, ईजिप्त, सीलोन आदि प्रदेशों में पाए जाते हैं उनकी विशालता से बड़ा अचम्भा होता है।"[1]

पोकॉक के इस कथन की पुष्टि में हम आगे यह कहेंगे कि कार्डोवा (स्पेन), बगदाद, बुखारा, समरकन्द, इस्तम्बूल, काबुल आदि विश्व-भर के नगरों में जो महान् इमारतें हैं वे न तो क्रुस्तियों की हैं, न मुसलमानों की। उनसे पूर्व बनीं वे सारी वैदिक परम्परा की इमारतें हैं यद्यपि उन्हें वर्तमान समय में कब्रें, मस्जिदें या गिरजाघर कहते हों।

यूरोप की प्राच्य संस्कृति

वर्तमान समय में कोट-पतलून वाले यूरोपीय क्रुस्ती रहन-सहन को पाश्चात्य सभ्यता कहते हैं और धोती पहनना, तिलक लगाना आदि को पौर्वात्य वा प्राच्य सभ्यता कहा जाता है। यह भेद यूरोप की जनता क्रुस्ती बनने के पश्चात् गत १०००-१५०० वर्षों से ही किया जाने लगा। मूलतः सारे विश्व में वैदिक संस्कृति ही थी। अतः ऊपर दिए गए शीर्षक 'यूरोप

१. पृष्ठ १६३, India in Greece, By E. Pococke.

की प्राच्य संस्कृति' का किसी को अचम्भा नहीं होना चाहिए।

यूरोप के उस प्राचीन वैदिक संस्कृति के विपुल उल्लेख ग्रन्थों में और स्थान-स्थान पर चिह्न पाए जाते हैं। Franz Cumont (जन्म ३ जनवरी, १८६८) घेंट के विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे। उनके लिखे एक ग्रन्थ का नाम है Textes et Monuments Figure's Relatifs aus Mysteres de Mithra (दो खण्ड)। उसका आंग्ल अनुवाद Thomas J. Mc Cormack ने किया है। आँग्ल संस्करण का शीर्षक है The Mysteries of Mithra. क्यूमांट के दूसरे ग्रन्थ का शीर्षक है Les Religions Orientals dans le Pagani au Romain. उसके आंग्ल संस्करण का नाम है Oriental Religions (Chicago, The open Court Publishing Co., 1911, London, agents—Kegan Paul, Trench, Trubner & Co.) क्रुस्ती धर्म के पूर्व रोमन लोगों के रहन-सहन का वर्णन Cumont ने किया है। उस समय यूरोप में अनेकानेक छोटे-मोटे पंथों में कृष्णनीति उर्फ क्रुस्तनीति पंथ था। अपने-अपने अनुयायी बढ़ाने की उन पंथों में होड़ लगी थी।

अमेरिका के Wisconsin विश्वविद्यालय के प्राध्यापक ग्राण्ट शॉवरमन ने Oriental Religions ग्रन्थ की प्रस्तावना में कहा है कि क्रुस्तपूर्व समय में जितने पंथ थे वे बड़े सशक्त थे। उनका अपना बड़ा प्रभावी तत्त्वज्ञान था। क्रुस्तनीति पंथ से उनकी स्पर्धा थी। उन पंथों का कर्मकाण्ड, अध्यात्मवाद, शास्त्रार्थ, परोपकारिता, देवताओं के उत्सव, त्योहार, आत्म-शुद्धि और स्वर्गप्राप्ति सम्बन्धी धारणाएँ बड़ी लुभावनी थीं। उनके सामने क्रुस्ती पंथ बड़ा ही निष्प्रभ और शुष्क-सा लगता था। अतः तत्कालीन क्रुस्ती नेताओं ने एक चाल चली। उन पंथों के (वैदिक) त्योहार-उत्सव आदि क्रुस्तियों ने अपना लिये।

क्यूमाण्ट ने भी उस ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है, "क्रुस्ती उत्सव, त्योहार आदि स्पष्टतया क्रुस्तपूर्व परम्परा पर आधारित हैं। चौथी शताब्दी से क्रिसमस का त्योहार दिसम्बर की २५ तारीख को मनाए जाने का कारण था कि उस दिन उत्तरायण का उत्सव हुआ करता था। उसे Natalis invicti कहा जाता था।

पृष्ठ २ पर क्यूमाण्ट ने लिखा है कि "पूर्ववर्ती देशों के प्राचीन सभ्यताओं में ही विद्या, कला, शास्त्र, बुद्धिमत्ता, सम्पत्ति, उद्योगक्षमता की परम्पराएँ दीखती हैं।"

पृष्ठ ६ से ८ पर उल्लेख है कि "खगोल ज्योतिष के ज्ञाता, गणितज्ञ, व अध्यात्मविद्या के प्रवर्त्तक आदि अग्रसर व प्रख्यात व्यक्ति लगभग सारे पूर्ववर्ती प्रदेशों के निवासी थे। उदाहरणार्थ Plotemy और Plotinus ईजिप्त के निवासी थे; Porphyry or Iamblichus सीरियाई थे; Discorides और Golen भी एशियाई ही थे। सारी विद्याओं पर पूर्ववर्ती देशों का प्रभाव था।" पूर्ववर्ती प्रदेशों में साहित्य और शास्त्र दोनों का अध्ययन होता था। ग्रीक परम्परा का जो विशेष आकर्षक गुण माना जाता है उसका स्रोत भी अधिकतर Asia minor, सीरिया और ईजिप्त में था। विविध क्षेत्रों में यूरोप के लोग ही अग्रसर थे, यह धारणा खोखली है। उस प्राचीन काल में रोमन सभ्यता का भी उदय नहीं हुआ था। उस समय रोम पूर्ववर्ती प्रदेशों पर ही निर्भर रहता था।

यूरोप की वैदिक परम्परा कृस्तियों ने दबा दी

क्यूमाण्ट के ग्रन्थ में पृष्ठ १२ और १३ पर लिखा है, "सब कुछ नष्ट हो गया। ग्रीक और लैटिन में लिखी पौराणिक कथाएं भी यदि उपलब्ध होतीं तो भी अच्छा होता। उदाहरणार्थ द्वितीय शतक में Eusebius और Pallas नाम के लेखकों ने Mysteries of Mithra (यानि आदित्य की कथाएँ) लिखी थीं। किन्तु मध्ययुगीन कर्मठ कृस्तियों ने उस साहित्य को बेकार अथवा शायद हानिकारक भी समझकर नष्ट कर दिया। रोमन साम्राज्य के ज्ञात इतिहास में तीसरी शताब्दी का ब्यौरा लगभग नष्टप्राय हो गया है। ठीक उसी समय यूरोप में वैदिक पंथों का बड़ा प्रभाव था। Heriodianus, Dion Cassius, तुर्कस्थानी लेखक तथा Suctonius से Ammianus Marcitinus तक के विविध ग्रन्थकारों का सारा साहित्य ऐसा नष्ट कर दिया गया कि उस समय के इतिहास का कुछ पता ही नहीं चलता। इस कारण उस समय के वैदिक पंथों का इतिहास अज्ञात रह गया है।

पूर्ववर्ती वैदिक परम्पराओं का कृस्ती उपहास

यूरोप में कृस्ती पंथ का अधिकार जमाने के हेतु कृस्ती नेताओं ने दूसरी से चौथी शताब्दी तक के जनजीवन के इतिहास का कठोर नाश किया। इतना ही नहीं, उस समय की वैदिक प्रथाओं का विडम्बन कर उनका उपहास करते रहने की प्रथा तत्कालीन कृस्ती नेताओं ने अपनाई। उदाहरणार्थ ईसिस देवता के भक्त लोग निजी शरीर को कष्ट देने वाली साधना करते थे। उन प्रथाओं की Juvenal नाम के लेखक ने आलोचना की है। Necromancy नाम के ग्रन्थ में Lucian ने Magi (महायागी) पुरोहित स्नान आदि द्वारा शुद्धि की अखण्ड विविध क्रियाएँ करते रहते हैं ऐसी उनकी हँसी उड़ाई है। Apulesius ने Metamorphosis नाम के ग्रन्थ में Isis देवता की गूढ़ पूजाविधि आदि की विफलता दर्शायी है। Treatise on the Syrian Goddess नाम के ग्रन्थ में Lucian ने Hierafolis (हरिपुर) के मन्दिर के पुरोहितों से चर्चा का सरसरा ब्योरा ही दिया है।

यूरोपीय कृस्ती विद्वानों की भ्रांतियाँ

ऊपर उल्लेखित ग्रण्ट शॉवरमन की यह धारणा कि कृस्ती परम्परा की अन्य पंथों से होड़ थी, स्वल्प मात्रा में सही है। महाभारतीय युद्ध के पश्चात् खण्डित वैदिक संस्कृति के कई पंथ बन गए थे। उनमें एक कृष्ण उर्फ कृष्टपंथ भी था। योरोपीय विद्वानों की यह धारणा कि कृस्त उर्फ ईसा मसीह नाम का कोई अवतारी महात्मा हुआ था और उसने जो पंथ चलाया उसे कृस्ती धर्म उर्फ कृश्च्यानिटी कहते हैं, पूर्णतया गलत है। कृस्त या ईसा मसीह नाम का कोई व्यक्ति कभी हुआ ही नहीं। कृष्ण नाम का ही कृष्ट उच्चार रूढ़ था। कृष्ण की नीति भगवद्गीता में चर्चित है। उस भगवद्गीता के अनुयायियों का कृष्णनीति पंथ था। किन्तु दिन-प्रतिदिन संस्कृत भाषा के अज्ञान के कारण कृष्णपंथी जन कृष्णचरित्र और भगवद्गीता से बिछड़ते गए।

तथापि कृस्त पंथ, ईशानी, स्मार्त, स्तविक, मैलेन्सिअन्स (म्लेच्छ), कैसिओपिअन्स (कश्यपीय), फिलिस्तिन् (पुलस्तिन), ज्ञ-अस्तिक (gnostic),

अ-ज्ञ-अस्तिक (agnostic) आदि विविध पंथों में सार्वजनिक लोकप्रियता, सम्पत्ति, मानसम्मान, अधिकार आदि प्राप्त करने की स्वाभाविक होड़ लगी हुई थी। उनमें दैववशात् कृस्तपंथियों को सम्राट् कांस्टण्टाइन का साथ मिला। वह मिलते ही रोमन सेनाओं द्वारा छल-बल से छह सौ वर्षों में सारे यूरोप को कृस्ती बनाया गया। इस प्रकार जुल्म-जबरदस्ती से फैले कृस्तपंथ ने अपने आपको वैदिक परम्परा से पृथक् कर कृष्ण के बदले कृस्त नाम के एक काल्पनिक व्यक्ति का मनगढ़न्त चरित्र बनाकर अपना एक अलग ठोस अस्तित्व प्रस्थापित कर लिया। इससे जाना जा सकता है कि ऐहिक अधिकार, रौब आदि की लालसा की पूर्ति हेतु किस प्रकार भिन्नपंथी आध्यात्मिकता का ढोंग रचा जाता है।

सामान्य जन भी कितने भोले होते हैं। भेड़ की भाँति वे कृस्ती नेताओं के बहकावे में बहकर एक काल्पनिक कृस्त में विश्वास कर उसके द्वारा मुक्ति पाने की विफल आशा करते रहे हैं। कृस्ती नेताओं के इस जाल में फँसकर विद्वान व्यक्तियों ने भी एक कपोलकल्पित कृस्त के जीवन के उद्देश्य, आदर्श और उपदेशों पर ढेर के ढेर भाष्य लिख मारे। यह सब बन जाने पर इतिहासकार भी उसमें विश्वास करने लगे। अब मामला इतना बढ़ गया कि मूलतः कृस्त नाम का कोई व्यक्ति ही नहीं हुआ ऐसा कहने की किसी की हिम्मत ही नहीं होती।

फ्रिजिया, थ्रेस, ईजिप्त आदि प्रदेशों के इतिहासों में विविध देवियों के नाम आते हैं। उनके अनुयायियों के भिन्न-भिन्न धर्म थे, ऐसी यूरोपीय विद्वानों ने भ्रान्त धारणा फैला रखी है। वस्तुतः वे एक ही वैदिक प्रणाली की देवियाँ थीं। वैदिक प्रणाली में चण्डी, पार्वती, दुर्गा, भवानी, उमा आदि विभिन्न नामों की या रूपों की देवियाँ क्यों न हों, वैदिक संस्कृति में वे एक ही देवता के आविष्कार समझे जाते हैं। इसी प्रकार कृस्ती सन् पूर्व के विश्व में विविध देवताओं के जो पंथ थे वे विभिन्न धर्म न होते हुए एक ही अखण्ड वैदिक संस्कृति के अंग-उपांग थे।

जिसकी लाठी उसकी भैंस कहावत के अनुसार वर्तमान युग में योरोपीय कृस्ती देश सशक्त और प्रगत होने के कारण उनके विद्वानों के वक्तव्य या निष्कर्ष को ब्रह्मवाक्य समझने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। किन्तु

ऐसा अन्धविश्वास सर्वथा अनुचित है। पाश्चात्य विद्वानों ने ऐसे-ऐसे प्रमाद किए हैं कि जो आठवीं कक्षा के विद्यार्थी के लिए भी लज्जास्पद माने जाएँगे।

उदाहरणार्थ सर मोनियर विलियम्स् का बनाया एक बृहत् संस्कृत-आँग्ल शब्दकोष है। उसमें 'कंचिदेक' शब्द को एक महाभारतकालीन गाँव का नाम कहा गया है। इससे महाभारत के एक सादे श्लोक का अर्थ वे समझ नहीं पाये, यह प्रतीत होता है।

कौरव-पाण्डवों का युद्ध टालने हेतु जब भगवान कृष्ण दुर्योधन के दरबार में उपस्थित होकर कहते हैं कि—

इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं जयन्तं वारणाव्रतम्।
प्रयच्छ चतुरो ग्रामान् कंचिदेकं च पंचमम्॥

तो उनके कहने का तात्पर्य था कि पाण्डवों को कम से कम पाँच ग्राम दिए जाएँ जिनमें इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त, वारणाव्रत अवश्य हों और पाँचवाँ अन्य कोई-सा भी ग्राम दिया जाए। संस्कृत 'कंचिदेक' का अर्थ होता है कोई-सा भी एक। यह सादा अर्थ न समझकर मोनियर विलियम्स् ने इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त, वारणाव्रत के समान 'कंचिदेक' नाम का कोई पाँचवाँ नगर भगवान कृष्ण ने पाण्डवों के लिए माँगा। इससे और भी एक अनुमान यह होता है कि मोनियर विलियम्स् के नाम से प्रकाशित शब्दकोष कई कच्चे-बच्चे व्यक्तियों के सहयोग से बनाया गया है।

दूसरा एक उदाहरण M. A. Sherring नाम के पादरी ने लिखे Benares the Sacred city of the Hindus नाम के ग्रन्थ में उद्धृत है (प्रस्तावना, पृष्ठ XXI)। उन्होंने लिखा है कि प्रोफेसर विल्सन नाम के एक अन्य संस्कृतज्ञ ने काशिराज शब्द का अर्थ हर बार 'तीर्थराज काशि' ऐसा किया है जब कि मूल संस्कृत में काशि नरेश ऐसा उसका अर्थ है।

ऐसे उदाहरण देखते हुए पाश्चात्य विद्वानों के वक्तव्यों पर भरोसा रखना कितना अयोग्य है यह पाठक सोच सकते हैं।

इस प्रकार की भूलों के अतिरिक्त यूरोपीय क्रुस्ति व्यक्तियों ने जान-बूझकर सारे इतिहास को किस प्रकार तोड़ा-मरोड़ा होगा इसकी तो गिनती भी करना असम्भव होगा।

उदाहरणार्थ यूरोप के पादिरयों ने वेदों के अनुवाद कहकर जो ग्रन्थ छापे और बाँटे उनमें कुटिल हेतु से अंटसंट अनापशनाप बातें कही गई थीं। उद्देश्य यह था कि उन्हें पढ़कर वैदिक धर्म के आद्य ग्रन्थों के प्रति घृणा उत्पन्न हो और कृस्ती धर्म का प्रसार सरलता से किया जा सके।

इस प्रकार वैदिक संस्कृति का तिरस्कार कर उसके इतिहास को नष्ट करने में मग्न रहने वाले षड्यंत्री योरोपीय कृस्तियों के साथ-साथ दूसरी तरफ ऐसे पाश्चात्य विद्वान भी हुए हैं जिन्हें यह प्रतीत हुआ था कि प्राचीन काल में वैदिक संस्कृति का ही सर्वत्र प्रसार था। India in Greece ग्रन्थ लिखने वाले Edward Pococke ऐसे एक व्यक्ति थे। Count Biornstierna नाम के अन्य पाश्चात्य विद्वान द्वारा लिखे The Theogony of the Hindus ग्रन्थ में पृष्ठ १६८ पर लिखा है कि "प्राचीनता में हिन्दू धर्म की कोई बराबरी नहीं कर सकता। आर्यावर्त्त में ही ब्राह्मण धर्म का जन्म हुआ और श्रेष्ठ हिन्दू संस्कृति का संगोपन हुआ। वही सभ्यता पश्चिम में एथिओपिया, ईजिप्त, फिनीसिया, पूर्व में सयाम से लेकर चीन और जापान तक, दक्षिण में सीलोन से जावा, सुमात्रा तक, और उत्तर में ईराण से खाल्डिया (उर्फ चैल्डिया) और कोलचिस तक पहुँचकर वहाँ से ग्रीस और रोम के प्रदेशों में भी गई और अन्त में अतिदूर के Hyperboreans के प्रदेश में भी फैली।

विश्वोत्पत्ति की वैदिक कथा ही सारे दोहराते हैं

वैदिक संस्कृति ही प्राचीनतम काल से सारे विश्व में प्रसृत थी, इसका एक प्रमाण यह है कि विश्वोत्पत्ति की वैदिक कथा ही सारे पन्थ और धर्म-ग्रन्थ दोहराते हैं।

ग्रीक लोगों की मान्यता देखें। Damascius नाम के ग्रीक लेखक Orpheus का सिद्धान्त इस प्रकार उद्धृत किया है, "आरम्भ में Kronos (सूर्य) ने Oether (दिन) और rrbos (रात्रि) बनाए। उसमें ब्रह्माण्ड की स्थापना की गई। उसमें से (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) त्रिमूर्ति की निर्मिति हुई। उन्होंने स्त्री और पुरुष द्वारा मानवों की उत्पत्ति की। ईजिप्त के लोगों की विश्वोत्पत्ति की कथा उसी ढाँचे की है। वे कहते हैं कि प्रथम ब्रह्माण्ड

स्थापन हुआ और उसी के आकाश और पृथ्वी ऐसे दो भाग हुए।" (Bharat-India As Seen and Known by Foreigners, लेखक बाबासाहेब देशपाण्डे, प्रकाशक—स्वाध्याय मण्डल, किला पारडी, जिला सूरत, सन् १९५०)।

यहूदी परम्परा में वही वर्णन

यहूदी लोगों के प्राचीन ऋषि Moses की वैसी ही मान्यता थी इस सम्बन्ध में Count Biornstierna लिखते हैं, "ईजिप्त की धार्मिक परम्परा भारतमूलक थी इस तथ्य का ध्यान रखने पर पता चलता है कि यहूदियों के नेता Moses की विश्वोत्पत्ति की धारणा का स्रोत भी कुछ मात्रा में वही होना चाहिए। क्योंकि वैदिक सिद्धान्तानुसार एकमेव कर्ताधर्ता परमेश्वर के तत्त्व पर ही उनकी धर्मपरम्परा आधारित थी। (पृष्ठ १४४, The Theogont of The Hindus, लेखक Count Biornstierna)।

बाइबल और कुरान की भी वही धारणा

कृस्ती और इस्लामी विश्वोत्पत्ति के वर्णन बौद्ध परम्परा का अनुसरण करते हैं और बौद्ध परम्परा स्वयं वैदिक धारणा दोहराती है। वे कहते हैं: "प्रथम कुछ नहीं था। केवल एक सन्नाटा और अँधेरा। पृथ्वी पर जीव नहीं थे। उस समय आकाश उर्फ भुवनों के निवासी पृथ्वी पर आया-जाया करते। उन दिव्य व्यक्तियों के पवित्र आत्माओं में कोई वासना नहीं थी। उस समय आदि बुद्ध ने उनके मनों में बादाम के जैसे एक पेड़ का फल खाने की इच्छा निर्माण की। उससे मानवों में वासना निर्माण हुई। तत्पश्चात् उन्हें निजी भुवनों में जाने की इच्छा ही न होने से वे यहीं रहे और उनसे मानव वंश प्रारम्भ हुआ।" बाइबल और कुरान में अंकित मानव निर्मिति की कथा उसी स्रोत की है इसमें कोई सन्देह नहीं। इस प्रकार विश्वोत्पत्ति की आधुनिक या प्राचीन धारणाएँ भारी हिन्दू स्रोत की ही दिखाई देती हैं।

पाश्चात्य शास्त्रीय परिभाषा में हिन्दू देवताओं का उल्लेख

ब्रह्मा-विष्णु-महेश त्रिमूर्ति विश्व का निर्माण, पालन और विनाश का कार्य करते रहते हैं, यह वैदिक धारणा है। यूरोप के आधुनिक क्रुस्ती जन उस त्रिमूर्ति से पूर्णतया अपरिचित हैं। तथापि जो यूरोपीय विद्वज्जन विविध शास्त्रों में प्रवीण हैं वे निजी शास्त्रीय परिभाषा में उन तीनों वैदिक देवताओं को जीवसृष्टि का मूलाधार मानते हैं, यह बड़ी आश्चर्यकारी घटना है। तथापि दूसरी दृष्टि से देखा जाए तो उसमें कुछ आश्चर्य भी नहीं है क्योंकि वैदिक परम्परा ही सारे मानवों की आद्य परम्परा है। डार्विन के सिद्धान्तानुसार जो विद्वान् यह मानते हैं कि एक सूक्ष्म जीवकण से उत्क्रान्त होते-होते वानर से मानव बना उन्होंने उन मानव सदृश वानर जाति के नाम (Shivapithacus) शिवपिथेकस् और (Ramapithacus) राम-पिथेकस रखे हैं।

इसी प्रकार जिन चट्टानों पर जन्तु, कृमि इत्यादि प्राथमिक जीव निर्माण हुए उनको प्राश्चात्य क्रुस्ती शास्त्रज्ञों ने 'विष्णु शिस्ट' (Vishnu Schist) नाम दिया है। अमेरिका में (Grand Canyon) ग्राण्ड कॅनियन नाम का जो विशाल पहाड़ी प्रदेश है उसमें पन्धरा और १६ क्रमांक के जो मुकाम हैं वहाँ विष्णुशिस्ट नाम अंकित है।

क्रुस्ती परम्परा के विद्वानों की शास्त्रीय परिभाषा में शिव-राम-विष्णु आदि वैदिक देवताओं के नाम प्रविष्ट इसलिए हुए हैं कि आज अपने-आपको क्रुस्ती और इस्लामी मानने वाले सारे लोगों के पूर्वज वैदिक-धर्मी थे। उस समय उनके हिन्दू, वैदिक पूर्वज विश्व के कर्ताधर्ता के रूप में जिन देवताओं के नाम लेते थे वे इन पाश्चात्य क्रुस्ती विद्वानों ने अनजाने उनके सिद्धान्तों में चिपका रखे हैं। क्या यह उनके वैदिक विरासत के प्रमाण नहीं हैं ?

अध्यात्म

विश्व में अध्यात्मवाद के पाए जाने वाले सारे पहलू वेदमूलक ही हैं। कौंट Biornstierna लिखते हैं कि "अध्यात्मवाद के मूल तत्त्व Pantheism, Spinogism, Hegellianism एक-ईश्वर का सिद्धान्त, मानवीय

आध्यात्मिक जीवन में दीखने वाली ईश्वरीय परछाया; मृत्यु के पश्चात् जीव का शिव में विलीन होना; जन्म और मृत्यु का अखण्ड चक्र ऐसे विविध दृष्टिकोणों का समावेश हिन्दू प्रणाली में दिखाई देता है।" (पृष्ठ २६-३० Bharat—India as seen and known by Foreigners)।

दर्शनशास्त्र

"दर्शनशास्त्र में तो हिन्दू जन ग्रीस और रोम से कहीं आगे थे। आत्मा के अमरत्व के बाबत ग्रीस और रोम के लोगों में सन्देह होता था। ईजिप्त के लोगों का धर्म, पुराण और दार्शनिक कल्पनाएँ हिन्दुओं से ली गई थीं। ग्रीक दर्शनशास्त्र लगभग पूरा ही हिन्दू दर्शनशास्त्र पर आधारित था। उनकी समानता योगायोग से उत्पन्न नहीं हो सकती। हिन्दू दर्शनशास्त्र बड़े गहरे और परिपूर्ण होने के कारण ग्रीक दार्शनिक हिन्दुओं के शिष्य ही रहे होंगे।" (उसी ग्रन्थ के पृष्ठ २६ से ३३)।

विश्व-साहित्य और देवकथाएँ

W. D. Brown ने लिखा है "बारीकी से विचार करने पर निष्पक्ष भूमिका वाले व्यक्ति को मानना पड़ता है कि मानव का सारा साहित्य और देवकथाओं के स्रोत हिन्दू परम्परा में ही प्राप्त होते हैं, Maxmueller, Jacolliot, Sir William Jones आदि विद्वानों को प्राचीन हिन्दू(संस्कृत)ग्रंथों में ही मानव समाज की प्रमुख मान्यताओं के मूल मिले हैं। ऐसे हिन्दू परम्परा के बड़प्पन की प्रशंसा कैसे की जाए। अन्य प्रसिद्ध लोगों की कीर्ति हिन्दू कर्तृत्व से तुलना करने पर फीकी दीखती है।"(पृष्ठ १३-१४, Bharat—India as seen and known by Foreigners)।

प्राचीनता

हिन्दू (वैदिक) परम्परा की प्राचीनता के बाबत Sir James Caird लिखते हैं, "कुछ पाश्चात्य विद्वानों के ध्यान में भी यह तथ्य नहीं आया है कि निजी सामाजिक शासन प्रस्थापित करने वाले विश्व के प्राचीनतम लोग हिन्दू ही तो थे।"

दिसम्बर १८६१ के The Calcutta Review मासिक में प्रकाशित एक लेख में उल्लेख था—"इसमें कोई संदेह नहीं एक समय था जब हिन्दू लोग सारी कलाओं में प्रवीण थे, उनका आदर्श शासन था, उनके नीति-नियम बड़े अच्छे थे, उनके शस्त्र बड़े प्रभावी थे और उनका ज्ञान अपार था। प्राचीन काल में हिन्दू (अन्तर्राष्ट्रीय) व्यापार करा करते थे। उनके बनाए वस्त्र प्रख्यात थे। अनादि समय से वे रेशम के वस्त्र बुनते थे। ग्रीक लेखकों ने उल्लेख किया है हिन्दू लोग बड़े ज्ञानी थे, उनका आध्यात्मिक ज्ञान उच्चस्तरीय था। खगोल ज्योतिष और गणित में भी वे प्रवीण थे। डायोनीशस लिखता है कि हिन्दुओं ने ही प्रथम सागर पार यात्राएँ आरम्भ कर दूर-दूर के देशों में निजी माल पहुँचाया। आकाशस्थ ग्रहों के भ्रमण वेग और तारों का अध्ययन और नामकरण हिन्दुओं ने ही किया। अति प्राचीन समय से प्रत्येक क्षेत्र में हिन्दू विख्यात थे। उनके देश में प्राकृतिक और मानवी कला की अत्युत्तम कृतियों की भरमार है।"

हिन्दूप्रणाली विश्वधर्म था

ऊपर उद्धृत किए प्रमाणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्राचीन विश्व में सारे जन हिन्दू थे। यदि हिन्दू नाम प्राचीन नहीं है, ऐसी जिन पाठकों की धारणा हो, वे उसे वैदिक धर्म कहें। उसी का प्रचलित नाम हिन्दू है। अतः उसमें कोई विवाद या मतभेद नहीं होना चाहिए। ग्रीक लेखक Ctesias ने कहा है कि "अन्य सारे राष्ट्र के लोगों की संख्या के बराबर प्राचीन विश्व में हिन्दू लोगों की संख्या थी।" (पृष्ठ २२०, भाग २, Historical Researches)।

उक्त कथन बड़ा अटपटा-सा लगता है। उससे सामान्य पाठक की ऐसी धारणा बनती है कि प्राचीन समय में १०० करोड़ लोग संख्या हो तो उसमें से ५० करोड़ हिन्दू थे।

Ctesias के कथन का सूक्ष्मता से विचार करने पर उसमें कई दोष दिखाई देते हैं। एक तो हम यह पूछ सकते हैं कि कृस्तपूर्व समय में हिन्दू या वैदिक धर्म के अतिरिक्त अन्य कौन से धर्म थे? यदि Stoics, Samaritans आदि वे अन्य धर्म थे ऐसा कोई कहे तो हम यहाँ स्पष्ट

करना चाहते हैं कि वे तो वैदिक धर्म के ही विभिन्न पंथ थे।

अत: Ctesias का यह कथन कि प्राचीनकाल में अन्य सारे धर्मों की लोकसंख्या के बराबरी की हिन्दुओं की संख्या थी, इस बात का प्रमाण है कि सारे विश्व के लोग प्राचीन काल में हिन्दू ही थे। Ctesias को शायद वही कहना था किन्तु उसके मन में सम्भ्रम निर्माण हो गया था। वैदिक प्रणाली विश्वधर्म के रूप में आरम्भ होकर महाभारतीय युद्ध तक उसका अटूट प्रसार रहा यह तथ्य जो हमने इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है उसका ज्ञान लुप्त हो जाने के कारण Ctesias जैसे लेखक सारे विश्व के लोग हिन्दू थे, ऐसा कहने के बजाय अन्यधर्मीय लोगों के बराबरी की हिन्दुओं की संख्या थी, ऐसा समझते रहे।

Delbos नाम के एक फ्रेंच विद्वान् ने हिन्दू प्रणाली के बाबत लिखा है कि "हजारों वर्ष पूर्व भारत में निर्माण हुई उस हिन्दू प्रणाली का प्रभाव जीवन के हर क्षेत्र में पग-पग पर हमें प्रतीत होता है। विश्व में जहाँ भी सभ्यता हो वहाँ हिन्दुत्व का प्रभाव दीखता है। चाहे आप अमेरिका जाएँ या यूरोप, गंगा के किनारे से आई उस सभ्यता की छाप स्थान-स्थान पर दीखती है।" (पृष्ठ १८, Bharat—India as seen and known by Foreigners)।

अक्टूबर १८७२ के The Edinburgh Review मासिक में लिखा था "हिन्दू सभ्यता प्राचीनतम है। उसके महत्त्वपूर्ण अवशेष जहाँ-तहाँ पाए जाते हैं। हर क्षेत्र की प्रवीणता और सभ्यता में हिन्दू सर्वदा अग्रसर रहे हैं। हिन्दू प्रणाली जब उत्कर्ष के शिखर पर थी उस समय अन्य सभ्यताओं का उदय भी नहीं हुआ था। हिन्दू प्रणाली की जितनी खोज की जाए उतना ही उसका स्वरूप अधिक मनोहारी और विशाल दिखाई देता है।"

वैदिक विश्वशासन की आवश्यकता

स्वामी विवेकानन्द ने एक बार कहा था कि "मैं चाहता हूँ की हिन्दू विश्वविजय करें।" (पृष्ठ ६, Hindu, Life-Line of India, लेखक जी० एम० जगतियानी, बम्बई, १९८३)।

इस कथन का मूल अर्थ यह है कि वैदिक तत्त्वों पर ही विश्व का

कारोबार अच्छी प्रकार चलाया जा सकता है। हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि हिन्दू कोई जाति नहीं है। वह तो मानवधर्म प्रणाली है जो प्रत्येक व्यक्ति को अपनानी चाहिए। हिन्दुत्व एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन सुखी, समृद्ध और शान्तिपूर्ण हो ऐसे नियम हिन्दू प्रणाली में बनाए गए हैं।

हिन्दू प्रणाली में प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण आध्यात्मिक स्वतन्त्रता दी गई है। पूजापाठ का किसी पर कोई बन्धन नहीं होता। किसी एक व्यक्ति को गुरु मानना या श्रेष्ठ समझना या किसी एक देवता को मानना या न मानना प्रत्येक व्यक्ति पर निर्भर करता है। इतना ही नहीं, नास्तिक मत वालों को भी हिन्दू प्रणाली में सम्मान मिलता है। आस्तिकों में भी अपना-अपना गुरु या देवता चुनना और जप-जाप या पूजा-पाठ की अपनी प्रणाली चुनने का अधिकार प्रत्येक हिन्दू को दिया गया है। इसी कारण प्रत्येक हिन्दू से यह अपेक्षा की जाती है कि वह किसी अन्य व्यक्ति पर पूजा-पाठ या देवभक्ति के क्षेत्र में किसी प्रकार का दबाव न डाले। यही कारण है कि मुसलमान और कृस्तियों में दूसरों को जबरन ईसाई या मुसलमान बनाने की जैसी प्रथा रही है हिन्दू धर्म में कभी वैसा यत्न नहीं हुआ।

तथापि वर्तमान समय में कृस्ती और मुसलमान लोग विविध प्रकार के दबावों से अन्यपंथीय लोगों को अनुयायी बनाकर निजी संख्याबल बढ़ा रहे हैं। इससे वैदिक हिन्दू प्रणाली को बड़ा खतरा खड़ा हो गया है। अत: यद्यपि हिन्दूधर्म प्रणाली में कठोर उपायों से किसी को हिन्दू बनाने की प्रथा नहीं रही है तथापि आत्मरक्षा के लिए अब हिन्दुओं को भी अन्यधर्मीय लोगों को अपने में सम्मिलित कर संख्यावृद्धि करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है। युद्धनीति यही कहती है। शत्रु जिस शस्त्र का और जिन उपायों का अवलम्ब करता है उससे तीव्रतर उपाय और शस्त्र अपनाने से ही हिन्दुत्व का बचाव होगा।

हिन्दू पदपादशाही का लक्ष्य

हिन्दुत्व की रक्षा होना सारी मानव जाति के लिए बड़ा आवश्यक है। हिन्दुत्व में ही विविध विचारों के मानवों को एक साथ जीवन व्यतीत करने

की गुंजाइश अन्तर्भूत है। यदि हिन्दुत्व न रहा तो क्रुस्ती और मुसलमान एक दूसरे को खा जाएँगे। और यदि सारे क्रुस्ती या सारे मुसलमान ही रह गए तब भी वे आपस में लड़कर कट मरेंगे। क्योंकि जुल्म, जबरदस्ती, धोंसबाजी, असत्य, ढोंगबाजी, अत्याचार यही उनके विस्तार के स्रोत रहे हैं। एक माँ की छत्रछाया में जिस प्रकार विविध प्रवृत्तियों की पुत्र-पुत्रियाँ पलती हैं उसी प्रकार हिन्दुत्ववादी छत्रपति के शासन में ही सर्व प्रकार के विचारों को पनपने की स्वतन्त्रता होती है। अतः सारे विश्व को हिन्दू शासन में रखने का ध्येय प्रत्येक व्यक्ति को दोहराते रहना चाहिए। मध्य-युगीन समय में छत्रपति शिवाजी महाराज दैवी प्रेरणा से उसी लक्ष्य का उच्चारण बार-बार करते रहे। आधुनिक समय में स्वामी विवेकानन्द ने भी वही बात कही।

एष धर्मः सनातनः

घने बादलों से सूर्य ढककर जैसे सर्वत्र अँधेरा छा जाता है उस प्रकार क्रुस्ती और इस्लामी आक्रमणों से कई बार हिन्दुत्व पर घोर संकट आते रहे हैं। तथापि उनसे घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। एष धर्मः सनातनः— यह भगवान कृष्ण का वचन ध्यान में रखते हुए वैदिक मान्यताओं से प्रेरित व्यक्तियों को अविरत और अथक यत्नशीलता का कर्तव्य निभाना चाहिए। योगी अरविन्द घोष ने ठीक ही कहा है कि "हिन्दूधर्म गुब्बारे या फुद्दी जैसी कोई हलकी-फुलकी वस्तु थोड़े ही है जो किसी के फूत्कार से उड़कर लुप्त-गुप्त हो जाए।" (जगतियानी के पुस्तक का पृष्ठ १४)।

भारत की आध्यात्मिक श्रेष्ठता की बाबत प्रख्यात बंगाली कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर (टैगोर) ने कहा है "हे भारत, तुम में दरिद्रता, दुःख और कष्ट की भरमार होते हुए भी मैं तुम्हें बहुत चाहता हूँ क्योंकि तुमने सम्राट् के सामने यह आदर्श रखा है कि वह सारी सम्पत्ति त्याग कर सादा जीवन बिताए। (बुद्ध, अशोक, भर्तृहरि और हर्षवर्धन आदि ने उसी आदर्श का पालन किया)। तुम्हीने जेता को जित शत्रु के प्रति रण में दयार्द्र होना सिखाया (क्रूर, दुष्ट, आचारहीन, आतंकवादी इस्लामी आक्रामकों के प्रति हिन्दू राजा और अन्य सेनानियों का बर्ताव इतना नरम रहा कि वह सद्गुण

विकृति बन कर रह गया)। तुम्हीं ने निष्काम कर्म और सेवाभाव का संदेश दिया है (भगवद्गीता का यही तो मुख्य उपदेश है)। तुमने गृहस्थ को सुझाया है कि पड़ोसी, सम्बन्धी, अतिथि, निराश्रित, दीन, दरिद्र आदि सभी को वह अपने ही कौटुम्बिक परिवार का सदस्य समझे। सुख का उपभोग करते समय संयम बरतने की तुम्हारी शिक्षा है" (जगतियानी के पुस्तक में पृष्ठ १६ पर दिया उद्धरण देखें)।

वैदिक संस्कृति की वही विशेषताएँ हैं। उसके अन्तर्गत व्यक्ति अपने आपको ईश्वरी यंत्रणा का केवल एक पुर्जा मानता है। इस प्रकार वह एक सेवक की भूमिका निभाता है न कि एक अहंकारी हुकुमशाह और शोषण-कर्ता की।

वैदिक ध्वज की विशेषता

वैदिक प्रणाली के उपर्युक्त गुण उसके केशरी ध्वज में पूर्णतया दिग्दर्शित हैं। उसी रंग की पताकाएँ प्रत्येक मन्दिर पर लहराती हैं। वही ध्वज वैदिक राजाओं की छावनियों पर और प्रासादों पर भी फरफराता दिखाई देता है। हिन्दू साधु, संन्यासी और तीर्थस्थानों की यात्रा करने वाले भावुक लोग सारे वही रंग के वस्त्र पहनते हैं और उसी रंग की पताकाएँ साथ ले जाते हैं। यह कितना ठोस प्रमाण है कि रावों से रंकों तक वैदिक संस्कृति ने एक समान आदर्श रखा है। उसमें किसी का लिहाज नहीं किया जाता। उस नारंगी उर्फ केशरी रंग द्वारा पवित्रता, त्याग और सेवा तथा दीन-दुखियों की देखभाल का आदर्श जनता के सामने रखा गया है।

हरे रंग के इस्लामी ध्वज की भाँति वैदिक केसरी ध्वज किसी जेता या तानाशाह की विजयों के कारण वैदिक संस्कृति का ध्वज नहीं बना है। उस ध्वज में समता, सेवा, त्याग, दया, पवित्रता, संयम, वैराग्य, शौर्य आदि सभी उत्तमोत्तम भाव सम्मिलित हैं। क्या विश्व में इतना श्रेष्ठ कोई और ध्वज है? अतः यही ध्वज सारे विश्व में स्थान-स्थान पर लहराना चाहिए। उसी ध्वज को ऊपर उठाने का कर्तव्य प्रत्येक व्यक्ति को निभाना चाहिए। उसी में मानव की सुरक्षा, सम्मान, और शोभा समाई हुई है।

हिन्दुत्व के बिना कोई आध्यात्मिकता और स्वतन्त्रता टिक ही नहीं सकती। हिन्दुत्व के अभाव में सर्वत्र स्वार्थ, आक्रमण, बलात्कार, गुलामी, विलासिता और अनाचार का वातावरण निर्माण होगा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्रुस्ती और इस्लामी परम्परा में पाए जाते हैं। जहाँ-जहाँ वैदिक संस्कृति लुप्तप्राय होकर ईसाई या इस्लामधर्म स्थापन हुआ वहाँ गुलामों के रूप में पशुओं की भाँति मानव-समूह पकड़ना-जकड़ना और उन्हें मण्डियों में बेचना प्रारम्भ हुआ। गुलामों का व्यापार क्रुस्ति और इस्लामी लोगों की कमाई का एक प्रमुख साधन रहा है। उसी प्रकार मुसलमानों में खिलाफत और सल्तनत के अधिकारों के लिए सदैव मार-काट होती रही है।

वेदों की प्राचीनता

सारे मानव-समाज के कल्याण की पूरी आचारसंहिता जिस संस्कृति में बनाई गई है उसके मूलाधार हैं वेद। वे वेद प्राचीनतम साहित्य है। मैक्समूलर ने लिखा है कि "ईजिप्त और निनेव्हे के लेखों से प्राचीन वेद है। वेद मानवों की प्राचीनतम पुस्तक है।" (पृष्ठ ५५७, History of Ancient Sanskrit Literature)।

संस्कृत साहित्य की प्राचीनता और महत्त्व के बारे में मैक्समूलर ने कहा है कि "हिन्दुओं का साहित्य प्राचीनतम होते हुए भी वह इतने व्यवस्थित रूप से जतन किया गया है कि उससे हम कितने ही सबक सीख सकते हैं और अज्ञात इतिहास की कड़ियाँ जोड़ सकते हैं।" (पृष्ठ २१, India what it can Teach us)।

वेदों के महत्त्व के बारे में मैक्समूलर लिखते हैं, "वेदों का भारत और विश्व के इतिहासों में बड़ा उपयोग होता है। विश्व के इतिहास में वेद ऐसे ग्रन्थ हैं जिनके बराबर प्राचीन ग्रन्थ अन्य किसी भाषा में नहीं पाए जाते हैं। और भारत के इतिहास में हम वेदों द्वारा समय की प्राचीनतम गहराई में पहुँच जाते हैं।" (पृष्ठ ६३, History of Sanskrit Literature)।

वैदिक सभ्यता के दैवी स्रोत के बारे में जर्मन तत्त्वज्ञ Augustus Schlegel लिखते हैं, "प्राचीन भारतीयों को परमेश्वर का ज्ञान था इसमें कोई सन्देह नहीं। उनके प्रत्येक ग्रन्थ में ऐसे विशाल, सुन्दर, पवित्र, स्पष्ट

विचार हैं जो किसी अन्य भाषा के आध्यात्मिक साहित्य में पाए नहीं जाते।"

अन्य जर्मन विद्वान् Schopenhour ने लिखा है कि "सारे विश्व में उपनिषदों जैसा उपयुक्त और श्रेष्ठ उपदेश और कहीं नहीं है। वही मेरे जीवन का आधार रहा है और मेरे निधन का निधान भी उपनिषद् ही होंगे।" (पृष्ठ ६१, The Upanishads की प्रस्तावना)।

History of British India नाम के ग्रन्थ में उसके लेखक Thornton कहते हैं, "विद्यमान लोगों में हिन्दू सभ्यता सबसे प्राचीन है। उसका उदय औरों से पूर्व हुआ और उसकी प्रगति बड़ी तेजी से हुई। उस समय नाइल (नील)नदी की घाटी में खड़े पिरेमिड्स भी बने नहीं थे। ग्रीस और इटली जैसे देश जो आधुनिक युग के स्रोत माने जाते हैं उनमें जब वन्यपशु ही विहरते थे उस समय भारत में सम्पत्ति और सभ्यता विराजती थी।"

प्राध्यापक वेबर लिखते हैं, "हम दावे से कह सकते हैं कि प्राचीनतम, लिखित साहित्य भारत के अतिरिक्त और कहीं इतनी विपुल मात्रा में उपलब्ध नहीं है।" (पृष्ठ ४, History of Indian Literature, सन् १८८२)।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में ब्रिटेनविरोधी जो स्वतंत्रता आन्दोलन भारत में प्रारम्भ हुआ उसमें भारतीय नेताओं का साथ देने वाली एक आंग्ल महिला थी जिसका नाम था Dr. Annie Basant। उसने लिखा है कि "चालीस वर्षों से अधिक विश्व के प्रमुख धर्मों का अध्ययन करने के पश्चात् मुझे यह प्रतीत हुआ कि हिन्दू धर्म के जितना सर्वंकष, शास्त्रीय, तत्त्वाधिष्ठित और आध्यात्मिक अन्य कोई धर्म नहीं है। उससे जितना परिचय बढ़ता है उतना ही उसके प्रति अधिक लगाव होता है। उसे जितनी अधिक मात्रा में समझने का यत्न करो उतना ही वह अत्यधिक मौलिक प्रतीत होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं होना चाहिए कि हिन्दुत्व के बिना भारत नगण्य हो जाएगा। हिन्दुत्व ही भारत का मूलाधार है। यदि भारत से हिन्दुत्व उखाड़ा गया तो एक निर्मूल पेड़ की तरह भारत सूखकर नष्ट हो जाएगा। भारत में कई धर्म हैं और अनेक वंशों के लोग बसते हैं किन्तु हिन्दुत्व के इतना प्राचीन कोई नहीं है। न ही भारत के राष्ट्रीय व्यक्तित्व में उनका कोई भाग है। जिस प्रकार वे धर्म यहाँ आते रहे वैसे

वे समाप्त भी होते गए तो भी भारत ज्यों का त्यों बना रहेगा। किन्तु यदि हिन्दुत्व नष्ट हो गया तो भारत में बचेगा ही क्या? केवल एक भूमि! नष्ट वैभव की स्मृति दिखाने वाला एक खोखला नाम। भारत का साहित्य हो, या कलाएँ या ऐतिहासिक इमारतें—सभी पर हिन्दुत्व की छाप लगी हुई है। यदि ऐसे हिन्दुत्व की सुरक्षा हिन्दू ही नहीं करेंगे तो और कौन करेगा? यदि भारत के लोग ही हिन्दुत्व को त्यागते रहे तो उसे कौन अपनाएगा? भारत ही भारत को बचा सकता है। और हिन्दुत्व तथा भारत अभिन्न हैं।" (Hindus Life Line of India, जगतियानि लिखित पुस्तक से उद्धृत एनीबेसेण्ट के उद्गार)।

ऊपर लिखा हिन्दू धर्म का मूल्यांकन गौर करने योग्य है। हिन्दू धर्म की सुरक्षा करना हिन्दुओं के साथ-साथ अन्य लोगों को भी अपना कर्तव्य समझना चाहिए क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता हिन्दू धर्म द्वारा ही साध्य हो सकती है। हिन्दुत्व और भारत ही मानवीय सभ्यता के मूल स्रोत रहे हैं। हिन्दुत्व और भारत के बिना ऊर्वरित विश्व में उथल-पुथल और गड़बड़ी का कोई अन्त नहीं रहेगा। बाइबल या कुरान के नष्ट होने पर मानवीय व्यवहार में जरा भी न्यूनता प्रतीत नहीं होगी किन्तु यदि वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, योग, प्राणायाम, आयुर्वेद, वैदिक संगीत और संस्कृत भाषा यदि लुप्त हो गई तो मानो कि मानवता का प्राण ही चला जाएगा।

प्रचलित इतिहास की एक मूलभूत समस्या

इतिहास की एक बहुत गहरी और जटिल समस्या का हमें कभी कोई उल्लेख भी नहीं मिला तो उसका उत्तर भला कहाँ से मिलता!

वह समस्या यह है कि प्राचीन इतिहास में भारत ही सारी उन्नति, उद्योग, विद्या, कला, शस्त्र-अस्त्र आदि का स्रोत माना जाता था। यूरोप वाले कहते हैं कि उन्होंने सारी विद्या अरबों से सीखी। अरब कहते हैं कि इन्होंने सारी विद्या भारत से सीखी। उधर चीन भी अपने लोग भारत में विद्या सीखने के लिए भेजता था। रोम के इतिहास में उल्लेख है कि वे सारी मूल्यवान चीजें भारत से ही मँगवाते थे। सारा विश्व भारत को 'सोने की

चिड़िया' कहता था। भारत का नाम प्राचीन विश्व के प्रत्येक व्यक्ति के होंठों पर था। यदि सारा भारत इस प्रकार सारे विश्व का आकर्षण केन्द्र रहा और सारे विश्व को भारत ही सब प्रकार की वस्तुएँ और विद्याएँ भेजता रहा तथापि भारत के प्राचीन इतिहास में वैसा कोई उल्लेख क्यों नहीं है? इस जटिल और अज्ञात समस्या का हम यहाँ यथार्थ समाधान लिख रहे हैं—

वास्तव में बात यह हुई कि कृतयुग से लेकर महाभारतीय युद्ध तक सारे विश्व में वैदिक संस्कृति थी। कृस्त पूर्व वर्ष ३१३८ से वह संस्कृति विश्व के अन्य भागों से युद्ध के अपार संहार के कारण नष्टप्राय होकर योगायोग से केवल भारत में ही चलती रही। अतः सारे विश्व के लोगों को भारत से ही सारी वस्तुएँ मँगवाना या शिक्षाएँ सीखना अनिवार्य हुआ। यह क्रम ३००० से ३५०० वर्ष चलने के कारण भारत सारी विद्याओं का और वस्तुओं का केन्द्र बन गया। वैदिक संस्कृति तथा उसके अन्तर्गत शास्त्र, विद्या, कलाएँ आदि भारत से ही सारे विश्व को उपलब्ध होती रहीं। अतः भारत का नाम सारे विश्व में गूँज उठा।

२

मनुस्मृति

मानव की निर्मिति होते ही व्यक्तिगत और सामाजिक आचरण के नियम बनाने आवश्यक थे। कृतयुग के आरम्भ में वे जो नियम प्रथम वैवस्वत मनु ने बनाए वे मनुस्मृति कहलाए। अतः मनु को Frist lawgiver of humanity यानि मानवीय आचार धर्म का आद्यतम प्रणेता कहा जाता है।

युग-युग में उन नियमों में समयानुसार कुछ परिवर्तन होते गए; जैसे किसी देश के संविधान में बदलती परिस्थिति के अनुसार संशोधन किए जाते हैं। तथापि व्यवहार में वह सारा एक ही मूल संविधान माना जाता है।

कभी कुछ व्यक्तियों ने या गुटों ने मनुस्मृति में अपने पल्ले से भी कुछ श्लोक स्वार्थ हेतु प्रविष्ट कर दिए।

तथापि कई बार ऐसा भी देखा गया है कि जिनके मन में मनुस्मृति के प्रति तिरस्कार भर दिया गया हो वे बगैर सोचे-समझे पग-पग पर मनुस्मृति के वचनों के अर्थ का अनर्थ कर देते हैं।

जैसा मनुस्मृति में शूद्रों को और स्त्रियों को पापयोनयः कहा गया है। इसका अर्थ ऐसा लगाया जाता है कि मनुस्मृति में स्त्रियों को और शूद्रों को तिरस्कार-भाव से पापी कहा गया है। पापयोनयः का अर्थ पापी नहीं अपितु जिनके जीवन में संकट एवं जिम्मेदारी अत्यधिक होती है ऐसा लेना योग्य होगा। जैसे स्त्रियों के शरीर-धर्म के अनुसार घर में उन्हें सर्वदा कार्यरत रहना पड़ता है, घने वनों में या अँधेरी रात में स्त्रियों को एकाकी जाना ठीक नहीं होता। शूद्र जन धन या शिक्षा के अभाव से गरीब स्तर के

होने के कारण उन्हें भी शारीरिक कष्ट के काम दिन-भर करने पड़ते हैं और किसी भी मामले में उनकी सुनवाई कम और विलम्ब से होती है।

इससे यह न समझा जाए कि वैदिक संस्कृति ने किसी एक वर्ग के लोगों को नीचे दबाए रखा था। किसी भी समाज में ऐसे लोग होते हैं जो किसी कारणवश पिछड़े रहते हैं। वही तबका शूद्र कहलाता है। मन्द बुद्धि, अपंगता, व्यसनाधीनता, आलस्य, दुराचरण आदि कई कारणों से जो व्यक्ति समाज में पिछड़ जाया करते थे वे शूद्र श्रेणी के कहलाते थे। वे या उनकी सन्तान कर्म और गुणों के अनुसार वैश्य, क्षत्रिय या ब्राह्मण श्रेणी में जा सकते थे।

पाश्चात्य प्रणाली के विद्वान् भाषा या अन्य किसी तिनके के आधार पर मनुस्मृति का निर्माण-काल क्रिस्त पूर्व सन् ८०० से लेकर ईसवी सन् ४०० तक का बतलाते रहे हैं। उन विद्वानों ने वेदों की निर्मिति के सम्बन्ध में भी उसी प्रकार भिन्न-भिन्न अनुमान लगाये हैं। वेदों की भाँति मनुस्मृति के निर्माण की वे अटकलें एक प्रदीर्घ कालावधि में भूले-भटके पंछी की तरह अन्धाधुन्ध चक्कर काटती रहती हैं। अतः हम यहाँ एक नया तर्क प्रस्तुत कर रहे हैं।

मानव निर्मिति के छह मन्वन्तर बीत चुके हैं। वर्तमान युग सातवें मन्वंतर का भाग है। अतः मूल मनुस्मृति को उतने ही वर्ष बीते हैं जितने वेदों को हुए हैं।

जैसे इतिहास, भूगोल, गणित या संस्कृत विषयों के शालेय क्रमिक पुस्तक कृतयुग से कलियुग तक लगातार चलते आ रहे हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी पुस्तकों के नए संस्करण निकलते रहते हैं। तथापि पाठ्य-विषयों का मूल रूप तो अखण्ड ही माना जाता है। उसी प्रकार मनुस्मृति के भी संस्करण भले ही छोटे-बड़े होते रहे हों तथापि मनुस्मृति का रूप एक अखण्डित सरिता जैसा ही माना जाना चाहिए।

मानवीय व्यवहारों के उन मूल नियमों की स्मृति सरिता की दृष्टि से उस ग्रन्थ को मनुस्मृति कहा जाता है।

प्रजापति स्वायम्भव मनु के बनाए नियमों की स्मृति से भी उस नियम संहिता का मनुस्मृति नाम पड़ा है।

यह ब्रह्माण्ड एक सर्वशक्तिमान परमात्मा की शक्ति और आधार से

चलाया जा रहा है इस तत्त्व का स्मरण दिलाने वाली संहिता मनुस्मृति कहलाई।

इस विश्व की अद्‌भुत और अदृश्य हिसाब प्रणाली के अनुसार यहाँ कर्मों के समतोल पाप और पुण्य का फल मिलता है और तदनुसार अगले-अगले जन्मों का आविष्कार होता रहता है, इसका स्मरण कराने वाली संहिता मनुस्मृति कही गयी।

प्रत्येक प्रलय के पश्चात् दैवी स्मृति से जिस संहिता का नये युग के लिए नया ग्रंथन होता रहता है वह मनुस्मृति कही जाती है।

विद्यमान मनुस्मृति के १२ अध्याय हैं जिनमें २६८४ श्लोक हैं। कुछ संस्करणों में २७९४ से १६९५ तक श्लोकों की संख्या होती है। यह पाठ-भेद मनुस्मृति की प्राचीनता का निदर्शक है।

मनुस्मृति का एक मुद्रित संस्करण सन् १८७७ का है तो दूसरा सन् १९०७ का है। तीसरे एक संस्करण में कुलकभट्ट का भाष्य भी अन्तर्भूत है। कुछ संस्करण में १०-११ श्लोक अधिक सम्मिलित किए गए हैं। तथापि उनके होने या न होने से मनुस्मृति के आशय में कुछ परिवर्तन नहीं होता।

मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में ब्रह्माण्ड की गतिविधि, युग, महायुग आदि कालखण्ड और कर्म और गुणों के अनुसार मानव-समाज के चार वर्ग वर्णित हैं। दूसरे अध्याय में बालकों के संवर्धन, संगोपन, प्रशिक्षण आदि का विवरण है। तीसरे अध्याय में विवाह और अंत्यसंस्कार की चर्चा है। चौथे में गृहस्थाश्रमी के कर्तव्य, उसका आहार और २१ प्रकार के नर्कों का वर्णन है। पाँचवें अध्याय में योग्य आहार की चर्चा आगे चलाते हुए स्त्री-जीवन का विश्लेषण किया गया है। छठवें अध्याय में वानप्रस्थ और संन्यासाश्रमों का विवरण दिया गया है। सातवें प्रकरण में राजा के कर्तव्य कहे गए हैं। आठवाँ अध्याय सर्वाधिक पृष्ठों वाला है। उसमें कर्तव्यच्युत के प्रायश्चित, विविध अपराध और उनके दण्ड निर्देशित हैं। नौवें अध्याय में मृतक की सम्पत्ति का बँटवारा वारिसों में किस प्रकार किया जा सकता उसके नियम दिए गए हैं। दसवें अध्याय में वेदोक्त विवाह संस्कार से भिन्न स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का उल्लेख है। ग्यारहवें अध्याय में पापकर्म और

प्रायश्चित की चर्चा है। अन्तिम यानि १२वें अध्याय में तीन विभिन्न प्रवृत्तियों के लोग वर्णित हैं, वेदों की महत्ता बखान की गई है और पाप-कर्मों से प्राप्त होने वाले पुनर्जन्म का उल्लेख है।

परमात्मा ने निजी माया और लीला से सारे जीवों को व्याधि, जरा, विविध संकट, भय, मृत्यु आदि से भरा यह संसार क्यों निर्माण किया ? इस प्रश्न का उत्तर मानव के पास नहीं है।

मनु महाराज कहते हैं—

प्रजानार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवाः।
तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः ॥९-९६॥

ईश्वरीय यंत्रणा में स्त्री-पुरुष प्रजोत्पत्ति के लिए बनाए गए हैं। अतः दोनों के मिलकर आदर्श जीवन बिताने के नियम मनुस्मृति में कहे हैं।

३

वैदिक विश्व के भौगोलिक प्रमाण

इस प्रकरण से आरम्भ कर अगले प्रत्येक अध्याय में जीवन के विविध पहलुओं का बिवरण देते हुए हम पाठकों को यह विदित कराएँगे कि ईसाई धर्म के प्रसार के पूर्व सारे विश्व में वैदिक संस्कृति का अस्तित्व उन सर्वांगीण प्रमाणों से सिद्ध होता है।

प्राचीन काल में महाभारतीय युद्ध तक सारे भूखण्ड, प्रदेश, सागर, नगर, नदियाँ, पहाड़ आदि के नाम संस्कृत ही थे। कौरव-पाण्डवों का वैदिक साम्राज्य टूट जाने के पश्चात् और संस्कृत भाषा वाली गुरुकुल शिक्षा-पद्धति यकायक रुक जाने के पश्चात् भी संस्कृत नाम त्रुटित, खण्डित अवस्था में जैसे-तैसे चलते रहे। तत्पश्चात् ईसाई और इस्लामी आक्रमणों द्वारा वे संस्कृत नाम या तो बिगाड़े गए या बदल डाले गए। तथापि अभी भी विश्व की भौगोलिक परिभाषा अधिकतर संस्कृत ही है और प्राचीन काल में वैदिक संस्कृति के विश्व-प्रसार का वह एक ठोस प्रमाण है।

कई बार किसी स्थान, प्रदेश, नगर, नदी आदि के प्रचलित नाम कुछ और होते हैं और अतीत के इतिहास में कुछ और होते हैं। उन सभी का विचार करना आवश्यक होता है। ऐसी अवस्था में उनमें से कुछ नामों का संस्कृत मूल विचार करने पर अवश्य अवगत होगा।

भारत ही विश्व का केन्द्र

तिब्बत यानि त्रिविष्टप उर्फ स्वर्ग से लेकर अफगानिस्थान तक का प्रदेश वैदिक संस्कृति का केन्द्र-स्थान रहा है। उसी आधार पर 'दुर्लभं

भारते जन्म' ऐसी प्राचीन कहावत है। भारत में जन्म होना परम भाग्य समझा जाता था।

विश्व के भूगोल में अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा (International Date line) पूर्ववर्ती प्रदेश, सुदूरपूर्व के देश, पश्चिम आशिया, पौर्वात्य लोग और पाश्चिमात्य लोग आदि जो परिभाषा प्रचलित है वह भारत को केन्द्र मानकर ही निश्चित की गई है।

जैसे अमेरिका का उदाहरण लें। वैसे तो अमेरिका खण्ड जापान की पूर्व दिशा से बड़ा समीप पड़ता है तथापि भारत उसे पश्चिमी प्रदेश कहता आ रहा है। अतः सारा विश्व भी अमेरिका को पाश्चिमात्य देश कहता है। अमेरिका से जापान पश्चिम में पड़ता है। तथापि अमेरिका-सहित सारा विश्व जापान को सुदूरपूर्व का प्रदेश कहता है क्योंकि भारत की दृष्टि से वह सुदूरपूर्व में स्थित है। भारत को केन्द्र समझकर विविध प्रदेशों की दिशाएँ कहना और अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा भारत के सूर्योदय के क्षितिज पर स्थापित यह इस तथ्य का सशक्त प्रमाण है कि सारे विश्व में वैदिक संस्कृति होती थी और भारत ही उसका केन्द्र या उद्गम स्थान हुआ करता था। भारत को प्रमाण मानदण्ड मानकर ही प्राचीन विश्व में मानवीय व्यवहार की सारी बातें निश्चित की जाती थीं।

इतिहास संशोधन में ऐसे महत्त्वपूर्ण मुद्दे आज तक दुर्लक्षित रहे हैं। उन पर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया। अतः जाग्रत सुविचारी पाठकों को यह जान लेना चाहिए कि केवल महाविद्यालय या विश्वविद्यालय द्वारा इतिहास विषय की उपाधि प्राप्त कर लेने से व्यक्ति इतिहासकार नहीं बनता। इस ग्रंथ में समय-समय पर चर्चित अनेकानेक मुद्दों को पिरोने वाली एक नयी संशोधन पद्धति अपनाने से ही दोषरहित संशोधन हो सकेगा। उसी पद्धति से निकले निष्कर्ष उपयुक्त और तर्कशुद्ध होंगे।

ज्ञात समानता से निकाला निष्कर्ष

इस संशोधन पद्धति में अज्ञात अतीत की खोज करने में analogy उर्फ वर्तमान ज्ञान समानता का भी बड़ा उपयोग होता है। जैसे अभी-अभी इंग्लैण्ड का अमेरिका से ऑस्ट्रेलिया तक के प्रदेश में एक विशाल साम्राज्य

था। उन दिनों उस प्रमुख साम्राज्यशाही देश का निजी नाम इग्लैण्ड था, अत: उनका साम्राज्य जैसे-जैसे विस्तृत होता गया वैसे-वैसे विविध प्रदेशों के नाम अंग्रेजी शैली से आइसलैण्ड, ग्रीनलैण्ड, बासुटोलैण्ड, वुकनेलैण्ड, थायलैण्ड, न्यूफाऊंडलैण्ड आदि पड़ते गए। इस प्रकार समान शैली के नाम विविध प्रदेशों को दिया जाना साम्राज्य-प्रसार का एक प्रमाण होता है।

तो अब देखें कि पुराणों में वैदिक क्षत्रियों के विश्वदिग्विजय के जो उल्लेख हैं वे इस प्रमाण से कैसे सिद्ध होते हैं। दिग्विजय करने वाले क्षत्रियों का मूल देश था सिन्धुस्थान उर्फ हिन्दुस्थान। अत: उनका साम्राज्य जैसे-जैसे बढ़ा वैसे विविध प्रदेशों के नाम विजेताओं की शैली में अफगाणिस्थान, कुर्डिस्थान, घरुचिस्थान, घाबुल्लिस्थान, कझाकस्थान, उझ्बेकिस्थान, तुरगस्थान, अर्बस्थान आदि दिए गए।

क्या वैदिक क्षत्रिय आक्रामक थे ?

ऐसे विश्वदिग्विजय का अर्थ यदि कोई यूँ लगाए कि इस्लामी और क्रुस्ति आक्रामकों की भाँति वैदिक क्षत्रिय भी क्रूर रक्तपिपासु, अत्याचारी और अनाचारी होंगे तो वह अयोग्य होगा। हर एक जाति का अपना-अपना ध्येयवाद और आचार-प्रणाली होती है। जैसे योरोपीय आक्रामक इस्लामी आक्रामकों जैसे क्रूर, अत्याचारी, व्यभिचारी नहीं थे। क्योंकि योरोपीय क्रुस्तियों की सभ्यता, शिस्त, शिक्षा-स्तर, आचार-प्रणाली मुसलमानों की तुलना में बड़े ऊँचे स्तर की थी।

उसी प्रकार वैदिक क्षत्रियों का 'आक्रमण 'परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्' ऐसी ध्येयवादिता से किए जाते थे। 'कृण्वन्तो विश्व-मार्यम्' यानि सारे विश्व में सुव्यवस्था प्रस्थापित करने के ध्येय से होते थे। उन दोनों में कोई तुलना ही नहीं हो सकती। कहाँ भगवान राम, राणा प्रताप या शिवाजी के आक्रमण और कहाँ महमूद गजनवी, गोरी, अल्लाउद्दीन, तैमूरलंग, नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली जैसे आक्रामक! अधर्मी-विधर्मियों को उसी धर्मकांटे में तोला नहीं जा सकता जिसमें हमारे अपने प्रजारक्षकों की सुवर्णतुला करते हैं। आक्रामक दोनों ही थे किन्तु हिन्दू आक्रामक नररक्षक थे; तो मुसलमान आक्रामक नरभक्षक राक्षस थे।

किसी भी चढ़ाई पर बन्दी की गयीं सारी नारियों पर बलात्कार करना उनका आम रिवाज था। बन्दियों को जबरदस्ती मुसलमान बनाना या गुलाम के नाते बाजार में बेचना यह इस्लामी आक्रामकों का सामान्य आचरण था। अतः उनका अन्तर्भाव किसी पैशाची इतिहास में किया जाना योग्य रहेगा। मानवी इतिहास में उनका अन्तर्भाव करना भी अनुचित होगा।

उन इस्लामी कुरीति के प्रभाव से हिन्दुस्थान, कझाकस्थान, उझबेकिस्थान आदि नाम 'स्तान'-'स्तान' कहकर लिखना या भारत को इस्लामी, उर्दू, फारसी उच्चारण-शैली से हिन्दुस्तान या हिन्दोस्ताँ लिखना सर्वथैव निन्द्य समझा जाना चाहिए। 'स्थान' इस संस्कृत शब्द को तोड़ा-मरोड़ा नहीं जाना चाहिए।

वैदिक क्षत्रियों के विश्वदिग्विजय के प्रमाणभूत एक विशिष्ट शैली के नाम हमने ऊपर उद्धृत किए हैं। उसी प्रकार अन्य नाम भी संस्कृत ही हैं। जैसे इराक और इराण दोनों संस्कृत 'इर' धातु के शब्द हैं जैसे—इरावती, ऐरावत या प्रेरणा आदि शब्द हैं। वीरान बालुकामय प्रदेश को संस्कृत में इरणम् कहते हैं। 'रण' उसी वर्ग का शब्द है। 'रण' वह प्रदेश होता है जहाँ रेत के ऊपर थोड़ा जल होता है। 'इरण' में रेत ही रेत और जल के अभाव का संकेत होता है।

सुदूर अग्नेय (दक्षिण और पूर्व के मध्य की) दिशा में जो आस्ट्रेलिया भूखण्ड कहलाता है वह मूलतः संस्कृत अस्त्रालय नाम है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में अस्त्रों का बार-बार उल्लेख आता है। इस नाम का यूरोपखण्ड में 'ऑस्ट्रिया' यानि अस्त्रीय देश है। योगायोग से वर्तमान समय में भी उसी अस्त्रीय देश के दोनों तरफ रशिया और अमेरिका द्वारा महासंहारी अस्त्र एक-दूसरे के विरुद्ध खड़े किए जा रहे हैं। समय-समय पर इतिहास में एक-जैसी घटनाएँ ही होती रहती हैं। History repeats itself—इस कहावत का अनोखा उदाहरण ऑस्ट्रिया उर्फ अस्त्रीय देश में इस प्रकार पाया जाता है कि ऑस्ट्रिया देश अस्त्रों का आखाड़ा अतीत में था वैसा आज भी बना हुआ है।

तीन लोकों से सम्पर्क

प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में त्रैलोक्यनाथ, त्रिभुवन सुन्दर आदि उपाधियों का बार-बार उल्लेख तथा अर्जुन आदि का इन्द्रलोक को जाना-आना इत्यादि विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक युग में रशिया, अमेरिका आदि देशों के यान जिस प्रकार चन्द्रमा पर उतर सकते हैं वैसे ही प्राचीन युगों में भी अन्य ग्रहों पर स्थित मानवों से पृथ्वी निवासी मानव सम्पर्क रखा करते थे।

उस युग में महासंहारी अस्त्रों का निर्माण होता था। उनके प्रभाव की पूर्व परीक्षा जिस सुदूर के भूखण्ड पर की जाती थी उसका अस्त्रालय उर्फ ऑस्ट्रैलिया नाम पड़ा। हो सकता है कि इसी कारण अस्त्रालय एक अनुपजाऊ वीरान प्रदेश बनकर रह गया। आधुनिक अणु-शास्त्रज्ञों को यदि जाँच करने के साधन उपलब्ध हों तो वे अस्त्रालय की भूमि, चट्टानें, वातावरण, जल आदि की जांच कर पता लगाएँ कि क्या पाँच सहस्र वर्ष पूर्व तक उस भूमि में अणु-अस्त्रों का प्रयोग या विस्फोट होते रहे हैं ?

शुण्डा

उसी ऑस्ट्रेलिया भूखण्ड के उत्तर में Straits of Sunda नाम के कुछ द्वीप हैं। उनका उल्लेख रामायण में भी आता है। रावण के गढ़ का शोध करने निकले सुग्रीव की हवाई टुकड़ियों ने शुण्डा के द्वीपों पर से उड़ान करने का हवाला दिया है। अतः आजकल के भूगोल में उल्लेखित यह नाम वैदिक संस्कृति का दिया हुआ है।

चीन

चीन देश का उल्लेख महाभारत में आया है। कौरव-पाण्डवों के महाभारतीय युद्ध की तैयारी हो रही थी तो विश्व की तत्कालीन समस्त जनजातियाँ उसके लपेट में आ गयीं। उस समय चीन, बर्बर, तार्तर आदि का उल्लेख महाभारत में आया है। अतः चीन का इतिहास केवल बौद्ध-प्रणाली से आरम्भ करना सर्वथैव अयोग्य है। तथापि आजकल के सारे ही

विद्वान् और स्वयं चीन के लोग निजी इतिहास ढाई-तीन सहस्र वर्षों से पूर्व जानते ही नहीं हैं।

जापान

जापान यह नाम विश्व के अन्य लोगों में प्रचलित है। स्वयं जापानी लोग निजी देश को 'निप्पॉन्' कहते हैं जो निपुण शब्द का अपभ्रंश है। जापानी लोग भी बौद्धपूर्व निजी हिन्दू वैदिक इतिहास भूलकर लगभग ढाई हजार वर्ष का ही इतिहास किसी प्रकार कह पाते हैं।

शिबिरीय

रशिया देश का पूर्ववर्ती एक बड़ा विस्तीर्ण प्रदेश स्थानिक उच्चारण में शिविर कहलाता है। अन्य लोग उसे थोड़ा अलग उच्चार कर Siberia (सायबेरिया) कहते हैं। वह नाम पूर्णतया संस्कृत 'शिविरीय'–ऐसा संस्कृत है। वहाँ बरफ जमी-रहती है, ऋतु सदा ही अति शीत होती है। बड़ी तेज हवा चलती रहती है। इसी कारण वहाँ कोई स्थायी बस्ती नहीं है। वहाँ जो भी किसी संशोधन, निरीक्षण या योगध्यान के निमित्त जाया करते वे वहाँ अस्थायी शिविर बनाकर ही रहते थे। अतः उस प्रदेश का शिबिर उर्फ शिबिरीय नाम पड़ा।

ऋषिय

पूर्व का और पश्चिम का विस्तीर्ण प्रदेश मिलाकर रशिया देश बनता है। उसे प्रचलित योरोपीय प्रणाली में Russia लिखा जाता है। तथापि उसका मूल उच्चारण 'ऋषिय' ऐसा संस्कृत है। सारे विश्व में वैदिक साम्राज्य के अन्तर्गत कार्यानुसार ऋषि-मुनियों का संचार सर्वत्र होता था। तथापि रशिया का ही प्रदेश 'ऋषिय' इसलिए कहलाया कि एकान्त या योग-समाधि के लिए शान्त, निर्जन और अतिशीत ऐसे इस प्रदेश में ऋषि-मुनि आया करते थे। पुनः जनसम्पर्क की आवश्यकता होने पर वहीं से वे देश-विदेश में घूमकर फिर एकान्त के लिए उसी प्रदेश में लौटते थे। सारे विश्व में एक ही विशिष्ट प्रदेश का 'ऋषिय' नाम पड़ना यह सिद्ध करता है कि उस अतीत

में सारी पृथ्वी पर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाली एक ही सार्वजनिक सनातन वैदिक जीवन-प्रणाली प्रचलित थी ।

वाल्मीकि

रशिया देश विविध प्रादेशिक राज्यों का एक संगठन है। उसमें एक राज्य का नाम काल्मीक है। वह वाल्मीकि का अपभ्रंश है। ऋषिय प्रदेश में प्राचीन महर्षि वाल्मीकि की स्मृति जुड़ी रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं। अगले किसी प्रकरण में हम यह बतलाएँगे कि रामायण के कई संस्करण त्रुटित, खण्डित, विकृत अवस्था में रशिया उर्फ ऋषिय प्रदेश में अभी भी पाए जाते हैं। काल्मीक ऐसे अपभ्रंश से ही क्यों न हो अजरामर कीर्ति के महर्षि वाल्मीकि के नाम की स्मृति रशिया में उत्कीर्ण रहते हुए भी आधुनिक विद्वज्जगत् को उसकी जरा भी जानकारी नहीं थी यह विद्यमान संशोधन प्रणाली की सदोषता का कितना प्रखर उदाहरण है !

प्रऋषिय

रशिया उर्फ ऋषिय देश से जुड़े हुए जर्मनी के एक प्रदेश को Prussia या पर्शिया कहा जाता है, जो स्पष्टतया प्र-ऋषिय संस्कृत शब्द है। प्रऋषिय का अर्थ है ऋषिय देश से संलग्न प्रदेश ।

दैत्यस्थान

जर्मन लोग निजी देश को जर्मनी न कहकर डाइट्शलैण्ड (Deutschland) कहते हैं जो दैत्यस्थान का अपभ्रंश है। वैदिक पुराणों के अनुसार कश्यप ऋषि ही दैत्य उर्फ दानवों के पूर्वज थे। उनकी स्मृति में रशिया देश के एक सागर को काश्यपीय सागर उर्फ 'Caspian Sea' कहते हैं। पुराणों मे वर्णित वह सारी प्राचीन परम्पराएँ आजकल के भूगोल में प्रचलित नामों से किस प्रकार खरी उतरती है—यह ऊपर दिए उदाहरणों से स्पष्ट है।

डच्

यूरोप के प्रदेश में दैत्य जाति का ही अधिकार था। अतः हालैण्ड देश के निवासी भी 'डच्' यानि दैत्य कहलाते हैं। 'त्य' का अपभ्रंश 'च' होता है।

जैसे भारतांतर्गत उत्तर प्रदेश राज्य में जो नगर वर्तमान समय में भैराइच कहलाता है वह मूलतः बृहदादित्य था। वहाँ जिस प्रकार 'दित्य' का विकृत उच्चार 'इच्' बना उसी प्रकार 'दैत्य' शब्द का उच्चार 'डच' हुआ।

रमणीय (Romania)

यूरोपखण्ड के एक देश का नाम है Romania (रोमेनिया) जो 'रमणीय' संस्कृत शब्द का विकृत उच्चार है। उसी के निकट अस्त्रीय प्रदेश है जो यूरोप में ऑस्ट्रिया कहलाता है।

हंगेरी (Hungary)

वहीं दूसरे एक प्रदेश का नाम है हंगेरी जो शृंगेरी शब्द का बिगड़ा उच्चार है; जैसे सिन्धु का हिन्दू उच्चार होता है। उस देश में पहाड़ी, सरोवर, वन आदि का प्राकृतिक शृंगार बना हुआ है।

स्कन्दनावीय (Scandinavia)

यूरोप में नॉर्वे, स्वीडन, डेन्मार्क आदि देशों के भू-भाग को स्कॅंडिनेव्हिया कहते हैं। वह स्पष्टतया संस्कृत 'स्कन्दनावीय' शब्द है। दैत्यों से किए युद्ध में देवों के सेनानायक शिवपुत्र स्कन्द थे। उनके नौका दल की छावनी जिस प्रदेश में रही उसका नाम स्कन्दनावीय उर्फ स्कॅंडिनेव्हिया पड़ना स्वाभाविक था।

दनु और मर्क

पुराणों में दनु तथा मर्क इस नाम के दो दानवों का उल्लेख आता है। इस प्रदेश में प्राचीन कालीन सुर-असुर विवाद में स्कन्द के सेनापतित्व में सुर सेनाओं का दैत्यों से संघर्ष होता रहता था। तब के दनु और मर्क इन दो दैत्य नामों की स्मृति Denmeark देश के नाम में अंकित दिखाई देती है।

स्वर्ग और नर्क

यूरोप के जो देश स्वीडन और नॉर्वे कहलाते हैं उनके निवासी उन्हें स्वेर्ग और नॉर्ग कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि वे स्वर्ग और नर्क ऐसे दो वैदिक-संस्कृत नाम हैं।

बेल्जियम्

बेल्जियम् का मूल अर्थ विद्वान पाठकगण ढूंढ़ निकालें। हम यहाँ इतना ही निर्देश करना चाहेंगे कि 'यम्' यह नाम का अंत्यपद स्पष्टतया संस्कृत ही है। जैसे वन्दनीयम्, उल्लेखनीयम् आदि शब्दों में होता है।

लक्ष्मीदुर्ग

बेल्जियम के निकट ही लक्षेम्बर्ग नाम का छोटा देश है जो लक्ष्मीदुर्ग का अपभ्रंश है।

गालव

प्राचीनकाल में फ्रांस देश का अन्तर्भाव 'गाल' (Gaul) प्रदेश में होता था। क्योंकि वह गालव मुनि का प्रदेश होता था। गालव मुनि के आश्रम, गुरुकुल मन्दिर आदि वहाँ हुआ करते थे।

बृहत्स्थान

आजकल जिस प्रदेश को 'ब्रिटन' कहा जाता है वह बृहत्स्थान का अपभ्रंश है। वे बड़े आकार के द्वीप यूरोप से कुछ हटकर होने के कारण उन्हें समुद्रान्तर्गत बृहत्स्थान कहा जाता है।

उसी देश के एक भाग का नाम वस्तुतः इंग्लैण्ड है। तथापि बोलचाल में 'इंग्लैण्ड' नाम पूरे 'ब्रिटन' को लगाया जाता है। इंग्लैण्ड शब्द अंगुलिस्थान का अपभ्रंश है। यह बात कुछ विस्तार से हम इसी ग्रन्थ के किसी अगले अध्याय में स्पष्ट करेंगे।

पोर्तुगाल

पोर्तुगाल देश स्पेन का पश्चिमी भाग है। गालव प्रदेश में सागर किनारे से प्रवेश करानेवाली भूमि इस अर्थ से उसे पोर्तुगाल नाम पड़ा है।

स्पेन

स्पेन देश का उल्लेख (Hispania) हिस्पैनिया और इबेरिया ऐसे दोनों प्रकारों से प्राचीन काल में होता था।

ईटिल

ईटिल देश 'ईरूप' उर्फ 'सुरूप' खण्ड के 'तल' में सागरकिनारे होने के कारण उसका नाम ईटलि पड़ा। तल अवीव, तल अमर्ना नाम के स्थान सारे सागरतट के पृथ्वी तट पर हैं। वैदिक विश्वसाम्राज्य के समय से वे नाम चले आ रहे हैं।

ग्रीस

ग्रीस का दूसरा नाम यावन उर्फ यूनान भी है। उस प्रदेश के एक भाग को Ionia उर्फ यावनीय अभी भी कहते हैं। यह सारे संस्कृत नाम हैं। ग्रीस यह गिरीश शब्द का बिगड़ा उच्चार है। देवों का निवास जैसे वैदिक संस्कृति में कैलास पर्वत पर माना जाता है उसी प्रकार ग्रीस देश में भी Mount Olympus पहाड़ी पर सारे देवों का निवास माना जाता था। उस देवस्थान से ही उस प्रदेश का नाम गिरीश उर्फ ग्रीस पड़ा। उसी प्रदेश में पार्थिया नाम का भाग 'पार्थ' यानि अर्जुन की स्मृति कायम रखता है।

यावन शब्द का अर्थ है 'वन को जाना'। प्राचीन वैदिक संस्कृति में कर्त्तव्यच्युति या धर्मबाह्य आचरण करने वाले को उन द्वीपों में भेजा जाता था जो आजकल ग्रीस कहलाते हैं। आधुनिक काल में भी विविध सरकारें अपराधी लोगों को सागरपार ऑस्ट्रेलिया, पुलुकोंडॉर और अण्डमान जैसे द्वीपों में भेजा करती हैं। यह आधुनिक प्रथा उस प्राचीन वैदिक परम्परा पर आधारित है जिसके अनुसार अपराधी व्यक्तियों को आम समाज से सागर पार दूर भेजा जाता था ताकि समाज न बिगड़े।

अमेरिका

उत्तर और दक्षिण अमेरिका नाम के दो विस्तीर्ण भूखण्ड हैं। उनका उच्चार यद्यपि 'अमेरिका' किया जाता है तथापि America इन अक्षरों से जाना जा सकता है कि उनका मूल नाम 'अमरीश' होना चाहिए क्योंकि अन्तिम दो अक्षर ca का 'श' उच्चारण बनता है।

उत्तर अमेरिका खण्ड में Canada और U S A नाम के दो स्वतंत्र देश हैं। उनमें Canada का उच्चारण यद्यपि 'कैनडा' ऐसा किया जाता है

तथापि वह वैदिक शास्त्रज्ञ कणाद के नाम से पड़ा है। हो सकता है कि बिसरे अतीत में कणाद उसी प्रदेश में रहते हों या वहाँ शास्त्रीय संशोधन के गुरुकुल चलाते रहे हों।

दक्षिण अमेरिका खण्ड में ब्राजील, अर्जेंटीना, उरुग्वे, ग्वाटेमाला आदि कई देश हैं। उनमें ग्वाटेमाला गौतमालय का बिगड़ा उच्चार है। अर्जेंटीना नाम अर्जुनस्थान का अपभ्रंश है। उरुगाव: भगवान विष्णु का नाम है। उरुगाव: उसीका आधुनिक उच्चारण है। दक्षिण अमेरिका में स्थित 'ब्यूनस आइरिस' (Beunos Aires) नगर मूलत: 'भुवनेश्वरम्' ऐसा वैदिक नाम है। भुवनेश्वरी वैदिक देवता का नाम है।

इस प्रकार विश्व के भू-प्रदेशों के नाम संस्कृत हैं यह हमने विविध उदाहरणों से देखा। अब सागरों के नाम देखें।

सागरों के संस्कृत नाम

ऋषिय उर्फ रशिया देश में कैस्पियन् सागर है। कश्यप मुनि ऋषि-कुल के जनक थे। उनका आश्रम जहाँ था उस स्थान का नाम मोक्ष (उर्फ 'मॉस्को' नगर) पड़ा क्योंकि योगध्यान आदि से मोक्षप्राप्ति के मार्ग की शिक्षा देना ही उनका धर्म था। उसी प्रदेश के कस्पियन् सागर का नाम कश्यप से ही पड़ा। हिरण्यकश्यप का महल उसी ऋषिय प्रदेश में था।

अफ्रीका और अरबस्थान के दक्षिण में अमेरिका से ऑस्ट्रेलिया तक फैले विशाल सागर को Indian Ocean यानि हिन्द महासागर अर्थात् भारतीय महासागर कहते हैं। वस्तुत: विद्यमान भारत तो उस सागर के उत्तर में बहुत दूर एक छोटी लँगोटी की तरह दीखने वाला देश है। तथापि अफ्रीका या अरबस्थान के बजाए भारत का ही नाम उस सागर से क्यों जुड़ा है ? कारण यह है कि भारत की ही वैदिक संस्कृति, और भारत की ही भाषा संस्कृत उस समय सर्वत्र प्रसृत थी और सर्वत्र भारतीय नौका ही ऑस्ट्रेलिया से अमेरिका तक अप्रतिहत संचार करती थीं। इसी कारण 'Navy, योरोपीय नौसेनावाचक शब्द 'नावि' ऐसा संस्कृत है। नौसेना अधिकारी को योरोपीय परिभाषा में Commodore (कमोडोर) कहते हैं, जो वास्तव में समोदोर उर्फ समुद्राधिकारी इस संस्कृत उपाधि का

अपभ्रंश है।

Mediterranean सागर के उत्तर में यूरोप और दक्षिण में अफ्रीका खण्ड है अत: वह 'मध्य धरणीय' कहलाता है। उसी का बिगड़ा योरोपीय उच्चारण मेडिटरेनियन् हुआ। धरित्री शब्द का अंग्रेजी उच्चार 'टेरिटरी' हुआ है और 'Medi' यानि 'मध्य'।

अरबस्थान और ईजिप्त के बीच 'Red Sea' यानि लालसागर है। सागर का जल या तो नीला या हरा दीखता है। लाल या सफेद नहीं होता। तथापि उस सागर का नाम लालसागर चिर अतीत में वैदिक संस्कृति का दिया हुआ है। रामायण में रावण के गढ़ की खोज सुग्रीव के हवाई दस्तों ने करते समय 'लोहित सागर' यानि लालसागर पर से उड़ान करने का उल्लेख किया है। अत: यह नाम भी अति प्राचीनकाल का वैदिक संस्कृति का दिया हुआ है।

यूरोप के उत्तर में 'White sea' यानि 'शुभ्र सागर' है जो क्षीरसागर का अनुवाद है।

यूरोप और अमेरिका खण्डों के बीच में 'Atlantic' महासागर है। वह अ-तल-अन्तिक यानि 'जिसके तल का अन्त ही नहीं' अर्थात् अति गहरा सागर कहलाता है।

अफ्रीका खण्ड

अफ्रीका खण्ड का उसके आकारस्वरूप के अनुसार शंखद्वीप नाम था। दूसरा एक नाम कुशद्वीप भी था। उस खण्ड में माली और सोमाली नाम के दो प्रदेश हैं जो रावण के भाईबन्द माली-सुमाली के नाम धारण करते हैं।

अफ्रीका खण्ड में अबीसीनिया उर्फ एथिओपिया नाम का प्रदेश है। आप-सिन्धु का अपभ्रंश आबसिन होकर उससे अबिसीनिया देश का नाम पड़ा। वहाँ के मूल निवासी भारत से ही यहाँ आ बसे थे, ऐसी स्थानिक लोगों की धारणा है। कुश के प्रजाजन होने के नाते अफ्रीका खण्ड के लोग अपने आपको 'कुशाइटस्' यानि कुश के प्रजाजन कहलाते हैं।

रावण को परास्त करने के पश्चात् उसके भाईबन्दों के माली-सोमाली उर्फ सुमाली प्रदेश राम साम्राज्य में अन्तर्भूत हो गये। तत्पश्चात्

अफ्रीका खण्ड पर कुश का अधिकार हो गया।

पुलस्तिन्

पेलेस्टाइन् प्रदेश पुलस्ति ऋषि का आश्रम-स्थान होने के कारण अब भी पुलस्तिन् उर्फ पैलेस्टाइन कहलाता है। पुलस्ति के वंशज रावण आदि राक्षस बन जाने के कारण फिलिस्तीन शब्द का अर्थ आंग्ल शब्दकोष में भी राक्षसी व्यक्ति का ही द्योतक है।

जॉर्डन

जॉर्डन नाम का देश जनार्दन नाम का अपभ्रंश है। जनार्दन यानि जनों का नियंत्रण करने वाले भगवान।

इश्रेल (Israel)

यहूदी लोगों ने निजी राष्ट्र का नाम इश्रेल क्यों रखा, यह शायद वे स्वयं कह नहीं सकेंगे। उस नाम के प्रथम तीन अक्षर 'Isr' का अर्थ है 'ईश्वर'। अन्तिम तीन अक्षर 'ael' 'आलय' का त्रुटित रूप है। अत: 'ईश्वरालय'—यह स्वतंत्र यहूदी राष्ट्र का नाम है। अतीत के इतिहास की बाबत विद्वानों में भी इतना गहरा अज्ञान है कि वे स्वयं निजी देशों के नामों का अर्थ तक नहीं जानते!

हिंदीज (Indies)

विश्व के पूर्व और पश्चिम के द्वीप समूहों को East Indies यानि पूर्वी भारतीय द्वीप और West Indies यानि पश्चिमी भारतीय द्वीप कहते हैं यद्यपि वे भारत से बहुत दूरी पर हैं। ये इस कारण कि अतीत में सर्वत्र भारतमूलक वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा ही प्रसृत थी।

इंडियानापोलिस (Indianapolis)

इण्डियानापोलिस हिन्दुपुर शब्द का अपभ्रंश है।

U. S. A. एक आधुनिक देश होते हुए भी उसमें (Indiana, Indianapolis आदि स्थल नाम भारतवाचक पड़े हैं। विश्व के इतिहास पर भारत की इतनी गहरी छाप पड़ी है कि भारत का विश्वसाम्राज्य नष्ट हुए

चार सहस्र वर्ष बीत जाने पर भी भारतवाचक नाम अमेरिका जैसे नव-निर्मित राष्ट्रों में भी भारत का प्रभाव पड़ता रहता है।

पहाड़ों के नाम

भारत में जिस प्रकार हिमालय एक विशाल पर्वत-श्रेणी है जिसके उत्तुंग शिखरों पर बर्फ जमी रहती है उसी प्रकार यूरोप में स्विटजरलैंड देश के आसपास एक पर्वत-श्रेणी है जिसके शिखरों पर बर्फ जमी रहती है। हिमालय की तुलना में उस योरोपीय पर्वत-श्रेणी का विस्तार और ऊँचाई कम है। कहा जाता है कि हिमालय की गोद में वह योरोपीय पर्वत-श्रेणी बच्चों जैसी समा जाएगी। उस योरोपीय पर्वत-श्रेणी का नाम Alps (आल्पस्) है जो 'अल्पस्' नाम का संस्कृत शब्द है। जैसे छोटे भाई या बच्चे को 'छोटे' कहते हैं। अतः 'Alps' शब्द का नाम संस्कृत है। विशाल हिमालय के छोटे भैया इस अर्थ से उस योरोपीय पर्वत-शृंखला का नाम अल्पस् (Alps) पड़ा।

अलताई

एशिया की अल्ताई पहाड़ी का अर्थ स्थानिक भाषा में 'सुवर्ण पर्वत' ऐसा होता है। पुराणों में 'सुमेरू' पर्वत के जो उल्लेख हैं उसी की स्मृति अलताई नाम में अंकित है।

नगरों के नाम

रशिया यानि ऋषिय देश में स्टालिनग्राद, लेनिनग्राद आदि नामों में 'ग्राद' 'ग्राम' शब्द के अपभ्रंश हैं।

मॉस्को नदी और उसके तटवर्ती नगर का स्थानीय उच्चार, मस्क्वा किया जाता है जो मोक्ष शब्द का विकृत उच्चारण है।

अस्त्रीय उर्फ ऑस्ट्रिया देश की राजधानी को आजकल 'विएना' कहते हैं। किन्तु उनके साहित्य में उस नगर का प्राचीन नाम (Vindoban) विंडोबन पाया जाता है। वह वृन्दावन शब्द का टूटा-फूटा रूप है।

जर्मनी में Hindenburg नाम हिन्दूनां दुर्गः यानि 'हिन्दुओं का दुर्ग'

इस अर्थ का है। उसी प्रकार Heidelburg 'हय-दल-दुर्ग' शब्द है। Stadt शब्द जर्मन भाषा में स्थान का द्योतक है।

हॉलैण्ड देश की राजधानी Amsterdam (अम्स्टरडम्) स्पष्टतया 'अन्तर्धाम' शब्द का विकृत रूप है। वह देश सागर स्तर से नीचा होने के कारण बाँध आदि से सागर का पानी रोके रखने का प्रयास उन लोगों को जागरूकता से करना पड़ता है। इसी कारण उसका नाम अन्तर्धाम पड़ा है।

योरोपीय भाषा में उस देश को Netherlands कहा जाता है। उस शब्द के आरम्भ में A अक्षर जोड़ देने से Anetherland शब्द बनता है जो अन्तस्थान यानि अन्तर्धाम का ही पर्यायवाची शब्द साफ दिखाई देता है।

फ्रान्स की राजधानी Paris (पैरिस) प्राचीन पैरिसोरियम् नाम का वर्तमान संक्षिप्त रूप है। पैरिसोरियम् यह 'परमेश्वरीयम्' का अपभ्रंश है। अनादि काल से फ्रान्स में देवी भगवती परमेश्वरी का जो मुख्य देवस्थान था उसका नाम था परमेश्वरीयम्। उसी के इर्द-गिर्द जो नगर बसा उसका भी उल्लेख परमेश्वरीय ही होता रहा। ईसाई आक्रामकों ने उसी देवालय को क्रुस्ती देवी के देवालय का रूप दे डाला। वही नाम आगे चलकर पैरिसोरियम् बन गया। उसी का संक्षिप्त रूप पैरिस यह नाम आजकल प्रचलित है।

पैरिस के पश्चिम में लमान्स् नगर है, जो 'मनु' के नाम से बसा है। अन्य नगर Sable 'साबले' शिवालय का शिबालय बनकर साबले कहलाता है।

इंग्लैण्ड की राजधानी लन्दन का प्राचीन नाम लन्दनीयम् है जो नन्दनियम् शब्द का विकृत रूप है।

इंग्लैण्ड के अन्य सारे नगरों के नाम भी संस्कृत मूलक ही हैं। जैसे Warwickshire, Penebrokshire आदि महाबलेश्वर, ओंकारेश्वर जैसे शिवमन्दिर के द्योतक हैं। Charlcote, Kingscote आदि नाम सिद्धकोट, भद्रकोट आदि जैसे हैं। Hampton, Northampton आदि पट्टण अंत्यपद वाले संस्कृत हैं।

इटली की राजधानी 'रोमा' (उर्फ रोम) राम नामवाचक है।

Ravenna नगर रावण का नाम धारण करता है। अन्य नगर Verona (वेरोना) वरुण शब्द है। Milano नाम का नगर प्राचीनकाल में रामलीलांतर्गत वहाँ के भरत-मिलन के उत्सव के लिए प्रसिद्ध होते-होते Milano (यानि 'मिलन') कहलाने लगा।

यूरोप खण्ड के कुछ नगरों के नाम से अनीक शब्द जुड़ा हुआ है। जैसे Veronica(व्हेरोनीक)और Theselanica थेसलानीक। अनीक संस्कृत शब्द का अर्थ 'सेना' है। अत: अनीक अंत्यपद वाले नाम यूरोप में उन स्थानों के नाम हैं जहाँ वैदिक क्षत्रियों की सेना की छावनियाँ होती थीं। Thesalanica तो स्पष्टतया 'स्थल अनीक' ऐसा पूर्णतया संस्कृत ही है।

नदियों के नाम

ईजिप्त में जो Nile नदी है वह 'नील' संस्कृत शब्द है यद्यपि उसका उच्चार 'नाइल' ऐसा विकृत किया जाता है। मूलत: वह नाम नील सरस्वती या नील गंगा था। संक्षिप्त में उसका 'नील' उल्लेख होने लगा। उस प्रदेश में संस्कृत गुरुकुल शिक्षा का अन्त होकर सैकड़ों वर्ष बीत जाने के पश्चात् लोग भूल गए कि 'नील' का अर्थ ही 'नीले जल वाली' नदी ऐसा है। वे समझे कि नील ही एक विशिष्ट नाम है। अत: उस नदी के नीले जल की विशेषता तो लोगों के ध्यान में रही। अत: उन्होंने अपनी तरफ से उसकी वह पारम्परिक विशेषता बतलाने के लिए Blue Nile कहना आरम्भ कर दिया। यह 'गाय के गोमूत्र' वाली बात हुई। गोमूत्र का ही अर्थ गाय का मूत्र होता है। तथापि वह मूल अर्थ भूलकर लोग कई बार 'गाय का गोमूत्र से आव' आदि अनवधानी से कह देते हैं। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय उल्लेखों में जब भी Blue Nile यानि नीली नील (नाईल) कहा जाता तो वही गलती होती है।

इंग्लैण्ड की प्रमुख नदी जो टेम्स् (Thames) जिसके के किनारे पर राजधानी लन्दन बसी हुई है वह संस्कृत 'तमसा' नाम है। रामायण के लेखक वाल्मीकि तमसा नदी के किनारे तपस्या करते थे, ऐसा उल्लेख है। वह तमसा यही इंग्लैण्ड वाली तमसा हो या कोई और। हो सकता है कि नदी का नाम तमसा कई प्रदेशों में पड़ा हो। या यह भी हो सकता है कि रामायण में उल्लिखित तमसा इंग्लैण्ड वाली ही तमसा हो। क्योंकि हमारा

यह निष्कर्ष है कि भगवान राम और कृष्ण और उस समय के ऋषि-मुनि, राजालोग और अन्य नेता आदि सारे विश्व में संचार करते थे जैसे आज होता है। अतः यह समझना कि रामायण-महाभारत में उल्लिखित सारे स्थान, नदियाँ, पहाड़ आदि सारे हिन्दुस्थान उर्फ भारत में ही थे—ठीक नहीं है। सारे विश्व में सनातन, हिन्दू, आर्य, वैदिक धर्म होने के कारण सारा प्राचीन विश्व हिन्दुस्थान ही था। उसी प्रकार भारत विश्वसम्राट् होने के कारण भरत के विश्वसाम्राज्य का भारतवर्ष नाम पड़ा।

फ्रांस की राजधानी जिस नदी के किनारे बसी है उस नदी का नाम 'सीन' (Seine) कहा जाता है। वह मूलतः सिंधु नाम था। किन्तु फ्रेंच लोग अन्तिम व्यंजन का उच्चारण नहीं करते। अतः सिंधु का फ्रेंच उच्चारण 'सीन्' ऐसा रूढ़ हुआ। इंग्लैण्ड के लोग जब अमेरिका खण्ड में बसने गए तो उन्होंने वहाँ के नए नगरों को वही नाम दिए जो इंग्लैण्ड में उनके नगरों के थे। जैसे यॉर्क या बॉस्टन। उसी प्रकार वैदिक क्षत्रियों ने भी विश्वभर की नदियों को सिन्धु, तमसा, गंगा आदि नाम दिए जो उन्हें प्रिय थे।

जर्मनी में जो Danube (डॅन्यूब) नदी है वह 'दानव' शब्द का ही विकृत उच्चारण है। यूरोप में दैत्यों का अधिकार था। उन्हीं को दानव भी कहा जाता था। अतः वहाँ के प्रदेशों से जैसे दैत्य नाम (डाइट्सलैण्ड, डच आदि नामों में) जुड़ा हुआ है वैसे दानव नाम भी जुड़ा है।

इटली का रोम नगर टायबर Tiber नदी के तट पर बसा है। वहाँ के सम्राटों में टिबेरियस् नाम पाया जाता है। त्रिपुरा यह उस नदी का मूल नाम है तथा सम्राट् का नाम त्रिपुरेश था।

उधर पूर्ववर्ती इंडोचायना प्रदेश में बहनेवाली नदी मेकांग कहलाती है जो माँ-गंगा का अपभ्रंश है।

बॉस्फोरस नाम का प्रदेश भस्मासुर का बिगड़ा उच्चारण है। भस्मासुर एक प्रसिद्ध दैत्य था।

इस प्रकार पुराणों में सुर और असुरों का जो संघर्ष वर्णित है उस समय के वैदिक-संस्कृत परिभाषा की गहरी छाप विश्व के विविध भागों पर दिखाई देने का कारण यही है कि प्राचीन विश्व में सर्वत्र वैदिक संस्कृति ही थी। उसके भौगोलिक प्रमाण हमने इस अध्याय में दिए हैं। पाठक यह न समझें कि केवल इतने ही नाम वैदिक हैं। ऊपर उल्लिखित नाम केवल उदाहरण के रूप में दिए गए हैं। इस दृष्टि से प्राचीन भौगोलिक नामों का अध्ययन करने पर वे वैदिक संस्कृत सिद्ध होंगे। हमारे नये संशोधन प्रणाली का यह भौगोलिक पहलू है।

४

विश्व-भर की वैदिक काल-गणना

एक क्षण से लेकर वर्ष और युगों तक का काल-नापन प्राचीनकाल से अभी तक लगातार वैदिक पद्धति से ही किस प्रकार चला आ रहा है, वह हम इस अध्याय में देखेंगे।

विश्व-भर में चली आ रही वह वैदिक समय-नापन प्रणाली वैदिक विश्वसाम्राज्य का और एक ठोस प्रमाण है। अतीत में सारे लोग वैदिक धर्मी थे। अतः आज वे बौद्ध, कृस्ती या इस्लामी बनने पर भी उसी समान वैदिक पद्धति से ही काल-नापन करते हैं।

विश्व-भर में हिन्दु वैदिक पंचांग सबसे प्राचीन है। इतना ही नहीं, यह एकमेव पंचांग ऐसा है जिसमें सृष्टि उत्पत्ति के दिन से बीते हुए काल का हिसाब लगातार दिन-प्रतिदिन रखा जाता है। प्रत्येक हिन्दु पंचांग के आरम्भ के पृष्ठों में सृष्टि उत्पत्ति समय से बीते युगों का हिसाब अंकित होता है। कृत, त्रेता और द्वापर युगों के अपने-अपने संवत् हुए। वर्तमान युग कलियुग कहलाता है। कलियुग के कितने वर्ष बीत चुके और कितने बाकी हैं यह कलियुग की गिनती के अनुसार कहा जाता है। तदन्तर्गत विक्रम संवत् और शालिवाहन शक के अनुसार भी कालगणन किया जाता है। इस समय विक्रम संवत् २०४४ वाँ चल रहा है।

आजकल आँग्ल प्रभाव के कारण सामान्यजन भी "टेम (यानि Time) क्या है?" ऐसा एक-दूसरे को पूछते हैं। संस्कृत शब्द 'समय' है। महाभारतीय युद्ध के पश्चात् गुरुकुल शिक्षा बन्द हो जाने पर 'समय' शब्द का विकृत उच्चार 'टमय' बन गया और आगे चलकर 'टाइम' और 'टेम'

कहलाने लगा। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। अंग्रेजी में ऐसे भरपूर शब्द हैं जो संस्कृत शब्दों के ही विकृत रूप हैं। उदाहरणार्थ संस्कृत में जिसे 'आश्रयम्' कहते हैं उसे आँग्ल भाषा में Asylum (असायलम्) कहते हैं। स्थंडिलम् को स्टेडियम कहते हैं। उसी प्रकार 'विस्मय' को आँग्ल भाषा में Dismay डिस्मे (उर्फ डिस्मय) कहते हैं। उसी प्रकार समय का टमय और टमय का टाइम उर्फ 'टेम' उच्चारण होने लगा।

वैदिक पद्धति में क्षण, घटि, होरा, प्रहर इत्यादि काल विभाग होते हैं। आँग्ल भाषा में क्षण को Second (सेकण्ड) कहते हैं। उस आँग्ल शब्द से अन्तिम 'क' अक्षर निकलकर शेष अक्षर यदि Cson क्रम से लिख जाएँ तो वह स्पष्टतया 'क्षण' शब्द ही जान पड़ता है। संस्कृत की तोड़-मोड़ होते होते कुछ अक्षर इधर-उधर या कम-अधिक होकर विविध भाषाएँ बनीं। अतः क्षण शब्द का उच्चार 'सेकण्ड' हुआ।

साठ सेकण्डों का एक मिनिट और साठ मिनटों का एक घण्टा। यह साठ-साठ वाला हिसाब वैदिक संस्कृति का है। वैदिक कालगणनानुसार साठ पल की एक घटि और साठ घटियों का एक दिन होता है। ढाई घटियों का एक होरा बनता है। उस होरा शब्द का ही 'आवर' (Hour) विकृत उच्चार आँग्ल भाषा में रूढ़ है।

'मिनिट' इस आँग्ल शब्द में बीच का अक्षर 'नि' फालतू पड़ गया है। उसे हटाकर शेष शब्द 'मिट' उर्फ 'मित' रह जाता है। वह संस्कृत 'मित' यानि छोटा—नपा (समय) विभाग इस अर्थ का संस्कृत शब्द ही है।

Day (डे) यह आँग्ल शब्द संस्कृत 'दिनम्' या 'दिवस' शब्द का ही एक छोटा टुकड़ा है।

तत्पश्चात् साप्ताहिक दिनों का क्रम देखें। सात ग्रहों के नाम से वे सात दिन हैं। शनि को आँग्ल भाषा में Saturn (सॅटर्न) कहते हैं। अतः शनिवार को आँग्ल भाषा में 'सॅटरडे' (Saturday) कहते हैं। तत्पश्चात् रवि का वार Sunday (सन्डे) तदुपरान्त चन्द्रवार यानि Moonday उर्फ Monday जिसे हम सोम (यानि चन्द्र) वार कहते हैं। इस प्रकार सप्ताह के सातों दिन विविध ग्रहों के नाम से विश्व में प्रत्येक जनजाति में उसी क्रम में प्रचलित हैं जैसे अनादिकाल से वैदिक संस्कृति ने चलाए हैं।

उस क्रम को तोड़ने या मरोड़ने का विचार किसी भी जनजाति के मन में आता ही नहीं, यद्यपि भिन्न-भिन्न धर्मों में विश्व की जनता बँट गई है लेकिन उन धर्मों के प्रसार के पूर्व सारे विश्व के लोग संस्कृत बोलते थे और वैदिक संस्कृति के ही अनुयायी थे। इसका कितना ठोस प्रमाण इन साप्ताहिक दिनों के क्रम में पाया जाता है।

सप्ताह के पश्चात् मास। वे भी वैदिक पद्धति के अनुसार सर्वत्र बारह ही हैं। यूरोप में क्रुसमास, मायकेलमास आदि जो शब्द हैं, उनसे जाना जा सकता है कि प्राचीन यूरोप में भी महीनों को मास कहा करते थे जैसा संस्कृत में रूढ़ है। कृष्ण उर्फ क्रुस्त के उत्सव का मास क्रुस्तमास् और मायकेल उत्सव का मास मायकेलमास कहा जाता था। किन्तु वैदिक प्रथा से दूरी बढ़ते-बढ़ते क्रुस्ती लोग एक-एक विशिष्ट दिन को ही 'मास' की उपाधि लगाकर यह कल्पना कर बैठे हैं कि क्रुस्तमास यानि २४ डिसेंबर का दिन या २५ से ३१ डिसेंबर तक का सप्ताह तथा मायकेल मास यानि २९ सेप्तेंबर का दिन। जब आँग्ल भाषा में मास शब्द का अर्थ जन्मदिन, पूजा या उत्सव के अर्थ से प्रयोग होता ही नहीं तो मायकेल मास को मायकेल का जन्मदिन कहना गलत है। मायकेल के उत्सव का महीना यही मायकेल मास कहलाएगा। क्रुसमास शब्द तो क्रुस्ती प्रथा में एक दिन का भी द्योतक है और एक सप्ताह का भी—जैसे ऊपर स्पष्ट किया है। अतः वे दोनों कल्पनाएँ निराधार हैं। क्रुस्त या कृष्ण के उत्सव का महीना यही क्रुसमास शब्द का अर्थ है। वैदिक प्रथा में जैसे अधिकमास, श्रावणमास, भाद्रपदमास आदि कहा जाता है वही वैदिक प्रथा यूरोप में थी। यह क्रुसमास और मायकेल-मास आदि शब्द प्रणाली से स्पष्ट है। यूरोप और अन्य खण्डों में भी महीनों को अतीत में मास ही कहा जाता था, जिसके दो बचे-खुचे उदाहरण क्रुसमास और मायकेलमास में पाए जाते हैं।

अब महीनों के कुछ अन्य यूरोपीय नाम देखें। सेप्तेंबर, ऑक्टोबर, नव्हेंबर और डिसेंबर। यह नाम सप्तांबर, अष्टांबर, नवांबर और दशांबर ऐसे पूर्णतया संस्कृत हैं। अंबर यानि आकाश। उसके बारह राशि के बारह भाग किए गए हैं। प्रत्येक भाग में सूर्य एक-एक मास रहता है। अतः सप्तांबर, अष्टांबर, नवांबर, दशांबर यह पृथ्वी की भ्रमण कक्षा के ७वें,

८वें, ९वें और १०वें भाग हैं। तथापि यूरोपीय गणना में उन महीनों, स्थान ९वाँ, १०वाँ, ११वाँ और १२वां है। नामानुसार जो महीने सातवें, आठवें, नवें और दसवें कहलाते हैं वे प्रत्यक्ष में नौवें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें क्यों माने जाते हैं? यह असंगति कैसे निर्माण हुई? हो सकता है कि इतिहास की उथल-पुथल में दो मास गिनती से बाहर रह गए हों। हो सकता है वे दो गायब मास मायकेलमास और क्रुसमास ही हों।

कुछ विद्वानों का कथन है कि यूरोप में किसी समय दस मासों का ही पूरा वर्ष गिना जाता था। अधिकतर विद्वान् उसी धारणा को दोहराते रहते हैं। तथापि वह कल्पना निराधार है। यदि दस मासों का ही वर्ष होता तो प्रत्येक महीना ३६॥ दिनों का होता। इस प्रकार ३६॥ दिनों का महीना कभी किसी ने सुना नहीं है। वैसा यदि होता तो उन महीनों में पूर्णिमा-अमावस्या आदि के पखवाड़े ठीक प्रकार बैठ नहीं पाते। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि सारे विश्व में अनादिकाल से वैदिक प्रथा के अनुसार बारह मास ही होते थे। किन्तु इतिहास की उथल-पुथल में उनकी तोड़-मरोड़ होते रहने के कारण और गुरुकुल शिक्षा भंग होने के कारण सदियों तक यूरोप के अज्ञजन महीनों के दस नाम ही जानते हों।

पाश्चात्यों के इस मास गिनती के गलती के हम कई प्रमाण ऊपर दे चुके हैं। एक तो यह कि सेप्तेंबर सातवाँ मास होते हुए भी नौवाँ गिना जाता है। तो स्पष्ट है कि हिसाब में दो मासों की त्रुटि है। दूसरा प्रमाण यह है कि क्रुसमास और मायकेलमास दो मासों के नाम होते हुए भी १२ मासों की गिनती में वे दो नाम टूट-फूटकर बाहर बिखरे पड़े हैं। तीसरा प्रमाण यह है कि यूरोप के लोग वैदिक संस्कृति की गुरुकुल शिक्षा से वंचित हो जाने पर वर्ष के महीनों तक की गिनती भूलकर दस मासों का ही वर्ष मानने लगे।

विविध महीनों के नामों के बारे में यूरोप के विद्वान् जो विवरण देते हैं वह अटपटा-सा है। वे समझते हैं कि July और August यह दो नाम रोमन् सम्राट् ज्यूलियस (सीजर) और ऑगस्टस् के दिए हुए हैं। यदि यह धारणा सही होती तो सम्राटों के नामों में और उन दो महीनों के नामों में भिन्नता नहीं होती। ज्यूलियस के बजाए जुलै और ऑगस्टस् के बजाए ऑगस्ट नाम क्यों पड़ते? और तो और, सारे बारह महीनों के नाम विविध

रोमन सम्राटों के नामों पर क्यों नहीं ढाले गए ? रोमन सम्राटों की प्रदीर्घ श्रृंखला में क्या इने-गिने दो सम्राट् ही इतने अहंकारी निकले कि उन्होंने दो मासों को अपने नाम दे दिए ? अन्य सम्राट् ऐसे अहंकारी नहीं थे क्या ?

ऐसी विविध बातों को ध्यान में रखते हुए यह दिखाई देता है कि वैदिक शिक्षा-प्रणाली टूटने के पश्चात् यूरोप के लोग इतने पिछड़ गए कि वर्ष के मासों की गिनती में भी वे उलझने लगे। कुछ मासों के नाम उनके क्रमानुसार पड़ गए—जैसे सप्तांबर, अष्टांबर, नवांबर, डिसेंबर। कुछ मासों के नाम विकार कर अलग हो पड़े जैसे क्रुसमास और मायकेल मास ? जैनुअरी का रोमन नाम जॅनुएरिअस् था जो 'गणराय ईश' ऐसा पूरा वैदिक—संस्कृत है। गणेशजी का होने से उसे सर्वप्रथम स्थान मिला।

दूसरा महीना फेब्रुवारी रोमन परम्परा में फेब्रुएरियस् लिखा जाता है। वह वास्तव में 'प्रवरेश' इस संस्कृत शब्द का विकृत रूप है। ऋषि को प्रवर कहते थे। क्रुस्ती परम्परा में उसी का अपभ्रंश Friar 'फायर' (यानि साधु-संन्यासी) हो गया है। प्रवरेश का अर्थ है श्रेष्ठ ऋषि या ऋषियों का ईश्वर।

तीसरा महीना मार्च। इसके दो प्रयोजन हैं। कवायत में 'मार्च' का अर्थ होता है 'चल पड़ना'। वैदिक संस्कृति के अनुसार वसन्त सम्पात से मार्च में ही (लगभग) नया वर्ष आरम्भ होता है। अतः जिस महीने से नया वर्ष चल पड़ता है वह मार्च मास। इस नाम की दूसरी व्युत्पत्ति मरीचि (यानि सूर्य) नाम से मिलती हैं। उस मास से सूर्य प्रखर होने लगता है।

पाँचवा महीना May माया (ईश्वर की माया) इस वैदिक शब्द से पड़ा है। इस प्रकार पाश्चात्य लोगों के बारह मासों के नाम इतिहास के टूटे-फूटे टुकड़ों से कामचलाऊ प्रकार से जैसे-तैसे टेढ़े-मेढ़े जोड़े गए हैं।

अब हम क्रुसमास शब्द पर अधिक गहराई से विचार करेंगे। क्रुसमास को X'mas (एक्समास) भी कहा जाता है। ऑग्ल शब्द कोशकार भी स्वयं अतीत के इतिहास के बाबत कितने अनभिज्ञ हैं यह हम यहां बताना चाहते हैं। उनका अज्ञानी होना स्वाभाविक ही है। क्योंकि यह वैदिक विश्वराष्ट्र का इतिहास आधुनिक युग में इस ग्रन्थ द्वारा विश्व को प्रथम बार ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

आँग्ल शब्द कोशकारों के अनुसार क्रुसमास या X'mas का अर्थ क्रुस्त जन्मोत्सव है। कहने को तो उन्होंने यह विवरण दे दिया किन्तु वह सही नहीं है क्योंकि 'मास' शब्द का जन्म या जन्मोत्सव ऐसा अर्थ आँग्ल भाषा में कभी कहीं नहीं है। उसी प्रकार X'mas शब्द में 'X' का अर्थ क्रुस्त नहीं है और मास का अर्थ जन्म नहीं। तो फिर X'mas का अर्थ क्रुस्तजन्मोत्सव कैसे होगा? वैदिक इतिहास के अज्ञान के कारण विविध देशों के विद्वानों ने स्थानिक भाषा, धर्म-परम्परा आदि के मनमाने, ऊटपटाँग अर्थ दे रखे हैं। वह अर्थ प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति विद्वान् कहलाते हैं और बड़े-बड़े पदों पर विराजमान भी हैं फिर भी उनके दिए विवरणों की कड़ी जाँच करना आवश्यक है।

अब हम उन दो नामों का सही अर्थ बतलाते हैं। यूरोप में रोमन गिनती चलती थी। रोमन गिनती में X १० का चिह्न है। अत: X'mas यानि दसवाँ मास। यह हमारा निष्कर्ष एक अन्य प्रमाण से भी सही उतरता है। December—यह दशांबर शब्द है। यानि अंबर का दसवाँ भाग। अत: दसवाँ महीना आँकड़े में वही दसवाँ मास X'mas ऐसा लिखा जाता था। इन दोनों नामों में न तो क्रुस्त का कोई उल्लेख है न ही उसके जन्म का। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि क्रुस्ती परम्परा में कितनी धौंसबाजी चलती है। यह धौंसबाजी इसलिए करनी पड़ती है कि क्रुस्तीपन्थ चन्द व्यक्तियों के अधिकार-लालसा के कारण कृत्रिम रीति से जबरदस्ती स्थापन किया गया। उसके पीछे कोई विशेष तत्त्वदर्शन नहीं था। वह सब बाद में समय-समय पर जैसा-तैसा मढ़ दिया गया।

एक्समस या क्रुसमस् शब्द का जो अर्थ क्रुस्ती लोग बतलाते हैं उसकी निराधारिता अन्य एक तर्क से भी स्पष्ट की जा सकती है। मास शब्द का संस्कृत अर्थ तो 'महीना' ऐसा है। तथापि क्रुस्ती लोग उसे या तो २५ दिसम्बर का एकमेव दिन मानते हैं या २५ से ३१ दिसम्बर तक का पूरा सप्ताह मानते हैं। इसमें कितनी असंगति है। कहने के लिए तो पूरा मास किन्तु प्रत्यक्ष में केवल एक दिन या एक सप्ताह या दोनों।

वैदिक परम्परा में क्रुसमास उर्फ कृष्णमास का बड़ा गहरा महत्त्व है जो स्वयं हिन्दु लोग भी भूल गए हैं। कृष्णमास का एक अर्थ होता है महीना

जैसे कृष्णपक्ष। डिसेम्बर में रात्रि लम्बी एवं अँधियारी होती हैं। डिसेम्बर २२ दीर्घतम रात्रि की तिथि होती है। तत्पश्चात् दिन बड़ा होने लगता है। अत: उसे बड़ा दिन कहा जाता है। बड़े दिन का कृस्त जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। उस मास का कृष्णमास नाम पड़ने का कारण यह था कि कृष्ण ने भगवद्गीता में "मासानां मार्गशीर्षोऽहं", ऐसा कहा है। इससे स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जिस मास में कृष्ण भगवान की पूजा होती थी वह मार्गशीर्ष मास 'कृष्णमास' भी कहलाया। डिसेम्बर २२ को दीर्घतम रात्रि होने के तीन दिन पश्चात् मध्यरात्रि के समय बड़े दिन का उत्सव मनाया जाया करता था। मध्यरात्रि का समय कृष्णजन्म का समय भी था और मध्यरात्रि का क्षण नए बड़े दिन के आरम्भ का सूचक था।

महाभारतीय युद्ध भी डिसेम्बर में समाप्त हुआ। इसका एक प्रमाण यह है कि गीता जयन्ति उन्हीं दिनों में आती है। दूसरा प्रमाण यह है कि भीष्मपितामह उत्तरायण की प्रतीक्षा में निजी प्राण रोके हुए थे।

डिसेम्बर का नाम दसवाँ महीना वैदिक संस्कृति के अनुसार तो ठीक ही बैठता है। इस प्रकार कृस्ती समझी जाने वाली सारी परम्परा और परिभाषा वैदिक निष्कर्षों पर ही खरी उतरती है। उसके कृस्ती अर्थ तो असंगत सिद्ध होते हैं।

ऊपर दिए विवरण से यह स्पष्ट है कि बारह मासों का क्रम और नाम अभी तक अनादि वैदिक परम्परा पर ही आधारित है।

नव वर्ष का आरम्भ भी यूरोप में वैदिक पंचांग के अनुसार मार्च अन्त के लगभग ही होता था। रोमन साम्राज्य कृस्ती बन जाने पर चन्द्र तिथि के बजाय १५ मार्च को नया वर्ष दिन मानने लगा। चन्द्र तिथि के बजाय १५ मार्च तारीख निश्चित करने का कारण यह था कि गुरुकुल शिक्षा परम्परा खण्डित हो जाने पर वैदिक पंचांग के सूक्ष्म तिथि गणित से रोमन लोग अनभिज्ञ रह गए।

इंग्लैण्ड में सन् १७५२ तक २५ मार्च नया वर्ष दिन माना जाता था। सन् १७५२ में पार्लियामेण्ट के प्रस्ताव द्वारा २५ मार्च बदलकर १ जैनुअरी नव वर्ष दिन घोषित किया गया। मार्च २५ नव वर्ष दिन निश्चित किए जाने का कारण यह था कि इंग्लैण्ड का वैदिक गुरुकुल शिक्षा-पद्धति और वैदिक

पंचांग से सम्बन्ध जब टूटा तब वैदिक गणित के अनुसार २५ मार्च को नव वर्ष दिन पड़ा था। तब से आगे उन्होंने २५ मार्च तारीख को ही नववर्ष दिन मान लिया। तथापि वह एक तरह से वैदिक वर्ष प्रतिपदा ही थी।

यह एक बड़ा अच्छा सबूत है जिससे वैदिक वर्ष परम्परा से इंग्लैण्ड कब बिछड़ा इसका पता लगाया जा सकता है। अतीत के जिस वर्ष से ब्रिटेन ने २५ मार्च ही निजी नववर्ष दिन मनाने की प्रथा आरम्भ की उसके ठीक एक वर्ष पूर्व ब्रिटेन का वैदिक गुरुकुल शिक्षा से सम्बन्ध टूटा।

इसी प्रकार रोमन साम्राज्य ने जब से १५ मार्च तारीख ही नववर्ष दिन निश्चित की उसके ठीक एक वर्ष पूर्व तक रोमन साम्राज्य का वैदिक परम्परा से सम्बन्ध रहा।

रोमन साम्राज्य में वर्ष प्रतिपदा का दिन बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। कई दिन की छुट्टियाँ होती थीं। चारों ओर आनन्द ही आनन्द का वातावरण निर्माण किया जाता था। उसे वे 'Ides of March' कहा करते थे। ईड संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है 'पूजा'। उन दिनों अन्नपूर्णा देवी की पूजा की जाती थी। इस उद्देश्य से कि पूरे वर्ष घर-घर में और देश में अन्न-धान्य की सुख-समृद्धि आदि बनी रहे।

इंग्लैण्ड में रात के बारह बजे नये दिन का आरम्भ मानने की प्रथा है। वह बड़ी अटपटी-सी लगती है। क्योंकि प्रतिदिन रात के बारह बजे गहरी नींद से कौन हड़बड़ाकर उठकर कैलेंडर की तारीख बदलेगा? वह प्रथा इसलिए पड़ी कि वैदिक संस्कृति के अनुसार भारत में प्रातः ५.३० बजे सूर्योदय होने पर तिथि बदली जाती थी। भारत ही अतीत में वैदिक संस्कृति का केन्द्र माना जाता था। उस समय भारत का वैदिक पंचांग ही सारे विश्व में प्रमाण माना जाता था। भारत और इग्लैण्ड के समय में ठीक साढ़े पाँच घंटों का अन्तर है। अतः जब भारत में सूर्योदय होता था इंग्लैण्ड में रात्रि के बारह बजते थे। उस समय सूर्योदय पर भारत निजी तिथि बदलता तो ब्रिटेन के लोग भी उसी समय अगले दिन का आरम्भ मानते।

सारे यूरोप में रात के १२ बजे नयी तिथि का आरम्भ मानने की जो प्रथा है वह कृष्णमास के मध्य रात्रि की पूजा के कारण है। ब्रिटेन, यूरोप में वैदिक संस्कृति का एक प्रमुख धर्म केन्द्र था। अतः ब्रिटेन के वैदिक धर्म-

केन्द्र ने नयी वैदिक तिथि घोषित करने पर सारे यूरोप में मध्यरात्रि का समय ही तिथि आरम्भ माना जाने लगा।

पाश्चात्य प्रथा के अनुसार मध्यरात्रि से दोपहर के १२ बजे तक के समय को a. m. यानि (ante-meridian) और दोपहर से मध्यरात्रि के समय को p. m. (post-meridian) लिखा जाता है। उसका अर्थ यह होता है कि उदय होने के पश्चात् आकाशस्थ खगोलीय काल्पनिक मध्य रेखा तक सूर्य जब चढ़ता रहता है तो वह उस काल्पनिक रेखा के उरली तरफ होने के कारण a. m. (ante-meridian); और उस खगोलीय काल्पनिक शिरोरेखा से आगे निकलकर जब सूर्य अस्ताचक्र के प्रति ढलने लगता है तो उस समय को शिरोरेखा के परली तरफ के मार्गक्रमण के अर्थ से p. m. (post-meridian) कहा जाता है। विद्यालयों में a. m. और p. m. का यही विवरण लिखा जाता है। किन्तु वह सही नहीं है। वह घिसा-पिटा, रटा-रटाया विवरण है।

Ante-meridian का अर्थ है शिरोरेखा के उरली तरफ, उसी प्रकार post-meridian का अर्थ है शिरोरेखा के परली तरफ। किन्तु यह विवरण पर्याप्त नहीं, आधा-अधूरा है। शिरोरेखा के उरली तरफ या परली तरफ जाने वाले सूर्य का तो उसमें उल्लेख ही नहीं है।

अतः **A. M.** और **P. M.** यह अद्याक्षर वास्तव में 'आरोहणम् मार्तंडस्य' और 'पतनम् मार्तंडस्य' अर्थ के द्योतक हैं। इनमें उदय के पश्चात् शिरोरेखा तक आरोहण और मध्याह्न के पश्चात् क्षितिज तक सूर्य के अवतरण का पूरा उल्लेख है।

आधुनिक पाश्चात्य प्रणाली में विद्या पाए हुए लोगों की यह धारणा बना दी गई है कि वेद उस समय का साहित्य है जब मानव जंगली अवस्था में था। हमारा निष्कर्ष उस धारणा से पूर्णतया विरुद्ध है। हमारा कथन है कि सर्वशक्तिमान परमात्मा ने जब मानव की प्रथम पीढ़ी निर्माण की तो वह देवतुल्य व्यक्तियों की थी। उसमें धन्वंतरि, विश्वकर्मा, गन्धर्व जैसे विविध शास्त्र, विद्या और कलाओं में निपुण व्यक्ति थे। अतः उस श्रेष्ठ-तम कृतयुग से हमारे वर्तमान कलियुग तक सर्व विद्या, शास्त्र और कलाओं का स्तर नीचे ही खिसकता रहा है। वर्तमान पीढ़ी के शास्त्रज्ञों ने चन्द्रयान

बनाया, यह बात सही है। तथापि कृत, त्रेता और द्वापर युगों में तो इससे कई गुना अधिक मात्रा में नेता लोग या अधिकारीगण इन्द्रलोक, चन्द्रलोक आदि दूर-दूर के कई ग्रहों तक आना-जाना करते थे, इसके विपुल उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में हैं, उन्हें काल्पनिक वर्णन समझना योग्य नहीं।

उनकी इस प्रवीणता का प्रमाण उस समय के नापों में मिलता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म नापों से अति विशाल मात्रा तक बने प्राचीन वैदिक नापों से यही निष्कर्ष निकलता है कि कृत्त, त्रेता, द्वापर आदि युगों में वर्तमान युग से कई गुना अधिक प्रभावी शस्त्र, अस्त्र, यन्त्र आदि बनते थे। वे नाप इस प्रकार थे—

वर्तमान युग में पाश्चात्य प्रणाली के लोग जिसे क्षण यानि सेकण्ड (Second) कहते हैं उसके $\frac{१}{३७९६७५}$ भाग को वैदिक कालगणना में परमाणु कहा करते थे। अतः—

१ परमाणु = $\frac{१}{३७९६७५}$ सेकण्ड

२ परमाणु	=	१ अणु
३ अणु	=	१ त्र्यसरेणु
३ त्र्यसरेणु	=	१ त्रुटि
१०० त्रुटि	=	१ वेध
३ वेध	=	१ लव
३ लव	=	१ निमिष
३ निमिष	=	१ क्षण
५ क्षण	=	१ काष्ठा
१५ काष्ठा	=	१ लघु
१५ लघु	=	१ घटिका = २४ मिनिट
२ घटिका	=	१ मुहूर्त
३$\frac{३}{४}$ मुहूर्त	=	१ प्रहर = ३ घंटे
८ प्रहर	=	१ दिन = २४ घंटे
१५ दिन	=	१ पक्ष

२ पक्ष = १ मास
२ मास = १ ऋतु
३ ऋतु = १ अयन
२ अयन = १ वर्ष

उसी प्रकार दो-चार सौ वर्षों के पूर्व जब अन्य देशों में लोग एक सहस्र से अधिक संख्या गिन नहीं पाते थे तब भारत में १ पर १९ शून्य (१००००-०००००००००००००००) इतनी ऊँची संख्या तक गणन होता था। जिस संस्कृति में सूक्ष्मातिसूक्ष्म से स्थूल से स्थूल मात्रा तक गणन की व्यवस्था है उसके लोग शास्त्र, विद्या और कलाओं में अति प्रवीण और प्रगत थे, इसके बाबत किसी के मन में सन्देह नहीं होना चाहिए।

५

विश्व का प्राचीनतम चिकित्सा-शास्त्र–आयुर्वेद

राजनीति के क्षेत्र में वर्तमान युग में पाश्चात्य लोगों का अधिकार होने के कारण उनकी डॉक्टरी चिकित्सा पद्धति का विश्व में अधिकाधिक प्रसार हो रहा है। यह केवल ढाई-तीन सौ वर्ष की घटना है।

किन्तु सृष्टि-उत्पत्ति समय से ढाई-तीन सौ वर्ष पूर्व तक लाखों वर्ष सारे विश्व में आयुर्वेदिक चिकित्सा ही हुआ करती थी। आधुनिक सारे चिकित्सा प्रकार उस मूल प्रचीन आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति की ही टहनियाँ हैं।

आयुर्वेद एक दैवी शास्त्र है जिसके प्रणेता धन्वंतरी थे। वैदिक संस्कृति के अनुसार प्रथम पीढ़ी के देवतुल्य प्रवीण और विद्वान् व्यक्तियों द्वारा ही सारी विद्याएँ और शास्त्र चलाए गए। वहीं से गुरु-शिष्य परम्परा आरम्भ हुई। अत: वैदिक संस्कृति की किसी भी शाखा में प्रत्येक व्यक्ति अपने गुरु का उल्लेख करता है। अतीत के चाहे जितने पीछे हम झाँककर देखें तो हमें कोई भी विद्या अप्रगत अवस्था में नहीं दीखती, अपितु परिपूर्ण अवस्था में ही दीखती है।

पाश्चात्यों का सिद्धान्त इससे एकदम उल्टा है। वे सोचते हैं कि बन्दर से मानव बनें और वनमानस अपने आप प्रगति करता गया। पिछड़ा हुआ आदमी यदि अपने आप प्रगति करता तो विश्व की सारी आदिवासी जातियाँ आज तक प्रगत हो जानी चाहिए थीं और विद्यालयों में विद्वान् से विद्वान शिक्षक नियुक्त करने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती। अत:

पाश्चात्य धारणा सही नहीं है।

विद्या की तो क्षति और अधोगति होती रहती है। जैसे कोई प्रकाण्ड पण्डित—जितना वृद्ध होता जाता है उतनी ही उसकी कमाई विद्या उसके मस्तिष्क से लुप्त होती रहती है।

आयुर्वेद के बारे में तीन बातें प्रमुख हैं। एक तो आयुर्वेद अन्य वेदों की भाँति देवदत्त चिकित्सा शास्त्र है। दूसरा मुद्दा यह है कि वेद, संस्कृत भाषा और मनुस्मृति के साथ-साथ सृष्टि उत्पत्ति समय से ही आयुर्वेदीय चिकित्सा का प्रारम्भ हुआ। तीसरी बात यह है कि आधुनिक युग की होमिओपैथी, एलोपैथी आदि चिकित्सा पद्धतियों से लाखों वर्ष पूर्व सारे विश्व में एकमेव चिकित्सा पद्धति थी—वह थी आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति।

आयुर्वेदिक और आधुनिक चिकित्सा प्रणालियों का महद्न्तर

आधुनिक चिकित्सा प्रणालियों से आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली सर्वथैव अति श्रेष्ठ है—

(१) शुद्ध आयुर्वेदिक प्राणाली में इलाज के लिए रोगी से धन नहीं माँगा जाता था। रोग-पीड़ित जीव को पीड़ामुक्त कराना यह भूतदया का अंग माना जाता था।

इसके विपरीत पाश्चात्य प्रणाली में रोगी जितना अधिक दुःखी हो, कष्ट में हो उतना अधिक द्रव्य उससे निचोड़ा जाता है।

(२) आयुर्वेदिक पद्धति में नाड़ी-परीक्षा से ही सारे रोगों का पता लगाया जाता था। पाश्चात्य प्रणाली में मल-मूत्र-थूक आदि सर्व प्रकार की जाँच करवाने में अपार समय और द्रव्य खर्च करने पर भी रोग का पता नहीं लगता।

(३) पाश्चात्य पद्धति में रोग का पता लगाने के पश्चात् भी कहा जाता है कि रोग असाध्य है, उस पर कोई दवा प्रभावी नहीं है, अतः रोगी को जैसे बने वैसे जीवन बसर करना चाहिए। आयुर्वेद में रोगी को ऐसे निराश नहीं किया जाता। कठिन से कठिन रोग की भी दवा है, यह आयुर्वेद का दृष्टिकोण होता है।

(४) रोगी की जाँच के पश्चात् डॉक्टर रोगी से कहता है कि रोगी अधिक से अधिक आराम करे और शीघ्रातिशीघ्र किसी अस्पताल में दाखिल हो जाए। यह दोनों सूचनाएँ बड़ी विचित्र-सी हैं। रोगी तो वैसे ही अपना कारोबार और आना-जाना छोड़कर लेटा रहता है। वह चाहता है कि स्वस्थ होकर वह चलने-फिरने लगे और निजी कारोबार में जुट जाए। इसी उद्देश्य से तो वह चिकित्सा करवाता है। यदि पड़ा ही रहना होता तो भला डॉक्टर को क्यों बुला भेजता! और यदि अस्पताल में ही भरती होना है तो यह सुझाने के लिए डॉक्टर को द्रव्य क्यों दिया जाए! आयुर्वेद में ऐसा नहीं होता। सारी चिकित्सा रोगी के घर उसकी शय्या पर ही की जाती है। जटिल रोगों की मरणासन्न अवस्था तक की हेम गर्भ की मात्रा आदि रोगी को जाँचने वाले वैद्य के पास होती थी। रोगी को अस्पताल ले जाने की बात वैद्य कभी नहीं करता।

(५) आयुर्वेदीय औषधि बाजार से लाकर रोगी को देने तक की सारी क्रियाएँ वैद्य लोग स्वयं करते हैं। डॉक्टरों को उनकी दवाइयों की क्रिया-विधि या मूल जड़ी-बूटी की पहचान नहीं होती वे तो औषधि विक्रेता या कारखानेदारों के दिए वर्णनानुसार रोगी को औषध लिख देते हैं जो कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति स्वयं कर सकता है।

(६) रोगी के शरीर के फोटो लेने वाले यन्त्र से औषधि तैयार करने वाले यन्त्र तक अनेक प्रकार के कारखानों से निर्माण किए गए बड़े खर्चीले, महँगे, भारी और लम्बे-चौड़े यन्त्र दिन-प्रतिदिन डॉक्टरी चिकित्सा प्रणाली में भरती किए जा रहे हैं। इनसे समय और द्रव्य के व्यय के अतिरिक्त रोगी की हर प्रकार की दुर्दशा होती है। उसे कई स्थानों पर जाना पड़ता है। हर समय बेशुमार धन खर्चना पड़ जाता है। कहीं वह भारी यन्त्र टूटकर रोगी को ही क्षति पहुँचाता है। फोटो लेने वाले कई यन्त्रों के 'क्ष' किरण (X-Rays) ही जाँच किए जाने वाले रोगी के शरीर को अधिक दूषित कर देते हैं।

(७) जिस डॉक्टर ने विविध विद्यालयों से अनेक उपाधियाँ पायी हों वह उस बहाने चिकित्सा के लिए रोगी से उतनी ही अधिक फीस वसूल करता है। अतः डॉक्टरी प्रणाली ज्ञान का उपयोग अधिकाधिक धन कमाने

के लिए कराती है न कि रोगी को स्वस्थ कराने के हेतु से।

(८) डॉक्टरी विद्या किसी एक प्रकार के रोग जन्तुओं को नष्ट कराने का प्रयास करती है जबकि आयुर्वेदीय प्रणाली में शरीर का सन्तुलन बनाये रखने पर ध्यान दिया जाता है।

(९) आयुर्वेदीय सिद्धान्तानुसार आहार का औषध रूप में और औषध का आहार के रूप में शरीर को लाभ होना चाहिए। डॉक्टरी प्रणाली के औषध तो शरीर की पीड़ा, दुर्बलता या जर्जरता को बढ़ाते हैं।

(१०) पाश्चात्य प्रणाली की कृषि, कटी फसल तथा अनाज आदि अधिक दिन टिकें इस उद्देश्य से उन पर बार-बार रसायनों का प्रयोग किया जाता है। खेती में भी रासायनिक खाद का प्रयोग होता है। इसी प्रकार डॉक्टरी उपचारों में भी बार-बार हानिकारक रासायनिक औषधें दी जाती हैं। इससे शाक, धान्य आदि का स्वाद दिन-प्रतिदिन कम हो रहा है और लोग अधिक दुर्बल, अल्पायुषी और रोगजर्जर हो रहे हैं।

आयुर्वेदीय प्रणाली में प्राकृतिक तैल आदि उपायों से शरीर या शाक आदि पर विषैला परिणाम न हो इसका ध्यान रखा जाता है।

दोनों चिकित्सा पद्धतियों का यह तौलनिक पर्यवेक्षण यहाँ इसलिए किया गया है कि देश-विदेश के नेताओं को प्राचीन, दैवी, सीधी-सादी, सरल और अल्पतम कष्ट तथा कम खर्च वाली आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली ही विश्व में दुबारा सर्वत्र लागू कराने की स्फूर्ति एवं प्रेरणा मिले और व्यापारी तत्त्व पर चलाई जाने वाली मुनाफाखोरी की पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली बन्द हो।

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'—विश्व में जन्म लिए मनुष्य, प्राणी का शरीर ही ठीक न हो तो वह अपना कर्त्तव्य निभा नहीं पाएगा और उसका जीवन दूसरों पर बोझ होकर रह जाएगा। इस दृष्टि से आयुर्वेद को मूल विद्या का दर्जा प्राप्त है।

आयुर्वेद नाम से अन्य वेदों जैसा ही इस विद्या शास्त्र का महत्त्व प्रतीत होता है।

प्राचीनकाल में आयुर्वेद का ही विश्व में सर्वत्र प्रसार इसलिए था कि सर्वत्र वैदिक जीवन-प्रणाली ही प्रसृत थी। आयुर्वेद का प्राचीन विश्व

प्रसार वैदिक जीवन-प्रणाली के विश्व-प्रसार का एक ठोस सबूत है।

जिसका जहाँ अधिकार हो, उसकी अपनी विशिष्ट चिकित्सा-पद्धति हो तो वह उसे निजी रियासत में लागू करता है। जैसे भारत पर अधिकार जमाने के पश्चात् अंग्रेजों ने शनैःशनैः आयुर्वेद को दबाकर पाश्चात्य डॉक्टरी चिकित्सा को प्रोत्साहन दिया। अब भारत स्वतन्त्र होने पर भी उसी पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति का ही सर्वत्र पुरस्कार किया जा रहा है।

प्राचीन विश्व में संस्कृत-भाषी वैदिक क्षत्रियों का दुनिया पर राज्य था तब उनके शासन में उनकी अपनी आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति सर्वत्र लागू थी।

ब्रिटिश शासनकाल में मद्रास प्रान्त के गवर्नर लार्ड ऑटहिल (Lord Anthill) थे। सन् १९०५ में The King Institute of Preventive Medicine का मद्रास नगर में उद्‌घाटन करते समय उन्होंने अपने भाषण में कहा था कि "यूरोप के लोग जब जंगली अवस्था में रहते थे उस प्राचीन अतीत में भारत के लोगों को रोग प्रतिबंधक और रोग निवारक चिकित्सा प्रणाली के मुख्य तत्व भली प्रकार ज्ञात थे। हो सकता है विश्व के लोग जानते न हों कि आयुर्वेद शास्त्र का जन्म भारत में ही हुआ। आयुर्वेद भारत की ही विद्या है। भारत से अरबों ने सीखी और अर्बस्थान से यह विद्या यूरोप में गई। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप के डॉक्टर लोग अरबी वैद्यों से भारतीय आयुर्वेद सीखते रहे ? उसके कई शताब्दी पूर्व अरबी विद्वानों ने धन्वंतरी, चरक, सुश्रुत आदि वैद्यों के विख्यात ग्रन्थों से आयुर्वेद का अध्ययन किया था। बड़े आश्चर्य की बात है कि मानवीय सभ्यता, विद्या और प्रगति का केन्द्र शनैः शनैः पूर्ववर्ती देशों से पश्चिम की ओर जाते-जाते पूर्व से उसका नामोनिशान तक मिट गया। अब हमें यह पता लग रहा है कि हिन्दू शास्त्रों में स्वच्छता के सही नियम भी अन्तर्भूत हैं। स्मृतिकार मनु मानवजाति के अतिश्रेष्ठ पथ-प्रदर्शकों में से एक हैं जिन्होंने स्वच्छ सामाजिक जीवन के आदर्श नियम बनाये हैं।"[1]

---

१. पृष्ठ १-२, Bharat (India) As Seen and Known by Foreigners संकलन G. K. Deshpandey.

वैदिक शल्य चिकित्सा प्राचीनतम

Dr. Rowan Nicks नाम के ऑस्ट्रेलिया निवासी शल्य चिकित्सक ने सेप्टेंबर २६, १९८३ को नई दिल्ली में दिए एक भाषण में कहा कि अन्य सारे लोगों से शल्य-चिकित्सा में हिन्दू लोग बहुत अग्रसर थे। यूरोप के चिकित्सकों के हजारों वर्ष पूर्व सुश्रुत संहिता में मूत्रपिंड में चुभने वाली पथरी की शल्य-चिकित्सा बड़ी सूक्ष्मता से वर्णित है। आधुनिक शल्य चिकित्सा के औजार प्राचीन हिन्दू नमूनों पर ही बनाये जाते हैं। रोग, दुर्घटना या हमलों के कारण होने वाली शरीर के विभिन्न अंगों की टूट-फूट हिन्दू शल्य-चिकित्सक बड़ी अच्छी तरह से दुरुस्त किया करते थे। रोगोपचार में बाबिलोन, असीरिया, ईजिप्त, ग्रीस आदि देशों में जो दवाइयाँ प्रयोग होती थीं, वे सारी की सारी भारत में ही बनाई जाती थीं। पारा, चन्दन, बेलाडोना और हेम्प से कुछ अर्क बनाए जाते थे।

ऐसा होते हुए भी विश्व इतिहास के ग्रन्थ जो ८वीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक मुसलमानों ने लिखे और पाँच-छः सौ वर्ष यूरोपीय क्रुस्तियों ने लिखे उनमें से हिन्दू कीर्ति के ऐसे उल्लेख जानबूझकर टाल दिए गए हैं।

यहाँ इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि हिन्दू किसी एक जाति के लोग नहीं थे। जो भी वैदिक धर्मी हो वह हिन्दू कहलाता है चाहे उसकी जाति या देश कोई भी हो। क्रुस्तपूर्व काल में बाबिलोन, असीरिया, ईजिप्त आदि विश्व के समस्त देशों के निवासी हिन्दू ही थे। विभिन्न प्रदेशों में चलाए जाने वाले आयुर्वेद के विद्यालयों में वे संस्कृत भाषा में शिक्षा पाया करते थे। अतः उनकी चिकित्सा-पद्धति सर्वथा हिन्दू वैदिक प्रणाली की थी। औषधि भी भारत की बनी होती थी। क्योंकि उस सारी शिक्षा एवं उपचार-प्रणाली का केन्द्र या मूल भारत ही था।

डॉक्टर Sir William Hunter ने कहा है, "प्राचीन हिन्दुओं की शल्य-चिकित्सा बड़ी साहसी और कुशलता वाली होती थी। शरीर के निकम्मे अवयव काटकर अलग करना, प्याले के आकार का बंधन और खौलते तेल के प्रयोग से दबाव द्वारा रुधिरस्राव को रोकना, पथरी निकालना, उदर या योनिस्थान में शल्य क्रिया करना, हर्निया, फिच्यूला, स्थान भ्रष्ट

अस्थि को निजी स्थान में बैठाना, टूटी हड्डी जोड़ना, शरीर में प्रवेश किए हानिकारक वस्तु को बाहर निकालना, यह सब वे कर सकते थे। विकृत कान, नाक आदि अवयव दुरुस्त करने की कारीगरी यूरोपियन शल्य-चिकित्सकों ने हिन्दुओं से सीखी है। आँखों के ऊपरले भाग के मस्तिष्क की चिकित्सा भी हिन्दू शल्यशास्त्री जानते थे। कठिन-से-कठिन प्रसूति को वे भली प्रकार निभा लेते, इतना उनका दाई-कर्म-कुशल होता था।"[1]

हजारों वर्ष पूर्व Prostat Gland (प्रस्थित ग्रन्थी) की शल्य-क्रिया विधि का क्रम जैसा सुश्रुत मे लिखा है ठेठ वैसा ही आधुनिक युग में यूरोप के शल्यचिकित्सक आचरते हैं।

वर्तमान युग में यूरोप के कृस्ती लोगों की सर्वांगीण प्रगति का बड़ा बोलबाला है। तथापि जब स्वयं यूरोपीय विद्वान् कह रहे हैं कि ऐसी प्रगति तो हिन्दुओं ने कई सहस्र वर्ष पूर्व ही कर ली थी तो उससे हमारे उस निष्कर्ष की सत्यता सिद्ध होती है कि आयुर्वेद समेत पूरी वैदिक संस्कृति ही मानव को एक ईश्वरीय देन है। अतः आयुर्वेद कोई अनुमान और योगायोग से बनी विद्या नहीं है। वह तो देवतुल्य धन्वन्तरी द्वारा स्वयं ब्रह्मा से सीखी हुई परिपूर्ण दैवी विद्या है।

शरीर रचना शास्त्र

शरीर शास्त्र को यूरोपीय परिभाषा में anatomy कहते हैं। बड़ी मजे की बात यह है कि स्वयं अंग्रेजी प्रणाली के डॉक्टरों को भी उस शब्द का अर्थ ठीक प्रकार मालूम नहीं है। एक डॉक्टर ने मुझे कहा कि उनके कृस्ती यूरोपीय अध्यापक ने anatomy शब्द का विवरण देते हुए कहा कि ana यानि 'ऊपर उठाकर' tommo यानी (फ्रेंच भाषा में) 'काटना'। अब बताइए कि शरीर-रचना शास्त्र में ऊपर उठाकर काटने वाली ऐसी कौन-सी बात है ? तथापि आधुनिक पाश्चात्य प्रणाली की विद्या प्राचीन बातों के अन्धाधुन्ध, मनमाने विवरण देते हुए जैसे-तैसे चलाई जा रही है। Vasectomy, Tubectomy आदि शब्दों में 'टॉमी' का अर्थ भले ही

---

१. देखें पूर्वोक्त ग्रन्थ के पृष्ठ ३०-३१।

'काटना' ऐसा होता है किन्तु anatomy का 'टॉमी' अंशपद एकदम भिन्न अर्थ रखता है।

Vasectomy, Tubectomy जैसे शब्दों के विवरण में भी पाश्चात्य प्रणाली के लोग धोखा खा गए हैं। वहाँ केवल 'टॉमि' नहीं अपितु 'एक्टॉमी' का महत्त्व है। कर्तयामि' इस मूल संस्कृत शब्द का विकृत रूप 'एक्टॉमी' में दिखाई पड़ता है। अँनाटॉमी शब्द में एक्टॉमी ऐसा अंशपद नहीं है, वहाँ केवल 'टॉमि' शब्द है।

अब हम जो anatomy शब्द का विवरण संस्कृत के आधार पर देने जा रहे हैं उस पर पाठक ध्यान दें। इस शब्द का छेद अन्+आत्मी (anatomy)ऐसा करें। व्यक्ति वास्तव में आत्मा होती है। आत्मा या प्राण जाने के पश्चात् शरीर किसी काम का नहीं रहता। तथापि अनॉटॉमि विषय में प्राण का कोई विचार नहीं किया जाता, अपितु केवल शरीर के ढाँचे का अध्ययन होता है। अतः उसे प्राचीनकाल से 'अन् आत्मी' विषय कहा गया है।

सन् १९८२ मार्च से ऑगस्ट तक लंडन में भारत महोत्सव (Festival of India) आयोजित किया गया था। उस महोत्सव में स्थानीय Science Museum द्वारा एक प्रर्दशिनी लगायी गई थी। उसमें तंजोर रियासत के मरहठे राजा सर्फोजी के बनवाए हुए दो मानवीय अस्थिपंजर प्रदर्शित थे। उनमें शरीरान्तर्गत क्रियाएँ भी दिग्दर्शित थीं। उनमें से एक अस्थिपंजर की प्रतिमा हाथीदाँत की बनी थी तो दूसरी चन्दन की लकड़ी की (सन् १८०५ से १८१० तक के काल में) क्योंकि प्रत्यक्ष मृत व्यक्ति का अस्थिपंजर निषिद्ध' माना गया है। ये दो प्रतिमाएँ Krishna Ram Institute of Anatomy Andhra Medical College, विशाखापतनम् में देखी जा सकती हैं।

प्राचीन भारत में प्लास्टिक सर्जरी (Plastic Surgery)

रोग, आक्रमण या दुर्घटना से हुई शरीर की टूट-फूट की दुरुस्ती को प्लास्टिक सर्जरी (Plastic Surgery) कहते हैं। अठारहवीं शताब्दी तक शरीर के भग्न भाग ठीक करने का आयुर्वेदिक कौशल्य भारत में उपलब्ध था।

लण्डन की Gentleman's Magazines में सम्पादकीय पत्र-व्यवहार में छपे एक पत्र में उस आयुर्वेदिक शल्य कौशल्य का एक अच्छा उदाहरण दिया है। जिस पत्रिका में वह पत्र छपा है वह अंक Wellcome Institute for History of Medicine ९८३ Ruston Road, London के ग्रन्थालय में उपलब्ध है। एक मराठा बैलगाड़ी वाला सन् १७९२ में ब्रिटिश फौज में तैनात था। टीपू सुल्तान के सिपाहियों ने उस व्यक्ति को लड़ाई में बन्दी बनाने के पश्चात् उसकी नाक काट दी। लगभग एक वर्ष पश्चात् बन्दीगृह से छूटने पर जब वह बैलगाड़ीवाला पुणे नगर में स्वगृह को लौटा तो पुणे के एक वैद्य ने उस बैलगाड़ीवाले की कटी नाक वैद्यकीय शल्यक्रिया द्वारा पूर्ववत् बना दी। दो अंग्रेज थॉमस क्रूसो और जेम्स ट्रिंडले ने इस चिकित्सा पर बड़ा आश्चर्य व्यक्त करते हुए लिखा है कि ऐसी शल्य क्रियाएँ तो आम होती रहती थीं।

आज भी भारत के कोने-कोने में विविध जटिल रोगों पर कई घरानों में परम्परा से बड़े प्रभावी उपाय ज्ञात हैं। भारत स्वतन्त्र होने के पश्चात् सरकार द्वारा ढोल पिटवाकर देश-भर में ऐसे उपायों की जानकारी की घोषणा करा दी जाती और वैद्यक संघटनों द्वारा उन उपायों का संकलन किया जाता तो एक बड़ा उपयुक्त राष्ट्रीय चिकित्सा कोष बन पाता। अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति ही केवल पर्याप्त नहीं होती। देश का शासन चलाने की दूरदृष्टि न हो तो देश की साधन-सामग्री और धन-सम्पत्ति का शनैः-शनैः नाश उसी प्रकार होता है जैसे कोई बड़े बाप का कुसंगति में पड़ा हुआ निकम्मा बेटा निजी घराने की अपार सम्पत्ति नाच, रंग-ढंग, व्यसन आदि में गँवा देता है।

गर्भारोपण

लण्डन नगर की Oriental Gallery में एक चित्र प्रदर्शित है जिसमें जैन तीर्थंकर महावीर का गर्भ उसकी माता देवनन्दा के उदर से निकाल कर रानी त्रिसला के उदर में रोपित करने की प्रक्रिया प्रदर्शित है।

Fertility and Sterility नाम का एक अमेरिकन वैद्यकीय मासिक है। गर्भाधान, प्रसूति, बंध्यत्व आदि उसके विषय हैं। उसके नवेंबर-डिसेंबर

१९८० के अंक में Frank M. Guttmann और Herta A. Guttmann द्वारा लिखे लेख में एक स्त्री का गर्भ दूसरी स्त्री में रोपने की प्रक्रिया प्राचीन आयुर्वेद शास्त्र द्वारा कितनी कुशलता से की जाती थी, उसका वर्णन है।

इस लेख में महावीर का जन्म क्रुस्तपूर्व सन् ५०९ का माना गया है। यानि उतने प्राचीन समय में एक स्त्री का गर्भ दूसरी स्त्री के गर्भाशय में प्रविष्ट कराने की प्रक्रिया आयुर्वेद शास्त्र में उपलब्ध थी। किन्तु महावीर शाक्यमुनि गौतमबुद्ध के समकालीन थे और गौतमबुद्ध काल १३०० वर्ष और पीछे ले जाना आवश्यक है। यह अनेक प्रमाणों द्वारा हमने 'भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें' ग्रन्थ के एक स्वतन्त्र अध्याय में बतलाया है। अत: महावीर भी क्रुस्तपूर्व सन् ५०९ से लगभग १३०० वर्ष पूर्व थे। उतने प्राचीनकाल में भी गर्भारोपण की कुशल शल्यक्रिया आयुर्वेद द्वारा की जाती थी।

उदर के बाहर गर्भ का संवर्धन

आधुनिक युग में गर्भधारण में बाधा होती हो तो पुरुष बीज और स्त्री पेशी का संयोग प्रयोगशाला के पात्र में कराकर अग्रिम सम्वर्धन के लिए वंध्या स्त्री के गर्भाशय में उस जीव को प्रस्थापित करने में पाश्चात्य डॉक्टर लोग सफल हुए हैं।

यह प्रक्रिया महाभारत के समय में भी वैद्य लोग किया करते थे। गांधारी को जो १०० पुत्र हुए वे इसी प्रकार हुए। उस प्रक्रिया का पूरा वर्णन बड़ी बारीकी से महाभारत में अंकित है। महाभारत का समय क्रुस्तपूर्व सन् ३१३८ बतलाया जाता है।

पाश्चात्यों की आयुर्वेदीय परिभाषा

कलयुग से महाभारतीय युद्ध तक हजारों वर्ष आयुर्वेद ही विश्व का एकमेव वैद्यक शास्त्र रहा। अतएव पाश्चात्य डॉक्टरी शास्त्र की परिभाषा और परम्परा सारी आयुर्वेदिक है।

डॉक्टर शब्द ही लें। वह 'दु:खसार' यानि 'शारीरिक पीड़ा से तारने

वाला' इस अर्थ से पड़ा है।

छाती आदि की जाँच करने के लिए ये दोनों कानों में लगाई रबड़ की नली प्रयोग करते हैं, जिसे स्टेथॉस्कोप कहा जाता है। वह Stethoscope 'स्थितिस-पद्यति (अन्दरूनी शारीरिक स्थिति का अनुमान लगाने में काम आने वाली) इस अर्थ का संस्कृत शब्द है।

दमा को पाश्चात्य वैद्यक शास्त्र में asthama (अस्-थमा) कहा जाता है। इससे स्पष्ट है कि 'दमा' का ही पाश्चात्य उच्चार 'थमा' हुआ है। उसके पीछे जो 'अस्' अक्षर लगे हैं वे अरबी उच्चार पद्धति के कारण हैं। जैसे अरब लोग अस्-सलाम वालेकुम कहते हैं वैसे ही 'दमा' को अस्-दमा कहते-कहते अस्थमा शब्द बन गया।

ओषध विक्रेताओं को ऑंग्ल भाषा में Apothecary 'अॅपॉथेकरी' कहा जाता है। उसमें से आरम्भ का 'अ' अक्षर हटा देने से वह शुद्ध संस्कृत 'पथ्यकरी' दिखाई देता है। भारत के देहातों में पथ्यकरी जैसा ही पंसारी शब्द प्रचलित है। 'पथ्यकरी' शब्द 'अपॉथेकरी' बनने का कारण यह है कि कई लोगों को अन्य भाषा के शब्दों के पीछे अपने पल्ले से एकाध स्वर जोड़ने की आदत होती है—जैसे स्कूल और स्टेशन, इन ऑंग्ल शब्दों का उच्चार कई लोग इस्कूल और इस्टेशन् करते हैं।

डॉक्टर लोग जिसे prostate gland कहते हैं, वह 'प्रस्थित ग्रन्थी' शब्द है।

ऑंग्ल भाषा में डॉक्टर को फिजीशियन् कहते हैं। वह भिषग् का 'फिशग्' बनकर फिजीशियन् कहलाने लगा। शल्यक्रिया करने वाले वैद्य को 'शल्यजन' कहा जाता था। उसी से 'सर्जन' यह आधुनिक यूरोपीय शब्द बना है।

हिचकियों को ऑंग्ल वैद्यक शास्त्र में Hiccups कहते हैं, जो संस्कृत 'हिक्का' शब्द का विकृत उच्चार है।

आयुर्वेदिक पद्धति के अनुसार वात-पित्त-कफ के असन्तुलन से रोग उत्पन्न होते हैं। उसे त्रिदोष पद्धति कहा जाता है। ऑंग्ल भाषा में खाँसी को cough कहते हैं जबकि संस्कृत में श्लेष्म उर्फ थूक को 'कफ' कहते हैं। खाँसी भी तो कफ के कारण ही होती है। अतः अंग्रेजी भाषा में गले में

अटका हुआ 'कफ' वास्तव में आयुर्वेदिक कफ ही है। संस्कृत और अंग्रेजी में कफ शब्द के अर्थ में जो थोड़ी भिन्नता शेष रह गई है वह समय और भूमि का अन्तर पड़ने के कारण है।

स्त्रियों की गर्भावस्था को प्रैग्नेंसी (Pregnancy) कहा जाता है जो 'प्रजननसि' ऐसा संस्कृत है। गर्भवती स्त्री को 'प्रेग्नेंट' (Pregnant) कहा जाता है। वह प्रजनंत ऽ शब्द है। गर्भाशय को Matrix कहा जाता है, जो अंतरिक्ष के समान मातरिक्ष शब्द है।

माँ के शरीर में जिस नलिका द्वारा उदरस्थ गर्भ का पोषण होता है उसे अंग्रेजी में Umbilical Chord (अंबीलिकल कॉर्ड) कहा जाता है। अंबा यानी माता। उसके शरीर में जो आलिक यानि 'आलस्य' या आसय होता है उसी का निर्देश Umbilical शब्द में मिलता है।

हृदय को आँग्ल भाषा में heart कहते हैं जो संस्कृत का हृत् शब्द है। हृदय के रोगों के विशेषज्ञ को Cardiac Specialist (कार्डियाक स्पेशलिस्ट) कहते हैं। वस्तुत: 'C' अक्षर से आरम्भ होने वाले उस मूल शब्द का उच्चार कार्डियाक के बजाए 'सारडिॲक' है। अब यह बात ध्यान में रहे कि 'सा' का उच्चार 'हा' भी होता है। जैसे 'सिंधु' का 'हिंदु'। अत: सारडिॲक शब्द कारडिॲक न होकर वस्तुत: हार्दिॲक ही है। इससे पता लगता है कि संस्कृत हृदय शब्द से ही आँग्ल शब्द कारडिॲक उर्फ़ हारडिॲक बना है। अत: कारडिऑलॉजी, कारडियोग्रॅम आदि तत्सम्बन्धी सारे शब्द संस्कृत हृदय शब्द से ही निकले हैं।

मस्तिष्क के अन्दर के भेजे को डॉक्टरी शास्त्र में सेरिब्रम् (Cerebrum) कहा जाता है जो 'शिरब्रह्म' का टेढ़ा-मेढ़ा उच्चार है।

भेजे में जब शोथ उर्फ़ सूजन हो जाती है तो उसे यूरोपीय परिभाषा में Meningitis कहते हैं जो 'मनन्-ज-शोयस्' यानि मन उर्फ़ भेजे में निर्माण हुआ शोथ ऐसा संस्कृत है।

इससे पता चलता है कि आयुर्वेद के शोथस् शब्द का विकृत उच्चार यूरोपीय वैद्यक शास्त्र में itis (आयटिस्) हुआ है—जैसे अपेंडिसायटिस् (appendicitis)।

ज्वर उर्फ़ बुखार को आँग्ल भाषा में (fever) 'फीवर' कहा जाता

है। उस शब्द में 'f' अक्षर के बजाए 'j' अक्षर लिखने पर जो jever शब्द बनेगा वह 'ज्वर' ही तो है। इससे ज्ञात होता है कि यूरोप में 'ज' का उच्चार 'फ' होने लगा अतः ज्वर उर्फ 'जवर' का उच्चार 'फवर' होने लगा।

ललाट या कपाल को डॉक्टरी शास्त्र में कपाल ही कहा जाता है। भेजे में जब पानी भर जाता है तो उस रोग का Hydro Cephalnus (हायड्रो सेफॅलस) नाम है जो मूलतः 'आर्द्र कपालस्' ऐसा संस्कृत है।

Encephalitis(ऑंसेफॅलिटिस)नामक जो रोग है वह भी 'कपालिनस्' यानि ललाट या मस्तिष्क सम्बन्धी ही है।

नास या नासिका से ही अंग्रेजी का nose शब्द है। रोग से नाक बहता है या श्वास लेने में बाधा आती है तो उस रोग को 'सायनोसिस्' कहा जाता है, जो 'क्षीन-नास' का अपभ्रंश है। Microbe शब्द से अन्तिम 'be' अक्षर निकालकर Micro शब्द रह जाता है जो 'कृमि' शब्द का उल्टा रूप है।

अंतड़ियों को entrails (ऐंट्रेल्स्) कहा जाता है, जो आंत्रल ऐसा संस्कृत शब्द है।

शरीर के किसी भाग के ऊपर बेलबूटों के आकार के फोड़े उठते हैं जिसे डॉक्टरी शास्त्र में herpis (हर्पिस्) कहते हैं। वह सर्पस् ऐसा संस्कृत है। 'स' का उच्चार 'ह' होने से सर्पस् रोग का यूरोपीय नाम हर्पिस पड़ा। भारतीय परिभाषा में इस रोग का 'नागन' नाम प्रचलित है। नागन सर्पों का ही तो प्रकार होता है।

डॉक्टरी में जिसे 'ग्लैण्ड' कहते हैं वह संस्कृत का ग्रंथी शब्द है।

बूँद या बूँद टपकना—इसके आँग्ल भाषा में drop, drip, drops, dropsy आदि जो शब्द हैं वह संस्कृत के द्रप्स् शब्द से बने हैं। स्नायु को muscle (मसल) कहा जाता है, वह 'मांसल' ऐसा संस्कृत शब्द है।

अस्थि जब रोगी, दूषित या मलिन होती है तो उसे डॉक्टर लोग asteomalacia कहते हैं—जो 'अस्थिमलाशय' का विकृत उच्चार है।

किसी व्यक्ति पर शल्य-क्रिया करने के पूर्व उसे वेदना न हो अतः क्लोरोफॉर्म सुँघाकर मूर्छित किया जाता है। उस प्रक्रिया को 'अनास्थेशिया

कहा जाता है जो 'अनास्थशायी' ऐसा संस्कृत शब्द है। 'अन-आस्था यानि दुरवस्था में, अचेतन अवस्था में लेटा हुआ' ऐसा उसका अर्थ होता है।

अंतड़िओं को कफ द्वारा उत्पन्न हुए आम् नाम के रोगजन्तु चिपट जाते हैं तो आंत्र या अमांश का रोग बनता है। उसी को डॉक्टर लोग अमेब्रिऑसिस् कहते हैं।

उपजाऊ अवस्था को fertility (फर्टिलिटी) कहा जाता है। वह 'फलति-इति' संस्कृत शब्द है। उसमें केवल 'ल' अक्षर का उच्चार 'र' हुआ है।

जर्मनी में लगभग ४०० वर्ष पूर्व हायनेमन् (उर्फ हनुमान) शास्त्री नाम के डॉक्टर थे। उन्होंने homoeopatby नाम का एक अलग रोग चिकित्सा शास्त्र तैयार किया। वास्तव में वह संस्कृत नाम है—'सम–इव–पथि'। उसी का उच्चार हम–इव–पथि किया गया है। रोग जैसे ही उप-चार का मार्ग उसमें होने के कारण उसे 'सम-इव-पथि' कहा गया। स्वस्थ व्यक्ति को जो ओषधि देकर कोई रोग उत्पन्न होता है वही उस प्रकार की पीड़ा निर्माण करने वाली दवा होती है। यह होमियोपॅथी का सिद्धान्त है।

होमियोपॅथी का नामकरण हो जाने पर डॉक्टरी वालों को निजी शास्त्र को एक विशिष्ट नाम देने की आवश्यकता पड़ी। उनका चिकित्सा मार्ग भिन्न था। रोग जन्तु को मारने पर डॉक्टरी शास्त्र में जोर दिया जाता है। अतः उन्होंने तब से निजी चिकित्सा पद्धति को allopatby (ॲलोपॅथी) कहा जो वास्तव में अलगपंथी शब्द है। उसमें से 'ग' अक्षर गायब होकर ॲलोपॅथी नाम से डॉक्टरी चिकित्सा शास्त्र है।

यहाँ हम चन्द उदाहरण ही दे पाए हैं जो एक नये पथ के प्रदर्शक माने जाने चाहिएँ। विचार करने पर विद्वान् पाठकगण डॉक्टरी परिभाषा और परम्परा के आयुर्वेदीय स्रोत स्वयं ढूंढ़ सकेंगे। उसमें शरीर के अवयव, रोगों के नाम, उपचार-पद्धति, रोगों के लक्षण, औषधियों के नाम आदि सर्व-प्रकार की समानता दीखेगी। क्योंकि कृतयुग से यानि विश्व के आरम्भ से महाभारतीय युद्ध तक आयुर्वेद एकमेव वैद्यक शास्त्र सारी मानव-जाति में प्रसृत था। महाभारतीय युद्ध के पश्चात गुरुकुल शिक्षा भंग हुई और जनसमूह तितर-बितर हो गए। अतः आयुर्वेद की शिक्षा और संशोधन प्रणाली को भी क्षति पहुँची।

वैदिक साम्राज्य टूटने पर जैसे उसके सुर(Syria), असुर(Assyria) आदि प्रादेशिक खंडराज्य निर्माण हुए; सनातन धर्म की चातुर्वर्ण्य समाज पद्धति टूटने पर उसके यहूदी, शैव, जैन, बौद्ध, वैष्णव, ईसाई, इस्लाम आदि पंथ निर्माण होते गए। संस्कृत भाषा वाले गुरुकुल बन्द होने पर उसकी प्राकृत या विकृत प्रादेशिक भाषाएँ जैसी बनीं उसी प्रकार आयुर्वेद की गुरुकुल शिक्षा भंग हो जाने पर आयुर्वेदीय चिकित्सा-शास्त्र के भी टुकड़े होकर आदिवासी वनोपधि, यूनानी, होमिओपॅथी, ॲलोपॅथी आदि शाखाएँ निर्माण हुईं। इससे जाना जा सकता है कि विश्व में मानवीय सभ्यता के हर एक पहलू का मूल वेद, वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा ही रहा है।

विलियम ड्यूरँड नाम के अमरीकी विद्वान् ने मानवीय सभ्यता की कथा (The Story of Civilization) नाम का दस खंडों का ग्रंथ लिखा है। उसके खंड (ख) के पृष्ठ ५२६-५३० पर लिखा है कि आधुनिक anatomy, physiology और chemistry के कुछ पहलू हिन्दू वैद्यक शास्त्र से ही दिए गये हैं। Lymphaties, nerve plexus, fascia, adipose and vescular tissues, mucous and Synovial membranes और अन्य कई मानवीय शरीर के भाग जो शव-विच्छेदन से भी शायद (प्रत्येक विद्यार्थी को) समझ नहीं आते उन सबका उत्तम विवरण आयुर्वेद में है। क्रुस्तपूर्व भारत के वैद्यों को पाचनक्रिया, विविध पाचक रसों की गतिविधि, अन्न का रुधिर आदि में क्रमशः बदल जाना---आदि का सम्यक् ज्ञान था। Weismann के २४०० वर्ष पूर्व अत्रेय ने लिखा है कि पुरुष बीज में सूक्ष्म रूप में उस व्यक्ति की पूरी छवि अन्तर्भूत होती है···अतः विवाह पूर्व वर के पौरुषत्व की जाँच आवश्यक समझी जाती थी। इसी कारण मनुस्मृति में सूचित किया गया है कि क्षय, मानसिक विकृति, महारोग, बद्धकोष्ठ, बवासीर आदि से जर्जर व्यक्तियों के विवाह नहीं कराने चाहिएँ।

वर्तमान युग में प्राकृतिक आधार का संततिनियमन सुझाया जाता है। वह विधि क्रुस्त पूर्व सन् ५०० में हिन्दू लोग भी जानते थे---कि स्त्री के मासिक धर्म के पश्चात् १२ दिनों तक गर्भधारण नहीं होता; कि गर्भ का

कन्या या पुत्र बनना कुछ समय पश्चात् निश्चित होता है और आहार या ओषधि से गर्भ को स्त्री या पुरुष बनाने की विधि भी प्राचीन हिन्दू लोग जानते थे।

वाराणसी के गुरुकुल में सुश्रुत आयुर्वेद पढ़ाया करते थे। अपने गुरु धन्वन्तरी की रोगनिदान व रोगोपचार की पद्धति सुश्रुत ने संस्कृत में लिखी है। उस ग्रंथ में शल्यचिकित्सा, स्त्रियों के रोग, आहार, स्नान, ओषधि, बालकों का आहार, स्वच्छता और आयुर्वेदीय शिक्षा का विपुल विवरण है।

चरक में लिखी संहिता के अनुसार वर्तमान युग में भी रोग चिकित्सा की जाती है। वैद्य लोगों को उन्होंने एक आदर्श कथन किया है कि आयुर्वेदीय चिकित्सा का उद्देश्य कोई ऐहिक स्वार्थ या लाभ नहीं होना चाहिए। चिकित्सा का उद्देश्य केवल दु:खी-रोगी व्यक्तियों की पीड़ा नष्ट करना ही होना चाहिए। इसी में श्रेष्ठत्व पाना चाहिए।

उनके पश्चात् वाग्भट्ट और भावमिश्र के नाम ख्यात हैं। वाग्भट्ट ने गद्य और पद्य में ओषधि कोश लिखा है।

भावमिश्र के लिखे विस्तृत ग्रंथ में शरीर-रचना, शरीर-क्रिया और ओषध योजना की चर्चा है। उसमें रुधिराभिसरण की क्रिया-वर्णन भी है। लैंगिक रोग सिफलिस पर पारे का उपाय बतलाया है। वह सिफलिस रोग पार्चुगीज आक्रामकों द्वारा भारत को एक प्रकार की यूरोपीय देन है।

"सुश्रुत ने अनेक शल्य क्रियाओं की विधि लिखी है, जैसे मोतियाबिंद, हर्निया, पथरी, पेट चीरकर गर्भ निकालना इत्यादि। उसी ग्रंथ में शल्य-क्रिया के १२१ औजारों का वर्णन है। उनके आधुनिक यूरोपीय नाम हैं Lancers, sounds, forceps, catheters and rectal and vaginal speculums.

शल्य-क्रिया की शिक्षा देने के लिए शवों के चीर-फाड़ से शरीर-रचना और रोगों के परिणाम सिखाना आवश्यक है, ऐसा सुश्रुत का आदेश है। फटे-टूटे कान की मरम्मत करने के लिए उसी व्यक्ति के शरीर के किसी अन्य भाग की त्वचा निकालकर उसे कान पर लगाने की विधि सुश्रुत ने

प्रथम शुरू की। उसी के अनुयायियों के मार्गदर्शन से कटी नाक को जोड़ देने का rbinoplasty नाम की क्रियाविधि पाश्चात्य वैद्यक शास्त्र में उतर आई है।

Gacrison नाम के एक पाश्चात्य विद्वान् के अनुसार प्राचीन हिन्दू वैद्य लोग भग्न नाड़ी को जोड़ने की शल्यक्रिया छोड़कर बाकी सर्व प्रकार की शल्यक्रियाएँ कुशलतापूर्वक कर लेते थे। हाथ या पैर कटवाना, उदर की चीर-फाड़, टूटी हड्डी जोड़ना, hemorrhoids और fistulas काट देना इत्यादि करना वे जानते थे।

शल्यक्रिया की गतिविधि, तैयारी आदि के बारे में सुश्रुत ने अनेक नियम बताए हैं। घाव दूषित न हो इसलिए चोट को धूप आदि उष्ण सुगंधित द्रव्यों से शुद्ध रखने की आवश्यकता सुश्रुत ने ही सर्वप्रथम बतलायी।

विविध आसवों के प्रयोग से वेदना निग्रह कराने के प्रकार चरक और सुश्रुत के ग्रंथों में ही प्रथम बार उल्लेखित हैं। सन् ६२७ में दो वैद्यों ने एक हिंदू राजा के मस्तिष्क की शल्यक्रिया करते समय उसे वेदना न हो इसलिए सम्मोहिनी ओषध का प्रयोग किया था। आधुनिक पाश्चात्य डॉक्टरी शास्त्र में इसी को क्लोरोफॉर्म या अॅनॅस्थेशिया (anaesthesia) कहा है।

सुश्रुत ने ११२० रोगों के नाम दिए हैं जिनकी पहचान नाड़ी-परीक्षा हृदय की धक्-धक् और अन्य लक्षणों से करने का मार्ग बतलाया है। सन् १३०० के एक ग्रंथ में नाड़ी-परीक्षा का वर्णन दिया है। मूत्र का निरीक्षण, परीक्षण, विश्लेषण आदि से रोग का पता लगाने की विधि बतलाई है।

चीनी यात्री युआन्-च्वांग के समय वैद्यकीय चिकित्सा प्रारम्भ करने से पूर्व भारतीय वैद्य लोग रोगी को एक सप्ताह उपवास कराते थे। उसी से कइयों के रोग समाप्त हो जाते थे। यदि व्याधि फिर भी रही तो अन्य ओषध दिए जाते थे। ओषध दिए जाने पर भी अत्यल्प प्रमाण में प्रयोग किए जाते थे। अधिकतर महत्व आहार, स्नान, बस्ती, सूंघने की दवाएँ, इंजेक्शन और दूषित रक्त का शोषण करना आदि उपायों को दिया जाता था।

विषबाधा को दूर करने में वैद्य लोग बड़े प्रवीण थे। वर्तमान समय में भी पाश्चात्य डॉक्टरों से सर्पदंश पर वैद्यों की चिकित्सा अधिक प्रभावी साबित होती है।

'माता' उर्फ चेचक को रोकने वाला Vaccination का उपाय जो अठारहवीं शताब्दी तक यूरोप में ज्ञात नहीं था, वह भारत में सन् ५५० में भी प्रचलित था। धन्वन्तरी आयुर्वेद के एक बड़े प्राचीन आचार्य हैं। इनके ग्रन्थ में लिखा है कि एक शल्य से गौ के स्तन से जरा-सा द्रव निकाले और वह मानव की बाहों पर कन्धे से थोड़ा नीचे उसी शल्य से त्वचा के अन्दर जरा-सा प्रविष्ट करें जिससे थोड़ा रक्त बाहर दिखाई दे। गौ के स्तन का वह द्रव मानव-रुधिर में घुल-मिल जाने पर चेचक जैसा थोड़ा ज्वर आता है और माता की बीमारी नहीं होती।

आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि वर्णव्यवस्था इसलिए बनाई गई थी कि उससे रोगों का उद्भव और प्रचार न हो। सुश्रुत और मनु के कहे स्वच्छता सम्बन्धी विविध नियम जन्तुसंकर द्वारा रोगों के प्रसार पर नियंत्रण रहे—इस उद्देश्य से किए गए दीखते हैं।

"पाश्चात्य विद्या में जिसे hypnotism कहते हैं उसी को वैदिक, हिन्दू प्रथा में (मन्त्र-तंत्र, जादू टोना आदि) मोहिनी विद्या कहा जाता था। हिन्दू, ईजिप्सी, ग्रीक आदि सभी लोगों में ऐसे उपायों के लिए रोगी को मन्दिरों में ले जाया करते थे। Braid, Esdail, Elliatson आदि जिन व्यक्तियों ने इंग्लैण्ड में मोहिनी विद्या का प्रसार किया उन्हें वह ज्ञान और अनुभव भारत से ही मिला।

Garrison ने लिखा है कि अलैक्जैण्डर के समकालीन हिन्दू वैद्य बड़े प्रवीण समझे जाते थे। कुछ विद्वानों का कहना है कि स्वयं ॲरिस्टॉटल ने हिन्दू वैद्यों से उपचार करवाया था।

खलीफ हरून-अल-रसीद हिन्दू वैद्यों की ख्याति से बड़ा प्रभावित था और उसने आयुर्वेद की शिक्षा तथा अस्पतालों का संगठन करने के लिए बगदाद नगर में कई वैद्यों को निमंत्रित किया। Lord Amptbhill कहते हैं कि आधुनिक और मध्ययुगीन चिकित्सा-पद्धति पाश्चात्य लोगों ने अरबों द्वारा भारत से सीखी।

अतिप्राचीन हिन्दू रोगनिदान-पद्धति के अनुसार शारीरिक व्याधि या व्यथाएँ दूषित जल, वायु, कफ या रक्त के कारण उत्पन्न होती हैं। उनका उपाय ओषधियाँ या मंत्र-तंत्र आदि से होते देखकर पाश्चात्य लोग दंग हो जाते थे। ऋग्वेद में एक सहस्र से अधिक ओषधि बूटों के नाम उद्धृत हैं और केवल जल से रोग ठीक करने के उपाय बतलाए हैं। वैदिक युग में भी आयुर्वैदिक उपाय और मंत्र-तंत्र आदि के उपाय ऐसे दो भिन्न प्रकार थे। उस समय वैद्य लोग निजी घरों के चारों ओर ओषधि वृक्षों के ही बाग लगाकर रहा करते थे और उन्हीं से रोगियों का इलाज करते थे।

ऊपर उद्धृत ब्योरा William Durant के The Story of Civilization नाम के दशखंडी ग्रन्थ से लिया गया है। इससे पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि प्राचीनकाल में उपयुक्त वनस्पतियों का पता लगाना, उनसे अर्क, आसव, चूर्ण, भस्म, अवलेह आदि बनाना, रोगों का निदान करना और उनकी चिकित्सा करना—ऐसी प्रत्येक शाखा में आयुर्वेद शास्त्र कितना पारंगत है।

चरक, सुश्रुत आदि के समय का अनुमान जो ड्यूरेंट द्वारा दिया गया है उसे पाठक अधिकृत या निर्णायक न समझें। वैदिक संस्कृति की प्राचीनता कम दिखाने की उनकी प्रथा रही है। पाश्चात्य कृस्ती सभ्यता केवल १६०० वर्ष प्राचीन होने के कारण कृतयुग से चली आ रही लाखों-करोड़ों वर्ष की वैदिक प्राचीनता की कल्पना भी नहीं कर सकती।

उन्नीसवीं शताब्दी में जब बम विमान आदि शस्त्रास्त्रों का शोध नहीं लगा था और पाश्चात्य भौतिक शास्त्र तथा विद्याएँ विशेष प्रगत नहीं थीं तब Sir willaim Gones, Maxmuller आदि विद्वानों की धारणा थी कि विश्व का निर्माण कृस्त पूर्व वर्ष ४००४ ई० में हुआ। अतः तत्पश्चात् रामायण, महाभारत, बुद्ध, शंकराचार्य इत्यादि हुए। इस प्रकार करोड़ों वर्षों का इतिहास उन्होंने लगभग ६००० वर्षों में ठोंककर ऐतिहासिक कालक्रम का सत्यानाश कर रखा है। अतः प्राचीन वैदिक संस्कृति तथा व्यक्तियों के उनके अनुमान प्रमाणित नहीं माने जाने चाहिएँ।

जिस धन्वन्तरी की वे बात करते हैं वे सृष्टि निर्माण समय, देवतुल्य प्रथम मानव पीढ़ी में आयुर्वेद के मूल प्रणेता धन्वन्तरी हो सकते हैं या बाद

की पीढ़ियों में जन्मे कोई श्रेष्ठ आयुर्वेदाचार्य भी हो सकते हैं। यह भी हो सकता है कि मूल धन्वन्तरी से आरम्भ किए आयुर्वेद शिक्षा संस्थान के सारे ही प्राचार्य धन्वन्तरी ही कहलाते हों, जैसे शंकराचार्य जी के धर्मपीठ पर अधिष्ठित होने वाला प्रत्येक व्यक्ति शंकराचार्य ही कहलाता है।

आयुर्वेद के सन्दर्भ में ग्रीस, ईजिप्त, बगदाद, चीन आदि प्रदेशों का वर्णन आया है वह ठीक ही है। किन्तु उसका सही अर्थ यह है कि उन प्रदेशों के लोग बौद्ध, क्रस्ती या मुसलमान बनने से पूर्व सारे सनातन वैदिक धर्मी होने के कारण अन्य संस्कृत विद्याओं के साथ-साथ आयुर्वेद भी पढ़ते थे। धर्म परिवर्तन के सैकड़ों वर्ष पश्चात् भी वे सर्वप्रकार की वैदिक शिक्षा ही पाते रहे।

ऋग्वेद में एक सहस्र से अधिक ओषधि वनस्पतियों का उल्लेख आया है, ऐसा वचन ऊपर उद्धृत किया है, वह तर्कसंगत भी है। क्योंकि हम इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में यह स्पष्ट कर चुके हैं कि इस विश्व की तथा मानवी जीवन की प्रत्येक शाखा का उच्चतम ज्ञान वेदों में प्रस्तुत है। अत: उनमें कुछ मूल, महत्त्वपूर्ण ओषधि वनस्पतियों की सूची होना अनिवार्य था। हो सकता है कि इन वेदघोषित वनस्पतियों से ही जटिल से जटिल रोगों के ऊपर लागू होने वाले रामबाण रसायन बनते हों। अत: उन वेदोक्त वनस्पतियों पर समाधिस्थ अवस्था में एकाग्रचित्त से विचार करके उनसे कुछ और रामबाण रसायन बनाए जाने असम्भव नहीं।

पाश्चात्य धारणानुसार जंगली अवस्था में हजारों वर्ष रहते-रहते मानव ने अपनी उन्नति स्वयं कर ली। यदि यह धारणा सही होती को विद्यालयों में उच्चतम शिक्षा प्राप्त शिक्षक नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं होती। अत: देवकोटि के प्रथम पीढ़ी से ही प्रत्येक शाखा का उच्चतम ज्ञान मानवों को उपलब्ध कराया गया था यह वैदिक परम्परा की धारणा ही सही है। इसका और एक प्रमाण यह हैं कि वैदिक विधाएँ कभी प्राथमिक जंगली अवस्था में दिखाई देती ही नहीं। जितना पीछे जाओ उतना एक से एक बढ़कर विद्वान्, श्रेष्ठ, चरित्रवान व्यक्ति का ही नाम प्रत्येक शाखा में दिखाई पड़ता है। ऐसा करते-करते वैदिक विद्वत्ता श्रेणी, ब्रह्मा, नारद, गणेश आदि तक पहुँचती है। उनसे हर क्षेत्र में गुरु परम्परा से ज्ञान स्रोत

अखण्ड बहता रहा है।

महाभारतीय युद्ध के महासंहार के पश्चात् अफ्रीका, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, पश्चिम एशिया आदि प्रदेशों में गुरुकुल शिक्षण क्रम टूट-फूटकर बन्द हो गया। तथापि टूटा-फूटा आयुर्वेद जैसा-तैसा उन दूर के प्रदेशों में चलता रहा। ऐसी ही एक टूटी-फूटी आयुर्वेदीय शाखा यूनानी कहलाने लगी।

पथ्यकर औषधि करने वाले और बेचने वाले को पथ्यकरी उर्फ पंसारी कहा जाता था। वही शब्द अ-पथ्यकरी (Apothecary) के उच्चार से अभी भी आँग्ल भाषा में रूढ़ है। जैसे स्नान को कुछ लोग अस्नान भी कहा करते हैं।

वह पथ्यकरी उर्फ अपथ्यकरी शब्द भले ही अतिसूक्ष्म प्रमाण हो किन्तु अति महत्त्वपूर्ण और ठोस प्रमाण है कि यूरोप में भी आयुर्वेद प्रचलित था। विद्वानों को ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रमाणों से बड़े-बड़े उपयुक्त निष्कर्ष निकालना सीखना चाहिए। आज तक इससे बिल्कुल विपरीत होता रहा है। ऐसे कितने ही प्रमाण छोटे और नगण्य मानकर फेंके जाते रहे। 'एक: चन्द्र: तमो हंती न च तारागण शतैरपि' उक्ति के अनुसार ऐसा एक-एक प्रमाण बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। इसका अर्थ यह न समझें कि हम एकमात्र छोटे प्रमाण से संतुष्ट हैं। हम और भी अनेक प्रमाण अवश्य देंगे। किन्तु घास का तिनका जिस तरफ झुकता हो उसके अनुसार हवा किस दिशा में बहती है इसका पता तो लगता ही है।

यूरोप के वैद्य

डोरोथी चैपलीन (Dorothy Chaplin) के लिखे एक ग्रंथ में उल्लेख है कि इंग्लैण्ड में जिन घरानों के नाम Macbeth, Beaton या Betunes आदि थे, वे सारे वैद्य थे। वैद्य नाम के ही वे यूरोपीय अपभ्रंश हैं। उसका अर्थ था 'आयु का पुत्र' (Scotsman, Origin of Surnames, जून १६, १०३४)। एक प्राचीन गैलिक जाति के यूरोपीय व्यक्ति का नाम Bheathadh लिखा जाता था। किन्तु उस लिखित नाम में अन्तिम dh (यानि ध) का उच्चार किया नहीं जाता था। इससे स्पष्ट है कि Bheatha यह वैद्य: शब्द ही था। शिवजी को वैद्यों की देवता के रूप में

ही वैद्यनाथ कहा जाता है।

जिस ग्रन्थ के पृष्ठ १६९-७० में ऊपर उद्धृत उल्लेख डोरोथी चैंपलीन नाम की महिला ने किया है उस ग्रन्थ का नाम है Myth, Matter and Spirit or Keltic and Hindu Links। वैद्य शब्द का विश्लेषण 'आयु का पुत्र, नहीं होता। वैदिक संस्कृति से हजारों वर्ष तक सम्पर्क टूट जाने से अर्थ में बहुत फर्क आ जाना अस्वाभाविक नहीं तथापि आयु-पुत्र के बजाय यूरोप में तथा अन्य प्रदेशों में उस शब्द का अर्थ आयुर्वेदाचार्य ही था, यह डोरोथी चैंपलीन के कथन से स्पष्ट हो जाता है। भारत में भी जब वैद्यः शब्द के 'वेद', 'वेद' 'बैंद्यजी' आदि अपभ्रंश प्रचलित हैं तो सुदूर यूरोप में उसके 'बेथ, बेतून, बेथा' आदि अपभ्रंश होना स्वाभाविक था।

सिन्ध वैद्य

इस्लामी देशों में तथा आँग्ल साहित्य में सागरप्रवासी सिन्ध बैद (Sindbad The Sailor) की कथा प्रचलित है। वह इस कारण कि दूर प्रदेशों में जब आयुर्वेद की पढ़ाई धीरे-धीरे क्षीण और नष्ट होती गई तब सिन्ध बैंद्य प्रदेश निवासी भारतीय वैद्य शास्त्री निमन्त्रण आने पर ईरान, इराक, अरबस्थान, सीरिया, असीरिया आदि देशों में जाकर रोगपीड़ितों की चिकित्सा करते थे। क्योंकि भारत को छोड़कर अन्य देशों में सब प्रकार की पढ़ाई ही बन्द हो गई थी। ऐसे ही एक या अनेक सागरप्रवासी वैद्यों के अनुभवों की कथा कहते-कहते Sindbad The Sailor शीर्षक की अद्भुत अनुभवों वाली एक काल्पनिक कथा ही बन गई। किन्तु उसका मूल था एक (या अनेक)प्रख्यात वैद्य का रोगियों के उपचारार्थ अन्तर्राष्ट्रीय सागर प्रवास।

रूस में आयुदेवता

रूस का सायबेरिया भाग बड़ा विस्तीर्ण और अति शीत होने के कारण वहाँ मानव बस्ती विरल है। कृस्ति धर्म का वहाँ गहरा प्रभाव न होने के कारण वहाँ अभी तक प्राचीन वैदिक संस्कृति के अवशेष दिखलाई देते हैं। भारत से डॉक्टर लोकेशचन्द्र कुछ साथियों को लेकर वहाँ दो-तीन

बार हो आए। उन्होंने वहाँ देखा कि वहाँ के श्रद्धालु लोग अभी तक गंगा जल की पवित्रता को मानते हैं। हिंगाष्टक, त्रिफला आदि आयुर्वेदिक ओषधि बनाते हैं। किसी सम्बन्धी को चिन्ताजनक रोग होने पर आयुदेवता की मूर्ति की पूजा करते हैं। उस आयुदेवता की एशिया देशवाली प्रचलित मूर्ति International Academy of Indian Culture, J-२२, हौज खास, नई दिल्ली में प्रदर्शित है।

आयुर्वेद का प्राचीन विश्वप्रसार, प्राचीन वैदिक विश्व साम्राज्य का एक सशक्त प्रमाण है। जिसकी लाठी उसकी भैंस कहावत के अनुसार जिसका साम्राज्य होता है उसकी यदि निजी चिकित्सा-पद्धति हो तो वह निजी चिकित्सा-पद्धति चलाता है। जैसे भारत में अंग्रेजों का राज्य कायम हो जाने पर उन्होंने आयुर्वेद के स्थान पर पाश्चात्य डॉक्टरी चिकित्सा को ही सरकारी मान्यता, प्रोत्साहन और सहाय्य देते रहने की नीति अपनाई। उसी प्रकार इस्लामी शासनकाल में यूनानी को प्रोत्साहन मिला यद्यपि यूनानी तो आयुर्वेद से बिछड़ी अरबी चिकित्साधारा ही थी।

यूनानी जैसे आयुर्वेद की भिन्न-सी शाखा बन गई थी उसी प्रकार भिल्ल आदि जो वनवासी लोग थे उनमें भी एक आयुर्वेदिक शाखा प्रचलित थी। बाणों को किसी वनस्पति का विष लगाकर उससे शिकार में पशु मारना, सर्पदंश होने पर किसी ओषधि से विषबाधा को ठीक करना ऐसे कई अद्‌भुत उपाय जंगल में रहने वालों को ज्ञात होते हैं।

पुणे के एक आयुर्वेद महाविद्यालय के भूतपूर्व आचार्य मुझे बतला रहे थे कि अस्थिक्षय (Bone T.B.) का उनकी जानकारी में कोई उपाय नहीं था। अतः अपने विद्यालय के रुग्णालय में वे अस्थिक्षय रोगी का उपचार ठीक से नहीं कर पाते थे। किन्तु उन्हें एक गँवार-सा व्यक्ति मिला जो बोला कि अस्थिक्षय की उसके पास एक रामबाण ओषधि है और उससे पीड़ित किसी भी व्यक्ति को वह निःशुल्क उपचार करने के लिए तैयार था। अतः उस विद्यालय के रुग्णालय में जब भी कोई अस्थिक्षय का रोगी दाखिल होता, वे उस गँवार व्यक्ति को सन्देशा भेज देते। उस पर वह व्यक्ति किसी विशिष्ट तिथि की रात को जंगल में जाकर एक मूली ले आता। उसे वह पत्थर पर पानी में घिस कर रोगी की हड्डी पर उसका लेप

लगा दिया करता । उससे बिना कष्ट के और बिना किसी द्रव्य खर्च के रोगी स्वस्थ हो जाता । तथापि मिन्नतें करने पर भी वह उस मूली का नाम गुप्त रखता था । अत: अगली बार जब एक रोगी पर इलाज करने का उसे सन्देशा भेजा गया तो आयुर्वेद महाविद्यालय का एक प्रतिनिधि दूर से उस गंवार का पीछा करता रहा । उसे देखना था कि कौन से स्थान से वह व्यक्ति कौन-सी मूली लाता है । किन्तु उस गँवार व्यक्ति के यह बात ध्यान में आ गई कि कोई उसका पीछा कर रहा है । उस दिन से वह व्यक्ति गायब ही हो गया । वह कभी लौटा ही नहीं और अस्थिक्षय की वह सीधी-सादी नि:शुल्क बूटी या मूली सर्वदा के लिए अज्ञात ही रह गई ।

दूसरा एक उदाहरण गंडमाला रोग का है । इसे पाश्चात्य लोग Glandular T.B. कहते हैं । इसमें चेहरे पर बड़ी-बड़ी गाँठें निकल आती हैं । उनमें दुर्गन्धयुक्त पीप और रोगी रक्त भरा रहता है । ऐसी एक स्त्री रोगी का किसी देहात के दर्जी ने उपचार किया और वह पूर्णतया रोगमुक्त हो गई जबकि अनेक डॉक्टर और वैद्यों ने हाथ टेक दिए थे और कहा कि उस भयानक रोग का उनके पास कोई निदान नहीं था ।

उस स्त्री रोगी को खुले स्थान पर किसी पेड़ की छाँव में एक टाट बिछाकर वह दर्जी बिठा देता । फिर वह रोगी का मुंह किसी मुरब्बे जैसी गाढ़ी औषधि से लेप देता । कुछ समय पश्चात् वह लेप सूख आने से चेहरे पर की वे गाँठें सुकड़ जातीं और उनमें से गन्दा रक्त, पीप आदि झरते-झरते भूमि पर गिर पड़ता । इस प्रकार लगातार कुछ दिन वह लेप लगाने से सारी गाठें सुकड़कर शुद्ध होकर नष्ट हो गईं । उस दर्जी ने एक पैसा भी नहीं लिया, औषधि का नाम भी नहीं बतलाया और न ही कभी उसने उस आश्चर्यकारी उपाय का ढिंढोरा ही पीटा । किसी रोगी को योगायोग से उस दर्जी के आश्चर्यकारी इलाज का पता लग जाए तो लग जाए, नहीं तो नहीं ।

तीसरा उदाहरण है रतलाम के पास झाबुआ रियासत के भिल्ल लोगों का । वे कलेक्टर साहब को मिलने दूर जंगल से आए थे । आने पर पता चला कि कलेक्टर साहब की जाँघ में एक बहुत बड़ा फोड़ा हो जाने से टाँग सूज गई थी । अत: शरीर में तीव्र वेदना थी । स्थानिक कोई उपचार

सधता ही नहीं था। दिन-प्रतिदिन परिस्थिति गम्भीर होती जा रही थी जिस कारण वे बम्बई किसी बड़े डॉक्टर से परामर्श करने जाने वाले थे। तथापि उस रात्रि को रतलाम में ही रहने वाले थे। यह ब्योरा सुनकर भीलों ने कहा "वैसे तो रात-भर कलेक्टर साहब रतलाम में ही रहने वाले हैं तो उस रात को वे वहीं का स्थानिक उपचार करके देख लें। हो सकता है कोई आराम आए। आराम यदि नहीं आया तो कल बम्बई जाना तो है ही"। उनका सुझाव मंजूर हो गया। कलेक्टर साहब को इतनी तीव्र शरीर पीड़ा हो रही थी कि 'डूबते को तिनके का आसरा' कहावत के अनुसार उन्हें किसी प्रकार भी आराम चाहिए था। तब वे भील जंगल में गए और एक कोई मुट्ठीभर हरी वनस्पति लाये। उसे पीसकर उस वनस्पति का चटनी जैसा बड़ा, हरा, रसीला गोला फोड़े के ऊपर धरकर उन्होंने बाँध दिया और चल दिए। वह लगाते ही वेदना धीरे-धीरे कम होती गई। कलेक्टर साहब को अच्छी-खासी नींद आ गई। और क्या आश्चर्य, प्रातः देखा तो वह बड़ा फोड़ा अब लगभग पूरा बैठ ही गया था। ओषधि तो कौड़ी की भी नहीं किन्तु उससे जो उन्होंने छुटकारा पाया वह अनमोल। यदि वे डॉक्टरी के चक्र में फँस जाते तो पता नहीं उनकी शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक आदि कैसी-कैसी दुर्दशा होती और कलेक्टर की बीमारी से सरकारी और सार्वजनिक काम में रुकावट आती वह अलग।

इस प्रकार भारत के आदर्श नागरिक को अतीत के हमारे गौरवशाली इतिहास का अंग-प्रसंग ज्ञात होना चाहिए ताकि वह सरकारी अधिकारी, सामाजिक कार्यकर्ता या नेता बनने पर सारे देश में ढोल पिटवाकर ऐसे-ऐसे उत्तमोत्तम उपाय की पते सहित जानकारी देनेवाला एक संकलित कोश प्रकाशित करा सके या विशिष्ट, भयानक, पीड़ादायक रोगों की चिकित्सा के लिए विशेषज्ञों के उपचार केन्द्र स्थापन कर सके। इस दृष्टि से इतिहास केवल एक परीक्षा पार करने का विषय न रहकर राष्ट्रोत्थान और मानव सेवा का एक उत्तम माध्यम बनाया जा सकता है, यदि इतिहास-शिक्षकों को विशिष्ट राष्ट्रीय उपयुक्तता की दृष्टि से इतिहास पढ़ाने का प्रशिक्षण दिया गया तो।

६

प्राचीन विश्व का वैदिक स्थापत्य

अनादिकाल से कृस्त धर्म के प्रसार तक सारे विश्व में वैदिक जीवन-प्रणाली ही प्रसृत थी। इस तथ्य के हम जो विविध सर्वांगीण प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं उसके अन्तर्गत इस अध्याय में हम यह बतलाने जा रहे हैं कि प्राचीनकाल में सर्वत्र वैदिक भवन रचना-पद्धति से ही सारी इमारतें, पुल आदि बनते थे।

वैदिक परम्परा के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति के समय मानवों को वेदों का ज्ञान भण्डार और तदन्तर्गत १६ विद्या और ६४ कलाएँ परमज्ञानी परमपिता परमात्मा द्वारा ही दिलाई गई थीं। विविध विद्याओं के देवतुल्य प्रणेताओं द्वारा वे विद्याएँ और कलाएँ मानव को दी गईं। उनमें संगीत के प्रणेता थे गन्धर्व और आयुर्वेद के प्रणेता थे धन्वन्तरी। उसी प्रकार स्थापत्य, यन्त्रकला (जिसको यूरोप की परिभाषा में आजकल Engineering और Technology कहा जाता है) के प्रणेता थे विश्वकर्मा।

महाभारतीय युद्ध के अपार संहार के पश्चात् गुरुकुल शिक्षा के साथ-साथ वैदिक स्थापत्य विद्या की शिक्षा भी टूट-फूट गई। लोगों के समूह विविध प्रदेशों में बिखर गए। उनके साथ वैदिक स्थापत्य कला भी बिखर गई और समय के साथ-साथ भिन्न धारणाएँ बन गईं। जैसे यूरोप के गिरजाघरों का विशिष्ट आकार या रोमन स्थापत्य की शैली, मेक्सिको में पाए जाने वाले प्राचीन प्रासाद, मन्दिर इत्यादि। आयुर्वेद, संस्कृत भाषा, गुरुकुल शिक्षा, राज्य शासन आदि की जैसे भिन्न शाखाएँ फूट निकलीं उसी प्रकार प्राचीन वैदिक स्थापत्य विद्या की भी अलग-अलग शाखाएँ बन गईं।

वैदिक परम्परा के अनुसार विद्या के दो भाग किये जाते थे—परा और अपरा। आध्यात्मिक विद्या को परा विद्या कहा जाता है। इसमें जागतिक व्यवहार की सारी बातों को अशाश्वत, नश्वर, भासमय, अल्पकालीन समझा जाता है और दैवी, आधिभौतिक ज्ञान को ही सही, शाश्वत अक्षर ज्ञान समझा जाता है।

स्थापत्य जैसी जागतिक, मानवी, जड़-व्यवहारों में काम आने वाली विद्याओं में स्थापत्य विद्या का अन्तर्भाव होता है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और मत्स्यपुराण, अग्निपुराण आदि में स्थापत्य विद्या के अंश मिलते हैं। शिल्प उपवेद में स्थापत्य विद्या का अन्तर्भाव होता है। वैदिक नगर-रचनाशास्त्र के ग्रन्थों कों शिल्पशास्त्र कहा जाता है। मानवी व्यवहार के नियम जिनमें दिये गये हैं ऐसे नीतिशास्त्रों में भी भवन-निर्माण, नगर-रचना आदि के नियम, संकेत, तत्व, तथ्य आदि पाये जाते हैं।

ईश्वरीय शक्ति, आध्यात्मिकता आदि में विश्वास न रखने वाले कुछ नास्तिक वाचक कदाचित् ऐसी शंका उठायेंगे कि भवन-निर्माण, नगर-रचना आदि में प्रवीण महामानव ईश्वर ने (या प्रकृति ने) प्रथम पीढ़ी में कैसे निर्माण किये? क्या ऐसा चमत्कार कभी हो सकता है?

ऐसे वाचक अपने आस-पास की सृष्टि का निरीक्षण ध्यान देकर करें तो उन्हें सर्वत्र ऐसे कई चमत्कार दिखाई देंगे। प्रतिक्षण विश्व में सूक्ष्मातिसूक्ष्म जन्तुओं से लेकर बड़े-से-बड़े हाथी तक अनगिनत प्राणियों का जन्म-मरण, फूलों से मधु निकालने का मधुमक्खियों का कौशल्य, व्यायाम किये बिना ही हाथी को प्राप्त होने वाली अपार शक्ति, विविध छोटे-बड़े पक्षियों की, उनकी आवश्यकतानुसार कच्चे-पक्के घोंसले बनाने की जन्मजात क्षमता आदि बातों को देखते हुए मानव ने भी प्रकृति से ही वैसा ज्ञान जन्मजात प्राप्त कर लिया हो, तो उसमें आश्चर्य की क्या बात है।

हमारा दूसरा तर्क यह है कि जैसे कोई पिता अपनी सन्तान को पढ़ा-लिखाकर व्यवहारक्षम बनाता है उसी प्रकार ईश्वर ने भी मानव को विश्व का व्यवहार चलाने के लिए उपयुक्त सारा ज्ञान आरम्भ में देना ही क्रमप्राप्त है।

हमारा तीसरा तर्क यह है कि पिता से पुत्र को मिलने वाले ब्यौरे को इतिहास कहते हैं। उस इतिहास द्वारा भी वैदिक परम्परा यही कहती है कि परमात्मा ने मानव की प्रथम पीढ़ी को प्रत्येक शाखा का सर्वोच्च ज्ञान उपलब्ध कराकर इस विश्व का आरम्भ किया।

वैदिक शिल्प विद्या

वर्तमान पाश्चात्य प्रणाली में जिसे Engineering कहते हैं उसे हम शिल्पज्ञान, विश्वकर्मा विद्या, यन्त्रकला या कारखानेदारी कह सकते हैं। उस विद्या का एक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ भृगु शिल्प संहिता कहलाता है। उसके तीन प्रमुख खण्ड और १० विभाग हैं जो उपशास्त्र कहलाते हैं। उन १० विभागों की ३२ शाखाएँ थीं जिन्हें विद्या कहा जाता था। उन्हीं में ६४ कलाएँ अन्तर्भूत थीं जिन्हें पाश्चात्य प्रणाली में 'टेक्नालॉजी' कहा जाता है।

वैदिक परम्परा के अनुसार ब्रह्मा जी ने जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक मानव को जो सारा ज्ञान-भण्डार दिया उसी को वेद कहते हैं। आजकल हमें जो चार वेद प्राप्य हैं वे या तो उस मूल ज्ञान-भण्डार के कलियुग तक के बचे-खुचे हिस्से हैं या मूल विशाल वैदिक सम्पत्ति के संक्षिप्त संस्करण हैं।

"मानसार शिल्पशास्त्र" नाम के स्थापत्य ग्रन्थ के प्रणेता महर्षि मानसार के अनुसार ब्रह्मा जी ने नगर-निर्माण और भवन-रचना विद्याओं में चार विद्वानों को प्रशिक्षण दिया। उनके नाम हैं—विश्वकर्मा, मय, त्वस्तर और मनु। इन प्रत्येक को एक-एक पुत्र हुआ, वे हैं स्थपति, सूत्रग्राही, वर्धकि और तक्षक।

क़िले, महल, स्तम्भ, भवन, प्रासाद, पुल, मन्दिर, द्वार, विद्यालय, गुरुकुल, मठ आदि बनाने की विधि जिनमें कही गई है ऐसे उन कुछ मूल प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के नाम हैं—मयमत, काश्यप, सारस्वत्यम्, युक्ति-कल्पतरू, समरांगण, सूत्रधार, आकाश भैरवकल्प, नारद शिल्प संहिता, विश्वकर्मा विद्याप्रकाश, बृहत्संहिता, मनुष्यालय चन्द्रिका, शिल्पशास्त्र इत्यादि।

उपेक्षित ग्रन्थ

यह खेद की बात है कि उस स्थापत्य विद्या के लगभग सभी ग्रन्थ उपेक्षित, दुर्लक्षित अवस्था में पड़े हुए हैं। विश्व के अन्य देशों में तो क्या, भारत में भी वे ग्रन्थ लगभग निकम्मे ही हुए पड़े हैं। उनमें स्थापत्य विद्या के अनेक मौलिक कौशल छिपे हुए हैं। जैसे एक-दूसरे से दूर स्थित स्तम्भों की जोड़ी में से एक स्तम्भ को गदगद् हिलाने से उस जोड़ी का दूसरा स्तम्भ भी डोलने लगता है, ऐसे स्तम्भ महाराष्ट्र राज्य के जलगाँव जिले के दो देहातों, अहमदाबाद और पंजाब में हैं। दूसरा चमत्कार है कुछ मन्दिरों में लगे पत्थर के स्तम्भों का। वे स्तम्भ छत से तो भिड़े हुए हैं, किन्तु भूमि से थोड़े उठे हुए हैं। उस छेटी में से दरी या कपड़ा घुमाया जा सकता है। स्तम्भों में से वाद्यों जैसे सप्तसुरों की आवाज निकाली जा सकती है। जिन स्तम्भों के अन्दर गोल जीना, छज्जे, कक्ष आदि होते हैं उन्हें एक स्तम्भ भवन कहा जाता है। ताजमहल, फतेहपुर सीकरी आदि सैकड़ों स्थानों में ऐसे कई एक स्तम्भ भवन हैं। बीजापुर के गोल गवाक्ष जैसी इमारत में सूक्ष्मतम आवाज ११ बार निनादित हो उठने की व्यवस्था है। ऐसी वैदिक स्थापत्य की कितनी ही विशेषताएँ बखानी जा सकती हैं। कृत, त्रेता और द्वापर युग तक वही वैदिक स्थापत्यशास्त्र सारे विश्व में प्रचलित था। कृस्ति गिरजाघर या इस्लामी समझी जाने वाली ऐतिहासिक विशाल कब्रें और मसजिदें सारे प्राचीन हिन्दू मन्दिर हैं।

चौकोर, मण्डल आदि आकार

उन भवनों की रूपरेखा मण्डलाकार, चौकोना, षटकोना, अष्टकोना आदि प्रकार की होती है।

सामान्यतया वैदिक प्रासाद, भवन, महल, देवालय आदि लम्ब चौकोना आकार के होते हैं। चौकोन के अन्दर चौकोन ऐसी उनकी रचना होती है। सामान्य लोगों के घर भी वैदिक पद्धति के अनुसार वैसे ही बनते हैं। जावा (यव) द्वीप में बने प्राचीन बोरोबदूर हिन्दु मन्दिर से लेकर ताजमहल (तेजोमहालय) तक उसी पद्धति से बने हैं।

विश्वभर की प्राचीन इमारतें जो कृस्तियों और मुसलमानों के कब्जे

में आने के पश्चात् गिरजाघर या मसजिदें बनीं वे मूलत: वैदिक पद्धति से बनाए गए हिन्दु मन्दिर हैं : जैसे लण्डन नगर के सेण्ट पाल्स और वेस्टमिन्स्टर अबे, मिस्र के पिरामिड, पेरिस नगर का नोत्रदाम नाम का कृस्ति गिरजाघर, मक्कानगर स्थित मुसलमानों ने हथियाया हुआ काबा का मन्दिर, जेरुसलेम उर्फ यदुईशलयम् नगर के Dome on the Rock और अल्अक्सा इमारतें, ताजमहल उर्फ तेजोमहालय, लाल किला इत्यादि।

उसी प्रकार वैदिक स्थापत्य में गोल वास्तुपुरुष मण्डल भी है।

स्थापत्य के ग्रन्थ

वैदिक स्थापत्य यानी वास्तुकला और नगर-रचना की पूरी विधि मूल तत्व आदि का विवरण जिन संस्कृत ग्रन्थों में मिलता है उन्हें अगम साहित्य कहा जाता है। वे ग्रन्थ बड़े प्राचीन हैं। इतने प्राचीन कि उस समय ईसाई और इस्लामियों का नामोंनिशान भी नहीं था। विश्वभर की जो प्राचीन ऐतिहासिक इमारतें आजकल गिरजाघर, मसजिदें आदि कहलाती हैं वे ईसाई और इस्लामियों के हाथ लगे वैदिक मन्दिर हैं। संस्कृत वास्तुकला के आधार से ही उन इमारतों का ढाँचा बना हुआ है।

बैठक लगाकर ध्यानमग्न बैठे हुए एक योगी के जैसी वैदिक स्थापत्य शास्त्र द्वारा इमारत की कल्पना की जाती है। आत्मा जैसे शरीर में गुप्त निवास करती है उसी प्रकार विशालकाय मन्दिर के अन्दर एक छोटे से अँधेरे गर्भगृह में मूर्ति की प्रतिस्थापना की जाती है।

आत्मा जैसे ललाट पर दोनों भौओं के बीच तिलकबिन्दु के नीचे सूक्ष्म प्राणवायु के रूप में एक गाड़ीवान की तरह अग्र में उच्चस्थान में विराज-मान रहती है वैसे ही गर्भगृह भी मन्दिर का उन्नत केन्द्रस्थान माना जाता है। अपने आप में मन्दिर भी स्वयं नगर के प्रमुख स्थान में नगर की आत्मा की तरह स्थित रहता है।

एक पार्श्व में राजमहल और उसके ठीक सामने नगरदेव का मन्दिर। उन्हें साधने वाला राजमार्ग ही नगर का अक्ष (axcs) हुआ करता। इसी राजमार्ग के दाएँ-बाएँ गली-कूँचे बनाए जाते। इन्हें घेरने वाली नगर की मोटी दीवार होती थी। इस प्रकार बाहर के कोट से अन्दर के राजमहल

और देवालय तक प्रत्येक नगर एक सुरक्षित घर जैसा होता था जिसके विशाल द्वार रात को बन्द करके अन्दर नागरिक निश्चिन्त रहा करते। इस प्रकार नगर के सारे लोग एक कुटुम्ब के सदस्य की भाँति बाड़े जैसे उस नगर में प्रेमभाव और मेलजोल से रहा करते।

ऊपर कहे तत्व ध्यान में रखते हुए ईसाई और इस्लामी कहलाने वाली इमारतों का तथा नगरों का निरीक्षण, अध्ययन आदि करा जाना चाहिए।

उदाहरणार्थ ईरान, तुर्कस्थान आदि कई देशों में विशाल प्राचीन ऐतिहासिक इमारतों में नक्कारखाने बने हुए हैं। यद्यपि उन इमारतों को वर्तमान समय में मसजिदें या दरगाह माना जाता है। ऐसे वैदिक प्रमाणों का प्रेक्षकों ने सर्वदा ध्यान रखना आवश्यक है। उन नक्कारखानों में आजकल नक्कारा क्यों नहीं बजता? क्योंकि इस्लामी कब्रों में या मस्जिदों में कभी शहनाई या नगारा बजाने की प्रथा होती नहीं। अतः इस्लामी देशों की प्राचीन विशाल इमारतों में नक्कारखानों का अस्तित्व और उनमें वर्तमान में संगीत की अनुपस्थिति इन दोनों उल्टे-सीधे प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि वे सारे इस्लामपूर्व वैदिक संस्कृति के लोगों द्वारा बनाए गए मन्दिर और महल हैं जो मुसलमानों के कब्जे में आने के पश्चात् दरगाहें या कब्रें कहलाने लगीं। वैदिक संस्कृति में ही प्रातः और सायं के सारे कार्यक्रम संगीत के मधुर स्वरों से आरम्भ होते।

वास्तुपुरुष

प्रत्येक इमारत एक ध्यानमग्न व्यक्ति की भाँति वैदिक स्थापत्यकला में देखी जाती है। जिस चबूतरे पर वह इमारत बनी होती है वह उसकी बैठक मानी जाती है। पहली मंजिल उस वास्तुपुरुष का उदर स्थान होता है। दूसरी मंजिल छाती समझी जाए। दूसरी मंजिल का अन्त कन्धों का भाग समझें। जहाँ गुम्मद का निचला गोल भाग जुड़ा होता वह वास्तुपुरुष का गला। गुम्मद यह वास्तुपुरुष का सिर होता है। सिर के मध्य में प्राचीनकाल में बालों का घेरा रखा जाता था। उसी तरह गुम्मद के शीर्ष पर मध्य में एक उल्टे कमलपुष्प की आकृति अंकित होती है। वहाँ से शिखा या चोटी निकलती है। उसी प्रकार गुम्मद के शिखर के ऊपर कलशदण्ड होता

है। इस प्रकार प्रत्येक इमारत तल से शिखर तक एक वास्तुपुरुष होती है।

स्थान तथा प्रस्तरों का चयन

वास्तु या नगर निर्माण के लिए योग्य स्थान चुनने के बारे में अगम ग्रन्थों को पूरा मार्गदर्शन प्राप्य है। भूमि कितनी उपजाऊ है यह परखने हेतु उसमें प्रथम बीज बोये जाते हैं। उनसे उगा हुआ धान्य गौवों को खिलाया जाता है। तत्पश्चात् मंगलकामना हेतु उस भूमि का पूजन किया जाता है। तदुपरान्त स्थपति और पुरोहित दोनों मिलकर भूमि खोदते हैं।

इमारत में प्रयोग किये जाने वाले प्रस्तर लोहे के सरिये से ठोककर परखे जाते थे। जिनसे सुस्वर ध्वनि निकलती और छिन्नी मारकर जिन प्रस्तरों से अग्नि निकलती वे सशक्त पुरुष जाति के माने जाते। जिनसे मधुर ध्वनि और अग्नि भी नहीं निकलती उन्हें नपुंसक जाति का माना जाता। जिनसे अग्नि नहीं निकलती किन्तु मधुर ध्वनि सुनाई देती वे स्त्री जाति के प्रस्तर गिने जाते।

तत्पश्चात् इमारत के नाप में कितनी लम्बाई का मानदण्ड का प्रयोग किया जायगा इसका निर्णय होता था। कई बार धनिक या स्थपति का कद या अन्य किसी वस्तु की लम्बाई का मानदण्ड तय किया जाता था। उसे ताल कहा जाता। उसके प्रमाणबद्ध भाग और उपभागों को अंगुल और यव का नाम दिया जाता। इसके अतिरिक्त यव और अंगुल नाम के विशिष्ट लम्बाई के अन्य निश्चित नाप भी होते थे।

आंग्ल द्वीप

ब्रिटिश द्वीप जिन्हें ग्रेट ब्रिटेन या ब्रिटिश आइल्स् भी कहा जाता है उनका ऊपर दिए विवरण के अनुसार ही आँग्ल द्वीप यह प्राचीन वैदिक परम्परा का संस्कृत नाम पड़ा है। यूरोप खण्ड को तलहस्त समान माना जाए तो ब्रिटिश द्वीप उसके अंगुलि जैसा दीखता है। दूसरी दृष्टि से ब्रिटिश द्वीप एक प्रकार का नापदण्ड या मानदण्ड भी था। जैसे किसी नक्शे के नीचे या ऊपर कोने में दिया जाता है। तो प्रकृति ने यूरोप की लम्बाई-चौड़ाई नापने के लिए मानो उसके वायव्य (उत्तर-पश्चिमी) कोने में ब्रिटिश द्वीप

के रूप में एक मानदण्ड ही उपलब्ध करा दिया था। इसी दृष्टि से वैदिक संस्कृतिवेत्ताओं ने उस द्वीप को अंगुल दण्ड उर्फ स्थान नाम दे डाला। उसी अंगुलि स्थान का अपभ्रंश अंगुलि अण्ड उर्फ इंग्लैण्ड हुआ है। आंग्ल भूमि का मूल नाम अंगुलभूमि ही है। उसी भौमिक अंगुल नाप से अटलांटिक, भूमध्यसागर (मेडिटरेनियन) आदि आसपास के सागर तथा भूमि आदि की लम्बाई-चौड़ाई का हिसाब लगाया जाता।

यदि कोई मूर्ति तीन फुट ऊँचाई की हो तो उसके दस समभाग माने जाते हैं, जिनको दशताल कहा जाता है। आधुनिक यूरोपीय परिभाषा में deca-gram(डेकाग्राम), decimal (डेसिमल्)में "दश" यह संस्कृत शब्द दिखाई देता है। उन शब्दों में "C" अक्षर मूलतः "स" उच्चार के लिए ही था, किन्तु आंग्लभूमि के प्राकृत अपभ्रंश में "C" अक्षर का उच्चार "क" होने लगा।

वैदिक जीवन का केन्द्र मन्दिर ही होता था। सारा जीवन मन्दिर के सहारे ही व्यतीत किया जाता था। सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक, व्यावहारिक, न्यायिक, वैद्यक आदि सारे मामलों में ईश्वरीयकृपा, ईश्वरीय आधार ही मुख्य माना जाता था। 'ईशावास्यं इदं सर्वं यत्किंच जगत्यां-जगत्'—यही वैदिक जीवन की मूलधारणा है। प्राचीन वैदिक परम्परा का इतिहास खोजते समय उपरोक्त मूल धारणा का स्मरण अवश्य रखना चाहिए।

वैदिक परिभाषा में "ताल" शब्द का अर्थ "प्रमाण" भी होता है। मूर्तिकार, भवननिर्माता, स्थापति आदि वैदिक कारीगर जब पहाड़ खोदकर उनसे नक्काशी वाली सुन्दर गुफाएँ बनाते या पत्थर से मूर्ति बनाते तो वे उसी ताल पद्धति से मापन किया करते।

परमात्मा के चार प्रतीक

वैदिक परम्परा में परमात्मा का अधिष्ठान चार में से किसी एक रूप में दिग्दर्शित किया जाता है। एक होता है कुम्भ, जिसके अन्दर उदक उर्फ पवित्र जल होता है। दूसरा होता है मण्डल उर्फ गोल, वर्तुल चक्राकार आकृति, जो परमात्मा की दिव्य चेतना से वेष्ठित चराचर सृष्टि का प्रति-

निश्चित्व करता है। तीसरा होता है होमकुण्ड, जिसमें पवित्र अग्नि प्रज्वलित की जाती है और चौथा होता है बिम्ब यानि मूर्ति। प्राचीन इमारतें जो ईसाई या मुसलमानों के कब्जे में आ जाने के पश्चात् गिरजाघर, मस्जिदें या कब्रें आदि कही जा रही हैं उनमें वे चारों प्रतीक हुआ करते थे। अग्नि-कुण्डों को कई स्थानों पर बन्द किया हुआ देखा जा सकता है। कई ऐतिहासिक इमारतों के प्रवेशद्वारों के ऊपर वैदिक तान्त्रिक आकृतियाँ अंकित अब भी देखी जा सकती हैं। मुसलमान और ईसाई लोगों द्वारा हथियाई ऐतिहासिक इमारतों का निरीक्षण ऐसी बारीकी से और जागृतभाव से किया जाना आवश्यक है।

इमारत की भूमि को लम्बी और आड़ी रेखाओं से अनेक भागों में बाँटा जाता—यानी ६ लम्बी लकीरें ऊपर से नीचे समान अन्तरों पर खीची जातीं और ६ आड़ी लकीरें बाएँ से दाएँ खीचीं जातीं। इस प्रकार उस भूमि के ८१ समान भाग बनाकर प्रत्येक भाग को वैदिक स्थापत्य-शास्त्र में विशिष्ट नाम दिया गया है। छोटी या बड़ी भूमि को इसी तरह विभाजित किया जाता था। यदि मण्डलाकार इमारत बनानी हो तो उसके भी ऐसे नपे हुए भाग किए जाते थे। सारे वैदिक स्थपतिओं की यही विशिष्ट नियमबद्ध कार्यप्रणाली थी। उन नक्शों में विशिष्ट भागों का निर्देश ब्रह्मस्थान, इन्द्रस्थान आदि परिभाषा में होता था।

गुम्बद इमारत का शीर्ष होता था

गुम्बद का आमलक यानि आँवलड (यह संस्कृत नाम है।) उसे कुम्भ भी कहते थे, क्योंकि उल्टे घड़े या कढ़ाई जैसे उसका आकार होता है। प्राचीनकाल में "कुम्भ के आकार का" इस अर्थ से गुम्बद को "कुम्भ-ज" कहा जाता था। इस 'कुम्भज' शब्द का ही अपभ्रंश "गुम्बद" हुआ है। आंग्ल लिपि में कुम्भ को Comb कहते-कहते उसका "डोम" (Dome) ऐसा अपभ्रंश प्रचलित हुआ। इससे वाचक सोचें कि जब "गुम्बद" अर्थ के सारे शब्द मुसलमानों में और ईसाईयों में संस्कृत "कुम्भ-ज" व्युत्पत्ति के हैं तो गुम्बद की रचनाशैली मूलतः मुसलमानों की है यह विद्यमान धारणा कितनी गलत है। अतः जहाँ गुम्बद दीखे वह इमारत इस्लामी समझने की बजाय

गुम्बद का अस्तित्व वैदिक स्थापत्य शैली का पक्का प्रमाण माना जाना चाहिए। इमारत को वास्तुपुरुष का ढाँचा समझा जाने के कारण उसका शीर्ष गोल, गुम्बद के आकार का होना अनिवार्य था।

वैदिक स्थापत्यशास्त्र में छत आदि इमारत के उपरले भाग को "विमान" भी कहा जाता है।

मीनार भी इस्लामी प्रकार नहीं

गुम्बद की तरह मीनार भी इस्लामी वास्तुप्रकार समझा जाता है। मीनार को इस्लामी वास्तुप्रकार समझना सार्वजनिक भ्रम है। अन्दर से जीना, हर मंजिल पर छज्जे, मीनार के शीर्ष पर छत्र यानि गुम्बद होना, यह सारे हिन्दु दीपस्तम्भ के लक्षण हैं। वैदिक स्थापत्य में उसे "एकस्तम्भ" कहते हैं। इटली देश में पीसा नगर की झुकनी मीनार (Leaning Tower of Pisa) अफगानिस्तान में स्थित गजनी नगर की मीनार, दिल्ली की तथाकथित कुतुबमीनार, ताजमहल के संगमरमरी चबूतरे के चार कोनों के चार मीनार, अहमदाबाद में एक ऐतिहासिक इमारत के हिलते मीनार, यह सारे वैदिक स्थापत्य की प्रवीण कारीगरी के नमूने हैं।

घने अन्धेरे में रात को मन्दिर या महल का अस्तित्व दूर से प्रकट हो इसलिए इमारत के आगे या पीछे या चारों ओर उत्तुंग दीपस्तम्भों की जोड़ी बना दी जाती। ऐसे जोड़ी-जोड़ी के मीनार बनाना हिन्दु प्रथा है। इस्लाम में ऐसी समानता की या जोड़ी की प्रथा नहीं है। मुएज्जिन द्वारा ऊँचाई से नमाज की आवाज लगाने के हेतु एक ही गुम्बद की आवश्यकता होती है अत: केवल इस्लामी मस्जिदों में मीनार होनी चाहिए ? और वह भी एक ही होनी चाहिए। जहाँ-तहाँ मीनार होना, मस्जिद न कहलाने वाली इमारत में भी मीनार होना, यह सारे उन मीनारों के हिन्दु निर्माण के प्रमाण हैं। दिन में उन मीनारों पर चढ़कर पहरेदार दूर तक निरीक्षण कर सकते थे।

कई इमारतों में प्रवेश द्वार के ऊपर दाईं-बाईं ओर दो ऊँचे से नोकदार स्तम्भ बनाए जाते हैं। उन पर कोई चढ़ नहीं सकता। अत: उन्हें मीनार कहना या समझना अयोग्य है। इमारत की शोभा बढ़ाने के हेतु

ऐसे जोड़ी के स्तम्भ होना भी वैदिक स्थापत्य का लक्षण है। अत: जहाँ भी छज्जे और जीने वाले मीनार दिखें या जोड़ी-जोड़ी के स्तम्भ या मीनार दिखें वे सारे हिन्दु स्थापत्य प्रकार समझे जाने चाहिएं। इस प्रकार इमारतों के ऐतिहासिक अध्ययन एवं निरीक्षण में प्रचलित धारणाओं को आमूलाग्र बदल देने की आवश्यकता है। जहाँ मीनार और गुम्बद विशिष्ट इस्लामी चिह्न माने जाते थे, वहाँ उन्हें पक्के हिन्दु, वैदिक प्रतीक मानना आवश्यक है।

मुएज्जिन की शामत

सैंकड़ों पौड़ियों वाली कुतुबमीनार जैसे वास्तुप्रकारों को जो व्यक्ति नमाज की आवाज लगाने की मीनार कह देते हैं वे यह नहीं सोचते कि कौन मुसलमान मुएज्जिन ऐसी नौकरी करने पर राजी होगा जिसमें दिन में पाँच बार सैंकड़ों पौड़ियाँ चढ़नी और उतरनी पड़ती हैं ? ? इस प्रकार की नौकरी में महीने दो महीने में उसकी कमर ही टूट जाएगी। उन मीनारों में ऊपर-ऊपर की पौड़ियाँ सिकुड़ती जाती हैं, अन्दर घना अन्धेरा होता है। अत: किसी समय पैर फिसलकर गिड़गिड़ाता हुआ मुएज्जिन पथरीली पौड़ियों और दीवारों से टकराता हुआ गिरकर घायल या अपाहिज हो सकता है या मर भी सकता है। प्रतिदिन पाँच बार सैंकड़ों पौड़ियों पर चढ़ते-चढ़ते चक्कर आकर मुसलमान मुएज्जिन बेहोश भी हो सकता है। भला ऐसी नौकरी कौन करेगा ? और ऐसे खतरनाक मीनार कौन बनाएगा ?

वैदिक परम्परा में दिन में पाँच बार ऐसी मीनारों पर चढ़ने की आवश्यकता नहीं होती। कभी काम से कोई एकाध व्यक्ति ऊपर चढ़ जाता और कार्य हो जाने पर वापस आ जाता। कार्यवश मीनार के शिखर तक आरोहण करने वाले व्यक्ति हिन्दु प्रथा में भिन्न-भिन्न भी होते हैं। मुएज्जिन की तरह एक ही व्यक्ति नहीं होता।

ताजमहल उर्फ तेजोमहालय इमारत के चबूतरे के चारों ओर कोनों पर और बीजापुर के गोल गुम्बज के कोनों पर जो मीनार बने हुए हैं उनका इस्लामी प्रथा में कोई प्रयोजन नहीं है। वह मस्जिदें न होने के

कारण वहाँ तो एक भी मीनार की आवश्यकता नहीं है।

जहाँ चार मीनार हों वहाँ मुएज्जिन किसी दिन एक मीनार से और अन्य दिन अन्य मीनारों से नमाज की आवाजें लगाता रहेगा। वे मीनारें एक-दूसरे से दूर होने के कारण वह आवाज सुनने वाले श्रोता लोग भी भिन्न होंगे। कुतुबमीनार जितनी ऊँची मीनारों पर से तो मुएज्जिन की आवाज धरातल पर स्थित मुसलमानों को सुनाई देने की बजाय मृत मुसलमानों की स्वर्गस्थ आत्माओं को ही सुनाई देगी।

ऐसी सारी बातों का विचार करते हुए मीनार बनाना हिन्दु प्रथा है, इसके बाबत पाठक निःशंक रहें। कई बार यह भी देखा जा सकता है कि मस्जिदें न कहलाने वाली इमारतों में एक भी मीनार नहीं है जैसे फतेहपुर सीकरी में या ताजमहल के पश्चिम में जो इमारत है उसमें एक भी मीनार नहीं है, तब भी उन इमारतों को मस्जिद कहा जाता है। और किसी सुल्तान या बादशाह द्वारा वे इमारतें बनवाए जाने की धौंस इतिहास में दी जाती है। सारा इस्लामी इतिहास ऐसी धौंसबाजी से भरा होने के कारण ऐतिहासिक इमारतों के प्रेक्षकों द्वारा निरीक्षण करते समय बड़ी सावधानी बरतने की आवश्यकता है। वहाँ का स्थलदर्शक (licensed guide) जो तोतापंची करता है उस पर विश्वास न करें। बारीकी से व्यक्तिगत जागृत निरीक्षण पर अधिक निर्भर रहना चाहिए।

ज्योतिषीय स्थापत्य रचना

आंग्ल ज्ञानकोष (Encyclopaedia Britannica) में "चर्च" शीर्षक की टिप्पणी में लिखा है कि यूरोप के अधिकांश प्राचीन गिरजाघर ज्योतिषीय तत्वों के अनुसार बनाए गए हैं।

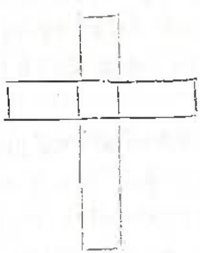
वैदिक परम्परा में ही दैनन्दिन सारे मानवी व्यवहार एकादशी, प्रदोष, अमावस्या आदि तिथि, करण, वार, नक्षत्र, मुहूर्त आदि बातों पर आधारित होते हैं। अतः मन्दिर भी उसी बिना पर अमुक तिथि को सूर्योदय के समय ऐन देवमूर्ति पर सूर्य की किरण पड़े आदि के अनुसार बनाया जाता था। उड़ीसा का कोणार्क मन्दिर, ईजिप्त का प्राचीन कॉन्यार्क उर्फ कोणार्क आदि अनेक मन्दिर इसी प्रकार ज्योतिषीय तत्वा-

नुसार बनाए गए हैं।

क्रुस्ती या इस्लामी प्रथा में तो कर्मसिद्धान्त या पुनर्जन्म माना नहीं जाता, वे तो एक ही जन्म मानते हैं। अतः उनमें ज्योतिषीय विचार कभी किया हीं नहीं जाता। ऐसी अवस्था में जब सारे प्राचीन गिरजाघर ज्योतिषीय सिद्धान्तों के अनुसार बनाए पाए जाते हैं तो इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि देश-देश के लोग जैसे-जैसे ईसाई बनते चले गए वैसे-वैसे उनके मन्दिर भी गिरजाघर बनाए जाते रहे।

यही नियम इस्लामी देशों में स्थित प्राचीन भव्य इमारतों पर भी लागू है। यद्यपि आज वे मजार, कब्रें, मस्जिदें आदि कहलाते हैं तथापि वे सारे कब्जा किए हुए हिन्दु मन्दिर, महल, आदि हैं, जैसे इस्लाम का केन्द्रीय धर्मस्थान—मक्का नगर का काबा। वह ३६० देवमूर्तियों का मन्दिर था ऐसा इस्लामी ज्ञानकोश (Encyclopeadia Islamia) में ही लिखा है। वह भी ज्योतिषीय तत्वों पर ही बनाया गया है।

वर्तमान क्रुस्ति सन् भले ही १९८७ हो, क्रुस्ती धर्म का प्रसार चौथी शताब्दी से ही प्रारम्भ हुआ। सारा यूरोप ईसाई बनाने में और छः सौ वर्ष बीत गए। अतः क्रुस्ती और इस्लामी धर्म १४०० वर्ष ही प्राचीन माने जाने चाहिएं। वे ईसाई और मुसलमान बने लोग, जिन इमारतों को निजी गिरजाघर या मस्जिदें, कब्रें आदि कहते हैं, वे सारे १४०० वर्षों से प्राचीन वैदिक धर्म मन्दिर होने के नाते अष्टकोणीय और ज्योतिषीय तत्वानुसार



बनाए पाए जाते हैं। क्रुस्ती क्रूस अष्टकोणीय आकार ही होता है। क्रूस के आकार के स्तम्भ पर कील ठोक-ठोककर क्रुस्त का वध हो जाने के कारण

ईसाई लोग यह चिह्न गले में लटकाते हैं, ऐसी जनता की आम धारणा है लेकिन यह सरासर गलत है। यदि पिस्तौल, बन्दूक या तोप से क्रुस्त मारा जाता तो क्या ईसाई लोग गले में पिस्तौल, बन्दूक या तोप की प्रतिमा लटकाते ?

वास्तव में बात यह थी कि जब कुछ दहशतवादी कृष्णपंथी पीटर, पॉल जैसे महत्वाकांक्षी नेता वैदिक धर्म से अलग होकर दुराग्रह से अपना अधिकार और अपने अनुयायी बढ़ाना चाहते थे तो उन्होंने, अपने पक्ष के अनुयायी झट पहचाने जा सकें, इस दृष्टि से गले में क्रूस लटकाना आरम्भ किया। अतः क्रूस लटकाने के पीछे गुटबाजी और अलगाववाद की भूमिका थी, न कि सात्विक आध्यात्मिकता की।

ईसाई और इस्लामी धर्मों का निर्माण तथा प्रसार दहशतवादियों द्वारा हुआ। अतः दोनों ने वैदिकधर्मियों के मन्दिर ही हथिया कर उन्हें निजी गिरजाघर और मस्जिदें बनवाईं। तथापि उन इमारतों की बनावट और उनमें पाये जाने वाले चिह्नों से उन इमारतें के ईसाई और इस्लामी न होने का पता चलता है। कई बार ऐसा दिखाई देता है कि कब्जा की हुई हिन्दु ऐतिहासिक इमारतों के निकट जब आधुनिक मुसलमान नई इमारत खड़ी कर देते हैं तो दोनों के आकार-प्रकार में स्पष्टतया आकाश-पाताल का अन्तर एकदम दिखाई पड़ता है। उन्नीसवीं शताब्दी तक मुसलमानों में आक्रमण शक्ति होने के कारण तब तक उन्होंने कोई प्रेक्षणीय ऐतिहासिक इमारत बनाई ही नहीं। तत्पश्चात् बीसवीं शताब्दी से मुसलमानों ने कहीं-कहीं जो इमारतें बनाई उनके विचित्र टेढ़े-मेढ़े आकार, घोड़े के नाल के आकार की कमान आदि से वे एकदम औरों से भिन्न ऐसी इस्लामी मालूम होती हैं।

ऐतिहासिक इमारतें, मस्जिदें और कब्रें होने का जूठा ढिंढोरा जनरल अलेक्जेंडर कनिंगहम नाम के लुच्चे अंग्रेज ने जानबूझकर पिटवाया। जब इन इमारतों की हिन्दु शैली और वैदिक चिह्नों के बाबत प्रश्न उठा तो उसका झूठा समर्थन यह किया जाने लगा कि मुसलमानों ने मन्दिर नष्ट कर उन्हीं के मलबे से मस्जिदें खड़ी कीं। एक झूठ दबाने के लिए दूसरा झूठ कहने वाली यह बात थी। एक इमारत गिराकर उसी की सामग्री से

वही इमारत वैसी ही खड़ी करने में कौन-सी बुद्धिमानी है। उससे हासिल क्या हुआ ?

इसमें सोचने की बात यह है कि हिन्दु नक्काशी और वैदिक चिह्नों वाले स्तम्भ आदि सामग्री मुसलमानों को सहन नहीं होती थी। अत: यदि वे मन्दिर नष्ट करते थे तो उसी सामग्री से वही इमारत वे फिर क्यों खड़ी करेंगे ? ऐसा करने में इमारत का स्वरूप तो बदलता नहीं किन्तु उसमें मजूरी आदि फालतू लगती।

दूसरा आरोप यह है कि गिराई गई इमारत के मलबे के ढेर में से कौन-सी ईंट, पत्थर या स्तम्भ कौन-सी मंजिल के किस कक्ष में लगा था यह तय करना एक पेचीदी समस्या हो जाएगी।

तीसरा तर्क यह है कि गिराते समय इमारत की सामग्री की इतनी टूट-फूट होगी कि उस सामग्री से वैसी ही इमारत दुबारा नहीं बन सकती।

ऐसे अनेक आक्षेपों का एक ही हल है कि ऐतिहासिक मन्दिरों की शैली हिन्दु और लगे चिह्न वैदिक इस कारण हैं कि वे इमारतें मूलत: हिन्दुओं के महल और मन्दिर हैं। वे कभी गिराये नहीं गए। किन्तु मुसलमानों के कब्जे में आने के कारण वही इमारतें जो पहले हिन्दुओं के बने पुल, बाड़े, किले, महल थे, हस्तान्तरण के पश्चात् मुसलमानों की मस्जिदें, मकबरे कहलाने लगे।

इस सन्दर्भ में यह ध्यान रहे कि "मन्दिर तोड़कर मस्जिद बनवाई" इस पौर्वात्य वाक्प्रचार का अनुवाद पाश्चात्य लोगों ने Razed temples and raised mosques (यानि मन्दिरों की इमारत सम्पूर्ण नष्टकर उसी स्थान पर मस्जिद खड़ी की) यह अनुवाद सरासर गलत है। मन्दिर को भ्रष्टकर उसी इमारत को मकबरा या मस्जिद कहा तथा हिन्दु किले, बाड़े, पुल आदि भी मुसलमानों के बनवाए कहे जाने लगे।

कुछ लोग ऐसा तर्क प्रस्तुत करते हैं कि यद्यपि बनवाने वाले सुल्तान बादशाह मुसलमान थे, लेकिन बनाने वाले कारीगर और मजदूर हिन्दु होने के कारण उन्होंने मस्जिदों और मकबरों को हिन्दु ढाँचा दे डाला।

यह कथन भी सरासर झूठ और गलत है। ताजमहल का ही उदाहरण लें। उसकी मीनारें, गुम्बद आदि सारा ढाँचा पूर्णतया इस्लामी है ऐसा

कहने वाले कहते हैं। किन्तु जब उन्हें यह दर्शाया जाता है कि वे तो सारे उसके हिन्दुत्व के चिह्न हैं तो वे लोग एकाएक निजी रुख बदलकर कहने लगते हैं कि "अच्छा तो कारीगर हिन्दु थे इसलिए आकार हिन्दु बना।"

इस प्रकार भूमिका बदल देने वालों से सावधान रहना चाहिए। यद्यपि कारीगर भी हिन्दु हों तो भी इमारत का स्वामी जिस प्रकार इमारत बनाना चाहे वैसी ही इमारत बनती है। अंग्रेजों ने भी तो भारत में गिरजाघर हिन्दु कारीगरों से ही तो बनवाए, फिर भी गिरजाघर हिन्दु मन्दिरों जैसे क्यों नहीं बने ? इसलिए कि वे मूलत: गिरजाघरों के रूप में ही बनवाए गए थे। इस्लामी मकबरे और मस्जिदें हिन्दु शैली के क्यों हैं ? क्योंकि वे मूलत: मन्दिर हैं जो मुसलमानों के हाथ आ जाने के कारण मसजिदें और मकबरे कहलाने लगे।

कारीगरों के बारे में एक और तर्क यह है कि लालकिला, ताजमहल आदि अनेक इमारतों के रचनाकारों के इस्लामी धौंसबाजी के कारण इतिहास में जो झूठे नाम प्रविष्ट हैं वे सारे मुसलमान ही तो हैं। जैसे कहते हैं कि ताजमहल का निर्माता कोई इसा एफन्दी या अहमद मेहन्दिस था। लालकिले का निर्माता कोई हमीद था। इस प्रकार प्रमुख कारीगरों के नाम सर्वथा मुसलमान ही बताए जाते हैं। अत: अटकलपच्चू से कह देना कि कारीगर हिन्दु थे अत: इमारत हिन्दु पद्धति की बन गई, बुद्धिमानी नहीं है। तथापि यह जान लेना आवश्यक है कि इसा एफन्दी, अहमद मेहन्दिस, हमीद आदि नाम सारे इस्लामी, दरबारी चाटुकारों की लेखनी से कपोल-कल्पित लिखे गए हैं। यह भी हो सकता है कि लालकिला, फतेहपुर सीकरी, ताजमहल आदि जब-जब मुसलमानों के कब्जे में आते गए तब-तब उन परिसरों की साफ-सफाई, मरम्मत आदि कराने के लिए जो मुसलमान काम पर लगाए गए उनके नाम इसा एफन्दी, अहमद मेहन्दिस, हमीद इत्यादि कोई भी हो सकते हैं। अत: नाम सही भी हों तब भी वे निर्माताओं के न होते हुए साफ-सफाई और मरम्मत करने वाले मजदूरों के हैं, यह जान लेना आवश्यक है।

आंग्ल लेखकों में केवल E. B. Havell ही एक ऐसा व्यक्ति है जो पहचान चुका था कि कही जाने वाली सारी ऐतिहासिक इमारतें हिन्दु शैली

की हैं। Indian Architecture : Its Psychology, Structure and History नाम के अपने ग्रन्थ में उसने स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि ऐतिहासिक इमारतें भले ही कब्रें या मस्जिदें कहलाती हों तथापि वे पूर्णतया हिन्दु शैली की हैं। उस समय प्रचलित धारणा के अनुसार E. B. Havell भी यह समझ बैठा था कि कब्रें और मस्जिदें सचमुच ही मुसलमान सुल्तान-बादशाहों ने बनवाई तथापि उनकी शैली तो हिन्दु ही है। आज यदि हॅवेल जीवित होता तो उसे कितनी प्रसन्नता होती कि शैली की बाबत उसका निष्कर्ष ऐतिहासिक प्रमाणों से भी सही सिद्ध होता है।

ऐतिहासिक इमारतों के अन्दर थोपी गई कब्रें और दीवारों पर खुदवाए अरबी-फारसी-उर्दू अक्षर इनसे धोखा खाए विद्वानों ने सारी इमारत की रचना ही इस्लामी शैली की (Saracenic) या मिली-जुली भारतीय-इस्लामी (Indo-Saracenic) समझना आरम्भ कर दिया।

इस गलत धारणा से आज तक के विद्वानों को दूसरा भ्रम यह हुआ कि जिस मुसलमान के नाम की कब्र जिस इमारत में हो उसी की मृत्यु के वर्ष में उस इमारत का निर्माण-काल मान लेना। इस दोषपूर्ण पद्धति से प्राचीन भवनों के निर्माण-काल सैंकड़ों वर्ष पश्चात् दफनाए गए मुसलमान की मृत्यु के समय के समझे गए। मानो कि एक सहस्त्र वर्ष प्राचीन हिन्दु मन्दिर या, महल मुसलमानों के कब्जे में पाँच सौ वर्ष पश्चात् आया और उस समय की लड़ाई में मारे गए मुसलमान उस इमारत में दफनाए गए। बस ? उसी से इतिहासकारों ने और पुरातत्वविदों ने मानना शुरू कर दिया कि वह इमारत उस शव के ऊपर कब्र के रूप में पाँच सौ वर्ष पूर्व बनी और वह इमारत इस्लामी शव से सम्बन्धित होने के कारण उसकी शैली भी इस्लामी है।

इसमें और भी एक सोचने लायक मुद्दा यह है कि जीवित व्यक्ति के लिए जीवन-भर की कमाई से एक भवन बनाना भी मुश्किल होता है तो भला मुर्दे के लिए आलीशान महल कौन, कैसे बनवाएगा ? विशेषकर जब मुर्दे को किसी भी निवास-स्थान की तनिक भी आवश्यकता नहीं होती और कोई शव आश्रय स्थान हेतु कभी चूं भी नहीं करता। यह भी कि जब वह व्यक्ति जीवित था और हुकूमत चलाता था तब उसका कोई मकान या महल बताया नहीं जाता। जैसे कि फकीर निजामुद्दीन, सलीम चिस्ती,

मुइनुद्दीन चिस्ती, सुल्तान अलाउद्दीन, तैमूरलंग, लोदी घराने के सुलतान, एतमाद्उद्दौला और सफदरजंग जैसे दरबारी और हुमायूं जैसे बादशाह-- इन सबके विशाल मकबरे तो बताए जाते हैं किन्तु वे सारे जीवित थे तो कौन से महल में रहते थे ? या उन्होंने अपने लिए या निजी बाल-बच्चों के लिए कितने महल बनवाए ? यदि एक भी न बनवाया तो भला इन अत्याचारी, बलात्कारी, दुराचारी, खूंखार सुलतान, बादशाह, दरबारी और फकीरों की मृत्यु के पश्चात् सारी जनता छुटकारे की साँस लेगी या उस दुष्ट व्यक्ति के प्रेत के लिए महल बनाती फिरेगी। और यदि आलीशान कब्र बनाएगी तो पैसा कौन देगा ? और यदि ऐसी कब्रें वे बनाते रहे तो क्या अन्य जीवित सुल्तान और दरबारी आदि उस आलीशान इमारत को अपने कब्जे में नहीं कर लेते ?

जो व्यक्ति यह कहते नहीं थकते कि कारीगर हिन्दू थे अतः इस्लामी कब्रें और मस्जिदें भी हिन्दु पद्धति की बन गईं--- उनके उस भ्रम के कुछ उत्तर तो हम पहले ही दे चुके हैं कि वे इमारतें पूरी इस्लामी ढाँचे की हैं, यही सब विद्वानों का दावा शुरू से ही रहा है। वह इमारतें इस्लामी ढंग की नहीं हैं, यह तो मैंने उन्हें प्रथम बार कहा। तब उन्होंने एकाएक अपनी भूमिका बदलकर यह कहना शुरू कर दिया कि "कारीगर हिन्दु होंगे।" उसमें भी वे गोलमोल अनुमान ही प्रस्तुत करते हैं। कारीगर हिन्दु ही थे ऐसा वे ठोस प्रतिपादन नहीं करते। वे कहते हैं कि कारीगर तो हिन्दु ही होंगे या होने चाहिएँ। उसका भी हमारे पास उत्तर है कि स्वयं मुसलमान उन इमारतों के कारीगर (झूठ ही क्यों न हों) मुसलमान ही बतलाते हैं।

अब सोचने की और एक बात है कि कारीगर सैंकड़ों होते हैं। तो क्या वे सारे ही निजी विचार का आकार कब्र या मस्जिद को देंगे ? इस प्रकार प्रत्येक कारीगर यदि मनमाना आकार एक इमारत को देने लगे तो वह इमारत तो कभी पूरी होगी ही नहीं। कारीगर आपस में ही झगड़ते रह जायेंगे। एक-दूसरे की कोई नहीं सुनेगा। और किसी कारीगर को क्या पड़ी किसी पराए सुल्तान, बादशाह या दरबारी की इमारत के ढाँचे में परिवर्तन करने की। कारीगरों के जीवन में कई मकान बनते रहते हैं। मकान बनाकर कारीगर विश्व के किसी अन्य कोने में चल देता है। बनाए

हुए मकानों को दुबारा देखने की न तो उसे फुरसत होती है और न ही कोई अभिलाषा। प्रत्येक मकान का ढाँचा कैसा हो और उस पर कितना द्रव्य लगाया जा सकता है यह उस जायदाद का स्वामी तय करता है। स्वामी की आज्ञानुसार स्थपति इमारत का नक्शा बनाता है। उस नक्शे के अनुसार राज, कारीगर, मजदूर आदि काम पूरा करते हैं। उसी नक्शे के अनुसार ही ईंट, पत्थर आदि सामग्री मँगाई जाती है। ऐसी अवस्था में वस्तुत: यदि कब्रों और मस्जिदों के ही नक्शे बनाए जाते और सामग्री मँगाई जाती तो उनसे हिन्दु आकार की इमारत कैसे बनती? इमारत बनते-बनते अनेक वर्ष बीत जाते हैं। उस अर्से में प्रतिदिन भवन-निर्माण के कार्य पर मुसलमान सुल्तान, बादशाह, दरबारी, फकीर, दरोगा, खानसामा आदि सबकी कड़ी नजर रहती। ऐसी अवस्था में यह कह देना कि कारीगर हिन्दु होने से मस्जिदें और कब्रें भी हिन्दु पद्धति की बन गईं—बड़ा विचित्र और निराधार तर्क है।

अत: इस प्रश्न का सही उत्तर यह है कि मुसलमानों ने कभी कोई ऐतिहासिक इमारत बनाई ही नहीं। उन्हें इसकी आवश्यकता भी नहीं थी। अरब के वीरान प्रदेशों में इमारतें थी ही नहीं, इसी कारण तो वे अन्य देशों पर चढ़ाई कर लूटपाट करते रहे।

"एक व्यक्ति जब घरबार छोड़कर किसी अन्य-स्थान पर जाने की सोचता है तो उसके सम्मुख पहला प्रश्न यह उठता है कि रहूँगा कहाँ?" अत: जब अरब, ईरान, इराक, अफगानिस्तान आदि के मुसलमान हमलावर हजारों की तादाद में भारत पर आक्रमण करते थे तो इसलिए कि भारत में किले, बाड़े, महल, धर्मशालाएँ, मन्दिर आदि एक से बढ़कर एक, बेशुमार थे। उसी धन-दौलत का इस्लामी आक्रामकों को प्रलोभन था। वही उन्होंने लूटी और हिन्दुओं से जीती हुई इमारतों को ही उन्होंने मस्जिद, मकबरे, खानकाह, ईदगाह, मजार आदि कहना प्रारम्भ कर दिया।

पाश्चात्य लेखकों के भ्रम

हॅवेल ने लिखा है कि भारत की लगभग सारी ही ऐतिहासिक इमारतें मुसलमानों के नाम गढ़ दी गई। ऐसा करते समय पाश्चात्य लेखकों ने ऐसी

गलत धारणा बना ली थी कि सौन्दर्य या कलात्मक दृष्टि का हिन्दुओं में सर्वदा और सर्वथा अभाव ही रहा है। भारत में जो कुछ भी आकर्षक दिखे वह सारा परायों की देन है, ऐसी निराधार कल्पना से निकाले गए निष्कर्ष गलत क्यों नहीं होंगे ?

पाश्चात्य लेखकों की इस धारणा के कारण ही भारत को इस्लामी आक्रमणों से बड़ा लाभ हुआ—आदि बेहूदी और मूर्खतापूर्ण कल्पनाएँ इतिहास में दृढ़मूल हुई हैं। जिस इस्लामी जोते को गर्दन पर से उखाड़कर फेंक देने के लिए हिन्दु जनता छह सौ वर्षों तक तड़फड़ाती रही थी उसे इस्लाम का भारत पर उपकार मानना कितना भयानक और विपरीत तर्क है ?

महमूद गजनवी और तैमूरलंग जैसे महंमदी आक्रमणों के संस्मरणों में तो यह लिखा है कि इस्लामी देशों में भारत जैसी विशाल और सुन्दर इमारतें बनवाने के लिए हिन्दुओं को कत्ल करने से पूर्व उनमें से भवन-निर्माण कर सकने वाले कारीगरों को छाँट लिया जाता और उन्हें इस्लामी देशों में जबरन् ले जाया जाता। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मुसलमानों को इमारतें बनवाने का कोई ज्ञान नहीं था। भारत में या इस्लामी देशों में जो भी प्रेक्षणीय, ऐतिहासिक इमारतें बनी हैं वे सब इस्लामपूर्व हिन्दुओं की हैं। मुसलमान केवल लूटमार और खूनखराबा जानते थे। उनमें ज्ञान और विद्या का अभाव था। लिखने-पढ़ने वाले जन अत्यल्प होते थे। उनका भी लेखन-पठन कुरान और हदीस तक सीमित था। उनका अपना कोई साहित्य नहीं था। जो थोड़ा बहुत था वह इस्लामपूर्व बचे-खुचे वैदिक साहित्य या विद्या का अरबी रूप होता था। दैनंदिन राक्षसी अत्याचारों में और व्यभिचारी जीवन में मग्न रहने वालों से और अपेक्षा ही क्या रखी जा सकती है ?

इस्लामी तवारीखों में इमारतों के इस्लामी निर्माण के उल्लेख कपटी और धूर्त पद्धति के हैं। वे उल्लेख समकालीन नहीं हैं। कुतुबुद्दीन ने कुतुब-मीनार बनवाई या शाहजहाँ ने ताजमहल बनवाया ऐसा उल्लेख कुतुबुद्दीन या शाहजहाँ के दरबारी दस्तावेज में या तत्कालीन तवारीखों में भी नहीं हैं। मुसलमानों के कब्जे में हिन्दु किले, बाड़े, महल आने के पश्चात् उन्हें कब्र या मस्जिद के रूप में इस्तेमाल करते-करते जब अनेक पीढ़ियाँ बीत

जाती थीं और उसके मूल हिन्दु निर्माता का नाम लोगों की स्मृति से हट जाता था तब इस्लामी चाटुकारी, इस्लामी तवारीखों में कपोलकल्पित उल्लेख होने लगता था कि अमुक किला, बाड़ा, महल, मजार, मस्जिद या कब्र अमुक सुल्तान, बादशाह, दरबारी या फकीर ने बनवाई। इस्लामी इतिहास ऐसी कपोलकल्पित अफवाहों से भरा पड़ा है। सबूत माँगो तो कुछ मिलता ही नहीं। इमारत का आकार और शैली देखो तो भी वह हिन्दु ही प्रतीत होती है।

मुसलमानों की निजी कोई विशिष्ट स्थापत्य प्रणाली थी या उन्होंने जिन-जिन प्रदेशों पर आक्रमण किया वहाँ उन्होंने स्थानीय कला और इस्लामी कला का मिश्रण कर कोई मिली-जुली भवन-निर्माण कला स्थापित की, इस प्रकार के विविध तर्क-वितर्क-कुतर्क पाश्चात्य लेखकों ने प्रकट किए हैं। उनका कोई आधार नहीं। वे अज्ञानी लोगों के अनुमान मात्र हैं। इस सम्बन्ध में Mario Bussaghi नामक लेखक लिखते हैं कि मेलजोल का तो प्रश्न ही नहीं। इस्लामी और भारतीय पाश्चात्य कला एक-दूसरे से पूर्णतया भिन्न और विरोधी है। हिन्दु इमारतों का विस्तार उनकी प्राचीन परम्परा, धार्मिक तत्त्व प्रणाली, उन्हें सुशोभित करने वाली विविध जीवों की प्रतिमाएँ—यह सब बातें कहाँ और किसी जीव की कोई रूपरेखा कभी खींची ही न जाए यह इस्लामी धारणा कहाँ।"[1] ऐसी परस्पर विरोधी धारणाओं का मेलजोल हो ही कैसे सकता है ?

वैदिक स्थापत्य ही सर्वमूलक है

सारी मानवीय सभ्यता का उद्‌गम वैदिक संस्कृति ही है। सृष्टि के आरम्भ से ही वैदिक संस्कृति का उद्‌गम हुआ। वैदिक स्थापत्य उसी का एक अंग है। अतः ग्रीक, रोमन्, मिस्र आदि सारे देशों की स्थापत्य कला वैदिक स्थापत्य की ही शाखाएँ हैं। इस शास्त्र के विद्वानों के ध्यान में यह बात आई है। इस ग्रन्थ में इस बात का साधारण विवरण दिया गया है और

1. Five Thousand Years of Art of India, by Mario Bussaghi. पृष्ठ 273।

साथ-साथ ऐतिहासिक प्रमाण भी दिए हैं।

Robert Burn लिखते हैं, "रोमन लोग विश्व के श्रेष्ठतम् भवन-निर्माता रहे हैं, तथापि सुशोभित या सजी-धजी इमारतें वे बना नहीं पाए। वे कमानें तो बनाते थे तथापि स्थापत्य की उनकी कोई विशेषता नहीं है। भवनों की विशालता और ग्रीक शैली का विचित्र अनुकरण, यहीं तक उनका स्थापत्य सीमित था।"[1]

रोमन लोगों के बारे में इस ग्रन्थ में इतरत्र हमने जो ब्यौरा दिया है उससे यह स्पष्ट होता है कि रोमन लोगों की सभ्यता भी वेदमूलक ही थी। उनके मन्दिरों में वैदिक देवता ही होते थे। वर्तमान समय में भी इटली में चौराहों पर फव्वारे आदि बनाते समय उन पर कई बार विशाल, त्रिशूल-धारी शंकर जी की प्रतिमा खड़ी कर दी जाती है। बोलोना नगर के एक चौराहे पर वैसी मूर्ति है। अत: वैदिक देवताओं के उनके मन्दिर, वैदिक-प्रथा के होने ही चाहिएँ। उनकी मूर्ति-निर्माण और भवन शैली वही थी जो ग्रीकों की थी। इस ग्रन्थ में अन्यत्र यह बता दिया गया है कि ग्रीक भवन-शैली वैदिक ही थी। यदि ग्रीक और रोमन कला में ओत-प्रोत नक्काशी, वेलबूटे आदि सजावट इमारतों में नहीं थीं तो इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उनमें उद्यमशीलता और कलात्मकता का अभाव था। विशाल दालान, ऊँची कमानें और बड़े-बड़े स्तम्भ खड़े करने तक ही रोमन लोगों ने वैदिक भवन-निर्माण कला से सम्बन्ध रखा।

"रोम नगर के तुलिनम् नाम के इन्द्र मन्दिर के तहखाने में एक कुआँ उर्फ बावली महल बना हुआ है जिसके पत्थर लोहे के सरिए द्वारा एक-दूसरे से जकड़े हैं।"[2] भवनों की शिलाएँ लोहे से जकड़ना और भवनों में बावली महल बनवाना वैदिक प्रथा है। ताजमहल, फिरोजशाह कोटला, लखनऊ का तथाकथित इमामबाड़ा परिसर, बावली महल इसलिए बनें हुए

---

१. Introduction to ROME AND THE CAMPAGNA, by Robert Burn, Deighton Bell & Co, London, 1871, पृष्ठ XXIX.

२. वही, पृष्ठ XXIII.

हैं कि वे सभी क्षत्रिय राजाओं द्वारा बनवाए गए हैं।

"पालाटीन पहाड़ी पर स्थित विशाल Roman Quadrata के द्वार केवल एक दीवार में बने प्रवेश मार्ग नहीं थे, अपितु वे चौकोर, लम्बे-चौड़े कक्ष थे जिनके दोनों तरफ विशाल कमानों वाले प्रवेश द्वार होते थे। एक बाहर जाने के लिए था तो दूसरा प्रवेश करने के लिए।"[1] ऐसे द्वार बनाने की प्रथा वैदिक ही तो है। दिल्ली में तथाकथित कुतुबमीनार के निकट बना द्वार और ताजमहल, फतेहपुर सीकरी में बने द्वार ठेठ वैसे ही हैं। वे सारे हिन्दु निर्माण ही हैं। भारत में ऐसे चौकोने, दोनों दिशा में खुलने वाले पत्थर के विशाल और वैभवशाली द्वार सैंकड़ों भवनों में पाये जायेंगे। ऐसे द्वार अपने आप में विशाल भवन जैसे होते हैं।

रॉबर्ट बर्न आगे लिखते हैं कि, 'कमानीवाला विशाल द्वार बनाने का रहस्य रोमन् लोगों ने अपने आप जान लिया था। किसी पूर्ववर्ती देश से यह परम्परा आई, यह कहा नहीं जा सकता।"[2]

रॉबर्ट बर्न का सन्देह ही बड़ा अर्थपूर्ण है। वे इतना तो पक्का जानते हैं कि रोमन लोग भवन-निर्माण में कुछ विशेष प्रगत नहीं थे।

बर्न आदि पाश्चात्य लेखक यह नहीं जानते कि कृस्ती युग से पूर्व यूरोप में वैदिक संस्कृति ही होती थी। तब भी उनको यह आशंका थी कि ग्रीक तथा रोमन लोगों की भवन-निर्माण कला किसी पूर्ववर्ती देश से आई हो। इस प्राचीन काल में ग्रीस, रोम आदि देशों को भवन-निर्माण का पाठ पढ़ाने वाला भारत के अतिरिक्त कोई अन्य देश था ही नहीं।

ग्रीस, रोम आदि की भवन-निर्माण कला वैदिक स्रोत की होने का मुख्य कारण यह था कि ईसापूर्व समय में यूरोप में भी पूर्णतया वैदिक संस्कृति ही थी। किन्तु महाभारतीय युद्ध के पश्चात् विश्व भर में वैदिक संस्कृति के टूट-फूट जाने से यूरोप के देशों में भवन-निर्माण की वह कुशलता नहीं रही जो भारत में आज भी विद्यमान है।

---

१. प्रस्तावना, Robert Burn का ग्रन्थ, पृष्ठ XXIV.

२. उसी ग्रन्थ की प्रस्तावना

धवलगृह की परम्परा

इतिहास में एक जैसी घटनाएँ बार-बार होती रहती हैं ऐसा देखने में आया है। इसका प्रमाण धवलगृहों की परम्परा में देखें।

वैदिक संस्कृति के अनुसार राजा का महल धवलगृह होना चाहिए ताकि उसके मन में सर्वदा सीधा-सादा, सच्चा, निष्कलंक आचरण का आदर्श रहे। बाणभट्ट के कादम्बरी नामक ग्रन्थ में हर्षवर्धन के प्रासाद के धवलगृह का वर्णन है। हर्षवर्धन के समय में भारत आया चीनी यात्री हुएनत्संग भी हर्षवर्धन की भेंट लेते समय धवलगृह का उल्लेख करता है।

गिरीदुर्ग यानी पहाड़ी किले में रहना राजा यानी प्रमुख शासक के लिए उचित होता है ऐसा सुझाते हुए मनु महाराज कहते हैं--

तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद् गृहमात्मनः।
गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥७६॥

यहाँ राजा का महल शुभ्र होना चाहिए यह कहा है। वही नियम प्राचीनकाल से सारे विश्व के शासकों ने चालू रखा है। यह भी वैदिक संस्कृति के विश्व प्रसार का एक उत्तम प्रमाण है।

दिल्ली और आगरा के लालकिलों में दीवान-ए-खास, मोती मस्जिद आदि जो शुद्ध संगमरमर के महल बने हुए हैं, वे वैदिक क्षत्रिय, भारतीय राजाओं के निजी निवास के महल होने के कारण धवलगृह हैं। इस्लामी आक्रांताओं के कब्जे में छह सौ वर्ष तक रहने के कारण उन इमारतों को मुसलमानों ने दीवान-ए-आम, दीवान-ए-खास, मोती मस्जिद आदि नाम दे दिए हैं। किन्तु उन नामों से विद्वानों ने धोखा नहीं खाना चाहिए। उन इमारतों के कोट और अन्य महल गेरुआ रंग के हैं जो स्वयं वैदिक ध्वज का और वैदिक संस्कृति का रंग है।

उच्चतम शासक के उस धवलगृह की परम्परा वर्तमान में भी दूर-दूर तक दिखाई देती है। ब्रिटेन का उदाहरण लें। वहाँ के शासन का उच्चतम सचिवालय White Hall यानि धवलगृह ही कहलाता है।

उधर अटलांटिक महासागर के पार अमेरिका देश में अमेरिकी राष्ट्रपति के निवास तथा सचिवालय का जो भवन है उसे White House यानि धवलगृह ही कहते हैं। दूर-दूर तक प्रचलित यह धवलगृह की परम्परा

वैदिक संस्कृति के प्राचीन विश्व प्रसार का सशक्त प्रमाण है।

किसी गम्भीर या महत्त्वपूर्ण घटना का पूरा, सच्चा, स्पष्ट विवरण जनता के सम्मुख प्रस्तुत करने वाली सरकारी विज्ञप्ति जो होती है उसे आधुनिक परिभाषा में White Paper या श्वेत (धवल) पत्रिका कहते हैं। यह नाम इस कारण पड़ा कि यह उच्चतम शासन के White House यानि धवलगृह से प्रकाशित होती है। वस्तुत: वह पत्रिका धवल नहीं होती। उसके ऊपर तो काले अक्षर लिखे होते हैं तथापि वह धवलगृह से प्रकाशित होती है।

धवलगृहों के अगले भागों में विस्तीर्ण और सुन्दर बाग होते थे। उन्हें गृह उद्यान कहा करते थे। तत्पश्चात् धवलगृह के प्रवेश स्थान पर, जहाँ पहरेदार होते थे, उस देवड़ी को गृहावगृहणी कहा जाता था।

उस महल में दो या अधिक मंजिलें होती थीं। प्रवेश द्वार के अन्दर दाएँ-बाएँ बगल में ही ऊपरली मंजिलों में जाने के लिए जीने होते थे।

आगरा का ताजमहल उर्फ तेजोमहालय धवलगृह ठेठ ऊपर वर्णन किए गए धवलगृह की वैदिक परम्परा से ही बना है।

धवलगृह के बीचोंबीच चौकोना या लम्बचौकोना तालाब, सरोवर या बावली होती थी। उसके चारों ओर बरामदे होते थे। तत्पश्चात् कक्ष होते थे। तालाब में फव्वारे लगाए जाते और तालाब से निकल नहर या नालियाँ महल के हर कक्ष को बहता शीतल शुद्ध जल उपलब्ध कराती थीं।

ऊपरली मंजिलों में रहने के कक्ष और शैयागृह आदि होते थे। स्तम्भों पर आधारित चारों तरफ से खुला एक मण्डप भी उन मंजिलों में हुआ करता था। उसे चन्द्रशाला कहते थे। शासन सम्बन्धी चिन्तन-मनन का वह स्थान था। वह चन्द्रशाला अधिकतर मंजिल के पिछले भाग में होती थी।

राजा के निवास के कक्षों को वासगृह कहा जाता था। मुख्य प्रवेशद्वार के ऊपरले मंजिल के अगले भाग में एक बड़ा दालान होता था जिसे मुख्यशाला या प्रग्रीवक कहते थे, जो सारे राजपरिसर के सम्मेलन का स्थान था।

ऊपरली मंजिल के दाहिने भाग को सौध कहा जाता था। उसमें

पटरानी या राजघराने की प्रमुख स्त्री रहा करती थी।

प्राचीन वैदिक परम्परा के एक विद्वान् लेखक स्व० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा लिखे 'हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि दिल्ली और आगरा के लालकिले में धवलगृह आदि सारी रचना ऊपर वर्णित वैदिक राजगृह निर्माण परम्परा के अनुसार ही है। इससे आगे हम पाठकको यह सुझाना चाहते हैं कि केवल दिल्ली-आगरा के महल आदि ही नहीं अपितु भारत भर में फतेहपुर सीकरी, बीजापुर, वारंगल, गुलबर्गा, बीदर आदि सारे ही ऐतिहासिक नगरों में जितने भी प्राचीन ऐतिहासिक किले, बाड़े, महल, दरगाहें और मस्जिदें हैं उनमें सभी में ऊपर वर्णित रचना ही पाई जाएगी क्योंकि वे सारी हिन्दु इमारतें हैं जिनको अंग्रेज पुरातत्त्व प्रमुख अलेक्जेण्डर कॉनिंगहॅम ने जानबूझकर मुसलमानों द्वारा निर्मित कहकर पुरातत्त्वीय और ऐतिहासिक शिक्षा को एक झूठा मोड़ दे दिया।

राजभवनों में बहते पानी की नालियों को गृहदीर्घिका कहा जाता था।

धवलगृह के अन्तर्गत व्यायामभूमि, स्नानगृह उर्फ धारागृह आदि होते थे। प्रपात, फव्वारे आदि से होकर नाली में बहने वाली जल संचरण व्यवस्था को यन्त्रधारा कहा जाता था। पूजा, धार्मिक सम्मेलन, कीर्तन, प्रवचन आदि के लिए देवग्रह होता था।

बहते जल से घिरे मंडप को तोयकामन्त कहा जाता। दिल्ली के लाल किले में सावन-भादों (श्रावण-भाद्रपद) नाम के दो मण्डप उसी प्राचीन "तोयकामंत" के उदाहरण हैं।

रसोई पकाने के विभाग का नाम "महानस" था।

नृत्य, संगीत आदि मनोरंजन कार्यक्रमों के लिए संगीत भवन होता था। आयुधशाला में राजपरिवार के शस्त्रास्त्र होते थे। आहार-मण्डप में भोजन पंक्ति की व्यवस्था होती थी। शासन कार्य चलाने के लिए अधिकरण मण्डप होता था। उसमें राजा के सचिव आदि सहायक बैठा करते।

यही धवलगृह परम्परा भारत के साथ-साथ ब्रिटेन के White Hall में, अमेरिका के White House में, यूगोस्लाविया की राजधानी बेलग्रेड में स्थित सरकारी अतिथिगृह के White Palace के नाम में भी जब पायी

जाती है तो यह वैदिक संस्कृति के प्राचीन विश्वप्रसार का कितना ठोस प्रमाण है ? शोध करने पर इटली, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों में भी धवलगृह की प्रथा पायी जानी चाहिए।

जीवन नाटक के दृश्यों से सजे मन्दिर

वैदिक हिन्दू मन्दिरों में बाहर की दीवारें कई बार वनस्पति, सृजकर, नर्तकी, राक्षस, पिशाच, पशु-पक्षी, कुछ काल्पनिक प्राणी, स्त्री-पुरुष, साधु-संन्यासी, आदि से सजाई होती थीं। खजुराहो जैसे कई मन्दिरों में मैथुन में मग्न युगल भी प्रस्तरमूर्तियों के रूप में बने होते हैं। कई प्रेक्षक इसे लज्जास्पद या घृणास्पद समझकर झेंप जाते हैं। अतः उस प्रदर्शन का वास्तविक उद्देश्य समझना आवश्यक है। जैसे सृष्टि में ईश्वर का अस्तित्व अज्ञात व अदृश्य है उसी प्रकार मन्दिर के गर्भगृह के सुकड़े और अँधेरे कक्ष में ईश्वरमूर्ति विराजमान होती है। परमात्मा तो दीखता नहीं किन्तु पशु-पक्षी, प्राणी, वनस्पति आदि चारों ओर दिखाई देते हैं। जीवों का निर्माण मैथुन से ही होता है। जीव-सृष्टि का वह सारा व्यवहारी दृश्य, परमात्मा की लीला का वह रूप, मन्दिर की चारदीवारी पर अंकित किया होता है।

तथापि अनासक्त और अविचल भाव से मानव ने निजी जीवन सांसारिक कर्दम से ऊपर उठकर कमल जैसा अलिप्त और सात्विक रखना चाहिए। इस आदर्श हेतु कमल का प्रतीक वैदिक संस्कृति में बार-बार पुरस्कृत किया जाता है। मन्दिरों में कमल की आकृति कई स्थानों पर पायी जाती है। वैदिक वाक्य प्रणाली में भी मुखकमल, चरणकमल आदि परिभाषा का प्रयोग होता रहता है। मैथुन तो जीवोत्पत्ति की दैवी यंत्रणा है किन्तु उसकी लपेट से मानव ने सात्विक भाव से अलग रहना आवश्यक है। यह सबक उस शिल्पकारी से दिया जाता है। उस मैथुन की यंत्रणा को प्रजोत्पत्ति के लिए आवश्यक इतना ही स्थान या महत्व प्राप्त हो इसी हेतु से वेदोक्त विधि से विवाह कराते समय "धर्मे च, अर्थे च, कामे च न अतिचरामि" इस वचन की घोषणा वर और वधु द्वारा होमाग्नि की साक्षी से करा ली जाती है।

गज-केसरी

उड़ीसा के मन्दिरों में तथा देवगिरी किले में और अन्य स्थलों पर भी प्रवेश द्वार पर बलवान और महाकाय हाथी के गण्डस्थल पर हमला करने वाले व्याघ्र की प्रतिमा होती है। इस प्रतिमा से यह ध्वनित किया जाता है कि मन में षड्रिपु हाथी जैसे बलवान होते हैं तथापि नरव्याघ्र या नरसिंह वही कहलाएगा जो उनके ऊपर काबू पाएगा। वैदिक फलज्योतिष में सात्विक तेज और बल प्रदान करने वाली गुरुचन्द्र युती को भी उसी दृष्टि से गज-केसरी योग कहा गया है। दुर्गुण और दुष्प्रवृत्तियों पर निजी सात्विक तेज और बल से काबू पाने वाला व्यक्ति ही नरकेसरी कहलाता है।

७

विश्व की प्राचीन वैदिक विवाह-प्रणाली

सृष्टि की उत्पत्ति के समय से वेद मानवों को उपलब्ध कराए गए। उनमें सृष्टि रचना और प्रकृति के प्रचलन के विवरण सूत्र रूप में अंकित हैं। साथ ही मानवी प्रजोत्पत्ति के नियम भी अन्तर्भूत हैं। अनिर्बंध मैथुन से भीषण शारीरिक रोग, कौटुम्बिक तनाव, सामाजिक दंगे और व्यक्तिगत असुरक्षा जैसी गम्भीर समस्याएँ उत्पन्न न हों इस उद्देश्य से मानवी विवाह वेदों द्वारा सुनियन्त्रित किया गया है।

इतना ही नहीं अपितु एक घोड़ा जैसे चमड़े के पट्टों से गाड़ी से जोता जाने पर ही गाड़ी ठीक तरह चल पाती है उसी प्रकार वैदिक संस्कृति द्वारा व्रतबन्ध, रक्षाबन्धन, विवाह-बन्धन आदि बन्धनों से मानवी जीवन सुनियंत्रित किया गया है। ताकि व्यक्ति भटक न जाए। षोडश संस्कार, जो जन्म के पूर्व से और मृत्यु के पश्चात तक के काल को साधे रखते हैं, वे कृत, त्रेता और द्वापर युगों में सारे मानव पालन करते थे। महाभारतीय युद्ध के पश्चात केन्द्रीय वैदिक शासन टूट-फूट जाने के पश्चात् शनैः-शनैः उन षोडश संस्कारों का लोप होता गया। क्योंकि उनको चलाने वाली शासकीय, सामाजिक या धार्मिक यंत्रणा भंग हो गई थी। तथापि वर्तमान समय में जबकि विस्तीर्ण प्रदेशों की जनता अपने आपको बौद्ध, ईसाई या मुसलमान कहलाते हुए उस प्राचीन सार्वजनिक वैदिक संस्कृति से अज्ञानवश नाता तोड़कर दूर होती जा रही है, उन प्राचीन षोडश संस्कारों के अवशेष विधर्मियों के रीति-रिवाजों में आज भी पाए जाते हैं।

व्रतबन्ध उर्फ जनोई का संस्कार लें। शिशु जब पाँच या आठ वर्ष का

हो जाता था तो उसका व्रतबन्ध कराकर उसे घर से दूर गुरु के आश्रम में विद्याध्ययन के लिए भेज दिया जाता था। उस संस्कार से यह सूचित किया जाता था कि "हे बालक अब तुम्हारा शैशव और लाड़-प्यार का समय समाप्त हो गया। अब तुम्हें ब्रह्मचारी के व्रती जीवन में पदार्पण करना है जिससे तुम्हारे प्रौढ़ जीवन की नींव बनेगी।" उस व्रत के पालन हेतु शिशु को विविध बन्धन स्वीकारने पड़ते थे। माता-पिता से दूर रहना, गुरु की सेवा करना, समवयस्क साथियों को गुरुबन्धु या गुरुभगिनी मानना, एकाग्रता से अध्ययन करना आदि-आदि।

इस ग्रन्थ के एक विशिष्ट अध्याय में हम इस बात के भरपूर प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं कि सारे विश्व में वैदिक संस्कृत गुरुकुल शिक्षा की प्रणाली प्रस्थापित थी। उसकी पूरी परिभाषा वर्तमान युग में भी प्रचलित है।

जब गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली विद्यमान थी तो उन गुरुकुलों में प्रवेश की सिद्धता के रूप में हर किशोर का व्रतबन्ध संस्कार किया जाना भी अनिवार्य था। उसके भी प्रमाण मिलते हैं।

ईसाईयों का Baptism संस्कार लें। वह वास्तव में "वाष्पित-स्म" ऐसा संस्कृत शब्द है। वाष्पित का अर्थ होता है "स्नापित" या "स्नातक" यानि नये संस्कारों के लिए जिसका तन और मन धुलाकर शुद्ध किया गया है। जैसे चित्रकार नया चित्र बनाते समय कपड़े पर प्रथम सफेद रंग दे देता है तब उसके ऊपर रंगीन चित्र स्पष्ट और प्रभावी निकल आता है।

ईसामसीह उर्फ येशु कृस्त जब शिशु था तब कृस्ती उर्फ ईसाई धर्म की स्थापना तो नहीं हुई थी। तथापि येशु के जीवनचरित् में यह प्रमुख घटना बताई जाती है कि उसे John the Baptist नाम के वयोवृद्ध पुरोहित ने बपतिस्मा दिलाया था यानि येशु को बास्पित या स्नातक बनाया। उस समय जॉन ने शिशु येशु को कहा कि अंगवस्त्र उतारकर जॉर्डन (जनार्दन) नदी में प्रथम स्नान कर लो। स्नान के पश्चात (वैदिक) मंत्रविधि द्वारा येशु का मौंजीबन्धन उर्फ व्रतबन्ध संस्कार हुआ। यह विधि व्रतबन्ध ही थी इसके प्रमाण चित्रों में भी मिलते हैं। कृस्त सन् पूर्व कई चित्रों में जनोई पहने हुए व्यक्ति बतलाए गए हैं।

येशु का मौंजीबन्धन या व्रतबन्ध हुआ था यह घटना येशु के चरित्रों में

वर्णित है। प्रत्यक्ष में येशु नाम का कोई व्यक्ति था ही नहीं। इस बात का विवरण हमने इसी ग्रन्थ के एक अध्याय में प्रस्तुत किया है तथापि येशु व्रतबन्ध का उल्लेख हमने ऊपर केवल यह दर्शाने के लिए किया है कि ईसाई धर्म स्थापना के पूर्व ही अति प्राचीनकाल से व्रतबन्ध का विधान विश्व में प्रचलित था।

जितने देश मुसलमान बना दिए गए हैं उनमें भी इस्लामपूर्व काल में व्रतबन्ध की प्रथा होनी ही चाहिए। सुन्नत करने की प्रथा यहूदी और अरब लोगों में जो प्रचलित है वह वीरान गरम प्रदेशों का एक वैद्यकीय लैंगिक रोग प्रतिबन्धक उपाय है। इसमें कोई धार्मिक तथ्य नहीं है तथापि वह प्रथा सारे मुसलमानों में लागू कर दी गई है चाहे वे हरे-भरे प्रदेशों के निवासी हों।

किन्तु मुसलमान कहलाने वाले लोगों में भी महंमदपूर्व काल में व्रत-बन्ध की प्रथा थी इसका प्रमाण पारसी लोगों की परम्परा में पाया जाता है। वे ईरान के इस्लामपूर्व निवासी थे। अरब मुसलमानों ने ईरानियों को छल-बल से मुसलमान बनाना जब आरम्भ किया तो जो चन्द लोग अपनी प्राचीन वैदिक संस्कृति को भूलना या त्यागना नहीं चाहते थे और जो बच कर निकल सके, वे पारसी कहलाए। पारस-उर्फ पर्शिया उर्फ फारस से आश्रयार्थ भारत में आए लोगों को पारसी कहा गया। वे ईरान के हिन्दु लोग हैं। वे जनोई पहनते हैं और संध्या भी करते हैं। घर के प्रवेश द्वार के सम्मुख वे रंगोली भी बनाते हैं।

इन प्रमाणों से जाना जा सकता है कि आज अपने आपको ईसाई या मुसलमान कहने वाले लोग वैदिक, सनातन, आर्य, हिन्दू धर्मी लोगों की सन्तान हैं।

वैदिक पाणिग्रहण संस्कार का विश्व-प्रसार

व्रतबन्ध जैसा ही दूसरा प्रमुख वैदिक संस्कार है "पाणि-ग्रहण" उर्फ विवाह संस्कार। ईसापूर्व काल में सर्वत्र वैदिक पाणिग्रहण संस्कार ही हुआ करता था। यह वैदिक संस्कृति के प्राचीन विश्वप्रसार का एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण है।

संस्कृत में "पाणि" यानि "हाथ" और "ग्रहण" यानि "लेना"। वर जब वधु का हाथ अपने हाथ में लेता है तो वह पूरा वैवाहिक जीवन एक दूसरे के साथ बिताने की विधि कहलाती है।

यूरोप के सारे लोग कृस्ती बनने पर भी अभी तक पूर्णतया वैदिक पाणिग्रहण विधि का ही अवलम्बन करते हैं—यह उनके परिभाषा और रीति-रिवाजों से जाना जा सकता है। विवाह समय भले ही वे कृस्ती धर्म-ग्रन्थ "बायबल" नाममात्र के लिए हाथ में लेकर वर-वधु को पति-पत्नी घोषित करते हों किन्तु उनकी उस विवाह-विधि का मूल बायबल में न होकर वैदिक परम्परा में है, वह हम अब बताने जा रहे हैं।

वैदिक परम्परा में "विवाह में वधु का हाथ (वर के हाथ में) देना" (giving the bride's hand in marriage) या "विवाह में वधु का हाथ (वर ने) लेना" (taking the bride's hand in marriage) यही कहा जाता है—जो पूर्णतया "पाणिग्रहण" का ही अनुवाद है।

वैसे तो रास्ते में चलते-चलते यदि कोई परिचित मिल जाए तो दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़कर मित्रभाव से हिलाते हैं, देखने में और संस्कृत वाक्य प्रचार में वह भी "पाणि-ग्रहण" ही है। किन्तु वह वेदोक्त मन्त्रों के साथ किया हुआ संस्कार न होकर केवल क्षणमात्र का हस्तांदोलन होता है।

यूरोप में पाणि-ग्रहण द्वारा विवाह केवल एक क्षणिक हस्तांदोलन न होकर वेदप्रणीत विवाह विधि थी। यह उनके वेडिंग (Wedding) शब्द से जाना जा सकता है।

आंग्ल भाषा में "D" अक्षर का उच्चार सन्दर्भ के अनुसार "ड" भी होता है और "द" भी। (Wedding) शब्द का उच्चार "वेदिंग" किया जाने से झट पता लगता है कि प्राचीन ईसापूर्व यूरोप में पाणिग्रहण संस्कार वेदमन्त्रों के साथ (न कि बायबल के) कराए जाने से ही "वेदिंग" कहा जाता था।

उसमें वैदिक प्रणाली के अनुसार कन्यादान भी होता था। उसी का अनुसरण आज भी होता है। उसे कन्यादान या वधुदान (giving away the bride) कहते हैं। यूरोपीय कुणवों की विद्यमान परिस्थिति ऐसी है कि प्रत्येक कन्या स्वयं ही निजी प्रेमी या पति ढूंढ़ लेती है। माता-पिता

या अन्य ज्येष्ठ रिश्तेदारों द्वारा ढूँढ़े वर से विवाह करने की बात आधुनिक युवती सोच भी नहीं सकती। तभी क्रुस्ती धर्मगुरु के साक्ष्य से होने वाली प्रत्येक क्रुस्ती विवाह-विधि में वधु की तरफ से कोई ज्येष्ठ व्यक्ति आकर वधु को पति के हाथ में सौंप देता है।

"कन्यादान" मुहावरे पर कई लोग क्रोध प्रकट करते हैं, विशेषकर वे लोग जो प्राचीन वैदिक प्रणाली का बगैर सोचे तिरस्कार करते हैं। दान शब्द का वे लोग एक ही अर्थ जानते हैं जैसे भिखारी को दिया दान। संस्कृत में स्वेच्छा से, सोच-समझकर, शुद्ध सात्विक भाव से जो भी दिया जाता है उसे दान कहा जाता है, उसमें "दया" या "भीख" आदि भाव मूलत: नहीं है।

यौवन की होड़ से अनुभवी कन्या जिस किसी पुरुष के प्रथम सम्पर्क में आए उसी से शारीरिक सम्बन्ध करने की उसकी प्रवृत्ति होती है या उसकी अनुमति न भी हो तो भी वह किसी पराए पुरुष के दाँव में फँस जाती है और उसका सारा जीवन दु:खी होता है। अच्छी, सुखी, सशक्त, समाधानी और उद्योगशील सन्तानों को जन्म देना और सुभाषिणी की भूमिका निभाते हुए अपने घर-बार, सम्बन्धी आदि को सन्तुष्ट रखना इसमें नारी जीवन की पूर्ति होती है। उस दृष्टि से अनुभवी, हितैषी, ज्येष्ठ पालक द्वारा योग्य वर ढूँढकर उसके हाथ नवयुवती को वेदमन्त्रोच्चारण से वधु के नाते सौंपना, इसी को वैदिक कन्यादान विधि कहते हैं। उसी में समाज की और कन्या के जीवन की भलाई होती है। आजकल कई वर पिता नववधु को धन सम्पत्ति बटोरने का साधन समझकर दहेज के नाम से वधु कुल से अनापशनाप पैसा और विलासी जीवन की यंत्र-सामग्री माँगते-माँगते वधु का छल करते हैं या उसे मार-पीटकर मायके भेज देते हैं या बेचारी पर मिट्टी का तेल छिड़ककर उसे जीवित ही जला डालते हैं। पराए घर की एक असहाय युवती को सम्पत्ति की तृष्णा की खातिर घेरकर मार डालने की भीषण घटनाएँ कलियुग के लोभी समाज में बढ़ती जा रही हैं। इससे नवयुवतियों के लिए एक भीषण संकट का निर्माण हो गया है। यौवनावस्था प्राप्त होने पर कन्या का विवाह किए बिना तो चारा नहीं। किन्तु जिस कुटुम्ब में वह वधु बनकर जाती है उसी कुटुम्ब के लोग पैसे के

लोभ में उसे गिरवी समझकर वधु पिता से अधिकाधिक धन-दौलत घसीटने की होड़ में वधु का ही तिरस्कार कर उसी को मार डालते हैं।

वैदिक विवाह संस्था में वधू को बड़े सम्मान के साथ श्वशुरगृह में सौंपने की व्यवस्था की गई है। विवाहोपरान्त जब वधु पति के घर में प्रवेश करती है तो वेदमन्त्रोच्चारण करने वाले पुरोहितगण उसे कहते हैं— "साम्राज्ञी भव" अर्थात "इस नए घर की तुम स्वामिनी या साम्राज्ञी बनो"। यह भावना समाज में दुबारा दृढ़मूल करने की बड़ी आवश्यकता है। यह तभी हो सकता है जब धार्मिक भाव से सारी विधि की जाए। आजकल के सम्पत्ति के लोभी लोगों के कुटुम्बों में विवाह के समय मदिरा-पान आदि की खराब प्रथाएँ चल पड़ने के कारण नववधु का जीवन संकट में आ गया है।

जैसे एक नाजुक पेड़, समय आने पर उसके मूल स्थान से उखाड़कर अन्य स्थान में लगाना पड़ता है, वैसे ही नारी जीवन एक पौधा होता है। यौवनप्राप्ति के समय नारी को पति के घर में रोपना पड़ता है। उसी से नारी जीवन फलता-फूलता है। उस नए घर में उसका जीवन सुखी हो इसलिए माता-पिता या अन्य अनुभवी ज्येष्ठ पालकजन वर की वय, शरीरयष्टी, रंगरूप, आर्थिक क्षमता, कौटुम्बिक वातावरण, घर-बार आदि बातें सोच-कर ही सुयोग्य वर को चुनते हैं। ऐसे सर्वांगीण विचार-विमर्श से चुने गए वर को वधु के पालक वधु को सौंप देते हैं। उस समय वधु का हाथ अपने हाथ में लेकर वर उसके पालन-पोषण, संरक्षण, संवर्धन आदि की जिम्मेवारी उठाता है। यही 'कन्यादान विधि' कहलाती है। जिसमें एक अति मौलिक वस्तु की भाँति घूंघट से ढके चेहरे या पल्लू से ढके सिर वाली नववधू को पति और श्वसुराल के बुजुर्गों के सुपुर्द किया जाता है।

अति मौलिक गहने, जवाहरात, सोना-चाँदी या घर-बार आदि जायदाद किसी को देते समय जैसे पूरे वार्ता-विमर्श के पश्चात् उन मूल्यवान वस्तुओं को नए स्वामी को सौंपकर उससे रीत सर पावती ली जाती है और उस सम्पत्ति की देखभाल करने की जिम्मेवारी नया स्वामी उठाता है, उसी प्रकार वधु का भी वैदिक संस्कृति में बड़ा मूल्यवान व्यक्तित्व माना गया है। इसी कारण मायके से श्वसुराल भेजते समय वधु को अलंकृत करके,

अति मौलिक वस्तु की भाँति विधिवत नए पालकों के जिम्मे सौंपा जाता है।

आधुनिक युग की यूरोपीय युवती मनमाने पुरुष के साथ रहने लगती है। तथापि औपचारिक लौकिक दृष्टि से विधिवत् विवाहबद्ध होना हो तो उसे गिरजाघर में जाकर ईसाई पुरोहित के हाथों वेदिंग (wedding) यानि वेदोक्त विवाहविधि करवाते समय मायके के किसी ज्येष्ठ पालक व्यक्ति द्वारा कन्यादान की विधि करवानी पड़ती है।

मुसलमानों का 'निकाह' शब्द संस्कृत "निकट" का अपभ्रंश है। जिस संस्कार से वर और वधु को इकट्ठा जीवन बिताने के लिए निकट लाया जाता है—वह है 'निकाह'।

काजी यानि धर्मगुरु (पुरोहित) द्वारा विवाह सम्पन्न कराने की प्रथा जो ईसाई, इस्लामी, बौद्ध आदि धर्मों में प्रचलित है वह वेदमूलक ही है।

पुरोहित द्वारा ही विवाह कराने की प्रथा सारे मानवों में इसलिए पड़ी है कि कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग में भी वह वैदिक परिपाटी रही है। उससे विपरीत यह भी तो हो सकता था कि पड़ोसी या गाँवपंचायत, राजा या राष्ट्रप्रमुख, गजटेड अफसर या पार्लियामेण्ट के सदस्यों द्वारा विवाह कराया जाता। किन्तु वैसा कहीं नहीं किया जाता। मुसलमान, ईसाई या बौद्ध धर्मों में भी नहीं किया जाता, क्योंकि वे सारे वैदिक संस्कृति की ही फूटकर निकली शाखाएँ हैं।

विवाह में पराए युवक और युवती शारीरिक सम्भोग के लिए इकट्ठे रहने लगते हैं। वैसे देखा जाए तो लैंगिक सम्भोग एक घृणित व्यवहार है। इसी कारण विवाह के अतिरिक्त किसी स्त्री या पुरुष द्वारा एक-दूसरे को टेढ़ी दृष्टि से देखना तिरस्कृत माना जाता है। ऐसे वर्ताव के लिए पालकों द्वारा, समाज द्वारा या पुलिस अधिकारी द्वारा दोषी व्यक्तियों को डाँट-फटकार भी पड़ती है। बड़ों की अनुमति से परस्पर अनुरूप वर या वधु यदि विवाह की वार्ताविमर्ष के पूर्व ही प्रेमचेष्टा आरम्भ कर दें तो वह भी अयोग्य माना जाता है। सम्भोग एक प्रकार का पुरुष का स्त्री के ऊपर शारीरिक आक्रमण होता है। प्रजोत्पत्ति की यह एक ईश्वरीय यन्त्रणा है जिससे यह जीवनचक्र चलाया जाता है। अतः केवल उसी एक आध्यात्मिक

आधिभौतिक और दैवी आधार पर विवाह कहलाने वाला सीमित और नियमबद्ध लैंगिक सम्भोग वैदिक संस्कृति द्वारा वैवाहिक जीवन की नींव मानी गई है। उस नियमबद्ध वैवाहिक जीवन में सम्भोग स्त्री पर आक्रमण न रहकर उसके प्राकृतिक विकास का एक सुखद मार्ग बन जाता है। इस सीमित लैंगिक व्यवहार से कुटुम्ब और समाज बँधा रहकर सुख और शान्ति का अनुभव करता है। इस एकमेव उपयुक्तता को छोड़कर शारीरिक सम्भोग सब प्रकार से घृणित व्यवहार है। इसी कारण वैवाहिक बन्धन के बाहर के लैंगिक सम्बन्धों पर समाज विविध प्रकार से तीव्र क्रोध प्रकट करता है। क्योंकि सूक्ष्म विचार करने पर यह जान पड़ता है कि लैंगिक व्यवहार का किसी भी तरह से समर्थन नहीं किया जा सकता।

एक तो बात यह है कि लैंगिक आकर्षण में डूबे व्यक्ति किसी अन्य पुरुषार्थ के काबिल नहीं रहते। अखण्ड और अनिर्बन्ध कामुक चिन्तन से व्यक्ति कृश भी होता जाता है और निष्क्रिय तथा उदासीन भी बन जाता है। एक ही तबेले में घोड़ियों के साथ-साथ घोड़े बाँध देने पर देखा गया है कि घोड़े सम्भोग के चिन्तन से कृश होते जाते हैं। अतः घोड़ियों के तबेले में घोड़े न रखना अच्छा है। युवतियों की संगत में पुरुष का भी यही हाल होता है। इसी कारण वैदिक संस्कृति में स्त्री-पुरुषों का संवर्धन और संगोपन अलग-अलग करने की प्रथा है।

सारासार दृष्टि से सोचने पर पता चलता है कि माया द्वारा निर्मित स्त्री-पुरुष में शारीरिक आकर्षण नहीं होता तो अन्य किसी आधार पर उस आकर्षण का समर्थन करना सम्भव नहीं है। पाठक यह सोचें कि स्त्री के प्रति पुरुष या पुरुष के प्रति स्त्री क्यों आकर्षित होते हैं जबकि दोनों के शरीर के घटक एक जैसे ही होते हैं? वही थूक, मांस, अस्थि, मल, मूत्र, पसीना इत्यादि दोनों शरीरों में होते हैं। इतना ही नहीं वे सारे दुर्गन्धयुक्त घटक होते हैं। लैंगिक व्यवहारों के शारीरिक सुख, सामाजिक दंगे-फसाद, भीषण रोग, जीवहत्या, एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप आदि बड़े भयानक परिणाम होते हैं। अतः लैंगिक सम्भोग को विवाह के धार्मिक बन्धनों में ही जकड़े रखने की वैदिक आज्ञा तथा सामाजिक परिपाटी है।

विवाहबन्धन के अन्तर्गत लैंगिक व्यवहार व्यक्ति और सामाजिक

जीवन के लिए बड़े उपयुक्त और सुखद साबित होने के कारण ही वैवाहिक शरीर सम्बन्ध का अधिक-से-अधिक खुल्लमखुल्ला प्रचार किया जाता है। सारे परिचितों को निमन्त्रित किया जाता है, बाजा बजवाया जाता है, पटाखे छोड़े जाते हैं और बारात को सारे नगर में घुमाया जाता है ताकि उसमें तनिक भी गुप्तता न रहे और समाज उस युगल को इकट्ठा जीवन बिताने के लिए पूरी सुविधा और मान्यता देता है। इसके विरुद्ध विवाह बन्धन के बाहर के लैंगिक व्यवहारों को कड़ी गुप्तता से निभाना पड़ता है क्योंकि उसमें सिवाय एक या दोनों व्यक्तियों के क्षणिक शारीरिक आकर्षण के अतिरिक्त अनेक भयंकर परिणामों की लड़ी गुथी होती है।

अतः वैवाहिक सम्भोग और अवैवाहिक सम्भोग में वेदमन्त्रों से या वैदिक संस्कार से कितना अन्तर पड़ जाता है। एक घृणित, त्याज्य, दुर्गन्ध, संकटमय, गुप्त, असभ्य, आचरण वैदिक मन्त्रों के अवगुण्ठन से एक सुखद, समाजोपयोगी, समाजसुधारक, प्रकट सर्वसम्मत, सर्वमान्य व्यवहार हो जाता है। उन्हीं वेद-मन्त्रों के कारण आंग्ल भाषा में विवाह को wedding यानि वेदिग कहते हैं।

इसी में वेद यह देववाणी होने का अप्रत्यक्ष प्रमाण अन्तर्भूत है। उसी देववाणी के मन्त्रों से सारे मानवी व्यवहार पुनीत रखने से समाज में अधिक सुख-शान्ति और स्थैर्य रहेगा।

विवाह बन्धन को wedlock कहते हैं। lock (लॉक) यानि ताला। पति और पत्नी एक-दूसरे से कंकण से बाँध दिये जाते हैं, जैसे दो कैदियों को एक हथकड़ी से बाँधकर ऊपर से ताला लगा दिया जाता है।

ईसाई विवाहों में किसी एक की मृत्यु होने तक विवाह बन्धन कायम रहेगा ऐसी चेतावनी धर्मगुरु दम्पति को देता है। यह वैदिक परिपाटी है। ईसाई परम्परा में तो पति-पत्नी न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद करवाते रहते हैं।

वर और वधु के वस्त्रों की गाँठ बाँधकर विवाह विधि सम्पन्न कराने की वैदिक प्रथा अभी तक यूरोप के ईसाई लोगों में प्रचलित है। जुलाई, १९७९ में युवराज चार्ल्स का लेडी डायना से जब विवाह हुआ तब अन्य-अन्य विधि जो विविध व्यक्तियों को सौंप दी जाती थी, उनमें वस्त्रों की

गाँठ बाँठने की विधि भी किसी सम्बन्धी पर सौंपी गई थी। उसी से "वैवाहिक गाँठ" (marital knat मैरिटल नॉट) यह शब्द प्रयोग आंग्ल भाषा में रूढ़ है।

वर को आंग्ल भाषा में Husband (हस्बंड) कहते हैं। वधु का हाथ वर के हाथ में देकर दोनों को कंकण बाँधा जाता है। अब वह यावज्जीवन वधु को छोड़कर नहीं जा सकता। उसका हस्त (पत्नि से) बँध जाने के अर्थ से वर या पति को आंग्ल भाषा में "हस्तबंध" उर्फ "हस्बंड" कहते हैं।

वधु को आंग्ल भाषा में ब्राइड् (bride) कहते हैं। वह वधु का ब्रधू और ब्रधू से ब्राइड् ऐसा अपभ्रंश बना।

पतिगृह जाते समय नववधु के साथ वैदिकपरिपाटी के अनुसार उसकी कुछ सहेलियाँ भेजी जाती हैं ताकि नए परिवार में वधु जब तक घुल-मिल न जाए तब तक पूर्वपरिचित सहेलियों के साथ वह सुख-दुःख की बातें कर सके। ठेठ यही प्रथा अभी तक यूरोपीय लोग ईसाई होने पर भी अपनाए हुए हैं। उन सहेलियों को bride's maid यानि वधू की सहेलियाँ कहा जाता है। आजकल तो वधु के श्वशुरालय में सहेलियाँ साथ नहीं जातीं, क्योंकि ईसाई वह प्रेम विवाह करने वाली प्रौढ़ महिला होती है, तब भी आधुनिक ईसाई विवाहों में वधु की सहेलियों की भूमिका एक दर्शनी प्रथा के रूप में अभी भी कायम है। इससे प्रतीत होता है कि वैदिक संस्कृति की जड़ें यूरोप के लोगों के जीवन में कितनी गहरी और मजबूत हैं।

घूँघट की जागतिक प्रथा

एक कीमती वस्तु जब किसी को सौंपी जाती है तो घमण्ड या लापरवाही से फेंकी नहीं जाती अपितु बड़ी नम्रता से शोभिवन्त वस्त्रों से ढककर सादर भेंट की जाती है। उसी प्रकार वधु को उसके जन्म घर से पतिकुल को सौंपते समय उसकी सुरक्षा, मान-सम्मान, जीवनपूर्ति आदि का वचन श्वसुरकुल से लिया जाता है। विवाह प्रसंग के मन्त्रों में और विधि में, इन सब बातों का बड़ी दूरदृष्टि से अन्तर्भाव किया गया है। सोना, चाँदी या आभूषण, भूमि, भवन आदि कीमती वस्तु के लेन-देन में जो गम्भीरता और सावधानी बरती जाती है वही सारी वधु के लेन-देन में बरती जाती है।

अत: वधु का सर या मुखड़ा कीमती और सुन्दर वस्त्रों (साड़ी, पल्लू आदि) से ढककर उसे पति के जिम्मे सौंप दिया जाता है। यद्यपि आधुनिक यूरोपीय व्यवहार में स्त्रियाँ कभी पर्दा नहीं करतीं या घूंघट नहीं लेतीं तथापि यह देखने लायक बात है कि अर्वाचीन ईसाई वधू का चेहरा भी विवाह के समय घूंघट से ढका होता है। उसे व्हील (veil) कहा जाता है।

ईसाईयों में घूंघट

उत्तरी भारत के वैदिक विवाहों में वधू का चेहरा घूंघट से ढक दिया जाता है। महाराष्ट्र जैसे कुछ प्रान्तों में और कुछ जमातों में यद्यपि पूरा चेहरा ढकने की प्रथा आजकल देखी नहीं जाती तथापि उनमें भी सिर से ऊपर तक साड़ी का पल्लू लेकर ललाट, गाल आदि लगभग ढक दिए जाते हैं। यह मनुस्मृति के अनुसार ही है। क्योंकि मनु महाराज ने कहा है—

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥२७॥

इस उद्धरण का पहला शब्द है "आच्छाद्य" यानि "ढककर"। कन्या का शरीर तो सर्वदा ढका ही रहता है। अत: विवाह के समय "आच्छाद्य" यानि "चेहरे पर घूँघट लिए हुए" ऐसा अर्थ है।

यूरोप में भी मनुस्मृति विहित वैदिक संस्कृति ही प्रचलित थी (ईसाई पन्थ-प्रणाली से पूर्व) इसका एक ठोस प्रमाण ईसाई विवाह विधि में भी वधु को जो घूंघट पहनाया जाता है, उसमें मिलता है।

यूरोपीय स्त्रियाँ साड़ी नहीं पहनतीं। अत: पल्लू से सर ढकने का या घूंघट से चेहरा ढकने का प्रश्न ही नहीं उठता। वैसे भी प्रत्येक क्षेत्र में बगैर किसी हिचकिचाहट या लज्जा के यूरोपीय स्त्रियाँ पुरुषों जैसा ही काम-धन्धा करती हैं। तथापि विवाह के समय यूरोपीय स्त्रियों का चेहरा भी शुभ्र, पतली, पारदर्शक मलमल से ढक दिया जाता है। मनु प्रणीत वैदिक विवाह प्रणाली ही यूरोप में अनादिकाल से प्रचलित रहने का यह एक बड़ा उत्तम प्रमाण है।

भारतीय संस्कृति में तो "घूंघट पट खोलो" आदि गीतों में और चल-चित्र (सिनेमा), नाटक आदि में विवाहोपरान्त पति ने वधु के चेहरे पर से

घूँघट दूर करना आदि प्रकारों से घूँघट चिरपरिचित है, किन्तु ईसाईयों में घूँघट, विवाह विधि में आवश्यक समझा जाता है, यह बात जनसाधारण के ध्यान में नहीं आती।

मुसलमानों में तो कहना ही क्या है। उनमें तो युवतियों के विवाह के पूर्व से ही बुर्के से चेहरा जो ढक जाता है वह जीवन के अन्त तक ढका ही रहता है।

मातृमनल

विवाह सम्बन्ध को आंग्ल परिभाषा में matrimonial कहते हैं। वह पूर्णतया "मातृ-मनल" संस्कृत शब्द है। मातृत्व प्राप्त हो इस हेतु से किए जाने वाले विवाह सम्बन्ध को "मैट्रिमोनियल" उर्फ मातृमनल यह कितना अर्थपूर्ण शब्द है। उसके विपरीत कौमार्य के लिए आंग्ल भाषा में वर्जिनिटी (Virginity) शब्द है। वह भी पूर्णतया संस्कृत "वर्ज्यं जननम् इति" (जहाँ जनन वर्ज्य है) ऐसा समास है।

संयुगल

आंग्ल भाषा में वैवाहिक सम्बन्ध को Conjugal कहते हैं। उनका उच्चार "काँज्युगल" किया जाता है। किन्तु आंग्ल वर्णमाला में "C" अक्षर का 'स' उच्चार होने के कारण con को यदि 'सं' कहा जाए तो पूरा शब्द संजुगल उर्फ संयुगल ऐसा पूरा संस्कृत है। पवित्र उद्देश्य से बनाया पति-पत्नी का जोड़ा यही "संयुगल" उर्फ संजुगल शब्द का अर्थ है।

अक्षत्

वैदिक विवाहों में आमन्त्रित लोग वर-वधु पर मंगल कामना हेतु हल्दी से पीले रंगे चावल के दाने फेंकते हैं जिसे अक्षत् कहते हैं। नवदम्पति के सुख में कोई क्षति न रहे इस उद्देश्य से सींचे दानों को अक्षत कहते हैं। ईसाई बने पाश्चात्य लोगों में अभी तक यह प्रथा ज्यों-की-त्यों चली आती है।

१६ अप्रैल, १६७६ के दैनिक में एक समाचार छपा था कि विम्बलडन

टेनिस पटु वधु क्रिस एवर्ट् का पुरुष टेनिस पटु जॉन लॉयड से जब अमेरिका के फोर्ट लॉडरडेल नगर में विवाह सम्पन्न हुआ तो शाम के ७ बजे थे। सारे निमन्त्रित लोग उपस्थित थे। इतने में किसी ने स्मरण दिलाया कि "अरे चावल (अक्षत्) लाना तो भूल ही गए"। तुरन्त किसी को कार में भेजकर चावल की छह थैलियां मँगाई गईं। वे दाने सबको बाँटे गए और उपस्थित लोगों ने नवदम्पति पर उस अक्षत् का वर्षाव किया। आज-कल कहीं-कहीं क्रुस्ती विवाहों में चावल के बजाय बारीक काटे कागजों का चूरा ही वर-वधु पर बरसाया जाता है। यह उस अक्षत् की प्रथा का आधुनिक दिखाऊ अन्धानुकरण कहा जा सकता है।

इस्लामी निकाह में भी अक्षत्

यद्यपि भारतीय मुसलमान, निजी प्रथाएँ हिन्दुओं से यानि काफिरों से पूर्णतया भिन्न हैं, ऐसा दुराग्रहपूर्ण प्रतिपादन करते रहते हैं तथापि यह देखा गया है कि कई मुसलमान दम्पति ब्राह्मण से टीका लगवाते हैं, कई देवी पूजन करते हैं, कई गणेश के चित्र से मण्डिल निमन्त्रण-पत्र छपवाते हैं। इन प्रथाओं से सुविचारी मुसलमानों ने जान लेना चाहिए कि उनके परिवार कभी हिन्दु थे। अतः उन्होंने दुबारा हिन्दु बन जाना चाहिए। इतिहास की उथल-पुथल में उनके अभागे हिन्दु पूर्वज इस्लामी आक्रमणों में पकड़े गए और छलबल से मुसलमान बना लिए गए। उस समय हिन्दु समाज भी इतना कर्मठ था कि मुसलमानों के सम्पर्क में आए हिन्दुओं को मुसलमान ही समझकर दूर रखा जाता। अब यह बात नहीं रही। जाति और धर्म के बन्धन ढीले होते जा रहे हैं। अतः मुसलमान बने परिवारों को हिन्दु समाज में वापस लौट आना चाहिए।

वैदिक विवाहों में पति के घर में प्रवेश करते समय देहली पर रखे चावल से भरे पात्र को वधु पैर से ठुकरा देती है। उससे उस कक्ष में चावल बिखर जाते हैं जिससे यह सूचित किया जाता है कि वधु के आगमन से घर में धनधान्य की कभी कमी न पड़े और वधु का गृह प्रवेश उस परिवार के लिए भाग्यशाली साबित हो।

मुसलमानों में भी यह प्रथा पाई जाती है जिससे स्पष्टतया यह जान-

पड़ता है कि जिस-जिस प्रदेश की जनता शत-प्रतिशत मुसलमान बन गई है उन प्रदेशों में इस्लाम पूर्व समय में वैदिक विवाह पद्धति ही प्रचलित थी।

पच्चीस देशों में बसे दो करोड़ इस्लामी मुसलमानों के पन्थ प्रमुख आगा खान (यानि अग्रखान) चौथे के विवाह का वर्णन कुछ वर्ष पूर्व समाचार पत्रों में छपा था। उसके अनुसार अफगानिस्तान के पहाड़ी प्रदेशों में हुंभा नाम की एक रियासत है। इस्लामी आक्रमण के समय से यानि लगभग ६०० वर्ष पूर्व उस रियासत की जनता छलबल से मुसलमान बनाई गई। तब भी उनके राजा को "राम" ही कहा जाता है। उस राजा ने आगाखान चौथे की विवाह विधि में नववधु के पदार्पण से बिखरने के लिए चावल के साथ पचास मोती भी बख्शे थे। आगाखान ईरान के नागरिक हैं और उनके इस्माइली अनुयायी शियापन्थी हैं।

ऐसे प्रमाणों से पता चलता है कि कृस्ती और इस्लामी विवाह संस्कार भी मूलत: वेदप्रणीत संस्कार ही हैं। इससे हम एक और व्यापक निष्कर्ष यह निकाल सकते हैं कि वैदिक परम्परा की मान्यतानुसार कृतयुग से ही वेदप्रणीत संस्कृति का आरम्भ हुआ। अत: उसी के अन्तर्गत वैदिक पाणि-ग्रहण संस्कार के प्रमाण उन लोगों में पाए जाते हैं जो अपने आपको ईसाई या इस्लामी कहला रहे हैं।

कुमारी और सौभाग्यवती

वैदिक प्रथा के अनुसार महिला अविवाहित है या विवाहित यह समाज को स्पष्टतया विदित कराने के लिए उसे कुमारी या सौभाग्यवती कहा जाता है। वर्तमान युग में स्त्रियों के अधिकारों की माँग करने वाले कुछ नेता उस प्रथा को पक्षपाती समझते हैं। उनका कहना है कि यदि पुरुष की विवाहित या अविवाहित अवस्था का उल्लेख उसके नाम से जोड़ा नहीं जाता तो महिला के नाम से क्यों जोड़ा जाता है?

हर छोटी-मोटी बात में स्त्रियों के प्रति अन्याय, अपमान और पक्षपात की आशंका उठाना अज्ञान और तर्कहीनता का लक्षण है। महिला की विवाहित, अविवाहित या विधवा अवस्था का उल्लेख उसकी भलाई के हेतु किया जाता है ताकि उसके आप्तेष्टों को पता लगे कि उस नारी को किस

प्रकार के सहाय्य या संरक्षण की आवश्यकता है। स्मृतिकार मनु के अनुसार बाल्यावस्था में पति का और वृद्धावस्था में पुत्र का, अतः स्त्री को कदापि बेसहारा रखना या रहने देना उचित नहीं। उसी सूचना के अनुसार स्त्री के नाम के साथ उसकी सुरक्षा की जिम्मेवारी किसके ऊपर है यह समाज को विदित कराने के लिए उसके नाम के साथ कुमारी, सौभाग्यवती या विधवा, श्रीमती यह विशेषण जोड़े जाते हैं।

लज्जा, विनय, झिझक, भय, पराधीनता, आकर्षण के कारण दुष्टों के चंगुल में फँसाए जाने की शक्यता आदि कठिनाइयाँ जैसे नारी जीवन में होती हैं वैसे पुरुष जीवन में नहीं, इसी कारण पुरुष की वैवाहिक अवस्था उसके नाम के साथ कही नहीं जाती।

"सौभाग्यवती" यह विशेषण लगाने से समाज को यह भी सूचित किया जाता है कि वह स्त्री विवाहित होने के कारण उसके प्रति भगिनी, माता, कन्या या बहू समझकर ही देखा जाए, उसे बुरी दृष्टि से कोई न देखे। कुमारी यह विशेषण लगाने से युवती को योग्य वर ढूंढ़ देने का स्मरण सारे समाज को रहता है।

अब रही विधवा की बात। विधवा का मुँह तक नहीं देखना चाहिए– ऐसे उद्गार कभी-कभी सुनाई देते हैं। वे सर्वथा अयोग्य हैं। घर-घर में विधवा बहनें और माताएँ होती हैं। उनके रहते हुए कौन कह सकता है कि विधवा का मुँह तक नहीं देखना चाहिए। अज्ञानी या अविचारी लोग ही ऐसे निरर्गल विचार प्रकट करते हैं।

"विधवा का मुँह तक नहीं देखना चाहिए" इस उद्गार का वास्तविक अर्थ यह है कि जहाँ तक हो सके अधिक समय न बिताते हुए विधवा स्त्री का पुनः विवाह सम्पन्न करा देना चाहिए ताकि वह निराधार और निराश्रित न रहे और उसका जीवन निरर्थक, दिशाहीन और नीरस न बने।

बुजुर्गों द्वारा ठहराए गए विवाह

कुछ वर्ष पूर्व कुनबे के ज्येष्ठ व्यक्ति ही बालक-बालिकाओं को वगैर एक-दूसरे से मिलाए और उनकी सम्मति बिना ही उन्हें विवाहबद्ध करा

देते थे। अभी भी देहातों में या पिछड़े वर्गों में ऐसे ही विवाह होते हैं।

पढ़े-लिखे लोगों में विवाह का वार्ताविमर्श तो कुनबे के ज्येष्ठ लोग ही करते हैं, किन्तु युवक-युवती को भी एक-दूसरे को मिलाते हैं और उनकी भी सम्मति प्राप्त की जाती है।

यूरोप में तो लगभग सारे विवाह युवक-युवती या प्रौढ़ स्त्री-पुरुष अपने आप तय करते हैं। ज्येष्ठ सम्बन्धियों को केवल उसकी सूचना दी जाती है।

उससे भी आगे और एक प्रकार यूरोप में फैलता जा रहा है जिसमें सम्भोग के लिए विवाह की या और किसी की सम्मति या बन्धन या नियम की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। युवक-युवतियाँ या प्रौढ़ स्त्री-पुरुष जितना समय चाहें इकठ्ठे रह लेते हैं या पृथक् रहकर भी लैंगिक सम्बन्ध रखते हैं। ऐसी व्यवस्था (या अव्यवस्था ?) से लैंगिक रोग या अन्य रोग फैलने की सम्भावना है जिससे मनुष्यजाति शरीर से दुर्बल, रोगी, कुरूप, अपंग और मन्दबुद्धि, अल्पायुषी आदि होने की शक्यता है। बालकों के पालन-पोषण की व्यवस्था टूटकर वे मानसिक असन्तुलन से पीड़ित होंगे। एक ही स्त्री पर अनेक पुरुष लुब्ध होने की सम्भावना से आपसी शत्रुत्व बढ़कर दंगा-फसाद की वृद्धि होगी। अनिर्बन्ध सम्भोग की अनुकूलता प्रतीत होने पर समाज में कामुक प्रवृतियाँ बढ़ेंगी और संयम या विषयोपभोगों से अलिप्त रहने की प्रणाली मिट जाएगी।

युवक युवतियों का स्वेच्छानुसार विवाहबद्ध होना या विवाह के बिना ही शरीर सम्भोग करना—इसके पीछे जो विचारधारा है वह वैदिक संस्कृति की विचार प्रणाली से बिल्कुल भिन्न है। आधुनिक पाश्चात्य कुस्ती व्यवहारों से प्रभावित लोग यह आग्रही प्रतिपादन करते दिखाई देते हैं कि प्रौढ़ व्यक्ति अपने आप निजी विवाह व विवाह बिना लैंगिक सम्बन्ध रखने सम्बन्धी निर्णय लेने के हकदार होते हैं।

उस पर वैदिक संस्कृति का यह कहना है कि युवक-युवतियों को मनमाना व्यवहार करना इसलिए प्रतिबन्धित है क्योंकि उससे/समाज के ऊपर घोर और दीर्घकालीन दुष्परिणाम होते हैं।

दूसरा तर्क यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्रौढ़ व्यक्ति अपने शरीर का

जैसा चाहे प्रयोग कर सकता है। उसमें समाज को या बुजुर्गों को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं।

इसके उत्तर में वैदिक संस्कृति का कहना यह है कि शरीर भले ही उस व्यक्ति का हो किन्तु जब तक वह व्यक्ति समाज में रहता है उसे निजी शरीर से मनमाना व्यवहार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। जैसे एक आम सड़ जाने से उसके संसर्ग से अच्छे आम भी सड़ने लगते हैं, एक मृत शरीर कहीं पड़ा हो तो उससे कई रोग फैल सकते हैं, उसी प्रकार अनिर्बन्ध लैंगिक व्यवहार से सारे समाज में रूढ़ियाँ तोड़ने की भावना बढ़ेगी तथा शारीरिक और मानसिक रोग भी फैलेंगे।

ऐसे अनेक दुष्परिणामों को टालने के हेतु ही वैदिक संस्कृति ने षोडश संस्कारों की योजना की है। उस नियमावली के अनुसार समाज का एक अंग होने के कारण व्यक्ति को समाज के बन्धन में ही जीवन बिताना चाहिए। इस दृष्टि से व्यक्ति का जीवन शकट को जोते एक घोड़े जैसा है। नियत बन्धनों में नियत मार्ग से ही जाना उसका कर्त्तव्य है। युवक-युवतियों के सम्भोग से सशक्त, सद्‌गुणी और कर्तृत्वशाली प्रजा का निर्माण हो यही विवाह संस्था का उद्दिष्ट होने के कारण युवक-युवतियों के शारीरिक आकर्षण या यौवन प्रवृत्तियों पर वैदिक नियमों की रोक लगा दी गई है।

सामाजिक व व्यक्तिगत आचरण के श्रेष्ठ आदर्श स्थापित करना और मानवजाति को सम्पन्न, सद्‌गुणी, दीर्घायुवी, शक्तिमान, स्वरूपवान और सदाचार-सम्पन्न बनाने का वैदिक संस्कृति का आदर्श मनुस्मृति में स्पष्टतया अंकित है। उसमें कहा है—

> अस्मद्देश प्रसूतस्य सकाशात् अग्रजन्मनः।
> स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवः॥

यानि "इस भूमि में हम जो आदर्श आचरण और गुणों के व्यक्ति तैयार करा रहे हैं वे इसलिए कि वे सारे मानवों को आदर्शभूत् हों?"

युवक-युवतियों के विवाह सम्बन्ध सोचते समय दोनों कुटुम्ब के बुजुर्ग लोग वैद्य और ज्योतिषियों का भी मत लेते थे। प्रत्येक घराने के ज्योतिषी, पुरोहित, वैद्य आदि निश्चित होते थे।

वैदिक परम्परा में फल-ज्योतिष का महत्व

प्राचीन वैदिक परम्परा में ज्योतिषियों का बड़ा महत्व है। उस समय के ज्योतिषी भी निजी विद्या में पूर्णतः पारंगत होते थे। हर एक राजघराने के तथा रईसों के अपने आश्रित ज्योतिषी होते थे जिनका यह कर्त्तव्य हुआ करता था कि वे उस कुटुम्ब के सारे व्यक्तियों की जन्मकुण्डलियों का निरीक्षण, अध्ययन आदि करते रहें और विशेष संकट या समृद्धि के योगों के बारे में गृहस्वामी को सावधान करते रहें।

इस्लामी तवारीखों में फलज्योतिष का बार-बार उल्लेख आता है। मुहम्मद बिनकासिम, महमूद गजनबी, मुहम्मद गोरी, तैमूरलंग, बाबर आदि खूँख्वार इस्लामी आक्रामकों के संस्मरणों में ज्योतिषियों से वार्ता-विमर्श करके ही हमलों की या वापसी की योजना बनाई जाने के उल्लेख हैं। इस्लाम में या ईसाई धर्म में न तो कर्मसिद्धान्त माना जाता है न पुनर्जन्म। अतः उनमें फलज्योतिष का कोई स्थान नहीं। तब भी इस्लामी तवारीखों में बार-बार आने वाले ज्योतिषीय उल्लेख यह सिद्ध करते हैं कि मुसलमान बनाए जाने के पूर्व उनके प्रदेशों में सर्वत्र वैदिक संस्कृति ही थी। मुसलमानों द्वारा लिखी ज्योतिषीय पुस्तकों में गृहदेवताओं के चित्र आदि भी पाए जाते हैं। ऐसी पुस्तकें इस्तम्बूल, काहिरा आदि के संग्रहालयों में विद्यमान हैं।

कोई यन्त्र बनाने के पूर्व जैसे उसका ढाँचा कागज पर रेखांकित किया जाता है वैसे ही जब विविध मानव जन्म लेते हैं तो उनके व्यक्तिमत्व का रेखांकन उनके जन्म समय के ग्रहयोगों में पाया जाता है। प्रत्येक मानव का व्यक्तिमत्व उसके अन्दर की यन्त्र सामग्री पर निर्भर करता है। उसका मस्तिष्क, हृदय, श्रवणयन्त्रणा और अंतड़ियों की पाचन-प्रणाली आदि अन्दरूनी यन्त्रणा पर व्यक्ति का रंग-रूप, चपलता आदि निर्भर करता है। व्यक्ति की वह रूपरेखा सांकेतिक पद्धति से उसकी जन्मकुण्डली में आलेखित होती है। किसी बीज से किस प्रकार का वृक्ष निकल आएगा ? वह कितना ऊँचा और पुष्ट होगा ? उसमें पुष्प या फल किस प्रकार के आएँगे यह बातें बीजों के तज्ञ बीजों को देखकर बता सकते हैं। उसी प्रकार कुण्डली देखकर प्रवीण ज्योतिषी व्यक्ति के जीवन की भविष्य की घटनाएँ कथन कर सकता

है। किन्तु आज इतने प्रवीण ज्योतिषी मिलना कठिन है।

इस सन्दर्भ में हम डॉक्टरी विद्या, आयुर्वेद और फलज्योतिष की तुलना कर सकते हैं। डॉक्टरी शास्त्र में मनुष्य शरीर की विविध नालियों का एक ढाँचा समझकर उसमें निर्माण हुई रुकावटों को दूर करने का यत्न किया जाता है। आयुर्वेद द्वारा इस नालियों के ढाँचे में वात-पित्त-कफ आदि का सन्तुलन किस मात्रा में बिगड़ा है उसका विचार होता है। फलज्योतिष में तो उससे भी आगे बढ़कर केवल शरीर ही नहीं अपितु व्यक्ति, मन, बुद्धि, रंग, रूप, कद, व्यवसाय, प्रवृत्तियाँ, प्रारब्ध, संचित, भूत, भविष्य आदि समस्त बातों का विचार किया जाता है।

इस सर्वंकष विद्या द्वारा किसी युगल से संतति किस प्रकार की होगी इसकी भी अटकल लगाई जा सकती है। प्रजोत्पादन की दैवी प्रक्रिया सुचारू रूप से चलती रहे इसी एक दृष्टि से स्त्री-पुरुषों का शरीर सम्भोग एक धार्मिक कर्त्तव्य बन जाता है, अन्यथा वह केवल अश्लील, दुर्गन्धयुक्त, संकट तथा संघर्षमय व्यभिचारी व्यवहार है यह हम ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं। वह कर्त्तव्य स्त्री-पुरुष निभाते रहें इस हेतु ईश्वरीय माया के जादू से उस शरीर-सम्बन्ध में एक मनलुभावनी, रोमांचित अनुभूति भी जोड़ दी गई है जिसके नशे में समाज भी युवायुगल के शरीर सम्भोग को एक अनिवार्य कर्त्तव्य मानकर प्रतिष्ठा और सुविधा प्रदान करता है।

तथापि उस सम्बन्ध को कड़े नियमों में बंधा रखने के लिए वेदविहित विवाह संस्कार का गठन किया गया है। यूरोप के लोगों में, कृस्ती बनने के पूर्व स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की बाबत कड़े निर्बन्ध लगे हुए थे इसका प्रमाण कृस्ती धर्मगुरु पोप उर्फ पापह महाशय के वक्तव्यों में मिलता है। समय-समय पर पापह महाशय विवाह-विच्छेद या गर्भपात आदि की बढ़ती कुरीतियों के विरुद्ध गरजते रहते हैं। क्योंकि कृस्ती बनाए जाने के पूर्व वह प्राचीन वैदिक शांकर धर्मपीठ था। इसका अधिक विवरण इस ग्रन्थ में अन्यत्र दे रखा है।

मुसलमान तथा कृस्ती बनने के पश्चात् उन लोगों में वैदिक विवाह बन्धन सब ढीले पड़ गए हैं। मुसलनानों में तो अनेक बहानों पर अनगिनत स्त्रियों से सम्बन्ध रखने पर कोई रोक-टोंक है ही नहीं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण इतिहास में उल्लिखित असंख्य सुल्तान, बादशाह, दरबारी,

सेनानी, फकीर आदि के जनानखाने के पाँच हजार, पन्द्रह हजार आदि संख्या में पाया जाता है।

उधर क्रस्तियों में भी एक विवाह तोड़कर दूसरा विवाह करने की प्रक्रिया शनैः शनैः बढ़ रही है। इतना ही नहीं, विवाह बिना ही शरीर सम्भोग करने की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है। केवल यही नहीं अपितु पाश्चात्य देशों में अप्रकट रूप से पुरुष-पुरुष युगल या नारी-नारी युगल समलिंगी सम्भोग करने में जरा भी नहीं हिचकिचाते। उनकी यह प्रवृत्तियाँ मान्य करने वाले कायदे-कानून क्रस्ती सरकारों ने भी पारित कर दिए हैं। यह समलिंगी सम्भोग की निजी प्रवृत्ति या अधिकार सब जनों को विदित हों इस दृष्टि से वह व्यक्ति पाश्चात्य देशों में एक कान में एक मणि पहनते हैं ताकि समविचारी लोग उसकी विशिष्ट प्रवृत्ति जानकर उससे मेल-मिलाप कर सकें।

इतनी लैंगिक स्वतन्त्रता व्यक्ति को बहाल करने वाले अमेरिका देश में AIDS (Acquired Immune Deficiency Syndrome) नाम का एक भयानक रोग फैल रहा है जिसके कारण शरीरान्तर्गत रोग प्रतिकार क्षमता नष्ट होकर व्यक्ति सड़-गलकर मर जाता है। मृत शरीर के समीप जाने वाले किसी भी व्यक्ति को वह रोग हो सकता है इस भय से AIDS से मृत्यु आई ऐसी आशंका या अफवाह सुनने पर उस शव का अंत्यविधि तक करने को कोई तैयार नहीं होता।

यही सब भावी भीषण परिणाम सोच-समझकर वेदों पर आधारित विवाहविधि व आचारसंहिता बनाई गई है। उसे ठुकराने वाले ईसाई, क्रस्ती आदि जो नए-नए धर्म निकले हैं, उनके अनिर्बन्ध व्यवहार के भीषण परिणाम अभी-अभी ज्ञात होने लगे हैं। यदि यही कुरीतियाँ बढ़ती रहीं तो मानववंश का बड़ा भयानक और दुःखी अन्त होने की सम्भावना सामने दिखने लगी है।

दूसरा भी एक संकट मानव जाति का नाश कर सकता है। वैदिक संस्कृति में गोबर, गोमूत्र, कड़वे नीम का तेल, भिलावा और काजू का तेल आदि का प्रयोग होता था। अब सर्वत्र बुआई से मण्डी में धान या भाजी ले जाने के समय तक उन पर कीटनाशक (DDT) आदि रासायनिक मिश्रण

छिड़के जाते हैं, खेतों में रासायनिक खाद डाले जाते हैं। अब शास्त्रीय जाँच से यह पता चला है कि माताओं के दूध में और स्त्री-पुरुषों के शरीर में वे रसायन खाद्य पदार्थों द्वारा या पानी द्वारा पहुँचकर मानव को रोगी तथा अल्पायु बना रहे हैं।

प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में लिखा है कि कलियुग में पाप की मात्रा सर्वत्र इतनी बढ़ जाएगी कि उसका भार सहन न होने के कारण पृथ्वी भी कंपित हो उठेगी। वह भविष्यवाणी सही उतरते हुए हम देख रहे हैं कि कारखानों के धुएँ से हवा दूषित हो रही है, गन्दी नालियों से नदी और सागर तक का जल मलीन हो रहा है, रासायनिक प्रयोगों से अनाज और पानी खराब हो रहा है और अनिर्बन्ध लैंगिक व्यवहारों से भयानक रोगों का प्रसार होने की सम्भावना दिखाई दे रही है। इन संकटों से बचने का एक ही मार्ग है विश्व भर में सनातन, आर्य वैदिक धर्म की आचार-प्रणाली लागू करना।

क्षत्रिय घरानों का विवाह सम्बन्ध

भारत में हम देखते आ रहे हैं कि यद्यपि विविध रियासतों के शासन करने वाले राजपरिवार बंगाली, मराठी, गुजराती, हिन्दु, नेपाली आदि भिन्न भाषा-भाषी थे तथापि वे निजी कुमार और कन्याओं का विवाह प्रान्तीय भाषा बोलने वाले व्यक्ति से न कराते हुए अन्य राजकुल के क्षत्रिय राजकुमार या राजकुमारी से ही कराते थे यानि वहाँ भाषा का प्रश्न गौण होता था, अपितु छत्रधारी क्षत्रिय कुल का महत्व अधिक समझा जाता था।

ठीक यही प्रथा यूरोप के इतिहास में भी दीखती है। वहाँ के ग्रीस, स्पेन, फ्रांस, पोर्चुगाल, जर्मनी, रशिया, इंग्लैण्ड आदि के राजकुल एक-दूसरे से विवाह सम्बन्ध जोड़ा करते। यद्यपि दोनों में शत्रुता या विरोध हुआ करता। अत: यह प्रथा भी प्राचीन विश्वव्यापी वैदिक प्रथा का एक मोटा प्रमाण है।

८

वैदिक संगीत का विश्व प्रसार

विश्व के प्रारम्भ से सर्वत्र वैदिक संस्कृति ही प्रचलित थी, इस तथ्य के हम जो सर्वांगीण प्रमाण इस ग्रन्थ में उद्धृत कर रहे हैं उनमें संगीत का भी अन्तर्भाव है। सर्वत्र वैदिक संस्कृत ही थी अतएव वैदिक संगीत ही पाश्चात्य आदि सभी गायन-वादन पद्धतियों का मूल स्रोत रहा है। इसके प्रमाण हम इस अध्याय में प्रस्तुत कर रहे हैं।

वैदिक संगीत के सूत्र सामवेद में पाये जाते हैं, अतः सामवेद ही मानवी संगीत शास्त्र और कला का मूल स्रोत है।

सर्व विद्या और कला के देवतुल्य प्रमुख सृष्टि उत्पत्ति के समय स्वयं परमात्मा के मार्गदर्शन में तैयार हुए जैसे किसी राज्य यन्त्रणा द्वारा विविध शाखाओं के विद्यालय शुरू करते समय विशेष प्रशिक्षण पाये हुए तज्ञ उनमें नियुक्त किए जाते हैं। पूर्ण ज्ञानी अवस्था से मानवी जीवन का प्रारम्भ हुआ यह वैदिक धारणा पूर्णरूप से ही है। पाश्चात्य धारणा एकदम उल्टी है। यूरोपीय विद्वान प्रतिपादन करते हैं कि बन्दर से वनमानुष बना और वह अपने-आप प्रगति करता चला गया। यदि यह सही होता तो विद्यालयों में केवल छात्र लाकर छोड़ देते तब भी चल सकता था। वे अपने-आप विद्वान बन सकते थे। क्योंकि वनमानुष की अवस्था से आजकल का शहरी बालक कितना ही अधिक प्रगत होता है। किन्तु ऐसा नहीं होता। बारह-खड़ी के स्वर से पी-एच. डी. तक तज्ञों के मार्गदर्शन में ही हर एक को पढ़ना पड़ता है। अतः विश्व के आरम्भ में हर शाखा के तज्ञ स्वयं ईश्वरीय यन्त्रणा ने ही दिलाए थे। संगीत क्षेत्र के देवदत्त तज्ञ थे गन्धर्व। उन्होंने

सप्तसुरों से वैदिक संगीत की शिक्षा समस्त मानवजाति को दी। अत: वे सप्तसुर ही सारे मानवों के संगीत शिक्षा के मूल आधार बने हुए हैं।

इसके सम्बन्ध में Indian Literature (पृष्ठ २६७) नामक ग्रन्थ के जर्मन लेखक Weber लिखते हैं—The Hindu scale sa-re-ga-ma-pa-dha-nee has been borrowed also by the Persians, where we find it in the form of do-re-ma-fa-so-la-ci. It came to the west and was introduced by Guido d'Arezzo in Europe in the form of do-re-mi-fa-sol-lo-ti. Even the 'Gamma' of Guido (French gramma, english gamut) goes back to Sanskrit gramma and Prakrit gramma and is thus a direct testimony of the Indian origin of our European scale of seven notes.—यानी (वैदिक) "सा-रे-ग-म-प-ध-नी सप्त सुरों के ही दो-रे-म-फ-सो-ले-ती ईरानी रूप हैं। गीडो द'अरेज्जो नाम के पाश्चात्य व्यक्ति ने ईरान से उन सप्त सुरों को उठाकर यूरोपीय संगीत में दो-रे-मी-फा-सोल-लो-ती उच्चारण से प्रचलित किया। और तो और गीडो जिस स्वरसमुच्चय को "गाम्मा" नाम देता है (फ्रेंच भाषा में जिसे ग्राम्म और आंग्ल में गॅमट कहते हैं।) वह भी संस्कृत "ग्राम्म" और प्राकृत "गम्म" का ही रूप है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि पाश्चात्यों के सप्त सुर भारतीय सप्तसुरों पर ही आधारित हैं।"

वेबर का कथन सही है। किन्तु उसके कथन का ऊपर उद्धृत किया हुआ आखिरी वाक्य हमारी दृष्टि से भ्रमपूर्ण है। वर्तमान सारे विद्वानों का मत बिल्कुल वही है जो वेबर का है। विश्व ने जहाँ कहीं भी वैदिक संस्कृति के अवशेष दिखे वे उस प्रदेश में भारत द्वारा प्रविष्ट किए गए। उससे कई अज्ञानी और क्रोधी लोग ऐसी अटकल बाँधते हैं कि जैसे ईसाई और इस्लामी लोगों ने छलबल से निजी धर्म लोगों पर थोपे, उसी प्रकार भारत के क्षत्रिय भी उनके समय के अत्याचरी, आक्रामक होंगे जिन्होंने निजी वैदिक धर्म पराए प्रदेशों पर थोपा होगा।

इसी प्रकार का दूसरा एक अज्ञानी विद्वानों का वर्ग है जो भारत के वैदिक क्षत्रियों को आक्रमण का दोषी तो नहीं ठहराता, किन्तु वे यह

समझते हैं कि विश्व में जहाँ कहीं भी वैदिक धर्म के चिह्न दिखाई दें वह भारत के प्रभाव से हुआ होगा ऐसा आधा-अधूरा अटकलपच्चू वे लगा देते हैं। वे यह नहीं सोचते कि आज यदि इंग्लैण्ड या जापान पर निजी संस्कृति का कोई प्रभाव भारत नहीं डाल सकता तो उस समय भारत का प्रभाव उन दूर के प्रदेशों पर कैसे पड़ा होगा ? ऊपर उद्धृत मतप्रणालियाँ तर्कसंगत नहीं हैं। अतः हम एक नया स्पष्टीकरण यहाँ देना चाहेंगे।

हम सभी लोगों को यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वैदिक संस्कृति अन्य धर्मों की भाँति किसी ने किसी पर छलबल से थोपी नहीं थी। वह तो जन्मजात, देवदत्त संस्कृति थी जिसमें कलियुग के आरम्भ तक सारे मानव पले और फूले।

महाभारतीय युद्ध के अपार संहार से वह संस्कृति विश्व के अन्य भागों से नष्टप्रायः होकर केवल भारत में ही चलती रही। अतः विश्व के अन्य प्रदेशों के लोगों को यदा-कदा उनकी लुप्त विद्याओं और कलाओं को पुन-रुज्जीवित करने की इच्छा या आवश्यकता होती थी तो वे भारत के पंडित लोगों को बड़े सम्मान से ले जाते। अतएव ऐसा नहीं समझना चाहिए कि विश्व में सर्वप्रथम सभ्यता का उदय भारत में हुआ और यहाँ से अन्यत्र सभ्यता फैली। समझना यह चाहिए कि जो वैदिक सभ्यता अन्य भागों से खंडित होकर लुप्त हो गई वह भारत में बच जाने के कारण भारत द्वारा अन्य भागों में लुप्त वैदिक संस्कृति का जीर्णोद्धार किया जाता था।

इसे हम बाढ़ का उदाहरण दे सकते हैं। मानो कि एकाएक अपार वर्षा हुई, हिमपात हुआ, नदियाँ, नाले आदि जल से भरकर बहने लगे तो सर्वत्र पानी-पानी हो जाएगा। कुछ दिन पश्चात् बाढ़ का पानी बह जाएगा, भूमि सूखी हो जाएगी। किन्तु तालाब, सरोवर, कुएँ, नहर आदि भरे रहेंगे। उन्हीं भरे जलाशयों से खेती आदि के लिए भूमि की सिंचाई की जाएगी। तालाब आदि का पानी वही होगा जो अन्य भूमि पर से बह गया था किन्तु जलाशयों में टिका रहा। वैदिक संस्कृति की बाबत यही बात ध्यान में रहे।

साम

सामवेद ही सारे वैदिक संगीत का मूल ग्रन्थ है। उसी से पाश्चात्य संगीत निकला। इसका एक प्रमाण यह है कि सप्तस्वरों के समान पाश्चात्य संगीत की सारी परिभाषा वैदिक, संस्कृत ही है। जैसे ईसाई धर्म ग्रन्थ बायबल के प्रत्येक श्लोक को साम (psalm) कहते हैं, जो इस कारण कि यूरोप में भी क्रुस्त काल से पूर्व "साम" का गायन ही होता था।

वैदिक संस्कृति में नृत्य, गायन, चित्रकारी, काव्य, नाट्य आदि का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। सब विद्याओं के साथ वे कलाएँ भी परमात्मा की देन मानी गई हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश ही संगीत के मूल स्रोत हैं। ब्रह्मा साम गाते हैं, विष्णु मृदंग बजाते हैं और नटराज शिव नृत्य करते हैं। कृष्ण मुरली बजाते हैं और सरस्वती वीणा बजाती हैं।

वैदिक गायनकला के स्वर, ताल आदि निश्चित होते हैं। छह मूल रागों से १२६ रागिनी (कन्याएँ) और पुत्रों का निर्माण बताया जाता है। प्रत्येक राग के कम-से-कम पाँच स्वर होते हैं। मुख्य स्वर वादी कहलाता है जिसका राजा जैसा प्रमुख स्थान होता है। उसका मन्त्री के समान सहायक स्वर सम्वादी कहलाता है। उनके अन्य साथी स्वरों को अनुवादी कहा जाता है। उनके विरोधी स्वर को विवादी या विसंवादी कहा जाता है।

छह मूल रागों का गायन दिन के या रात के किस समय किया जाए और किस ऋतु में किया जाए इसके निश्चित संकेत वैदिक संगीत शास्त्र में बने हुए हैं। प्रत्येक राग की अपनी देवी होती है जो उस राग पर अपना प्रभाव डालकर उसे सम्पन्न बनाती है।(१)वसन्त ऋतु के उषःकाल में हिन्दोला का गायन योग्य माना गया है। उससे समस्त विश्व के प्रति प्रेम का भाव जागृत होता है। उस राग के गायन से मन के भावों को झूले जैसी सुखद गति प्राप्त होती है। (२) ग्रीष्म ऋतु में संध्या के समय दीपक राग गाया जाता है जिससे भूतदया की भावना जागृत होती है। (३) वर्षा ऋतु में मध्याह्न के समय मेघ राग गाया जाता है जिससे धैर्य का भाव प्रकट होता है। (४) भाद्रपद और आश्विन में प्रातः भैरवी गायी जाती है जिससे शान्ति प्रतीत होती है। (५) श्री राग से सात्विक प्रेमभाव

जागृत होता है। यह हेमन्त ऋतु में प्रातः या शाम के सन्धिकाल में गाना ठीक समझा जाता है। (६) मालकौस राग मध्यरात्रि के लिए योग्य माना गया है।

वैदिक स्वरसप्तक की २२ श्रुतियाँ या विभाग किए गए हैं, जबकि पाश्चात्य संगीत में वे केवल १२ ही हैं।

वैदिक संगीत के सप्तस्वर एक-एक प्राकृतिक रंग—हरा, लाल, नीला इत्यादि से जोड़ दिए गए हैं और किसी पक्षी या पशु की ध्वनि से उनका मेल बताया गया है।

वैदिक संगीत की ७२ स्वरमालिकाएँ हैं। संस्कृत संगीत के ग्रन्थों में १२० प्रकार के ताल बताए गए हैं। नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरतमुनि ने किसी पक्षी के मधुर कूजन में बारीकी से ३२ तालों का विश्लेषण प्रस्तुत किया ऐसी किंवदंति है।

गायक को संस्कृत में भागवतार कहते हैं, जिसका अर्थ है भगवद्भक्ति का गान करने वाला। इससे पता चलता है कि वैदिक संस्कृति में संगीत को उपासना का साधन माना गया है न कि छछोर और कामुक भावना जागृत या प्रोत्साहित करने का। जीवन के प्रत्येक अंग में वैदिक संस्कृति ने पवित्रता और सात्विकता का भाव भर दिया है। संगीत सम्मेलनों को इसी कारण संकीर्तन कहा गया है। उद्देश्य यह था कि सब मिलकर ईश्वर की लीला के काव्य गाएँ।

Strabo नाम के एक प्राचीन ग्रीक ग्रन्थकार ने लिखा है कि "थ्रेस के लोगों की गानपद्धति, उनकी लय, तान, गाने आदि सारे पूर्ववर्ती प्रदेशों (यानी भारत) से लिए हुए दिखाई देते हैं। भारत तक का पूरा आशिया-खण्ड का प्रदेश Bacchus यानी त्र्यंबकेश यानी शिवपूजक था और पाश्चात्य संगीत का अधिकार स्रोत वही है। एक अन्य लेखक पौर्वात्य सितार बड़े ठाठ से बजाए जाने का उल्लेख करता है।" इनसे स्पष्ट है कि प्रसिद्ध प्राचीन ग्रन्थकार Strabo के कथन के अनुसार भी संगीत का उद्गम भारत ही था और सितार भारतीय वाद्य ही था। इस्लामी आक्रामकों के चाटुकार लेखकों ने अमीर खुसरो आदि मुसलमानी दरबारियों को या फकीरों को विविध रागों का या वाद्यों का निर्माता कहा है

जो सरासर झूठ है। वैदिक संगीत तब उच्च दैवी कोटि का था जब इस्लाम का विश्व में नामोंनिशान भी नहीं था।

इस्लामी शासन में संगीत की दुर्दशा

सुल्तान-बादशाहों के शासन में भारत में हिन्दु गायक-वादकों का सम्बन्ध दरबारी ख्याली खुशहाली और रंग-रंगेलियों से आने के कारण वे पकड़-पकड़कर मुसलमान बनाए गए। इससे इतिहासकारों ने अनवधानी से और इस्लामी प्रचार की लपेट में आकर यह समझना आरम्भ कर दिया कि संगीतकला को मुसलमानों ने समृद्ध किया। वास्तविकता इसके एकदम विपरीत है। उच्च स्वर्गीय कोटि का सात्त्विक और पवित्र वैदिक संगीत इस्लामी शासन में रण्डीबाजी के रौरव नरक में घसीटा गया। इतना उसका अधःपतन हुआ। वर्तमान समय में जितने प्रसिद्ध मुसलमानी गायकों का नाम लिया जाता है वे सारे हिन्दु संगीतकारों के वंशज हैं जो प्रलोभन या छलबल से समय-समय पर मुसलमान बनाए गए।

इस्लाम में किसी कला का नामोंनिशान भी नहीं है। अतः इस्लाम में चित्रकारी के, स्थापत्य कला के, संगीत के या और किसी कला के मूल ग्रन्थ हैं ही नहीं तो मुसलमान कलाकार होंगे कहाँ से ?

संगीत की सारी परिभाषा गायन शास्त्र, गीत आदि सारे वैदिक संस्कृत परम्परा के होते हुए गायकी इस्लामी हो ही कैसे सकती हैं ? इससे जो एकदम उल्टा सिद्धान्त प्रस्थापित होता है वह है कि सारी गायकी हिन्दू होने से गायक भी मूलतः हिन्दू ही हैं यद्यपि वे इस्लामी धर्म का बुर्का ओढ़े हों।

इस्लामी आक्रमण की शत्रुता, अत्याचार, दुराचार, बलात्कार, व्यभिचार आदि को ढककर, इस्लामी आक्रमणों से भारत को बड़ा लाभ हुआ, ऐसा झूठा सिद्धान्त भारतीयों के मस्तिष्क पर थोपने के कुचक्र में मुसलमानों ने संगीत, स्थापत्य, चित्रकारी आदि में बड़ा योगदान देकर भारतीय संस्कृति को अपार समृद्ध किया—ऐसी धौंस भारत के इतिहास में जानबूझकर गढ़ दी गई है। इतिहास से यह बड़ा भारी खिलवाड़ है। ऐसे भ्रष्टाचारों से इतिहास को शुद्ध करना प्रत्येक विद्वान का, देशभक्त का और जागृत नागरिक का कर्त्तव्य होना चाहिए।

तन्तुवाद्य

वैदिक संगीत में कई वाद्य ताँत, तन्तु या तार के होते हैं और कई बार तारों की संख्या से उनका निर्देश होता है जैसे एकतारा। साधु, संन्यासी, भिखारी आदि कई बार एकतारे की झंकार में बड़े सुरीले और लयतालबद्ध गीत, भजन आदि गाते दिखाई देते हैं। सितार नाम भी सप्ततार का अपभ्रंश है। एक सौ तारों के वाद्यों को यूरोपीय उच्चारण में सेंतॉर (Centaur) कहते हैं जो वास्तव में शततार शब्द है। यूरोपीय सिक्का भी सेंत (Cent) कहलाता है क्योंकि वह उनके रुपये का सौवाँ भाग होता है।

संगीत

वैदिक-प्रथा में संगीत शब्द वाद्यों सहित गीत, गान और नृत्य का उद्बोधक है। दूसरे अर्थ में यह कहा जा सकता है कि गाने में या वाद्य की धुन में किए नृत्य के पद्यांश या स्वर की नियमबद्ध रचना को संगत या संगीत कहा जाता है।

बिल्कुल वही शब्द यूरोप में भी पाये जाते हैं। जैसे आंग्ल भाषा में देखें "सिंग" (Sing), "सौंग" (Song), "सिंगर" (Singer), "सिंगिंग" (Singing) सारे गायन सम्बन्धी शब्द हैं जिनमें वही संगीत शब्द के विभिन्न रूप पाए जाते हैं। अतः इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि प्राचीन यूरोप में न केवल वैदिक गायकी थी अपितु उसे संगीत ही कहा जाता था।

आंग्ल भाषा में संगीत को "म्यूजिक" (Music) भी कहा जाता है जो स्पष्टतया मौखिक शब्द है। हो सकता है कि आरम्भ में वह केवल गायन को ही लगाया जाता हो।

जीव वाचा

आंग्ल भाषा में मौखिक को "वोकल" (Vocal) कहते हैं। वह वास्तव में "वाचल" यानि "वाचा द्वारा" इस अर्थ का संस्कृत शब्द है। नौकरी आदि चाहने वालों को या कई विद्यालयीन परीक्षाओं में लिखित परीक्षाओं के पश्चात् प्रत्यक्ष भेंट में बातचीत द्वारा जाँच के लिए प्रत्याशियों को

बुलाया जाता है। इसे आंग्ल भाषा में व्हायवा व्होसीं (Viva Voce) कहते हैं जो वास्तव में "जीव वाचा" ऐसा संस्कृत शब्द है।

गार्गल

मुंह में जल या औषधि का घूंट भरकर गरारे करने की क्रिया को आंग्ल भाषा में "गार्गल" (Gargle) कहते हैं जो "गले से गर्र की ध्वनि करना" इस अर्थ का संस्कृत शब्द है।

आंग्ल भाषा में निगलने के लिए "गझल" शब्द है। इस्लामी परिभाषा में वही शब्द एक गीत शैली को लगाया जाता है। दोनों "गल" यानि "गला" इस संस्कृत शब्द पर ही आधारित हैं।

वैदिक प्रथा में जन्म से मृत्यु तक संगीत का जीवन से गाढ़ा सम्बन्ध होता है। प्रात: और शाम की पूजा-अर्चा, प्रार्थना, व्रतबन्ध और विवाह जैसे संस्कार और प्रेतयात्रा तक को संगीत का साथ होता है। प्रेतयात्रा के साथ संगीत बजाने में एक बड़ा अर्थ भरा हुआ है। एक जीवन पूरा कर जीव जब दूसरे जन्म की ओर बढ़ता है तो उसे प्रेमपूर्वक बाजे-गाजे के साथ विदा करना वैदिक संस्कृति सिखाती है। उस संगीत से यह भी ध्वनित किया जाता है कि परिवार के लोग अधिक दु:ख न मनाएँ क्योंकि मृत्यु द्वारा जीव केवल एक मुकाम से दूसरे मुकाम की ओर बढ़ा है।

संगीत शास्त्र

वैदिक संगीत एक गहन शास्त्र है जो प्रवीण गुरु के नित्य मार्गदर्शन में पारिश्रमिक अभ्यास द्वारा अनेक वर्षों में आत्मसात किया जाता है। ऐसी गुरु परम्पराओं को "घराना" कहते हैं। वह भी पूरा संस्कृत शब्द है। अत: मुस्लिम घराने का जब नाम लिया जाता है तो समझ लेना चाहिए कि मूलत: वह हिन्दु घराना है।

भारत में कई मुसलमान फकीरों की कब्रों के सम्मुख बाजा बजाते हुए मुसलमान लोग गझल और कव्वालियाँ गाते रहते हैं। इस्लामी परम्परा में मरे हुए व्यक्ति की कब्र के आगे गाना गाने का प्रयोजन ही नहीं होता। इस्लामी सिखलाई के अनुसार मृत-व्यक्ति से अन्य जीवित लोग कोई

सम्बन्ध नहीं रख सकते। कयामत के दिन केवल पैगम्बर ही सदियों के करोड़ों मृत व्यक्तियों को अल्लाह के सामने पेश करेगा। ऐसी अवस्था में दफनाए हुए मुर्दे की कब्र के सम्मुख गाना सर्वथा अनुचित और निष्फल है। मस्जिदों के पास से बाजा बजाते हुए जो जुलूस निकलते हैं उनपर मुसलमान पथराव करते हैं। इससे जाना जा सकता है कि जिन स्थलों को कब्र समझा जाता है वे वास्तव में अपहरण किए हुए मन्दिर हैं और उनमें गाने वाले व्यक्ति छलबल से मुसलमान बनाए गए हिन्दुओं की सन्तान हैं। फकीरों के नाम से बनाई गई वे कब्रें नकली हैं। उन पर किसी फकीर का नाम तक नहीं होता। मूर्तियों को दफनाकर उनके ऊपर एक-एक नकली कब्र बना दी गई है। अत: वहाँ के भक्तजन मुसलमान बनाए जाने पर भी उसी निजी प्राचीन मन्दिर में भजन गायन की प्रणाली चला रहे हैं।

गभ्भल शब्द का मूल "गल" यानि "गला" इस संस्कृत शब्द में जैसा पाया जाता है वैसे ही कव्वाली यह इस्लामी शब्द भी "काव्यावली" इस संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है। काव्यावली यानि काव्य पंक्तियाँ।

संगीत की प्रेतयात्रा

संगीत को मुसलमानों ने समृद्ध करना तो दूर रहा संगीत पर पथराव करने के और संगीत की दुर्गति करने के इस्लामी प्रकारों का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। उसी प्रकार संगीत को मारकर उसकी अन्तिम प्रेत-यात्रा निकालने की भी एक घटना हुई है।

औरंगजेब जब बादशाह था (१६५८-१७०७) तब उसके दरबारी ख्याली, खुशहाली और रंग-रंगेलियों में मग्न होने के कारण उनकी लड़ाकू प्रवृत्ति कम होती जा रही थी। वे अधिकतर शाम और रात्रि का समय वेश्याओं के कोठों पर बिताया करते थे। यह देखकर औरंगजेब ने एक आज्ञा-पत्र निकाला जिसके अनुसार दरबारियों को वेश्याओं के कोठों पर जाने से रोका गया। इस पर नाच गाने वालों की कमाई बन्द हो गई और उनके भूखों मरने की नौबत आ गई। अत: उन गाने-बजाने वालों ने दिल्ली के चाँदनी-चौक में संगीत की "प्रेतयात्रा" निकाली। तबला, सारंगी आदि को ताटी पर शव के रूप में कफन से ढककर उसके साथ नाच-गाने वाले

छाती पीट-पीटकर रो रहे थे कि "हाय रे हाय संगीत की मृत्यु होने से हमारी कमाई का कोई सहारा नहीं रहा"। हजारों लोग उस प्रेतयात्रा में शामिल हुए। लालकिले में बैठे बादशाह औरंगजेब को उसके निकटवर्ती कर्मचारियों ने संगीत की प्रेतयात्रा का और बादशाह के हुक्म को दोषी ठहराने का समाचार दिया। इस पर सन्तुष्ट होकर औरंगजेब ने उन प्रेतयात्रियों को यह सन्देशा भेजा कि "अच्छा हुआ संगीत कला मर गई। उसे इतना गहरा गाड़ दो कि वह फिर कभी पुनः जीवित न हो सके।" इस उदाहरण से जाना जा सकता है कि इस्लाम का संगीत से कितनी शत्रुता है।

तानसेन की नकली कब्र

औरंगजेब के तीन पीढ़ी पूर्व अकबर बादशाह के समय में तानसेन रीवा के राजा रामचन्द्र के दरबार का गायक था। हर एक हिन्दु राजा पर आक्रमण कर उसे नीचा दिखाने की अकबर की प्रथानुसार रीवा का राज्य भी इस्लामी आक्रमण का शिकार हो गया। सन्धि की शर्तों में तानसेन को उसकी इच्छा के विरुद्ध मुगल दरबार का गायक होना पड़ा। वहाँ उसकी बड़ी दुर्दशा हुई। उसके गाने पर खुश होकर "वाह मियाँ—वाह मियाँ" कहने वाले मुसलमान दरबारी निजी मुँह में आधा-अधूरा चबाया हुआ पान तानसेन के खुले मुँह में ठूँस देते ताकि तानसेन को भ्रष्ट समझकर हिन्दु बिरादरी मुसलमान समझने लगे। तथापि तानसेन कभी मुसलमान नहीं बना। मुगलों की चाकरी भी उसे जबरदस्ती करनी पड़ी। उस तानसेन की मृत्यु लाहौर में हुई। और वहीं उसका दाहसंस्कार किया गया। तथापि ग्वालियर के पहाड़ी किले के तले एक भ्रष्ट और भग्न मन्दिर परिसर में तानसेन के नाम से एक झूठी कब्र ही बना दी गई है। महंमद घौस नाम के एक मुसलमान दरबारी को भी ग्वालियर के एक भ्रष्ट मन्दिर में ही दफनाया गया है। इस्लामी कब्जे में आ जाने से उस विशाल भव्य गेरुए रंग के प्रस्तर के मन्दिर को ही महंमद घौस ने अपना महल समझा। उसकी मृत्यु के पश्चात् वह उसी इमारत में दफनाया गया हो या उसके नाम से एक झूठी कब्र ही बना दी गई हो। क्योंकि इस्लामी कब्रों पर मृतक का नाम नहीं

होता अत: यह भी हो सकता है कि हिन्दु महलों और मन्दिरों पर कब्जा करते ही इस्लामी हमलावर वहीं प्राप्त मूर्तियों को भूमि में गाड़कर उस पर किसी काल्पनिक फकीर के नाम से एक नकली कब्र बना देते ताकि हिन्दु लोग दुबारा उस स्थान को निजी उपयोग में न ला सकें।

इसके साथ ही तानसेन को महंमद घौस का शिष्य या शागिर्द कहने का भी एक इस्लामी षड्यन्त्र है, जिससे सावधान रहना चाहिए। तानसेन के महंमद घौस का शागिर्द होने का कोई प्रमाण नहीं है। इस्लाम द्वारा संगीत समृद्ध बनाए जाने की जो धौंसबाजी चल रही है उसकी ऐसी छोटी-छोटी कपोलकल्पित कड़ियाँ जोड़ दी गई हैं। तानसेन को "मियाँ" कहना उसी षड्यन्त्र का एक भाग है। मुम्बई की किसी संगीत प्रेमी संस्था ने एक पारितोषिक रखा है जिसे "मियाँ तानसेन सम्मान" नाम दिया गया है। इतिहास का अज्ञान हो या झूठा इतिहास पढ़ाया गया हो तो पराए आक्रमणों का ठप्पा अपने आप पर अनजाने लगाए रखने में लोग कितना गर्व करते है यह इसका उदाहरण है। एक हिन्दु गवई को "मियाँ" क्यों कहा जाए? क्या यह तानसेन की स्मृति का अपमान नहीं है?

अमीर खुसरो

इसी प्रकार क्रूर अलाउद्दीन खिलजी के दरबारी अमीर खुसरो को भी बड़ा सन्त, सूफी, कवि, विविध वाद्यों का निर्माता आदि कहकर वढ़ा-चढ़ा दिया गया है।

भारत में ब्रिटिशों के विरुद्ध गांधी-नेहरू के नेतृत्व में जो सत्याग्रही आन्दोलन चलाया गया था उसमें खुशामद द्वारा मुसलमानों को खुश रखने के प्रयास में ऐतिहासिक सत्य की बलि चढ़ाकर यह कहा जाता रहा कि इस्लामी आक्रमणों से हिन्दुओं को नुकसान की बजाय अपार लाभ होता रहा और अभी भी हो रहा है—इतना कि हिन्दु लोग कभी उसके उऋण नहीं हो सकेंगे। इस प्रकार का झूठा भाव भारत के गलत इतिहास द्वारा लोगों के गले इस तरह उतारा गया है कि सारी सरकारी नीति और शिक्षा-प्रणाली उसी झूठे सिद्धान्त के बल पर चलाई जा रही है।

उस षड्यंत्र के अन्तर्गत दाराशिकोह संस्कृत का बड़ा पण्डित था।

सलीम चिस्ती, मुइनुद्दीन चिस्ती, निजामुद्दीन आदि फकीर बड़े दयालु और शुद्ध सात्विक आचरण के सन्त थे। अमीर खुसरो ने मृदंग के दो टुकड़े करके उन्हें तबला और डण्डे का रूप दे डाला। इस्लामी व्यक्तियों की इस प्रकार की झूठी तारीफ इतिहास में ठूंस दी गई है। उस स्तुतिगान के शोर में कोई यह कहने की भी हिम्मत नहीं करता कि अमीर खुसरो के काव्य में मुसलमानों की खूनी गरम तलवार काफिरों के यानि हिन्दुओं के रुधिर में डुबाकर ठण्डी करने की बात कही गई है।

मृदंग को काटकर तबला और डण्डा बनाए जाने की बात तो एक बेढंगी अफवाह है। तबला और डण्डा दोनों आवाज और बनावट में मृदंग से और एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। तबले की बैठक लकड़ी की होती है और डण्डे की धातु की। किन्तु मुसलमानों को क्यों निष्कारण असन्तुष्ट किया जाए, इस विचार से भारत के इतिहास में मुसलमानों के पक्ष में झूठ के ढेर पर ढेर लगा दिए गए हैं।

यूरोप में संगीत की संस्कृत परिभाषा

पाश्चात्य देशों में संगीत की परम्परा वैदिक तथा संस्कृत परिपाटी की ही रही है। इसके कुछ उदाहरण हमने इस अध्याय के आरम्भ में कहे हैं। उसी प्रकार के अन्य उदाहरण हम यहाँ देना चाहेंगे।

भारत में जिस वाद्य को तंबोरा कहा जाता है यूरोप में इसका टंबोर (Tambour) नाम है और तंबोरा धारण कर गीत या भजन गाने वाले को यूरोप में ट्रूबेडोर (Troubadour) यानि तंबरो-धर कहते हैं।

हारमोनियम् नाम सबको परिचित है ही। उस बाजे का नाम पूर्णतया संस्कृत होते हुए भी उसे अंग्रेजी समझने की जनसामान्य की प्रवृत्ति है। वैदिक गायन शास्त्र के सप्तसुर हैं—सा रे ग म प ध नी। यह सुर जिस वाद्य से निकलते हैं उसे संस्कृत में कहेंगे सारेगमपधनीयम्। इतने लम्बे नाम को छोटा करने के लिए "ग प ध" को उड़ाकर "सारेमोनियम्" नाम रहा जाता है। अब यह ध्यान में रहे कि "सा" का उच्चार "हा" भी किया जाता है। अतः "सा" का उच्चार "हा" होने से "सारेमोनियम" शब्द "हारमोनियम्" बन गया।

ड्रम

ढोलक के लिए आंग्लभाषा में "ड्रम" शब्द है जो डमरू शब्द का अपभ्रंश है। डमरू का उच्चार ड्रम होने लगा।

बैण्ड

कई व्यक्ति अलग-अलग वाद्यों को एक साथ एक धुन में बजाते हैं तो उसे बैण्ड (Band) कहा जाता है। संस्कृत में उसे वाद्यवृन्द कहते हैं। उस वृन्द शब्द का उच्चारण "बृँद" और "बृन्द" से "बैण्ड" हो गया।

पिकावली

पाश्चात्य वाद्यवृन्द में एक बाँसुरी होती है जिसे पिकावली(Piccaoli) कहते हैं। संस्कृत में कोकिला को पिकः कहते हैं, "आवली" यानि पंक्ति। जिस बाँसुरी में से कोकिला के स्वरों जैसे मधुर स्वर की पंक्तियाँ निकलती हैं उसे दिया गया नाम पिकावली शुद्ध संस्कृत है। यह कितना महत्त्वपूर्ण प्रमाण है कि प्राचीन यूरोप में पूर्णतया वैदिक संस्कृति तथा संस्कृत भाषा ही प्रसृत थी।

व्हायोलीन

एक अन्य पाश्चात्य वाद्य है Violin (व्हायोलीन)। यह "जीवलीन" संस्कृत शब्द है। जिस वाद्य को बजाते हुए उसकी मधुर ध्वनि में जीव लीन हो जाता है उस वाद्य को जीवलीन उर्फ Violin नाम दिया गया है। संस्कृत वाचा शब्द का यूरोप में Vocal तथा Viva voçe आदि अपभ्रंश हम बतला ही चुके हैं। उसी प्रकार जीव शब्द आंग्लभाषा में Vio ऐसा लिखा जाने लगा।

गिटार

यूरोप में एक तन्तुवाद्य है जिसे गिटार (Guitar) कहते हैं। यह गीत-तार शब्द है यानि गीत गाते समय बजाने का तार।

हार्प

एक अन्य लम्बे-चौड़े तन्तुवाद्य को यूरोप में हार्प (उर्फ हर्प) कहते हैं।

वह सर्प का अपभ्रंश हर्प (उर्फ हार्प) हुआ है। वैदिक संगीत की परम्परा में हंस वीणा, विचित्र वीणा, नारद वीणा, मयूर वीणा आदि ६४ प्रकार की वीणाएँ हुआ करती थीं जिनमें एक थी सर्प वीणा। क्योंकि उस तिकोनी वीणा की सबसे लम्बी डण्डी सर्प के आकार की होती थी, अतः उसे सर्प-वीणा या संक्षेप में "सर्प" कहते-कहते उसी का अपभ्रंश हार्प हो गया है।

पिआनो

पाश्चात्य देशों में "पिआनो" नाम का एक बड़ा वाद्य होता है। वीणा शब्द का उच्चार भारत की प्राकृत परम्परा में भी "वीणा" और बीन होने लगा। पाश्चात्य देशों में बीन के बदले बियानो उच्चारण होने लगा। तत्पश्चात् बियानो का उच्चार पियानो हो गया। "पुरी" का उच्चार "बुरी" जैसे—Ainsbury, Shrewsbury, Waterbury, Sevenbury होता है, उसी प्रकार पोटैटो (Potato) को बटाटा कहा जाता है। इस प्रकार "प" के बजाय "ब" और "ब" के बजाय "प" उच्चार होने के कारण बियानों का उच्चार यूरोप में पिआनो रूढ़ हो गया।

लिलटिंग

हृदय को ललचाने वाले अति मधुर संगीत को आंग्ल परिभाषा में "लिलटिंग" संगीत कहते हैं। वह स्पष्टतया संस्कृत "ललित" शब्द है। संस्कृत में "ललित कला", "ललित साहित्य" आदि वाक्यप्रचार रूढ़ हैं।

इस प्रकार संगीत की आंग्ल परिभाषा सारी संस्कृतमूलक है यह हमने इस अध्याय में दर्शाया है। भारत से पश्चिम की दिशा में निकलें तो यूरोप खण्ड पार करके इंग्लैण्ड में पहुँचा जाता है। ऐसी अवस्था में जब आंग्ल भाषा में भी वैदिक संस्कृति के इतने अवशेष पाए जाते हैं तो यूरोप के अन्य भागों में भी वैदिक संस्कृति होनी ही चाहिए, यह निष्कर्ष निकलता है।

आंग्लद्वीपों में क्रुस्तधर्म का प्रसार छठी शताब्दी में हुआ। उसके पूर्व वहाँ केल्टिक उर्फ सेल्टिक सभ्यता थी। उसके प्रेम देव (Angsu Og) अंगस ओग को (दग्ध का पुत्र) कहा जाता है। उसके हाथ में सोने की सर्पवीणा होती थी। धनुष सदृश्य वह सर्पवीणा प्राचीनतमकाल में भारत में होती थी।

सरस्वती के हस्त में जो बाँसुरी बताई जाती है उस प्रकार की बाँसुरी स्कॉटलैण्ड में प्राचीनकाल में होती थी। आंग्लद्वीपों का उत्तरी भाग स्कॉटलैण्ड कहलाता है।

मदन उर्फ प्रेमदेव को वैदिक परिभाषा में अनंग कहा जाता है क्योंकि भगवान शंकर का कोप होने पर मदन का शरीर जलकर भस्म होने के कारण वह अनंग हो गया था। आंग्ल द्वीपों में प्रचलित अंगस् यह अनंगस् ऐसे संस्कृत रूप का ही शब्द है। उसे दग्ध का पुत्र कहना भी समझ में आ सकता है क्योंकि भगवान शंकर की क्रोधाग्नि में दग्ध होकर अनंग रूप में मदन पुनः सजीव हो गया।

९

वैदिक छन्दशास्त्र का विश्वप्रसार

कृस्त सन् के पूर्व विश्व में वैदिक संस्कृति ही थी। इसके जो अनेक प्रमाण हैं उनमें छन्दशास्त्र का प्रमाण भी है। संस्कृत छन्द उर्फ काव्य का जो शास्त्र भारत में पाया जाता है वही इंग्लैण्ड में भी पाया जाता है और जब वह इंग्लैण्ड में पाया जाता है तो यूरोप तथा अन्य खण्डों में भी उसका अस्तित्व होना अनिवार्य है। आंग्ल भाषा में छन्द शास्त्र को प्रॉसोडी (Prosody) कहा जाता है। वह संस्कृत "प्रासादि" शब्द का बंगाली पद्धति का इंग्लैण्ड में रूढ़ हुआ उच्चार है।

'प्रसादस्तु प्रसन्नता' यानि प्रसाद वह होता है जो प्रसन्न होकर दिया जाता है और पाने वाले व्यक्ति को भी प्रसन्न करने की क्षमता रखता है।

काव्य में गद्य से अधिक सुनने वाले को सन्तुष्ट करने का गुण होता है। उस गुण को प्रासादिकता कहते हैं। अतः आंग्लभाषा में छन्दशास्त्र का "प्रासादि" उर्फ प्रॉसोडी नाम पड़ा।

काव्य की लय को आंग्ल भाषा में ह्रिदम् (Rhythm) कहते हैं जो वास्तव में "ह्रिद्यम्" यानि हृदय को आनन्द देने वाली या अन्तःकरण को मग्न करने वाली इस अर्थ का संस्कृत शब्द है।

काव्य पंक्तियों के अन्तिम अक्षरों के उच्चारों की समानता जैसे—

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाई पर वचन न जाई॥

में "आई" और "जाई" शब्दों में दिखाई देती है—उसे आंग्लभाषा में Rime या rhyme कहते हैं। यह वास्तव में "हृदयंगम्" इस संस्कृत

शब्द का टूटा-फूटा रूप है।

आंग्ल भाषा के काव्य शास्त्र में जब काव्यपंक्ति का विश्लेषण किया जाता है तो प्रत्येक भाग को फुट (Foot) कहा जाता है। "फुट" शब्द का आंग्ल भाषा में अर्थ है "पाद" या "चरण"। ठेठ वही शब्द संस्कृत छन्द-शास्त्र में भी प्रयोग होता है। संस्कृत या अन्य भारतीय भाषाओं में भी काव्यपंक्ति के भागों को "चरण" ही कहते हैं।

संस्कृत के भ्रष्ट प्रादेशिक उच्चारणों से जब भिन्न-भिन्न प्राकृत भाषाएँ बनीं तो उनके अपने भिन्न व्याकरण भी बनने लगे। तथापि संस्कृत व्याकरण के कई नियम अभी तक उन प्राकृत भाषाओं के व्याकरणों में अभी भी कायम हैं जैसे सन्धि का नियम। संस्कृत में जगत्-नाथ का उच्चार जगन्नाथ होता है। यानि अगला अक्षर "न" होने के कारण पिछले "त" का भी "न" उच्चार ही होता है। उसी प्रकार आंग्लभाषा में In-Limitable शब्द सन्धि के कारण Illimitable (यानि असीम या अमर्याद) कहलाता है। उसमें भी "N" का लोप होकर उसका स्थान L अक्षर ले लेता है क्योंकि अगला अक्षर "ल" उर्फ "L" है।

अत: पाणिनी का व्याकरण ही सारी मानवीय भाषाओं का मूलाधार माना जाना चाहिए।

पाणिनी का ऐतिहासिक काल अनिश्चित है। कहीं ऐसा तो नहीं कि मानवों की आद्यतम देवतुल्य पीढ़ी में जैसे गन्धर्व, धन्वन्तरी, विश्वकर्मा आदि विविध विद्याओं के प्रमुख हुए वैसे पाणिनी भी आद्यतम व्याकरणकार हुए। क्योंकि दशग्रन्थी ब्राह्मणों की पढ़ाई में व्याकरण ग्रन्थ भी अन्तर्भूत था। हो सकता है कि सृष्टि उत्पत्ति के समय जो वेद मानव को दिए गए उनकी भाषा संस्कृत की घडन का स्पष्ट और अचूक विश्लेषण करने वाली पाणिनी की अष्टाध्यायी भी उस मूल दैवी संस्कृत साहित्य का ही भाग हो।

भाषा उत्पत्ति का जो विवरण पाणिनी ने निजी ग्रन्थ के आरम्भ में दिया है—कि शिवजी के डमरू के नाद से विविध मूलाक्षर प्रकट हुए—उससे भी पाणिनी भाषाशास्त्र के आद्यमुनि सिद्ध होते हैं।

हो सकता है कि उस मूल पाणिनी के नाम से ही व्याकरण की शिक्षा की गद्दी स्थापित होकर उसके सारे पीठाधीश आगे भी पाणिनी ही कहलाते

हों। अतः पाणिनी के ग्रन्थों में यदि व्यक्तिवाचक कोई उल्लेख हो तो हो सकता है कि उस नाम के व्यक्ति अति प्राचीनकाल में भी हुए हों या वह नाम केवल काल्पनिक हो या मूल पाणिनी के व्याकरण के अगले संस्करणों में उस परम्परा को चलाने वाले अगले किसी पीढ़ी के पाणिनी ने वह नाम जोड़ दिया हो। इतिहास संशोधन में ऐसी कई बातों का विचार करना पड़ता है।

पाश्चात्य काव्य और छन्दशास्त्र वैदिक परम्परा पर ही आधारित हैं इसका एक और प्रमाण देखें। कवि अर्थ के आंग्ल भाषा में पोएट् (Poet) और बार्ड (Bard) शब्द हैं, जो दोनों संस्कृत हैं। प्राचीन वैदिक राजाओं के दरबार में "भाट" हुआ करते थे। उसी का उच्चार आंग्ल भाषा में पोएट् हुआ। दूसरा शब्द 'बार्ड' भी संस्कृत है। पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि "चाँद" को "बर्दाई" कहा जाता था। उस बर्दाई का ही आंग्ल रूप बार्ड है।

राजा या सैनिकों के शौर्य, पराक्रम आदि गुणों का बखान कर श्रोताओं के मन में त्याग, देशभक्ति, वीरता आदि की भावना जागृत करने वाले भाटों के काव्य को मराठी के "पोवाडा" कहते हैं। आंग्ल भाषा में उसे बॅलड (Ballad) कहा जाता है। वह शब्द "बल+द", "बल देने वाला" या "बल बढ़ाने वाला" ऐसा संस्कृत शब्द है।

आंग्ल काव्य परम्परा में १४ पंक्तियों का एक कविता प्रकार होता है जिसे Sonnet कहते हैं जो "सुनीत" शब्द का बिगड़ा उच्चार है।

विश्व के सिक्कों की संस्कृत शब्द प्रणाली

क्रुस्तपूर्व काल तक सारे विश्व में संस्कृत भाषा और वैदिक शासन पद्धति ही प्रचलित थी इसका प्रमाण विविध देशों के सिक्कों में पाया जाता है। विविध देशों की द्रव्यमूल प्रणाली सारी संस्कृत है।

कई देशों में क्रुस्ती या इस्लामी शासक अधिकाररूढ़ होने पर भी वैदिक परम्परा के प्रभाव के कारण उन्हें निजी सिक्कों पर संस्कृत अक्षर और लक्ष्मी आदि की प्रतिमा खुदवानी पड़ती। उदाहरणार्थ महमूद गजनवी के शासन के ऐसे कई सिक्के पाए गए हैं।

किन्तु वर्तमान इतिहासकारों ने अज्ञानतावश या जानबूझकर उसका गलत अर्थ लगाया। कोई समझने लगे कि महमूद गजनवी ने भले ही अत्याचार किए हों, मन्दिरों को तोड़ा हो, हिन्दुओं को कत्ल किया हो, उन्हें लूटा हो, वन्दियों को गुलामों के नाते बेचा हो, हिन्दु स्त्रियों पर इस्लामी सेना द्वारा सामूहिक बलात्कार करवाया हो, फिर भी वह संस्कृत का बड़ा भारी विद्वान था, या संस्कृत-भाषा के प्रति उसका गहरा लगाव था, या वह हिन्दु-मुस्लिम एकता का पुरस्कर्ता था, इत्यादि-इत्यादि।

गांधी-नेहरू युग में कांग्रेस नेता, कांग्रेस सरकार, मुसलमान जनता आदि को तुष्ट कर धन, उपाधियाँ, अधिकार, पद आदि पाने के लालच में इतिहासज्ञों ने समय का लाभ उठाकर कुछ ऐतिहासिक तथ्यों का ऊपर कहे अनुसार अनाघून और ऊट-पटांग अर्थ लगाकर अपना उल्लू सीधा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

देशों-प्रदेशों के द्रव्य, सिक्के आदि के नाम संस्कृत होना कोई आश्चर्य

की बात नहीं, जब कृतयुग से कलियुग तक के दीर्घ समय में संस्कृत भाषी वैदिक क्षत्रियों का ही विश्व में शासन रहा।

आंग्ल भाषा में सिक्के को कॉइन् (Coin) कहते हैं। कॉइन् 'कनक' (यानि सुवर्ण) शब्द का टेढ़ा-मेढ़ा रूप है। यदि Coin शब्द में C का उच्चार 'स' किया जाय तब भी 'सॉइन्' यह 'सुवर्ण' शब्द का ही टूटा-फूटा रूप दीखता है।

प्राचीनकाल में जब सर्वत्र समृद्धि होती थी तो सुवर्ण से ही सारे लेन-देन का मूल्यांकन होता था। "सर्वे गुणाः कांचन्माश्रयन्ति्" कहावत से भी यही प्रतीत होता है। जिसके पास अधिक सुवर्ण होता था उसी को सब प्रकार से बड़ा मानने की बात उसमें कही गई है।

चलते-चलते हम यहाँ एक अर्थशास्त्र का नियम भी बता दें कि जिस राष्ट्र की आर्थिक अवनति होती है उसके राष्ट्रीय सिक्के का धातु भी घटिया होने लगता है। उदाहरणार्थ सुवर्ण के सिक्कों का लोप होकर चाँदी के सिक्के बने, फिर ताँबे के, कागज के या अल्युमिनियम् इत्यादि घटिया धातु या वस्तु के होने लगते हैं।

नगद पैसे को आंग्ल भाषा में 'कैश' 'Cash' कहते हैं जो 'कांस्य' धातु का अपभ्रंश है। हो सकता है प्राचीनकाल में आंग्ल भूमि में काँसे के सिक्के बनते हों।

द्रव्य को आंग्ल भाषा में 'मनि' (Money) कहते हैं जो 'मान' यानि मूल्य का माध्यम या नाप इस अर्थ से रूढ़ हुआ।

रुपये, रुपिया आदि शब्द रौप्य यानि चाँदी पर से पड़े हैं। अतः रुपिया चाँदी का ही होना चाहिए। तथापि वर्तमान आर्थिक अवनति का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि आजकल के रुपये में चाँदी नाममात्र रह गई है।

धन या द्रव्य को भारत में 'पैसा' कहते हैं और किसी एक सिक्के को भी पैसा कहते हैं। कुछ वर्ष पूर्व पैसा ताँबे का होता था। आजकल अल्यु-मिनियम् आदि हल्की धातु का बनता है। व्यक्ति या समाज, संस्थान, संगठन आदि की पूरे पूंजी को भी 'पैसा' कहा जाता है। उसी का बिगड़ा रूप फ्रांस में 'पिअँस्त्र' रूढ़ है।

स्पेन में तथा स्पेन का अधिकार जिन-जिन देशों में रहा उनमें पैसे को या किसी सिक्के को 'पैसो' कहा जाता है।

सऊदी अर्बस्थान के रुपये को 'रियाल' कहा जाता है। वैदिक प्रथा में राजा को राया भी कहा जाता है। रायगढ़, रायपुर, रायसेन, रायरत्न आदि शब्द इसके साक्षी हैं। अत: रायल उर्फ 'रियाल', यह राया का (सिक्का) इस अर्थ में रूढ़ है। यह एक बड़ा प्रमाण है कि सऊदी अर्बस्थान के इस्लाम-पूर्व शासक संस्कृतभाषी वैदिक क्षत्रिय थे।

रूस देश के सिक्कों को 'रूबल' कहते हैं। वह 'रॉय-बल' शब्द से पड़ा है। जिस सिक्के को राजबल प्राप्त है या जो सिक्का राजबल का प्रतीक माना जाता है वह 'रुबल' कहलाया।

आंग्ल भूमि के सिक्के भी सारे संस्कृत नामावली धारण करते हैं। 'गिनी' नाम का सोने का आंग्ल सिक्का इक्कीस शिलिंग मूल्य का होता था। वह 'गिनना' उर्फ 'गण' या गणन आदि अर्थ से पड़ा।

आंग्ल देश के सुवर्ण के एक सिक्के को सोव्हरीन (Sovereign) कहते थे। यद्यपि आंग्ल प्रणाली के अनुसार उसका उच्चार सॉव्हरीन किया जाता है, तथापि उस शब्द के सारे आंग्ल अक्षरों का उच्चार 'स्व-राजन्' होता है। इसी कारण 'सॉव्हरिनटी' (Sovereignty) शब्द वास्तव में 'स्व-राजन्-इति' ऐसा पूरा संस्कृत है।

इंग्लैण्ड में 'पौंड स्टर्लिंग' नाम का एक सिक्का है। वह 'पौंड स्तर लिंग' ऐसा संस्कृत शब्द है। भगवद्‌गीता के 'पौण्ड्र दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदर:' वचन से प्रतीत होता है कि किसी भारी या महत्वपूर्ण (वजनदार) वस्तु को प्राचीन वैदिक परम्परा में 'पौण्ड', यह विशेषण लगाया जाता था। उसी का बिगड़ा प्रचलित उच्चार पौण्ड है। उसके ऊपर शिवलिंग का छप्पा होने से वह पौण्ड (यानि भारी) स्तर का शिवलिंग कहलाया। अत: उस सिक्के को पौण्ड उर्फ 'पौण्ड स्तरलिंग' यह सार्थ नाम पड़ा।

उसी प्रकार आंग्ल भूमि में भारी वजन को भी 'पौण्ड' कहते हैं अर्थात् वह भी पौण्ड शब्द का ही प्रचलित आंग्ल प्राकृत रूप है।

पौण्ड स्तरलिंग के २० भाग किए गए हैं। प्रत्येक भाग एक शिलिंग कहलाता है। ऐसे २० शिलिंग मिलाकर एक पौण्ड स्तरलिंग बन जाता है।

इससे तो हमारा निष्कर्ष और भी पक्का साबित होता है। क्योंकि २० शिवलिंगों को (यानि शिलिंगों को मिलाकर) एक बड़े स्तर का यानि पौण्ड उर्फ 'पौण्ड स्तरलिंग' बनता है। शिलिंग से कम मूल्य के सिक्के को 'पेन्स्' या 'पेनि' कहा जाता है जो 'पणस्' (यानि एक पैसा) ऐसा संस्कृत शब्द है।

डोरोथी चॅपलीन लिखती हैं कि, "प्राचीन भारत में सोने या चाँदी के सिक्के को 'नाणा' कहते थे। क्योंकि उनके ऊपर पार्वती की या पार्वती और महादेव की प्रतिमा होती थी"। मराठी भाषा में अभी भी सिक्के को 'नाणें' कहते हैं।

ईरान आदि देशों में प्राचीनकाल में सिक्के को दीनार कहते थे। दीनों का आधार या दैनन्दिन जीवन का आधार, इस अर्थ का वह शब्द है।

११

वजन और नापों के प्राचीन संस्कृत नाम

विश्व भर के नापों और वजनों के नाम संस्कृत में हैं। यह एक और प्रमाण है कि वैदिक संस्कृति सारे विश्व में फैली थी।

इस सम्बन्ध में हम पहले ही देख चुके हैं कि पौण्ड नाम का आंग्ल देश में प्रयोग होने वाला वजन वास्तव में संस्कृत 'पौंड्र' शब्द का बिगड़ा रूप है।

औषधि आदि तौलने के लिए औंस (Ounce) नाम का आंग्ल वजन होता है। वह वास्तव में 'अंश' (यानि 'भाग') इस अर्थ का संस्कृत शब्द है।

डेकाग्राम (दशाग्राम) Centigram आदि नाप या वजन दशग्राम, शतग्राम ऐसे संस्कृत हैं।

वही संस्कृत आँकड़े सर्वत्र प्रयोग होते आ रहे हैं। जैसे सेण्टिपीड (Centepede) नामक एक कीटक है जो 'शतपाद' ऐसा संस्कृत नाम है।

पेंटॅगॉन (Pentagon), ऑक्टगॉन (Octagon) आदि शब्द भी पंचकोण, अष्टकोण आदि पूरे संस्कृत ही हैं। केवल उनका उच्चारण कुछ विकृत बन गया है।

डॉक्टर लोग शरीरान्तर्गत हृदय या नाड़ियों की धड़कन आदि आँकने के लिए दोनों कानों में रबर की नलियाँ लगाकर रोगी के शरीर की जाँच करते रहते हैं। उस नलियन्त्रणा को पाश्चात्य परिभाषा में 'स्टेथॉस्कोप' (Stethoscope) कहा जाता है जो 'स्थितिस् पश्यति' का टेढ़ा-मेढ़ा रूप बन गया है।

बायोस्कोप (Bioscope), टेलिस्कोप (Telescope) आदि शब्दों

में पश्य शब्द का ही अपभ्रंश स्कोप ऐसा उल्टा हो गया है। स्पेक्टैक्युलर, स्पेक्ट्रम (Spectacular, Spectrum) आदि शब्दों में भी वही देखने का या निरीक्षण करने का भाव है।

इण्ट्रॉस्पेक्शन (Introspection) यह अन्तर्पश्यन् यानि अपने भीतर (अन्दरूनी) निरीक्षण करना इस अर्थ का संस्कृत मूलक शब्द है।

मीटर (metre)शब्द पाश्चात्य लेखन में मात्रा(उर्फ मेत्रे)ऐसा लिखा जाता है। उससे वह 'मात्रा' यह संस्कृत शब्द सिद्ध होता है। नाप के अर्थ से 'मात्रा' शब्द वैदिक व्यवहार में आयुर्वेद, कपड़े का व्यापार, काव्य, संगीत आदि भिन्न-भिन्न शाखाओं में प्रचलित है। पाश्चात्य गणित में 'पेरिमिटर' शब्द है जो वस्तुतः संस्कृत 'परिमात्रा' शब्द है। पॅरॅमीटर नाम का अन्य शब्द भी नाप के अर्थ का ही है।

थर्मामीटर (Thermometre) शब्द वस्तुतः धर्ममात्रा ऐसा संस्कृत है। धर्म का अपभ्रंश 'थर्म' हुआ है। धर्म या धाम ऊष्णता को कहते हैं।

बैरोमीटर यह 'भार मात्रा' शब्द है। हवा का दबाव कितना है इसका नाप इस यन्त्र से ज्ञात होता है।

इस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्राचीनकाल से रूढ़ तोल और नाप की संस्कृत भाषा-प्रणाली यह सिद्ध करती है कि अनादिकाल से कृस्त-धर्म के प्रसार तक विश्व में सर्वत्र वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा ही थी।

पाठकों को संशोधन तथा अन्वेषण की दिशा बतलाने के लिए ऊपर कुछ उदाहरण दिए गए हैं। अधिक चिन्तन, मनन, शोध आदि करने पर और कई उदाहरण मिलेंगे। अतः कोई पाठक यह न समझ बैठे कि इतने ही सीमित उदाहरण हैं।

१२

आधुनिक शास्त्रों की संस्कृत परिभाषा

वर्तमान सामान्य सार्वजनिक धारणा यह है कि आधुनिक काल में कृस्ती देशों ने भौतिकशास्त्र और यन्त्रनिर्माण आदि में प्रगति करने के कारण शास्त्रीय परिभाषा सारी उनकी अपनी यूरोपीय ही होनी चाहिए।

वह निष्कर्ष सही नहीं है। कृत, त्रेता, द्वापर आदि युगों में मानव द्वारा समस्त विद्या और कलाओं पर प्रभुत्व पाने के कारण शास्त्रीय परिभाषा आज भी लगभग वही है जो प्राचीन संस्कृतभाषी काल में थी। क्योंकि कृतयुग में निर्माण की गई मानवी पीढ़ी सारी विधा और कलाओं में देवों के समान प्रवीण थी। अत: आज के शोधों और यन्त्रों आदि के नाम प्राचीन-काल से संस्कृत ही चले आ रहे हैं। जिन शोधों या यन्त्रों को हम आधुनिक मानते हैं वे प्राचीनकाल में भी हो चुके थे। अतः उनकी परिभाषा प्राचीन-काल से ही प्रचार में थी। बीच में कुछ समय तक वह परिभाषा ढकी रही। अब फिर उसी परिभाषा का पुनरुत्थान हुआ है।

कृमि कीटनाशक रसायनों का ही उदाहरण लें। इन्हें anti-biotics कहते हैं। जीव शब्द का ग्रीक अपभ्रंश 'बीव्' हुआ। यद्यपि bio लिखकर उसका उच्चारण आजकल 'बीव' के बजाय 'बायो' किया जाता है। उस शब्द के आरम्भ का भाग अँटाय (anti) कहलाता है जो वस्तुत: 'अन्ती' (यानि अन्त करने वाला) है। तो 'अन्ति-जीव' उर्फ जीवांतक, यह शब्द आज की पाश्चात्य परिभाषा में अनेक क्षेत्रों में भारी मात्रा में प्रचलित है।

अँटाय का अर्थ आंग्ल भाषा में 'विरोधी' भी होता है, जो 'अन्त' करने वाले के अर्थ में संस्कृत मूलक है।

छिद-छिन्न यानि छेद करना, काटना, मारना इस अर्थ का संस्कृत शब्द है। इसका भी प्रयोग वर्तमान युग की पाश्चात्य परिभाषा में विपुल मात्रा में होता रहता है। उसे वे Cide लिखकर उसका उच्चार संस्कृत पद्धति से 'छिद' न करते हुए 'साइड' करते हैं। अत: यह स्व-छिद Suicide (यानि आत्महत्या), पितृछिद Patricide (पिता की हत्या करने वाला), मातृछिद Matricide(माता का हत्यारा), कीटनाशक (Insecticide), जन्तुनाशक (Germicide), कीटनाशक (Pesticide), आदि कितने ही शब्द हैं। उल्लिखित रसायन आधुनिक कारखानों में बनते हैं। अत: उनके नाम सारे संस्कृत भाषा से लेने पड़ते हैं क्योंकि प्राचीनकाल में युगों-युगों में सारे मानवों के पूरे व्यवहार संस्कृत में ही चलाए जाते थे।

आजकल घर-घर में रेडियो(Radio)और टेलिविजन (Television) मनोरंजन, वार्ता और ज्ञान-प्रसार के यन्त्र लगे होते हैं। इन यन्त्रों के भी नाम संस्कृत हैं जैसे रेडियो (Radio)। यह 'र व द्यु' यानि आकाशवाणी या आकाशध्वनि अर्थ का शब्द है जिसमें 'रव' यानि 'ध्वनि' और 'द्यु' यानि आकाश।

टेलिविजन (Television) यह "तलवीक्षण" संस्कृत शब्द युगल है। आंग्ल भाषा में Tele (टेली) यानि "तल" शब्द "दूर" के अर्थ से रूढ़ है। जैसे दूरध्वनि (Telephone), दूरसन्देश (Telegraph), दूर-सम्पर्क (Tele-communication) इत्यादि। तथापि उसका मूल संस्कृत अर्थ है किसी वस्तु का "तल"। जैसे सागरतल, धरातल, रसातल, सरोवर का तल, घड़े का तल इत्यादि। किसी वस्तु का तल उसकी अन्तिम मर्यादा होती है। उससे दूर क्या हो सकता है? इसी दृष्टि से आंग्ल भाषा में "तल" का अर्थ "दूर" हुआ और Television में उसी अर्थ में "तल" उर्फ "टेली" शब्द जुड़ा हुआ है।

इसी शब्द का दूसरा भाग है vision (विजन)।

आधुनिक विद्युतशास्त्र में विद्युत्प्रवाह को "करंट्" (current) कहा जाता है जो आंग्ल भाषा में रूढ़ हुआ चूक उच्चार है। क्योंकि आंग्ल वर्णमाला में 'C' अक्षर का उच्चार 'स', 'श' या 'ष' भी होता है। यह बात ध्यान में रखकर Current शब्द का उच्चार "सरुत" किया जाए

तो पता चलता है कि वह संस्कृत शब्द है क्योंकि सरन्त, सरिता, संसार आदि शब्द प्रवाही वस्तु के द्योतक होते हैं।

मोटरगाड़ी का आंग्ल शब्द भी ऊपर कहे नियम के अनुसार "सर" ऐसा उच्चारा जाए तो उसकी वास्तविकता का पता चलता है। वाहन का गुण ही सरना होता है। अतः आंग्ल उच्चार "कार" ठीक नहीं है। "सरने वाली" इस अर्थ से car शब्द मूलतः संस्कृत "सर" शब्द ही है।

ध्वनि उर्फ आवाज के अर्थ से "सोन्" शब्द आधुनिक पाश्चात्य परिभाषा में प्रयुक्त होता है। जैसे Supersonic, ultra-sonic इत्यादि। हिन्दी में वही शब्द सुनना, सुनाना आदि रूप धारण करता है। वह सारे संस्कृतमूलक हैं। संस्कृत में 'श्रवण', 'श्राव्य' इत्यादि शब्द हैं उन्हीं का आंग्ल, फ्रेंच आदि भाषा में सोन् या सों आदि उच्चारों से प्रयोग होता है।

पाश्चात्य प्रणाली के पुरातत्व में डार्विन के उत्क्रान्तिवाद को प्रमाण मानकर बन्दर का शरीर बदलते-बदलते मानव शरीर "उत्क्रान्त" हुआ, ऐसी मान्यता रूढ़ है। हम उसे नहीं मानते। प्रत्येक जीव मात्र का सृजन ईश्वर ने (या "प्रकृति"ने कहें) स्वतन्त्र रूप से किया है। तथापि जिन मर्कटों से मानव बने, ऐसा आधुनिक विद्वान मानते हैं, उनके नाम भी संयोगवश पाश्चात्य विद्वानों ने "शिवपिथेकस्" (Shivapithacus) और "रामपिथेकस्" (Ramapithacus) आदि रखे हैं। वैदिक देवताओं के नाम उनकी पुरातत्वीय परिभाषा में रूढ़ होना भी प्राचीन विश्व में वैदिक संस्कृति के प्रसार और प्रभाव का एक ठोस प्रमाण है। लाखों वर्ष पूर्व पृथ्वी पर भयानक महाकाय पशु घूमते थे। उन्हें पाश्चात्य प्रणाली में "दिनोसार" कहते हैं जो स्पष्टतया "दानवासुर" यह वैदिक पौराणिक कथाओं से ही लिया हुआ शब्द है।

आधुनिक विज्ञान में आणविक शक्ति का पता लगा है। उस आणविक शक्ति का प्रयोग युद्ध में, कारखानों में, विद्युत् उत्पादन में, रोगोपचार इत्यादि में किया जा रहा है। उस विज्ञान में अणु को मॉलेक्यूल (molecule) कहते हैं। वस्तुतः वह शब्द "मूल कणानां कुलम्" इस अर्थ का "मूलकुल" ऐसा संस्कृत ही है। परन्तु उसका उच्चार यूरोपीय ढंग से "मॉलेक्यूल" ऐसा रूढ़ हुआ है।

उसी प्रकार परमाणु को अॅटम् (atom) कहा जाता है। वह वास्तव में आत्मा शब्द है। मानव शरीर का जैसा अदृश्य किन्तु सचेत आत्मा होता है उसी प्रकार जड़ जगत में मिट्टी आदि जो पदार्थ हैं उनका मूल, सचेत, सम्वेदनाक्षम कण भी अॅटम् (आत्मा) ही कहलाता है।

वर्तमान समय में सैकड़ों मील दूर प्रवास कर प्रहार करने वाले प्रभावी "मिसाइल" (missile) नाम के अस्त्र शत्रु पर छोड़े जाते हैं। वह missile संस्कृत "मूसल" शब्द है। उसी से महाभारत का एक भाग "मोसल पर्व" कहलाता है। यादवों पर मूसल गिरकर महान् संहार होने के कारण यादवों को द्वारिका प्रदेश छोड़ना पड़ा। उसी भीषण परिस्थिति का वर्णन मौसल पर्व में आता है। मूसल के आकार का वह अस्त्र होने के कारण उसे 'मूसल' कहा जाता था। उसी का बिगड़ा हुआ आधुनिक उच्चार है "मिसाइल"।

संस्कृत देववाणी होने के कारण उसका ढाँचा तो आदर्श बना हुआ है ही किन्तु उस भाषा द्वारा ऋषि-मुनियों ने कहे तथ्य भी बड़े शास्त्रीय, सनातन और शाश्वत् हैं। उदाहरणार्थं "जगत्" शब्द लें। "ज-गत" का अर्थ है "वह जो गतिमान" यानि "अस्थिर" है। यहाँ प्रतिक्षण परिस्थिति बदलती रहती है। मस्तिष्क में चलने वाले विचार, धमनियों में बहने वाला रुधिर, पाचनक्रिया, शरीर के कण आदि सब में बदल होती रहती है। उसी अर्थ का दूसरा शब्द है "संसार"। "संसरति-इति" यानि जो प्रवाह के समान गतिमान होता है। इस प्रकार प्रत्येक संस्कृत शब्द में उसके अर्थ की पूरी व्याख्या अन्तर्भूत होती है।

चन्द्र, सूर्य, तारे, ग्रह आदि सभी में हलचल, अस्थिरता, चेतना, अदल-बदल अटल है। कोई एक व्यक्ति लेख या पत्र लिखकर छोड़ दे और कुछ समय के पश्चात् उसे पढ़े तो वह अवश्य उसमें कुछ बदल करना चाहेगा, क्योंकि बीते समय में उसके विचार बदल गए होते हैं। अत: उस समय जो आलेख जँचा था या योग्य प्रतीत हुआ था वह अब कुछ समय पश्चात् अयोग्य लगने लगता है।

अन्य भाषाओं की भाँति संस्कृत शब्दों के अर्थ काकतालीय न्याय से ऊटपटाँग नहीं बैठाए गए हैं। देवभाषा संस्कृत में प्रत्येक मूल धातुओं के कुछ अर्थ हैं। उन्हीं अर्थों का आविष्कार विविध धातुसाधित शब्दों में होता है।

१३

पाश्चात्य प्रणाली की पाठ्य-पुस्तकों की संस्कृत परिभाषा

पाश्चात्य विद्याशाखाओं के नाम संस्कृतमूलक होना भी वैदिक संस्कृति के प्राचीन विश्व प्रसार का एक महत्वपूर्ण प्रमाण है। वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत ऋषि-मुनियों के आश्रम में शिष्यगण विद्यार्जन हेतु कई वर्ष तक निवास करते थे। वहाँ बोलचाल और पढ़ाई संस्कृत में होने के कारण विविध विद्याशाखा और ग्रन्थों के नाम संस्कृत में ही होना अनिवार्य था। आश्चर्य है कि वही नाम अभी तक हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि विश्व के आरम्भ से कृत, त्रेता तथा द्वापर युगों में सारे विश्व की शिक्षा संस्कृत में ही होती थी।

मानसशास्त्र का उदाहरण लें। इसे आंग्ल भाषा में "सॉयकॉलोजी" कहा जाता है जो psychology ऐसा लिखते हैं। उसके आरम्भ का अक्षर p फालतू पड़ गया है जिसका उच्चारण नहीं होता। उसी प्रकार मन को "सायची" (psyche) कहते हैं किन्तु उसमें भी p अक्षर का उच्चार नहीं किया जाता। वह "सायची" शब्द संस्कृत 'शोच" का अपभ्रंश है। वास्तव में वह "शोच-लग" याने मन किस तरह "शोचता" है इस प्रश्न से "लगी" (संलग्न) विद्या है। अत: सॉयकॉलोजी यह "शोच लग" ऐसा संस्कृत शब्द है।

यूरोपीय परिभाषा में "लग" शब्द का ही लॉजी यह विकृत रूप बायालॉजी, जूलॉजी ऐसी कई विद्याशाखाओं को लगाया जाता है।

खगोल ज्योतिष को आंग्ल भाषा में अॅस्ट्रॉनॉमी (astronomy) कहते हैं जिससे "तारा" (उर्फ तारका) यह संस्कृत शब्द है। आंग्ल शब्द "स्टार" (star) और इस्लामी शब्द "सितारा" सभी "तारका" इस संस्कृत शब्द के अपभ्रंश हैं।

गणित को आंग्ल भाषा में "मॅथेमॅटिक्स" (mathematics) कहते हैं। "मथ-मस्तिष्क" (यानि मस्तिष्क का आँकड़ों के उलझन से मन्थन कराने वाला विषय) इस अर्थ का शब्द है।

अंकगणित को आंग्लभाषा में अॅरिथमेटिक (arithmetic) कहते हैं जो "अर्थमानिक" यानि "द्रव्य का नाप-तोल-हिसाब-किताब" इस अर्थ का शब्द है।

भूमिति को आंग्ल भाषा में "ज्यॉमेट्री" (geometry) कहा जाता है जो वास्तव में संस्कृत "ज्या-मात्रा" यानि "भूमि की नपाई" इस अर्थ का शब्द है।

वनस्पतिशास्त्र का "बॉटनी" (Botany) ऐसा आंग्ल नाम है। हिन्दी की आम बोलचाल में पेड़ को बूटा कहा जाता है। उसी प्रकार आयुर्वेदिक औषधियों को "जड़ी-बूटी" कहा जाता है जिसमें "मूल" को "जड़" कहते हैं और बूटी से पेड़ के पत्ते आदि का निर्देश होता है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि मूल संस्कृत "बुटं-बुटे-बुटानि" आदि रूपों से विविध प्रकार के वृक्षों के अध्ययन के विषय का नाम बुटनि उर्फ बॉटनी पड़ा हो। आंग्ल शब्दकोष में उस शब्द की व्युत्पत्ति फ्रेंच, लॅटिन् और ग्रीक बतलाई जाती है किन्तु वे सभी भाषाएँ संस्कृत की शाखाएँ होने के कारण और बूटा, जड़ी-बूटी आदि शब्द-प्रयोग भारतीय बोलचाल में रूढ़ होने के कारण बूटा शब्द संस्कृत ही होना चाहिए।

आजकल कॉलेजों में पढ़ाए जाने वाले गणित विषय के अन्तर्गत ट्रिग्नॉमेट्री (Trigonometry) नाम का विषय होता है। वह त्रि-गुण मात्रा या त्रिकोण मात्रा इन दोनों अर्थों में पूर्णतया संस्कृत है।

भौतिकशास्त्र को "फिजिक्स्" (Physics) कहा जाता है जो संस्कृत "पश्य" इस शब्द का बिगड़ा रूप है। मानव शरीर की पाँच ज्ञानेन्द्रियों से जिन पार्थिव पदार्थों को "देखा" या अनुभव किया जाता है वही फिजिक्स

विषय में अन्तर्भूत होने के कारण उन्हें प्रत्यक्ष दिखने वाले या अनुभव होने वाले इस अर्थ से पश्य (Pashya) कहते-कहते उसका अपभ्रंश "फिजिक्स" बन गया।

रसायनशास्त्र का आंग्ल नाम केमिस्ट्री (Chemistry) है। प्राचीन-काल में अन्य धातुओं को सुवर्ण में बदलने के शास्त्र को "अल्केमि" कहते थे। उसमें "अल्" यह निरर्थक अरबी उपपद है। "केमि" यह शब्द किमयाशास्त्र तथा "हेमक्रिया" यानि दूसरी धातुओं को सुवर्ण में बदल देने वाली रासायनिक क्रिया से पड़ा है।

यूरोपीय विद्या शाखाओं में "स्त्री" अन्त्यपद कई विषयों को लगता है जैसे डेंटिस्ट्री, केमिस्ट्री इत्यादि। वह "शास्त्र" शब्द का अपभ्रंश है।

आंग्ल गणित में संख्याओं को मिलाना हो तो उसे "अॅड्" (add) कहते हैं जो "अधिक" इस संस्कृत शब्द का ही आधा अधूरा रूप है। भाग देने को "डिव्हाइड" (divide) कहते हैं जो "द्विविध" शब्द है।

एक से दस तक के अंकों के नाम, जो यूरोपीय परिभाषा में हैं, वे लगभग सारे संस्कृत अंकनामों के ही अपभ्रंश स्पष्टतया दिखाई देते हैं क्योंकि लाखों वर्ष तक विश्व के लोगों की शिक्षा संस्कृत में ही होती थी।

ज्योग्रफी, जिऑलॉजी, कॅलिग्राफी आदि सारे शब्द भी कैसे संस्कृत-मूलक हैं उसका भी हमने इस ग्रन्थ में अन्यत्र निर्देश किया है।

किसी उद्योग में विविध कारोबार के आँकड़े उपलब्ध कराने वाली विद्याशाखा को स्टॅटिस्टिक्स् (Statistics) कहते हैं जो 'स्थितिस्-तक्षति' इस अर्थ से बना संस्कृत शब्द है। पूरी स्थिति को आँकड़ों के द्वारा आँकना या जानना यह स्थितिस्-तक्षति का अर्थ है।

१४

विश्व प्रसृत वैदिक विद्या प्रणाली

वर्तमान यूरोपीय शिक्षा पूर्णतया संस्कृत वैदिक परम्परा की ही है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि लाखों वर्ष पूर्व तक लगातार सारे विश्व के लोगों को वैदिक पद्धति की संस्कृत माध्यम द्वारा गुरुकुलों में दी गई शिक्षा की ही वह गहरी छाप है।

यद्यपि वर्तमान पाश्चात्य शिक्षा में वैदिक विद्या का कुछ भी अंश सम्मिलित नहीं है तथापि उस विद्या-प्रणाली की परिभाषा पूरी तरह से वैदिक-संस्कृत ही बची रहना अपने-आप में कितनी बड़ी बात है। जैसे ऐतिहासिक खण्डहरों में सैकड़ों वर्ष तक प्राचीन भूमि में दबा हुआ यदि कोई नारियल प्राप्त हो तो उसके अन्दर का पानी या खोपरा तो सूखा या सड़ा-गला या नष्ट दिखाई देगा किन्तु उसका बाहरी भाग कठिन होने के कारण साबुत रह जाएगा। वैदिक शिक्षा पर भी वही नियम लागू है। उस प्राचीन वैदिक विद्या का अन्तर्गत मुख्य भाग तो सूखकर लुप्त हो गया किन्तु उसकी बाहरी परिभाषा का ढाँचा अभी तक ज्यों-का-त्यों कायम है। यही हम इस अध्याय में देखेंगे।

प्राथमिक शिक्षा

शिशुओं की पढ़ाई के जो प्रारम्भिक वर्ग होते हैं उन्हें आंग्ल भाषा में 'प्राइमरी' कहते हैं। पहली पुस्तक को 'प्रायमर' कहा जाता है। प्रायमरी यह 'प्रथमरि' शब्द का अपभ्रंश है। उस संस्कृत शब्द का 'थ' अक्षर लुप्त होकर शेष शब्द का 'प्रमी' के बजाय 'प्राइमरी' ऐसा उच्चार रूढ़ हो गया है।

आंग्ल भाषा में 'प्राइम्' (Prime) का अर्थ मुख्य या प्रथम भी होता है। इसका कारण भी यही है कि संस्कृत में 'प्रथम' का अर्थ पहले क्रमांक का यानि मुख्य ऐसा भी होता है।

मॅट्रिक्युलेशन

महाभारतीय युद्ध में जो अपार संहार हुआ उससे वैदिक शासन और गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली टूट-फूट गई। तत्पश्चात् यूरोप में जो शिक्षा-प्रणाली आरम्भ हुई उसमें शालांत परीक्षा को 'मॅट्रिक्युलेशन्' नाम दिया गया है। वर्तमान विद्या विभूषित लोगों से यदि पूछा जाए कि 'मॅट्रिक्युलेशन' यह लम्बा-चौड़ा नाम क्यों दिया गया? इसका अर्थ क्या है? तो प्राय: कोई भी विद्वान 'मॅट्रिक्युलेशन' का शब्दार्थ नहीं बता पाएगा।

आंग्ल शब्दकोष में दिया विवरण भी आधाअधूरा और अटपटा-सा ही है। शब्दकोष कहता है कि 'मॅटिम्' यानि 'रजिस्टर' यह उसका मूल है। किन्तु उससे 'मॅट्रिक्युलेशन' शब्द का अर्थ प्रतीत नहीं होता और न ही 'मॅटिम्' का रूप 'मॅट्रिक्युलेशन' क्यों बना इसका पता लगता है।

मॅटिम् यानि रजिस्टर अर्थ से यदि यह सूचित करना हो कि मॅट्रिक्युलेशन परीक्षा उत्तीर्ण करने वालों के नाम किसी एक बही या रजिस्टर में अंकित किए जाते हैं अत: उस परीक्षा को मॅट्रिक्युलेशन कहते हैं तो वह भी जँचता नहीं क्योंकि विश्व में जितने प्रकार की भी परीक्षाएँ होती हैं उन्हें उत्तीर्ण करने वालों के नाम भी तो विशिष्ट बही या रजिस्टर में लिखे जाते हैं। तो उन परीक्षाओं को भी मॅटिम् या मॅट्रिक्युलेशन क्यों नहीं कहते?

वास्तव में बात यह है कि 'मॅट्रिक्युलेशन' यह 'मातृ कुलेषु न' ऐसा संस्कृत वचन है। उसका अर्थ यह है कि विद्यार्थी उस स्तर तक पहुँच गया है जहाँ वह अब माता के साथ घर में रहकर अगली विद्या पढ़ नहीं सकेगा। उसे उच्च विद्या प्राप्त करने के लिए घर के बाहर कहीं और जाना पड़ेगा। प्रचलित शिक्षा-प्रणाली को देखते हुए वह यथार्थ भी है क्योंकि कई विद्यार्थी मॅट्रिक्युलेशन तक की शिक्षा विद्यालय न जाते हुए घर पर अध्ययन कर ही उत्तीर्ण कर लेते हैं, तत्पश्चात् उन्हें अवश्य किसी उच्चतर विद्यालय में प्रवेश लेना अनिवार्य हो जाता है।

इण्टरमीजिएट्

मॅट्रिक्युलेशन से अगली परीक्षा का नाम है इण्टरमीजिएट् (Intermediate) जो 'आन्तर्मध्यस्थ' इस संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है। शालांत परीक्षा यानि मॅट्रिक्युलेशन तथा बी. ए. (B. A.) का अभ्यासक्रम इनके बीचले दो वर्षों के अध्ययनस्तर को इण्टरमीजिएट् (Intermediate) कहा जाता है—जो संस्कृत 'आन्तर्मध्यस्थ' शब्द का बिगड़ा उच्चार है।

बॅचलर यानि ब्रह्मचारी

वर्तमान पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली में इंटरमीजिएट् स्तर के पश्चात् 'बैचलर' स्तर होता है। 'बैचलर' इस आंग्ल शब्द का अर्थ है 'ब्रह्मचारी'। वैसे भी बैचलर और ब्रह्मचारी शब्दों में 'ब-च-र' अक्षर समान होने के कारण पाठक यह जान सकते हैं कि ब्रह्मचारी शब्द का ही अपभ्रंश बॅचलर हुआ है जहाँ 'म्ह' के स्थान पर 'ल' अक्षर रूढ़ हो गया।

वास्तव में वर्तमान पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली में शिक्षा और ब्रह्मचर्य का कोई सम्बन्ध नहीं। तब भी कॉलेज में चार-पाँच वर्ष की शिक्षा पूरी करने वाले छात्र को 'ब्रह्मचारी' की उपाधि दी जाती है। वह इसलिए कि प्राचीन वैदिक संस्कृत-शिक्षा-प्रणाली में गुरुकुल शिक्षा पूर्ण करने वाले सारे ब्रह्मचारी ही हुआ करते थे। उस समय ब्रह्मचर्य और विद्यार्जन का अटूट सम्बन्ध था। वर्तमान यूरोपीय प्रणाली में, चाहे किसी भी शाखा का विद्यार्थी हो—जैसे इन्जीनियरी, डॉक्टरी, शास्त्र, वाणिज्य आदि सबको ब्रह्मचारी की उपाधि ही दी जाती है जैसे B. A., B. Com., B. Sc., M. B. B. S., B. A. LL. B., B. L., इत्यादि। प्राचीन गुरुकुलों में तो पाँच या आठ वर्षीय कुमार व्रतबंध के बाद वनकुंजों में स्थित गुरुकुल में भेजा जाता था। वहाँ वह १२ से २० वर्ष तक निवास कर विद्या पूरी कर लेता था। तब तक वह ब्रह्मचारी ही रहता था। अतः वह विद्या पूर्ण किया हुआ ब्रह्मचारी ही कहलाता था। वह अभी भी यूरोपीय प्रणाली में वही कहलाता है, यद्यपि वह विवाहित हो। प्राचीन वैदिक गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली विश्वव्यापी होने का यह कितना बड़ा प्रमाण है।

आश्चर्य की बात यह है कि महिलाओं को यूरोपीय भाषाओं में कभी

बेंचलर यानि ब्रह्मचारी नहीं कहा जाता यद्यपि वह अविवाहित हों। उन्हें व्हर्जिन (Virgin) कुमारी या अविवाहित (Unmarried) कहा जाता है। तथापि जहाँ शैक्षणिक उपाधि का प्रश्न हो वहाँ उन्हें B. Arch. B.Com., B. A., B. Sc., आदि यानि ब्रह्मचारी की उपाधि ही दी जाती है। इससे और भी स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक साम्राज्य टूटकर लगभग ५८०० वर्ष बीत जाने पर भी विद्यमान पाश्चात्य विद्या-प्रणाली पर वैदिक शिक्षा परम्परा की कितनी गहरी छाप अभी शेष रह गई है।

स्त्रियों की शिक्षा

स्त्रियों के शरीरधर्म, घरेलू जीवन के प्रति उनका झुकाव तथा गृह-कार्य के प्रति उनकी लगन और उनकी सुरक्षा आदि का ध्यान रखकर स्त्रियों को पूरी शिक्षा वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत घर ही में देने का पूरा प्रबन्ध होता था। उसे गृहलक्ष्मी मानकर सारे कौटुम्बिक व्यवहारों में स्त्री का निर्णय ही प्रमाण माना जाता था। स्त्री गृहस्वामिनी थी। महालक्ष्मी का सम्मान उसे दिया गया था। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' यह उस समय का आदर्श था। 'न स्त्रिस्वातिन्त्र्यमर्हति' इस मनु उक्ति का कई लोग गलत अर्थ लगाते हैं। उसका अर्थ है कि स्त्री को आप्तस्वकीयों के प्यार भरे संरक्षण के बगैर—एकाकी, असुरक्षित तथा लापरवाह और असहाय अवस्था में कभी नहीं छोड़ना चाहिए। अत: स्त्रियों की उच्चतम शिक्षा परिवार के अन्तर्गत ही करने की पूरी सावधानी बरती जाती थी।

बाहरी जीवन की क्रूर स्पर्द्धा, उथल-पुथल, भ्रष्टाचार, प्रलोभन और पराए जनों की काकदृष्टि इन सब संकटों से स्त्री को पूर्णतया सुरक्षित रखने की वैदिक जीवन-पद्धति में पूरी व्यवस्था थी।

स्त्री जीवन घरेलू वातावरण में ही रमता है, फलता है, फूलता है। अत: उसको उस प्राकृतिक झुकाव से निकालकर बाहरी जीवन में पुरुषों के व्यवसायों में झोंक देना भारी भूल है जिससे समाज का विघटन होता है, भ्रष्टाचार बढ़ता है, वैवाहिक जीवन टूटता है। अपत्यों का संवर्द्धन और संगोपन ठीक प्रकार न हो पाने से बड़े होकर वही बालक रोगी, दुर्बल अथवा कुमार्गी बन जाते हैं।

मास्टर यानि महास्तर

बॅचलर परीक्षा के पश्चात् दो वर्ष की पढ़ाई के अन्त में यूरोपीय शिक्षा प्रणाली में (Master) की उपाधि दी जाती है। वह वस्तुत: "महास्तर" ऐसा संस्कृत शब्द है। प्रवीण या शिक्षक ऐसे दो और अर्थ "मास्टर" शब्द के आंग्ल भाषा में होते हैं। वे अर्थ भी संस्कृतमूलक ही हैं, क्योंकि जो भी व्यक्ति किसी विषय में ऊँचे स्तर का ज्ञान प्राप्त कर लेता है वह उस विद्या में प्रवीण भी होता है और दूसरों को सिखा भी सकता है।

डॉक्टरेट (Doctorate)

महास्तर (Master) से भी ऊपरली उपाधि को पाश्चात्य प्रणाली में डॉक्टर (Doctor Ph. D.) कहते हैं। वस्तुत: डॉक्टर तो वह होता है जो रोग की चिकित्सा करता है। फिर भी किसी विद्या शाखा में उच्चतम विद्वान को भी डाक्टर ही कहा जाता है, यद्यपि रोगचिकित्साशास्त्र से उसका कोई सम्बन्ध न हो। इस रहस्य का उत्तर भी वैदिक परम्परा से ही प्राप्त होता है। संस्कृत वैदिक परिभाषा उच्चतम ज्ञानियों को "कवि" ऐसी संज्ञा है। जैसे भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं "किम् कर्म किम् अकर्म इति कवयोऽयत्र मोहिता:", उसी प्रकार रोग चिकित्सक वैद्य को भी वैदिक प्रणाली में कविराज ही कहते हैं। वैदिक प्रणाली के कवि शब्द के दो अर्थ—उच्चतम ज्ञानी तथा रोगचिकित्सक ज्यों-के-त्यों आधुनिक पाश्चात्य प्रणाली में इसलिए कायम हैं कि प्राचीनकाल में सर्वत्र वैदिक शिक्षा ही होती थी।

दीक्षापाल

आंग्ल भाषा में शिष्य को (disciple) कहते हैं जिसका उच्चार "डिसायपल" किया जाता है। यदि उस शब्द से C अक्षर निकालकर उसे (disciple) ऐसा लिखा जाए तब भी उसका उच्चार डिसायपल ही होगा। आंग्ल भाषा में "C" के उच्चारों का बड़ा घोटाला है क्योंकि "C" पर स, श, प और क ऐसे चार उच्चार ऊटपटांग पद्धति से लादे गए हैं। यह जानकर और "C" उस शब्द में क्यों पड़ा है यह सोचकर "डिसायपल" शब्द में "C" का स्थान बदलकर यदि dicsiple ऐसा लिखकर उसका

स्वाभाविक उच्चार किया जाए तो वह होगा "दीक्षा पाल" जो ठेठ संस्कृत शब्द है। केवल इतिहास की उथल-पुथल में आंग्लभाषा में उस शब्द के अक्षर उलट-पुलट गए हैं।

दीक्षापालन

अब डिसिप्लिन (discipline) शब्द को देखें। इसका अर्थ होता है शिस्त। इस शब्द से भी "C" अक्षर हटाकर उसे disipline ऐसा लिखा जाए तब भी उसका उच्चार डिसिप्लिन ही होगा। तो फिर उसमें "C" अक्षर क्यों है ? वह इसलिए कि उस अक्षर का बड़ा महत्त्व है किन्तु वह अक्षर स्थानभ्रष्ट हो गया है। उस शब्द को dicsipline ऐसा लिखकर देखें। अब उसका उच्चार होगा "दीक्षापालन"। बस डिसिप्लिन शब्द का अर्थ ठेठ दीक्षापालन-आज्ञापालन-शिस्त यही है।

किन्तु यह सोचने की बात है कि जो आंग्ल शब्दकोषकार आंग्ल भाषा के उच्चतम विद्वान समझे जाते हैं, वे ऊपर उल्लिखित जैसे अनेक शब्द पूर्णतया संस्कृत शब्द हैं, इस तथ्य से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं। अतः उन विद्वानों को भी उनके इस गहरे न्यून की जानकारी दिलाना हमारा कर्त्तव्य बन जाता है। इस प्रकार विश्व के वैदिक इतिहास के पुनर्लेखन कार्य में विभिन्न भाषाओं के शब्दकोष संस्कृत के आधार पर दुबारा तैयार करवाने का विशाल कार्य भी सम्मिलित करना होगा।

दीक्षांतरी

आंग्ल भाषा में शब्दकोष को "डिक्शनरी" (dictionary) कहते हैं। उसमें थोड़ी-सी त्रुटि है। यदि उसमें एक और अक्षर T मिलाकर उसे dictionary ऐसे लिखा जाए तो "दीक्षांतरी" शब्द बनता है। यदि गुरु द्वारा दी हुई दीक्षा में एकाध शब्द कठिन लगे तो "दीक्षांतरी" ग्रन्थ में देखकर उसके अर्थ का पता लगाया जा सकता है। इस प्रकार शब्दकोष का डिक्शनरी (dictionary) यह शब्द वास्तव में संस्कृत दीक्षांतरी शब्द है। इस प्रकार अंग्रेजी शब्दों को थोड़ा इधर-उधर टटोलने से उसका संस्कृत स्रोत जान पड़ता है। जैसे किसी महिला पर गुण्डों ने हमला कर

उसके गले से मोतियों की माला को झटका दिया तो कुछ मोती लुढ़ककर खो जाते हैं, कुछ टूट-फूट जाते हैं और कुछ माला में ही बंधे रह जाते हैं उसी प्रकार वैदिक संस्कृति से समय-समय पर जो खींचातानी होती रही है। उसमें संस्कृत शब्दों की टूट-फूट होकर उसी छिन्न-भिन्न अवस्था में वे शब्द विभिन्न भाषाओं में पिरोए गए।

दीक्षण

आंग्ल भाषा में डिक्शन (diction) शब्द है। उसका अर्थ है भाषा-शैली। वह "दीक्षण" ऐसा पूर्णतया संस्कृत शब्द है। उसका केवल उच्चारण भिन्न हो गया है जबकि diction का उच्चार वास्तव में दीक्षण ही किया जाना चाहिए।

आंग्ल भाषा में छात्र को स्टूडेंट (student) कहते हैं। उस शब्द का विश्लेषण कर उसे यदि S-tu-dent ऐसे तोड़कर लिखा जाए तो वह "स-तु-अध्यवन्त:" यानि "वह जो अध्ययन करने वाला" व्यक्ति यानि छात्र ऐसा उसका अर्थ स्पष्ट प्रतीत होता है।

शिक्षक के लिए आंग्ल भाषा में जो टीचर (Teacher) उर्फ "तिचर" शब्द है उसके आरम्भ में "नी" अक्षर लगाकर वह शब्द पढ़ा जाए तो वह "नीतिचर" संस्कृत शब्द ही दिखलाई पड़ता है। वैदिक प्रथा में शिष्य को नीतिबद्ध आचरण सिखलाना ही गुरु का परम कर्त्तव्य होता है।

गुरुकुलम

आंग्ल-प्रणाली में विश्वविद्यालय की शिक्षा-व्यवस्था या शिक्षाक्रम को "करिक्युलम" (Curriculum)कहते हैं। इस शब्द में दो-बार अंतर्भूत u अक्षर को देखते हुए उस शब्द का सही उच्चार होगा—गुरुकुलम्। अब हम पाठक का ध्यान "गौ" शब्द के प्रति खींचना चाहेंगे। उस शब्द को आंग्ल भाषा में कौ (Cow) कहा जाता है। इससे पता चलता है कि आंग्ल भाषा में जहाँ "क" उच्चार होता है वहाँ मूल संस्कृत उच्चार "ग" होता है। अतः आंग्ल भाषा में जो कुरुकुलम् शब्द है वह स्पष्टतया संस्कृत "गुरुकुलम्" शब्द का ही बिगड़ा उच्चार है। इस शब्द से तो किसी पाठक

के मन में इस बात की जरा भी शंका नहीं रहनी चाहिए कि प्राचीन यूरोप में सर्वत्र गुरुकुलम् में ही सारी शिक्षा होती थी।

शालाभ्यास:

आंग्ल महाविद्यालयों में पढ़ाई का जो पूरा ब्यौरा होता है उसे सिलेबस (Syallabus) कहा जाता है जो वास्तव में शालाभ्यास: इस संस्कृत शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है।

आंग्ल शब्द "स्कूल" (School) भी जरा सूक्ष्म जाँच करने पर संस्कृत "शाला" शब्द का अपभ्रंश प्रतीत होता है। यहाँ यह बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि संस्कृत में जहाँ "अ" उच्चार है उसे आंग्ल भाषा में "ओ" का रूप दे दिया गया है। यह प्रथा भारत में बंगला उच्चार की भी रही है। जैसे "मनमोहन" नाम को बंगाली व्यक्ति "मोनोमोहन" कहेगा। उसी प्रकार संस्कृत नास (यानि "नाक") शब्द का आंग्ल भाषा में "नोज" (nose) ऐसा उच्चार किया जाता है। गम-गच्छ-गति वाले "ग" का उच्चार आंग्ल भाषा में "गो" होता है। अत: "शाल" शब्द अंग्रेजी में shool उर्फ school कहकर बोलने की प्रथा पड़ गई है। उस शब्द में 'C' अक्षर इस कारण फालतू पड़ा है कि आंग्ल वर्णमाला में S तथा C दोनों अक्षरों का 'स' उच्चार रूढ़ है।

स्कूल की पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात् कालेज (college) की पढ़ाई (पाश्चात्य प्रणाली में) प्रारम्भ होती है। ऊपर कहा नियम ध्यान में रहे कि संस्कृत 'अ' का आंग्ल उच्चार कई बार 'ओ' (O) होता है। उस दृष्टि से यदि College शब्द Callege लिखा जाए तो पता चलेगा कि वह वास्तव में 'शाल-ज' ऐसा संस्कृत शब्द है। शाल-ज यानि शाला से जिसका जन्म हुआ अर्थात शाला का पाठ्यक्रम समाप्त होने पर जहाँ पढ़ाई करनी पड़ती है। अत: कालेज भी शालज ऐसा संस्कृत शब्द इसीलिए है कि वही प्राचीन वैदिक संस्कृत शैक्षणिक परिभाषा अब भी पाश्चात्य देशों में टिकी हुई है।

विद्वान अध्ययनशील व्यक्ति को आंग्लभाषा में Scholar कहते हैं। यद्यपि उस शब्द का रूढ़ उच्चार 'स्कॉलर' है तथापि मूलत: 'C' अक्षर का

उच्चार 'स' या 'श' होने से वह 'शालर' ऐसा संस्कृत शब्द है। शालर यानि शाला से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाला व्यक्ति अर्थात् विद्वान या अध्ययनशील मनुष्य।

उत्तरी यूरोप में जो स्वीडन देश है उसकी राजधानी स्टॉकहोम से सौ-डेढ़-सौ मील पूर्व में 'उपशाला' नगर है जो इस बात का प्रमाण है कि यूरोप में 'शालाएँ' उर्फ गुरुकुल होते थे। उसका उपशाला नाम इसलिए पड़ा होगा कि मुख्य या वरिष्ठ शाला राजधानी स्टॉक होम में होती होगी।

इस प्रकार यूरोप में आज भी जो पूरी संस्कृत शैक्षणिक परिभाषा की चौखट कायम है वह इसलिए कि महाभारतीय युद्ध तक (यानि कृस्तपूर्व वर्ष ३७६० तक) वहाँ वैदिक शासन के अन्तर्गत पूरी वैदिक संस्कृत शिक्षा प्रचलित थी।

१५

यूरोपीय व्यवहार के संस्कृत वाक्यप्रचार

यूरोपीय व्यवहार में आज भी जो अनेक संस्कृत वाक्यप्रचार कायम हैं वे इस बात के प्रमाण हैं कि कृस्तपूर्व वर्ष ३७६० तक यानि महाभारतीय युद्ध तक वहाँ वैदिक शासन के अन्तर्गत संस्कृत भाषा का प्रयोग होता था।

लगभग दो वर्ष पूर्व लन्दन के BBC दूरदर्शन ने 'ज्वेल इन दि क्राउन' (Jewel in the Crown)नाम का चित्रपट (सिनेमा) प्रेक्षकों को दिखाया था। वह 'मुकुटमणि' इस संस्कृत उक्ति का ही ठेठ अनुवाद है।

स्वागतम् शब्द संस्कृत प्रणाली में प्रचलित है। सु-आगतम् शब्दों की सन्धि 'स्वागतम्' बना है। उसका अर्थ है कि किसी का आगमन शुभ, फलदायी तथा आनन्दवर्द्धक हो। अंग्रेजी में उसी का अनुवाद Welcome शब्द भी उसी अर्थ से उतना ही प्रचलित है। वेलकम् का अर्थ भी शुभ आगमन होता है। इतना ही नहीं अपितु 'कम्'(यानि आगमन) शब्द, 'आगम' शब्द से 'आ' निकल जाने से केवल 'गम' रह गया है। और संस्कृत 'ग' का आंग्ल भाषा में 'क' उच्चार बन जाने के कारण (जैसे 'गौ' को 'कौ' कहना) गम का उच्चार 'कम' ऐसा किया जाता है।

यूरोपीय भोजन में जो पहला पदार्थ परोसा जाता है उसका नाम है 'सूप', जो संस्कृत शब्द है। दाल या सब्जी पकाकर उसका जो द्रव्य सत्व निकाला जाता है उसे कहते हैं 'सूप'। जगन्नाथपुरी के मन्दिर में दिन-भर भण्डारे का जो भोजन पकाते हैं उन्हें सूपकार ही कहा जाता है। आसव, प्रसव आदि शब्द उसी 'सू' धातु से बने हैं।

प्राचीन समय में राजमहल या मन्दिरों के प्रांगण के चारों ओर ऊँची

दीवारें होती थीं। उसी प्रकार नगरों को समेटने वाली ऊँची और मोटी दीवार होती थी। उसे संस्कृत में कोट कहते हैं। अत: भारत में नगरों के नाम नगरकोट, अक्कलकोट, भद्रकोट, सिद्धकोट, लोहकोट, अमरकोट आदि होते थे। ठेठ उसी प्रकार इंग्लैण्ड में भी चार्लकोट, नार्थकोट, हीथकोट आदि नाम होते थे। फ्रांस में भी हवेलियों के तथा नगरों के ऐसे कोट होते थे। उसे Chateau ऐसा लिखते-लिखते उसका फ्रेंच उच्चारण शॅटो बन गया। तथापि मूलत: वह संस्कृत कोट शब्द ही है। भारत में जैसे राजकोट नाम के नगर हैं वैसे इंग्लैंड में भी राजा को किंग(King) कहते हैं इसलिए वहाँ किंग्जकोट(Kingscote)नगर पाए जाते हैं। इंग्लैंड में घोड़ों की दौड़ के लिए जो नगर प्रसिद्ध है उसका नाम है Ascort। उसका उच्चारण 'असकॉट' किया जाता है जबकि वह मूलत: अश्वकोट नाम है।

शरीर पर सारे वस्त्रों के ऊपर जो वस्त्र पहना जाता है उसे आंग्ल भाषा में कोट (Coat) कहते हैं। Overcoat, Coat of mail, Coat of paint आदि वाकप्रचार आंग्ल भाषा में बड़े प्रचलित हैं। वह कोट शब्द संस्कृत मूलक ही है क्योंकि बाड़े या नगर की सर्वत: रक्षा करने वाली जैसी दीवाल होती है वैसे ही मानवीय शरीर को धूप, पानी, गन्दगी, हवा आदि से सुरक्षित रखने वाली वस्त्र रूपी दीवार को भी कोट ही कहा जाता है।

न्यायालय के लिए आंग्ल शब्द है कोर्ट (Court)। उसमें 'र' अक्षर फालतू पड़ गया है। उसे निकालकर यदि वह शब्द पढ़ें तो वह भी कोट है। वह इस कारण कि प्राचीनकाल में न्याय माँगने के लिए राजमहल के कोट में प्रवेश करना पड़ता था। उसी कोट का आंग्ल भाषा में प्रचलित अपभ्रंश कोर्ट बना पड़ा रह गया है।

फ्रांस में Agincourt नाम का एक स्थान है जहाँ युद्ध हुआ था। वह वास्तव में अग्निकोट है जहाँ प्राचीनकाल में विशाल यज्ञ हुआ करते थे।

आंग्ल भाषा में दूसरे के काम में दखल देने वाले को कहा जाता है This is none of your business यानि 'यह तुम्हारा धन्धा नहीं है (इसमें दखल मत दो)', वह 'अव्यापारेषु व्यापार:' इस संस्कृत उक्ति का ही अनुवाद है।

जर्मन भाषा में आभार या धन्यवाद को 'डॅंक्' कहते हैं। आंग्ल भाषा

में जिसके प्रति आभार मानते हों उसे 'थेंक यू' (Thank you) कहा जाता है जो 'धन्या: यूयम्' इस संस्कृत वाक्यप्रचार का अपभ्रंश है। धन्य का थंक बन गया और यूयम् शब्द सुकड़कर 'यू' ही रह गया।

संस्कृत में प्रत्येक व्यक्ति के नाम के पीछे सम्मानदर्शक 'श्री', 'श्रीमान', 'श्रीमती' इत्यादि शब्द लगाए जाते हैं। इटली में इसी प्रथा के सीनॉर और सीनोरीटा आदि उपपद लगते हैं। 'श्री' के बजाय 'सेर' रूप भी इटली में प्रयुक्त होता है। जैसे मार्कोपोलो (यानि 'महर्षि पाल') नाम के प्रवासी के प्रवासवर्णन के ग्रन्थ पर उसके नाम के पीछे 'सेर' लगाकर 'सेर मार्कोपोलो' ऐसा नाम छपा है। आंग्ल रिवाज में वही शब्द 'सर' (Sir) ऐसा सम्मान-दर्शक लिखा जाता है।

'श्री' के स्थान पर आंग्ल भाषा में मिस्टर (Mr.) भी लिखा जाता है जो 'महास्तर' इस संस्कृत शब्द का ही विकृत उच्चार है। जैसे बंगाली लोग 'महाशय' के बजाय 'मोशाय' कहते हैं और जापानी लोग दूरभाष पर 'महाशय-महाशय' का उच्चारण 'मुसमुशी-मुसमुशी' करते हैं।

नील

वैदिक प्रथा में दैवी व्यक्ति का विशेष रंग आकाश के सदृश "नीला" माना गया है। अत: प्रभु राम या कृष्ण का रूप "घननील" कहा जाता है। राजा के अश्व को भी कई बार "नील-अश्व" कहा जाता है। यही प्रथा आंग्ल भाषा में कायम है। वहाँ प्यारे-लाड़ले बालक या व्यक्ति को blue eyed यानि नील चक्षु वाला कहा जाता है। इसी कारण ईजिप्त उर्फ मिस्र देश की नदी का प्राचीन वैदिक संस्कृति का दिया नाम "नीलगंगा", "नील-कृष्णा", "नील सरस्वती" आदि हुआ करता था। उस प्रदेश से संस्कृत भाषा का लोप होने के कारण उस नदी का नाम केवल नील (Nile) रह गया। आगे चलकर उस प्रदेश के लोग यह भूल गए कि संस्कृत में नील शब्द एक विशिष्ट रंग का द्योतक है। नील (Nile) को वे केवल एक निरर्थक नाम समझने लगे। तथापि उस नदी का जल नीला दीखता है यह जनस्मृति कायम रही। अत: वे उसे Blue Nile यानि "नीली नील" कहने लगे जो हास्यास्पद और अनाड़ी द्विरुक्ति बनकर रह गई। भारतीयों को

परिचित ऐसा ही दूसरा उदाहरण दिया जा सकता है। वैदिक क्रियाओं में गोमूत्र का प्रयोग होता है। तथापि अतिपरिचय के कारण सामान्य अनपढ़ या गंवार लोग यह भूल जाते हैं कि "गोमूत्र" का अर्थ ही गाय का मूत्र है। अत: वे धार्मिक विधि की सामग्री जुटाते समय किसी को कहते हैं कि "अरे भाई गाय का गोमूत्र ले आना।" गाय को गोमूत्र की अनवधानी की तरह ही वर्तमान बोलचाल में नील (उर्फ नाईल) नदी को Blue Nile यानि नीली नील कहने की प्रथा पड़ गई है जो सर्वथा अनाड़ी और अशोभनीय है। तथापि अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी जहाँ-तहाँ उसे नीली नील(Blue Nile) कहा जाता रहे तो किसको कौन रोके ?

महाभारत के समय की गाली "गाय" !

इंग्लैण्ड की राजधानी लन्दन में सड़कों पर मोटरगाड़ियों का ताँता लगा रहता है। ऐसी अवस्था में कभी-कभी पादचर स्त्रियाँ सड़क पार करने को अधीर होकर तेज गति से जाने वाले वाहनों के बीच से ही जब सड़क पार करने लगती हैं तो बड़े परिश्रम से ब्रेक दबाकर गाड़ी को रोकने वाला चालक क्रोधभरी आँखों से उस स्त्री को देखता और उसके मुख से उद्‌गार निकलता है You silly Cow यानि "अरी ओ मूर्ख गाय"।

पाठकों को शायद यह जानकर आश्चर्य होगा कि संस्कृत बोलचाल में प्राचीनकाल से स्त्रियों के प्रति क्रोध व्यक्त करते समय उन्हें गौ उर्फ गाय कहा जाता था। महाभारत के वन पर्व में इसका उदाहरण है। अर्जुन को द्रौपदी अपना दु:ख सुनाते समय कहती है कि कौरव सभा में उसे घसीटकर लाते समय उसे 'गौ' ऐसी गाली दी गई। गाय को जो चाहे किसी समय पकड़कर ले जाए, अपनी गौशाला में बाँध रखे और जब चाहे उसका दूध दोह ले—इस भावना से हो सकता है कि स्त्रियों को क्रोधी व्यक्ति 'गौ' कहकर अपमानित करता है। ठेठ वही महाभारतीय वाक्प्रचार आज अनजाने इंग्लैण्ड में भी प्रचलित है।

आंग्ल भाषा में किसी व्यक्ति या किसी कृति के प्रति क्रोध या तिरस्कार व्यक्त करते समय डॅम् इट् (Damn it) ऐसा कहा जाता है। Damn शब्द में जो अक्षर हैं वे हैं 'दमन'। तो(Damn it)का अर्थ है 'दमन करो',

"दबा दो', 'कुचल डालो'। अत: वह पूरा शब्द ही संस्कृत है।

उसी का दूसरा रूप है Condemn जिसका उच्चार 'कंडेम्' ऐसा किया जाता है। किन्तु उसमें जो अक्षर हैं वे हैं 'संदमन' यानि पूरी तरह से दमन करना। कंडेम का वही अर्थ है। उस शब्द में C अक्षर का उच्चार 'क' न करते हुए 'स' ही रखा जाए तो उसका 'संदमन' यह मूल संस्कृत रूप प्रतीत होगा।

आंग्ल भाषा में 'प्रसन्न होना', 'कृपा करना' आदि विनती को Be pleased या Pleased be ऐसा कहा जाता है। वह 'प्रसीदो भव' इस संस्कृत वाक्प्रचार का ही बिगड़ा रूप है। संस्कृत कथाओं में फलाने ने बड़ी तपस्या की और भगवान से या अन्य स्वामी से कहा, 'भगवन् प्रसीदऽ प्रसीदऽ'। ऐसा बार-बार उल्लेख आता है। उसी 'प्रसीद' शब्द का यूरोपीय भाषाओं में 'प्लसीद' ऐसा अपभ्रंश हुआ है। 'र' का उच्चार 'ल' किया जाना या संस्कृत 'ल' का उच्चार यूरोपीय भाषा में 'र' किया जाना स्वाभाविक बात है। कई बच्चे 'र' को 'ल' और 'ल' को 'र' कहते देखे जाते हैं।

दूरभाष ऊपर उठाकर संभाषण आरम्भ करते समय यूरोपीय प्रथा में 'हलो' कहकर दूसरे व्यक्ति को पुकारा जाता है। इसका भी मूल स्रोत संस्कृत भाषा में ही पाया जाता है। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल में 'हले शकुन्तले', 'हल विदूषक' ऐसा कहकर ही एक-दूसरे को पुकारा जाता है। यूरोप में वही 'हल' उद्गार 'हलो' बनकर रह गया है क्योंकि संस्कृत 'अ' का उच्चार यूरोप में गोलाकार 'ओ' बना पाया जाता है।

संस्कृत वैदिक प्रथा में आदरणीय व्यक्ति का—जय जयकार 'चिरायु हो', 'युग-युग जीओ' आदि शब्दों से किया जाता है। इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि यूरोप के देशों में भी 'Long live' 'ला वींव' आदि वाक्यप्रचार उसी अर्थ में आज तक रूढ़ है। संस्कृत में आश्चर्य का उद्गार 'अहो' है जो आंग्ल भाषा में Ahoy यानि 'अहॉय'।

इस दिशा में यदि अन्य विद्वान भी विचार और संशोधन करें तो प्राचीन यूरोप में वही वैदिक संस्कृति थी जो भारत में थी। इसके और भी प्रमाण उपलब्ध होंगे। इस ग्रन्थ का उद्देश्य उस नई संशोधन दिशा का निर्देश करना है।

१६

राम-रावण युद्ध

बाल्मीकि रामायण को त्रेतायुग के एक राजनयिक संघर्ष का इतिहास समझकर पढ़ें तभी उसमें वर्णित अनेक परिस्थितियों का, घटनाओं का और प्रसंगों का ठीक-ठीक आकलन होता है नहीं तो वह अनेक उलझनें बनकर रह जाती हैं।

छत्रपति शिवाजी महाराज या महाराणा प्रताप की वीरगाथा को भक्तिग्रन्थ समझकर उनकी प्रतिमाओं के आगे पापक्षालन की याचना करना जितना गलत होगा उतना ही रामायण को भक्तिग्रन्थ मानकर पुण्य कमाने हेतु रामायण का पारायण करना गलत है। रामायण, भगवद्‌गीता जैसे ग्रन्थों को बार-बार पढ़ने का एक ही उद्देश्य होना चाहिए कि पाठक को उनसे राम या अर्जुन जैसा कोई लौकिक कार्य करने के लिए कड़ा संघर्ष करने की प्रेरणा मिलती है।

बाल्मीकि जी की रामायण में राम को केवल एक वीर योद्धा के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। उसमें ईश्वरीय चमत्कारों का कहीं भी उल्लेख नहीं है। रामायण का दूसरा नाम 'दशग्रीवस्य वध:' है। उससे भी यही बोध होता है कि वह रावण के विरुद्ध किए युद्ध का इतिहास है।

रावण को दशग्रीव की संज्ञा उसके बल के कारण पड़ी थी। दस दिशाओं से कहीं से कोई भी शत्रु आए, उसे परास्त करने की रावण की क्षमता के कारण ही उसे अलंकारिक रूप में दशग्रीव कहा जाता था जैसे किसी व्यक्ति को अष्टावधानी विद्वान कहा जाता है।

रामचन्द्र जी को प्रभु कहने की प्रथा पड़ी है। प्रभु का अर्थ है स्वामी।

जब रामचन्द्र जी प्रबल और शक्तियान राजा साबित हुए तब सारे ही उन्हें प्रभु कहा करते ।

राम भक्तिदेव हैं या ऐतिहासिक वीर ?

भारतीय सेना की छावनियों में भी रामचन्द्र जी को उसी भक्ति दैवत के मुलायम मल्हम के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जबकि भारतीय सैनिकों को बलवान से बलवान शत्रु को प्रदीर्घ प्रयत्नों से परास्त करने की प्रेरणा ही रामचरित से दी जानी चाहिए ।

सामान्यजन तो रामकथा को बालमीकि के बजाय तुलसीदास या कंब आदि से ही जानते हैं। दोनों में बड़ा अन्तर है। बालमीकि का राम एक वीर, कुशल सेनानी, नीतिमान शासक और कठोर योद्धा है जबकि तुलसीदास और कंब आदि ने राम को अन्धे, लूले, लँगड़े, विधवा आदि दुःखी या पापी और घोर अपराधीजनों की सांत्वना और शरण का एक मक्खन या मल्हम का मुलायम ढेला-सा बनाकर प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से रामायण, महाभारत और भगवद्गीता के आधार पर होने वाले अधिकतर वर्तमान प्रवचन बड़े निकम्मे ढंग से प्रस्तुत किए जाते हैं। ब्रह्ममाया, आत्मा, परमात्मा आदि के निरर्थक आडम्बरी विवेचन से भरे यह प्रवचन मुफ्त की प्रतिष्ठा, आदर और धन कमाने के प्रभावी साधन बन गए हैं। उनसे दृढ़ संकल्पी वीर योद्धा और प्रवीण शासक तैयार होने के बजाय निष्क्रिय, उदासीन, भिखारी संन्यासियों की ही उपज हो रही है। ऊपर उल्लिखित तीनों ग्रन्थ वीर कथाएँ हैं। अतः उनके सार्वजनिक दुरुपयोग पर रोक लगाना आवश्यक है ।

इसी हेतु इस अध्याय में हम बालमीकि रामायण का सही रूप पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहते हैं।

रामायण का प्रगत युग

आधुनिक पाश्चात्य प्रणाली के विद्वान यह समझ बैठे हैं कि समय जितना प्राचीन हो उतने ही लोग जंगली और अप्रगत माने जाने चाहिएँ। कृत, त्रेता, द्वापर, कलि आदि युगों की जो वर्णसंख्या वैदिक परम्परा में

प्रचलित है उसके अनुसार रामचन्द्र जी का काल आज से दश लक्ष वर्ष पूर्व का बैठता है। कुछ लोग इतने प्राचीन काल की सभ्यता की कल्पना ही नहीं कर पाने के कारण रामायणकाल की प्राचीनता को बिना किसी ऐतिहासिक आधार के मनमाने ढंग से कम आँकना चाहते हैं।

रामायण की प्राचीनता आँकने के कुछ शास्त्रीय प्रमाण भी पाए जाते हैं। उदाहरणार्थ हनुमान जी जब लंका में दाखिल हुए तो उन्होंने वहाँ चार दाँत वाले हाथी देखे। आधुनिक प्राणी शास्त्रज्ञों का कहना है कि चार दाँत वाले हाथी इस धरती पर अवश्य होते थे किन्तु उन्हें नष्ट हुए दस लाख वर्ष बीत गए। तो क्या रामायण प्रसंग दस लाख वर्ष प्राचीन होने का यह एक ठोस प्रमाण नहीं है। तथापि रामायण का जो भी समय प्रत्येक पाठक निजी बुद्धि के अनुसार लगाना चाहे लगाए, फिर भी यह सबको मानना होगा कि रामायण एक अति प्राचीन कथा है। तब भी उसमें सात मंजिले प्रासाद, अनेक भयानक शस्त्रास्त्र, युद्धनीति, राजनीति, विमान और तीन लोकों से सम्पर्क आदि का जो वर्णन आया है उससे यह प्रतीत होता है कि उस समय की जनता वर्तमान बीसवीं क्रुस्ती शताब्दी के लोगों से कई गुना अधिक प्रगत थी। आजकल के अमेरिका के शास्त्रज्ञ केवल चन्द्रमा पर यान उतार सकते हैं। हो सकता है कि रामचन्द्र जी के समय मंगल-चन्द्रमा और पृथ्वी ऐसे किन्हीं तीन लोकों में यातायात, स्पर्द्धा और संघर्ष चलता हो। तभी त्रैलोक्यनाथ, त्रिभुवनसुन्दर आदि वाक्प्रचार रूढ़ हुए हैं। ऐसे वाक्प्रचारों के विश्लेषण से भी इतिहास का कुछ पता लगता है।

मानव की अधोगति

कृत्र, त्रेता, द्वापर, कलि आदि युगों के जो इतिहास पुराणों में और रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में वर्णित हैं उनसे लगता है कि मानवों में वैमनस्य और संघर्ष तो सदा ही होता रहा है। अन्तर इतना ही दीखता है कि कृतयुग के मानव देवतुल्य, क्षमता-आचार-विचार स्तर के थे। जैसे-जैसे समय बीतता गया वैसे-वैसे मानव की आयु, शारीरिक सौन्दर्य, शक्ति, सत्यवादिता, नैतिक आचरण आदि का पतन होता चला गया। किसी भी नवनिर्मित वस्तु का यही तो हाल होता है। वह जितनी पुरानी होती है

उतनी दुर्बल और अकार्यक्षम होती जाती है।

युग जितना प्राचीन हो उतने लोग अप्रगत या जंगली होने चाहिएँ यह पाश्चात्य धारणा इसलिए बन गई है कि पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार पशु से मानव बना और उसने जंगली अवस्था से धीरे-धीरे प्रगति की। वैदिक धारणा इसके बिल्कुल उल्टी है। मानव सर्वज्ञाता परमपिता परमेश्वर द्वारा बनाया होने के कारण मानव वंश का आरम्भ विश्वकर्मा, गन्धर्व, धन्वंतरी आदि विविध शास्त्रों के प्रवीण एवं धुरन्धर व्यक्तियों से हुआ।

अतः हमारे अनुमान से रामायणकाल की सभ्यता सर्वदृष्टि से बड़ी प्रगत थी। हमारे समय में जैसे अमेरिका और रूस यह दोनों देश सूट-बूट पहनने वाले एक ही कृस्ती धर्म के अनुयायी होते हुए भी कट्टर शत्रुत्व के कारण उनमें प्रदीर्घ संघर्ष चल रहा है, उसी प्रकार रामायणकाल में रामकुल और रावण के राक्षसकुल, इनमें तीव्र संघर्ष था। रूस-अमेरिका के पास जैसे अनेक भयानक और चमत्कारी शस्त्रास्त्र हैं वैसे ही वशिष्ठ, विश्वामित्र और रावण आदि के पास थे। रामायण उस संघर्ष का और राम की अन्तिम विजय का इतिहास है। यह बात ध्यान में रखकर यदि रामायण पढ़ी जाए तभी उसका सही आकलन होता है जबकि प्रचलित प्रवचनों से रामायण की कई बातें संभ्रम निर्माण करने वाली गुत्थियाँ ही बनकर रह जाती हैं।

रामायण पहले हुई या वाल्मीकि ?

रामायण के आरम्भ की ही बात लीजिए। कई लोग समझते हैं कि वाल्मीकि जी ने रामायण पहले लिखी और जैसा उन्होंने लिखा ठीक वैसी ही रामायण की घटनाएँ हुईं। यदि यह सही होता तो वाल्मीकि एक प्रगाढ़ ज्योतिषी के नाम से प्रख्यात होते और शायद उनका फलज्योतिष का भी कोई अलौकिक ग्रन्थ होता जिससे वह पाठकों को ग्रहगणित की वह अनोखी कुंजी बतलाते जिससे आगामी युगों के पूरे इतिहास के इतिहास बारीकी से पहले ही आँके जा सकते हैं।

सच तो यह है कि रामायण की घटनाएँ बहुत पुरानी हो जाने पर ही वाल्मीकि जी ने उनका संशोधन कर उसका इतिहास लिखा। इस सम्बन्ध में नारद जी से उनका संवाद हुआ वह देखें। जैसे कोई आधुनिक लेखक

किसी वयोवृद्ध ज्ञानी व्यक्ति से यह मार्गदर्शन चाहेगा कि "मुझे किसी साहसी और वीर व्यक्ति का चरित्र लिखना है तो विद्यमान ज्ञात व्यक्तियों में से मैं किसका चरित्र लिखूं—शिवाजी, नेपोलियन, हिटलर या और कोई ? उसी प्रकार त्रिखंड में घूमने वाले नारदजी से भी वाल्मीकि जी ने वैसा ही मार्गदर्शन चाहा कि "सबसे पराक्रमी, यशस्वी, स्वरूपवान और आदर्श ऐसा कौन व्यक्ति हुआ जिसका मैं चरित्र लिखूं" ? तब नारद जी ने राजा रामचन्द्र का नाम सुझाया। अतः रामायण लिखने वाले बाल्मीकि रामचन्द्र जी के जीवनकाल के कई वर्ष बाद हुए। यदि ऐसा नहीं होता तो विश्व में सबसे स्वरूपवान, पराक्रमी, यशस्वी आदि कौन विद्यमान है यह उन्हें स्वयं दिखाई देता, नारदजी को पूछने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

अतः रामचन्द्र जी के समय यदि कोई बाल्मीकि हों तो वे रामायण लिखने वाले बाल्मीकि नहीं थे।

क्या कैकेयी ने सचमुच सौतेली माँग की ?

अब दूसरा मुद्दा लीजिए। दशरथ के राजकुल में सब व्यक्तियों का एक दूसरे के प्रति बड़ा सद्भाव था ऐसा सारी जनता का विश्वास है। यदि यह सही हो तो कैकेयी के एकाएक राम को वनवास भेजकर भरत को युवराज घोषित कराने का हठ करने की बात बड़ी असंगत और तर्कहीन लगती है। उस युग में ज्येष्ठतम पुत्र को ही राजगद्दी का अधिकार था। आज भी वही मान्यता है।

दशरथ द्वारा अतीत में कैकेयी को दो वर दिए जाने की जो बात है वह भी बड़ी अटपटी-सी लगती है। क्योंकि कैकेयी को स्वयं उसका कोई स्मरण नहीं था और उसकी दासी मंथरा ही उसे बार-बार इस सम्बन्ध में उकसाती बताई गई है। उसी प्रकार राम के यौवराज्याभिषेक की तैयारी की सूचना भी मंथरा ही कैकेयी को देती है।

गुरुजनों की चढ़ाई की योजना

इससे यह प्रतीत होता है कि वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों राम और लक्ष्मण को रावण के विरुद्ध प्रदीर्घ चढ़ाई करने के लिए सिद्ध कर रहे थे।

किन्तु दशरथ ने उस योजना से भयभीत होकर राम को यौवराज्यपद की जिम्मेदारियाँ सौंपकर अयोध्या से बाहर भेजने की योजना को नाकाम करना चाहा था। अतः अयोध्या के राजमहल में जो संघर्ष था वह कैकेयी और दशरथ में न होकर दशरथ और उसके राजगुरु वशिष्ठ और विश्वामित्र में था। इसका एक ठोस प्रमाण यह था कि राम को वनवास भेजने के सम्बन्ध में राजमहल में जो विवाद चल पड़ा उसमें वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों चुप थे। राजकुल में उनका इतना अधिकार था कि कैकेयी की अन्यायी माँग पर वे अपना प्रतिकूल निर्णय देकर कैकेयी को चुप करा सकते थे।

कैकेयी एक त्यागी राष्ट्रभक्त

राम को वनवास भेजकर भरत को राजगद्दी दी जाए यह कैकेयी की दुराग्रही माँग केवल एक नाटक था, एक बहाना था जो वशिष्ठ और विश्वामित्र ने मिलकर कैकेयी से कहलवाया। वैसे तो कैकेयी बड़ी वीर और त्यागी नारी थी। कौशल्या के जितना ही उसका राम के प्रति वत्सल-भाव था। तथापि राक्षसों का संशय जागृत कराए बिना राम को राज-महल से निकालकर अरण्य में सेनागठन करने के लिए भेजना आवश्यक था। इस हेतु कैकेयी को यह सुझाया गया कि एक सौतेली माँ के नाते पुराने भूले-बिसरे वरों को निमित्त बनाकर यदि वह माँग करे कि राम को सीमा पार भेजकर भरत को ही युवराज घोषित किया जाए तो वह बाहरीजनों को स्वाभाविक-सा प्रतीत होगा। अतः कैकेयी की भूमिका एक दुष्ट, सौतेली, स्वार्थी माँ की नहीं अपितु एक त्यागी राष्ट्रभक्त की थी। रामचन्द्र जैसे सद्गुणी ज्येष्ठ युवराज को प्रदीर्घ वनवास के लिए भेजकर अपने ही पुत्र के लिए गद्दी माँगने वाली कैकेयी बड़ी दुष्ट और अन्यायी थी—आदि। आगामी पीढ़ियों की भर्त्सना के आघात कैकेयी ने अपने-आप पर झेलकर वशिष्ठ और विश्वामित्र की गहरी युद्धयोजना का मार्ग खुला कर दिया।

दशरथ का विरोध

राजगुरुओं की उस योजना का तीव्र विरोध करने वाला दशरथ ही एकमात्र व्यक्ति था। अतः वह गुप्तरूप से रामचन्द्र के युवराज्याभिषेक की तैयारी कर रहा था, जिसका केवल मन्थरा को ही पता लगा था। वशिष्ठ और विश्वामित्र को भी दशरथ से धांधली की आशंका थी। किन्तु उस विरोध की कीमत प्राण त्याग करके ही राजा दशरथ को चुकानी पड़ी।

रावण के विरोध में राम और लक्ष्मण को खड़ा करने की वशिष्ठ और विश्वामित्र की योजना कई वर्षों से चल रही थी। क्योंकि रावण के राक्षस सेनानी अयोध्या के निकटवर्ती प्रदेशों में चढ़ाई कर वशिष्ठ और विश्वामित्र के गुरुकुलों में भी आतंक मचाने लगे थे। अतः उन राक्षस सेनानियों से युद्ध करने के लिए विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को बार-बार ले जाते। एक बार दशरथ ने आक्षेप करते हुए सुझाया कि "मेरे नन्हें राजकुमारों की बजाय मैं स्वयं एक लाख सैनिकों के साथ आपकी यज्ञ-शाला(यानि गुरुकुल)की रक्षा करने आता हूं।' इस पर विश्वामित्र ने इस सूचना को अस्वीकृत कर राम लक्ष्मण को ही ले जाने का निश्चय प्रकट किया।

युद्धनीति की दीक्षा

यज्ञ रक्षण के लिए जाते समय और लौटते समय राम लक्ष्मण को विश्वामित्र रणनीति, राजनीति, शस्त्रास्त्रविद्या आदि की ही शिक्षा देते थे। ऐसे ही एक अवसर पर यज्ञभूमि से लौटते हुए विश्वामित्र राम लक्ष्मण को सीधे मिथिला नगरी ले गए जहाँ सीता से राम का विवाह निश्चित हो जाने पर दशरथ, कौशल्या आदि को सन्देश भेजा गया और उन्हें मिथिला बुला लिया गया। सामान्य व्यवहार में ऐसा कभी नहीं होता। पढ़ाई के लिए गुरुकुल में रहे शिष्यों को माता-पिता के सुपुर्द किया जाता है, तत्पश्चात् माता-पिता अपने अपत्यों का विवाह कराते हैं।

जनक से सन्धि

अतः यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि रावण से जो युद्ध करना था उसके लिए विश्वामित्र ने जनक की सेना भी रावण के विरुद्ध राम का

साथ दे, इसलिए सीता से राम का विवाह कराने की योजना बनाई। उधर रावण भी आगामी संघर्ष की तैयारी में जनक से रिश्ता बनाने के लिए स्वयं वर बनकर जनक के दरबार में दाखिल हुआ जबकि उसकी अनेक स्त्रियाँ पहले थीं और सीता तथा रावण के वय में बड़ा अन्तर था।

जनक का सहाय्य चाहने की दोनों पक्षों में होड़

यह वैसी ही अवस्था थी जैसे महाभारत के समय दुर्योधन और अर्जुन दोनों ही आगामी युद्ध में श्रीकृष्ण का सहाय्य माँगने हेतु एक ही समय श्रीकृष्ण के महल में जा धमके। ठीक उसी प्रकार रावण और राम सहित विश्वामित्र जनक के दरबार में जनक से सैनिक सन्धि करने की इच्छा से पहुँचे।

रावण की हँसी क्यों हुई ?

सन् १६३६ में द्वितीय महायुद्ध आरम्भ होने के पूर्व हिटलर से सन्धि करने के लिए ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री चेम्बरलेन और उधर रूस के विदेशमन्त्री दोनों पहुँचे। हिटलर ने रूस से सन्धि कर ली और चेम्बरलेन को खाली हाथ लौटना पड़ा। निराश होकर लौटे चेम्बरलेन की दयनीय अवस्था देखकर विश्व के प्रमुख व्यक्ति चेम्बरलेन की खिल्ली उड़ाने लगे। रावण की भी वैसी ही अवस्था हो गई। वास्तव में वह आया था जनक से सन्धि करने के लिए किन्तु उस राजनयिक दाँव-पेच में राम के पक्ष में विश्वामित्र ही बाजी मार ले गए। अतः जनकसभा में रावण की बड़ी हँसी हुई।

रामलीला के अनाड़ी ढंग

रामलीला में इसे कुछ अनाड़ी ढंग से दिखाया जाता है कि जो धनुष सीता भी बड़ी सरलता से उठा लेती थीं वह उठाते-उठाते रावण हाँपकर गिर पड़ा। रामायण के प्रचलित प्रवचनों में ऐसी ही असंगत और तर्कहीन बातों पर पौराणिक लोग लम्बा-चौड़ा भाष्य करते रहते हैं और श्रोतागण उन अटपटी बातों को बड़े भक्तिभाव से सुनते रहते हैं। भला जो धनुष सीता जैसी नाजुक और उपवर कन्या भी लीलया उठा लेती थी वह महा-

शक्तिशाली रावण से नहीं उठाया गया ऐसा कभी हो सकता है ? अतः बाल्मीकि रामायण में वर्णित प्रत्येक घटना पर बारीकी से तर्कसंगत विचार करने की आवश्यकता है।

राम ने भी शर्त कहाँ पूरी की ?

धनुष उठाकर उसे प्रत्यंचा बाँधने की शर्त तो एक केवल एक बहाना या निमित्त था। वैसे देखा जाए तो राम ने भी शर्त पूरी कहाँ की ? धनुष उठाकर राम प्रत्यंचा लगाने लगा तो धनुष टूट गया। अतः असली शर्त वह नहीं थी। मुख्य बात थी जनक से सैनिक सन्धि करने की। उसके लिए रावण और राम के पक्ष में होड़-सी लगी हुई थी। उसमें विश्वामित्र ने राम के पक्ष में बाजी जीत ली और रावण को निराश होकर लंका लौटना पड़ गया। इस प्रकार विवाह-सन्धि निश्चित होने पर दशरथ, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदि सारे परिवार को बुलवाया गया। इस घटना से भी यह स्पष्ट है कि विश्वामित्र ही मुख्य सूत्रचालक थे और दशरथ की सम्मति आदि की कोई गुंजाइश ही नहीं थी।

सारे राजपुत्रों के एक साथ विवाह

जनक के घराने से केवल सीता और राम के विवाह का ही रिश्ता नहीं अपितु मानों जैसे प्रमिला-उर्मिला-शर्मिला आदि कई अन्य उसी घराने की उपवर कन्याएँ लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आदि से उसी समय ब्याह दी गईं। इससे पता चलता है कि जैसे एक डोर को अन्य डोरों के साथ बल देकर पक्का-मोटा-सुदृढ़ बनाया जाता है वैसे जनक के भाई या सेनानी आदि से इतने घनिष्ठ, इतने विपुल और इतने प्रबल सम्बन्ध जोड़ दिए गए कि जनक की प्रजा या सेना का रावण को तनिक भी साहाय्य न हो पाए।

राम का गुप्त रूप से प्रस्थान

इस सैनिक सन्धि के पश्चात् दूसरा महत्वपूर्ण कदम था राम और लक्ष्मण को गुप्तरूप से, राक्षसों को जरा भी शंका न हो पाए ऐसी रीति से,

राजमहल छोड़कर अरण्य में सेना गठन के लिए भेज देना। इसी उद्देश्य से कैकेयी के द्वारा दो वर माँगकर राम को वनवास दिलवाकर भरत को युवराज बनाने की चाल खेली गई। सारे प्रजाजनों को और राक्षसों को ऐसी घोषणा कर दी गई कि राम बेचारा क्या करे। उसे वनवास जाना ही पड़ा और भ्रातृभक्ति के कारण लक्ष्मण भी साथ निकला।

अपमानित दशरथ की मृत्यु

उधर दशरथ को बड़ा धक्का लगा। वशिष्ठ और विश्वामित्र द्वारा राम लक्ष्मण को प्रदीर्घ युद्ध के लिए राजमहल के बाहर ले जाने पर दशरथ अपने-आपको बड़ा पराभूत और अपमानित मानकर दुःखातिरेक से मृत हो गया।

राम के साथ जाने का सीता का दुराग्रह

वशिष्ठ और विश्वामित्र यह नहीं चाहते थे कि वन में राक्षसों से घनघोर युद्ध करते समय राम और लक्ष्मण को सीता की सुरक्षा की चिन्ता करनी पड़े। अतः वशिष्ठ और विश्वामित्र की योजना थी कि सीता राज-महल में ही रहे। तथापि सीता ने एक न मानी और उसने राम लक्ष्मण के साथ ही वन के लिए प्रस्थान किया। युद्ध में सहभागी होने के सीता के इस दुराग्रह से आगे किस प्रकार एक से बढ़कर एक दुर्घटनाएँ होती रहीं जिससे राम और सीता में अन्त तक कुछ अनबन-सी ही, रही यह हम आगे देखेंगे।

प्रजाजनों की उलझन

आधी रात राजमहल में यकायक अनबन की गम्भीर घटनाओं की वार्ता दास-दासी, नौकर-चाकर आदि के द्वारा प्रजाजनों में आँधी की तरह फैल गई। लोग राजमहल के बाहर इकट्ठे होने लगे। कैकेयी का हठ, राम-लक्ष्मण-सीता के वनवास जाने की तैयारी, दशरथ के दुःखविह्वल होकर मरणासन्न होने की वार्ता, इतनी अतर्क्य घटनाओं की कतार अकल्पित थी। और तो और सूर्योदय के पूर्व ही राजमहल से एक के बाद एक ऐसे

कई रथ एक साथ निकल पड़े। कई प्रजाजनों ने रथों का पीछा करना आरम्भ किया, क्योंकि वे इन उलझनभरी घटनाओं का सही पता लगाना चाहते थे।

राम ने प्रजाजनों से पीछा कैसे छुड़ाया ?

उधर राम को गुप्तरूप से अरण्य में प्रवेश कर निजी सेना संगठन आरम्भ करना था। किन्तु प्रजाजन पीछा नहीं छोड़ते थे। अत: वाल्मीकि रामायण के अनुसार राम ने सुमंत्र से कहा कि "अयोध्या की दिशा में रथ को मोड़कर पीछा करने वाले लोगों में ऐसा आभास निर्माण करें जैसे हम दूसरे मार्ग से नगर को लौट रहे हैं। तत्पश्चात् जब जनसमूह पीछे रह जाए तो फिर अपनी पूर्व निश्चित दिशा में रथ को दौड़ाना"।

यहाँ कुछ पाठक ऐसा आक्षेप करेंगे कि भगवान रामचन्द्र की जो पवित्र छवि जनमानस में अंकित है उसे क्या इस लोकवंचना के आरोप से धब्बा नहीं लगेगा ?

इस आक्षेप को हमारे कई उत्तर हैं। एक तो यह कि हमें वाल्मीकि रामायण को प्रमाण मानकर चलना है। अत: उसमें जब इस लोकवंचना का राम ने सुमंत्र को दिया आदेश स्पष्टतया उल्लिखित है तो उसे टाल देना बुद्धिमानी नहीं है। दूसरा उत्तर यह है कि वाल्मीकि रामायण की ऐसी कई बारीकियाँ जो पाठकों के दृष्टि-पथ में नहीं आई हैं, उनका योग्य विवरण देना ही इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य है। तीसरा उत्तर यह है कि किसी उच्च ध्येय के लिए जो युक्ति प्रयुक्त की जाती है उसे चालाकी नहीं कहा जाता, जैसे छत्रपति शिवाजी के जीवन में ऐसे कई प्रसंग आए जब उन्होंने निजी बुद्धिमानी से शत्रु को परास्त किया या अपने-आपको बचा लिया। अत: रामचरित से आगे भी ऐसे कई प्रसंग हम बतलाने वाले हैं जिनमें रावण के विरुद्ध चलाए प्रदीर्घ अभियान में रामचन्द्रजी ने वही चालें चलीं जो एक वीर योद्धा, कुशल सेनानी तथा राष्ट्रभक्त शासक चलाकर ख्याति प्राप्त करता है।

चेहरा ढककर सारथी का नगर प्रवेश

राम, सीता, लक्ष्मण को वन में छोड़कर जब सुमंत्र अयोध्या वापस लौटा तो उसने निजी फेटे के पल्लू से अपना चेहरा ढक लिया था, ऐसा बालमीकि रामायण में उल्लेख है। यह सावधानी इसलिए बरती गई थी कि प्रजाजन राम के सारथी को न पहचान सकें और उससे रामचन्द्रजी के प्रस्थान के बारे में कुछ पूछ न सकें।

नाव को जंगल में छुपाना

तत्पश्चात् गंगापार करने के बाद जिस नाव से वे पार गए उस नाव को लक्ष्मण ने झाड़ी में छुपा दिया ऐसा बालमीकि ने उल्लेख किया है। वह इसलिए कि यदि कोई पीछा कर रहा हो या पता करना चाहे तो उसे कोई चिह्न या सूत्र न मिले।

राम के साथ सेना थी

राम, लक्ष्मण और सीता यह तीन व्यक्ति ही राजमहल से वन गए ऐसा रामलीलाओं में जो दर्शाया जाता है वह सही नहीं है। युद्ध के लिए जब कोई राजा या सेनानी प्रस्थान करता है तो निजी अंगरक्षक दल और सेना आदि साथ अवश्य होती है। वशिष्ठ और विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को युद्धशास्त्र का जो प्रशिक्षण दिया था वह सेना का नेतृत्व करने का प्रशिक्षण था।

राम-सीता-लक्ष्मण का चलने का क्रम

वन में राम आगे, बीच में सीता और पीछे लक्ष्मण ऐसे चलते हुए रामलीलाओं में बताए जाते हैं। यह तभी हो सकता है जब राम के नेतृत्व की टुकड़ी आगे हो, बीच में सीता की सेना हो और पीछे लक्ष्मण का दल हो। यदि राम-सीता और लक्ष्मण ऐसे तीन ही व्यक्ति अरण्य में पैदल चलते होते तो वे एक साथ चलते, जैसे सामान्यतया होता है, न कि एक के पीछे एक। केवल राम, सीता तथा लक्ष्मण के नाम इसलिए लिये जाते हैं कि सेना छावनियों में प्रत्येक टुकड़ी नेता के नाम से जानी जाती है। जैसे मध्ययुगीन इतिहास में औरंगजेब और शिवाजी की लड़ाई या संघर्ष का जब

उल्लेख आता है तो इसका अर्थ यह नहीं करना चाहिए कि हाथों में ढाल-तलवार धारण किए हुए शिवाजी और औरंगजेब एक-दूसरे पर प्रहार करते थे। उनका उल्लेख तो केवल विरोधी सेनाओं के नेताओं के रूप में होता है। अत: रामायण में जब भी बाली-सुग्रीव, राम-रावण आदि किन्हीं दो व्यक्तियों के संघर्ष का उल्लेख होता है तो यह समझना बड़ी भूल होगी कि उन दो व्यक्तियों में ही झड़पें होती थीं।

भरत भेंट क्यों ?

राम आदि के प्रस्थान के पश्चात् भरत, जो राम से मिलने वन में गया वह इसलिए नहीं कि राम को वापस बुलाया जाए। भरत के साथ भारी सेना थी और भरत जैसे ही आगे-आगे कूच करता गया वैसे जहाँ-तहाँ पक्की सड़कें, तालाब, मकान आदि बनाए जाते रहे, ऐसा बाल्मीकि रामायण में उल्लेख है। भरत भेंट इसलिए हुई कि राम के सेना शिविर का अयोध्या के राजमहल को पूरा पता रहे और राम को लगातार कुमुक आदि भेजी जा सके।

भरत राम की पादुकाएँ इसलिए लाए कि रावण के ऊपर की गई चढ़ाई समाप्त होने तक राम की अनुपस्थिति में राज्य की देखभाल करते हुए राम को युद्ध-सामग्री लगातार पहुँचती रहे। यह समझना कि भरत ने कैकेयी के दुराग्रह के लिए राम से क्षमा माँगी और राम को अयोध्या वापस चलने को कहा—रामायण के पाठकों की और प्रवचनकारों की बड़ी भूल है।

भरत का मातुल गृह

वशिष्ठ और विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को वनवास भेजने की योजना बनाई उसकी गुप्तता हेतु भरत और शत्रुघ्न को नाना के घर भेज दिया गया था। जिसे आज रूस (ऋषीय) देश कहते हैं, वही भरत और शत्रुघ्न का मातुल प्रदेश था। वहाँ से भरत और शत्रुघ्न के लौटने के समय कम्बल और बर्फीले मार्गों में से हिरण या कुत्तों को जोतकर चलाए जाने वाले वाहनों का रामायण में उल्लेख है।

भरत भेंट के पश्चात् राम की छावनी का स्थलान्तर

अरण्य में जिस स्थान पर भरत ने राम से भेंट की थी, वहाँ घोड़े, हाथी आदि की लीद और बड़ी सेना छावनी के अन्य कूड़ा-करकट इत्यादि चिह्न विपुल मात्रा में बिखरे पड़े थे। उनसे शत्रु के विमानों और गश्ती टुकड़ियों को राम के गुप्त सेना स्थल का और उनकी चढ़ाई की योजना का पता चल जाता, अतः भरत के वापस लौटने के पश्चात् राम ने तुरन्त निजी छावनी का स्थान बदल दिया ऐसा वाल्मीकि ने उल्लेख किया है।

राम-लक्ष्मण-सीता के अरण्य में सेना की छावनी कायम करते ही राक्षसों की सेनाओं से झड़पें होती रहीं। मारीच, खर, दूषण, कबन्ध, त्राटिका, शूर्पणखा, इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण और रावण स्वयं विविध राक्षस सेनाओं के नायक थे।

अयोध्या, पंचवटी आदि भारत के बाहर भी हो सकते हैं

एक-एक राक्षस टुकड़ियों का सफाया करते-करते राम की सेना पंचवटी तक का प्रदेश जीत चुकी थी। हम लोग अयोध्या, पंचवटी और लंका वर्तमान सुकड़े भारतवर्ष या हिन्दुस्तान के अन्तर्गत ही बतलाते हैं। यह बड़ी भारी भूल है। राम तो विश्व सम्राट या त्रैलोक्यनाथ था। रामायण के समय सारे पृथ्वीतल को भरतभूमि या भारतवर्ष कहते थे। Universe, इस आंग्लभाषी शब्द का अर्थ है सारी पृथ्वी। भारतवर्ष या भारतभूमि का प्राचीनकाल में वही अर्थ था। अतः दस लाख वर्ष पूर्व राम की अयोध्या कहाँ थी ? वहाँ से पंचवटी कितनी दूर थी ? यह कहना कठिन है।

राम तपस्वी नहीं था

घर निकाला राम बेचारा, १४ वर्ष किसी प्रकार वन में तपस्या करके बिताता परन्तु क्या करे राक्षसों के हमलों का विरोध करना अनिवार्य हो गया यह विद्यमान धारणा निराधार है। राम को यदि सचमुच तपस्या ही करनी होती तो वह हिमालय की पहाड़ियों में जाता न कि दक्षिण दिशा

में। और तपस्वी राम पर राक्षस भी क्यों हमले करते? अत: पाठकों ने यह समझ लेना चाहिए कि राजनीति में जब शत्रु से युद्ध छिड़ा होता है तो ऐसी कई अफवाहें उड़ा दी जाती हैं ताकि शत्रु को या ऐरे-गैरे लोगों को चढ़ाई की तैयारी आदि की महत्त्वपूर्ण बातें पता न लगें। यूरोप में भी जो रामायण प्रचलित थी उसमें भी राम की तपस्या की यह अफवाह उल्लिखित है।

रावण की चिन्ता

पंचवटी तक की चढ़ाई में जब राम की सेना आगे ही आगे बढ़ती गई और रावण के अनेक सेनानी हारते रहे तो रावण को चिन्ता उत्पन्न हुई। राम को युद्ध-विराम के लिए राजी कराने के लिए सीता-हरण का दाँव रावण ने रचा। किन्तु राम की प्रबल छावनी से सीता का तभी हरण किया जा सकता था जब राम की दो-तिहाई सेना को किसी प्रकार छावनी से दूर ले जाया जाए—ऐसा रावण ने हिसाब लगाया।

कांचनमृग की योजना

अत: यहाँ कूटनीति का प्रयोग किया गया। मारीच को सुवर्णमृग का रूप दिया गया। इसका सही अर्थ कुछ और ही है। मृग का संस्कृत में एक ऊपरी अर्थ तो "हिरण" है किन्तु दूसरा भी एक अर्थ है। वह है कि निजी रूप बदलकर दूसरे को धोखा देना। अत: मारीच के नेतृत्व में राक्षसों की एक टुकड़ी बना दी गई। और उस टुकड़ी ने ऐसा दिखावा किया कि रावण का पूरा चमकता-धमकता खजाना (हीरे-जवाहरात, सोना-चाँदी इत्यादि) किसी एक छावनी से दूर के किसी दूसरे स्थान पर ले जाया जा रहा है।

पंचवटी में राम की सेना की जो विशाल छावनी लगी थी उसके तीन विभाग थे। एक तरफ सीता के नेतृत्व की टुकड़ी। दूसरी तरफ लक्ष्मण की सेना और तीसरी तरफ राम की सेना।

रावण जानता था कि राम-लक्ष्मण को तो वशिष्ठ और विश्वामित्र ने युद्धनीति, शस्त्रास्त्र विद्या, कूटनीति, शत्रु के दाँव-पेंच आदि सारी

बातों का प्रशिक्षण दिया था, केवल सीता ही उन सब बातों में अनभिज्ञ थी।

अत: मारीच ने यह चाल चली कि जिस तरफ सीता की सेना का डेरा लगा था उसी तरफ रावण का बड़ा मौलिक खजाना एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर ले जाया जा रहा है, ऐसा स्वांग रचा। खजाना तो बड़ा कीमती प्रतीत होता था और उसकी राक्षस सेना भी बड़ी सीमित-सी दिखाई देती थी। मारीच की टुकड़ी की गति भी तेज नहीं थी। रामायण में सुवर्णमृग प्रसंग की प्रचलित कल्पना बड़ी बालिश और हास्यास्पद-सी है कि सीता ने कांचन शरीर का मृग देखा और उसका शिकार करने का उसने राम को आग्रह किया।

वास्तव में बात यह थी कि रावण का वह खजाना ढीले-ढाले असुरक्षित ढंग से जाते हुए देखकर सीता को मारीच की टुकड़ी पर हमला करने का मोह हुआ। अत: उसने राम और लक्ष्मण को उसके सम्बन्ध में सन्देशा भिजवाया। राम और लक्ष्मण कुशल सेनानी होने के कारण उन्होंने सीता को समझाने का बहुत यत्न किया कि ललचाने वाले खजाने (यानि सुवर्ण-मृग) के पीछे राक्षसों का कोई गहरा षड्यंत्र होने से उससे विचलित नहीं होना चाहिए।

राम को छावनी से निकलना पड़ा

किन्तु सीता ने एक न सुनी। वह निजी पराक्रम बताकर रावण का खजाना जीतने का श्रेय लेना चाहती थीं। अत: उसने रानी के नाते रावण का वह खजाना जीतने का निजी दुराग्रह कायम रखा। यहीं से राम और सीता की अनबन आरम्भ हुई और वह अन्त तक रही। राम पर दबाव लाकर उसे मारीच की टुकड़ी का पीछा करने को सीता ने बाध्य किया। राम बेचारा अपनी इच्छा और निष्कर्ष के विरुद्ध सीता के दुराग्रह के समाधान की खातिर निजी एक-तिहाई सेना लेकर मारीच की टुकड़ी का पीछा करने निकल पड़ा। मारीच की टुकड़ी आगे ही आगे दूर तक चलती गई और राम की सेना उसका पीछा करती रही। जमकर युद्ध करने का तो मारीच का उद्देश्य था ही नहीं। मारीच की टुकड़ी के पिछाड़ी के सैनिक

और राम की सेना के अगले दस्तों में झड़पें होती रहीं। उनमें राम के जो सैनिक मारे गए उनकी वर्दी कुछ राक्षस सैनिकों ने पहन ली और पंचवटी में सीता की छावनी में सन्देशा भिजवाया कि राम संकट में होने के कारण उसने लक्ष्मण के टुकड़ी की कुमक माँगी है।

लक्ष्मण को भी छावनी से निकलना पड़ा

यह सुनकर सीता को बड़ी घबराहट हुई और उसने लक्ष्मण से निजी टुकड़ी के साथ कूच करने का आग्रह करना आरम्भ कर दिया। लक्ष्मण ने समझाने का बहुत यत्न किया कि इसमें राक्षसों की अवश्य कोई कूटचाल है क्योंकि राम की सेना प्रबल है। तब भी बड़ी भाभी और रानी के नाते सीता ने लक्ष्मण की कड़ी भर्त्सना की और उसे उसकी टुकड़ी के साथ राम की दिशा में कूच करने पर बाध्य किया। प्रस्थान करते समय सीता को लक्ष्मण ने समझाया कि उनकी सैनिक छावनी की तोपों आदि शस्त्रास्त्रों की मार कहाँ तक है। उस सीमा के अन्दर-ही-अन्दर सीता रही तो बची हुई एक-तिहाई सेना से भी उसका पूरी तरह संरक्षण होगा। वर्तमान प्रवचन-कार लक्ष्मण-रेखा का सही अर्थ न समझकर उस लक्ष्मण रेखा का एक दैवी चमत्कार वाली अर्थात् लक्ष्मण द्वारा खींची गई जादुई रेखा के रूप में वर्णन करते हैं, जो तथ्यत: गलत है।

राक्षसी-षड्यंत्र का तीसरा भाग

राक्षसों का यह षड्यंत्र इस प्रकार राम और लक्ष्मण को उनकी सेनाओं के साथ दूर भेज देने में जब सफल हुआ तो उस षड्यंत्र के शेष भाग को पूरा करने के लिए रावण स्वयं अपने साथियों के साथ विमान से पंचवटी छावनी से, कुछ दूर उतरा और उसने एक यति का रूप लेकर सीता की छावनी में सन्देशा भिजवाया। राम के प्रजाजनों में से कोई साधु-संन्यासी-यति आदि मिलने आये होंगे ऐसा समझकर सीता स्वयं छावनी से बाहर उनसे मिलने गईं। क्योंकि सुरक्षा की दृष्टि से अनजाने त्रयस्थ व्यक्तियों को सेना की छावनियों के अन्दर बुलाना इष्ट नहीं होता।

बाहर उनसे मिलने जाते ही रावण और उसके साथियों ने झपट्टा मार-

कर सीता के हाथ-पैर बाँधकर उसे विमान में घसीट लिया और तुरन्त लंका की दिशा में विमान उड़ाया।

जटायु की हवाई गश्त

उस समय राम की एक छोटी हवाई टुकड़ी जटायु के नेतृत्व में उस परिसर में गश्त लगा रही थी। उसे जब पता चला कि सीता को बन्दी बनाकर उसका अपहरण किया जा रहा है तो जटायु के जेट विमानों ने रावण की वैमानिक टुकड़ी पर आकाश में प्रहार करना आरम्भ किया। किन्तु रावण का हवाई बेड़ा प्रबल होने के कारण जटायु का छोटा और दुर्बल हवाई दल हताहत होकर भूमि पर गिर गया।

इधर मारीच की सुवर्णमृग वाली चाल से सीता के आग्रह के कारण धोखा खाकर जब राम वापस निजी छावनी की दिशा में लौटा तो उसे जटायु की घायल अवस्था और उसके हवाई दल की पूरी क्षति हुई दिखाई दी। सीता के अपहरण की वार्ता जटायु ने राम से कही और थोड़े ही समय में जटायु का देहान्त हो गया।

जटायु का विमान दल

वर्तमान प्रवचनकार जटायु को एक गीध, चील, गरुड़ बताते हैं। सैनिकी परिभाषा में वर्दी पर पक्षियों के पंखों की जोड़ी जैसा चिह्न लगाना वायुदल का निर्देश करता है। विमान चालक का प्रशिक्षण पूरा करने वालों को 'पंख लगा दिए गए' ऐसा कहने की प्रथा वर्तमान युग में भी है। वही रामायणकाल में भी थी।

राम का विलाप वंचना के लिए था

रावण ने बड़ी चतुराई के साथ राम-लक्ष्मण को बुद्धिहीन सिद्ध करके सेना की प्रबल सुरक्षा में से सीता का अपहरण किया, इससे राम को बड़ा धक्का लगा। वशिष्ठ और विश्वामित्र द्वारा दिया गया सारा प्रशिक्षण राक्षसों की चतुराई की तुलना में फीका पड़ गया। रावण के हाथों में सीता के पड़ जाने से "पत्नी को मुक्त कराकर वापस अयोध्या ले जाना चाहते हो तो जीता हुआ सारा प्रदेश वापस करो और हार मानकर लाँछनास्पद सन्धि

पर नामांकन करो'' ऐसा सुझाव रावण के पक्ष में दिया जाने लगा। राम की सारी प्रतिष्ठा, उसका सारा यश, उसका कर्तृत्व सारा शून्य के बराबर रह गया। यही राम के विलाप का मुख्य कारण था। उस विलाप में पत्नि से जुदाई का दुःख अत्यल्प था। मुख्य दुःख था रामावतार के जीवनध्येय को खग्रास ग्रहण लगने का। अतः उस क्षण से राम के मन में सीता के प्रति अत्यन्त तिरस्कार भड़क उठा और वह राम और सीता के जीवन भर कायम रहा। जिस रणनीति के क्षेत्र में सीता पूर्णतया अनभिज्ञ थी उसमें वृथा हस्तक्षेप करके सीता ने निजी दुराग्रह से राम-लक्ष्मण-भरत आदि की रावण विरोधी लड़ाई के सारे प्रयासों को विफल कर शून्यावस्था तक पहुँचा दिया था। सीता ने राजद्रोह कर राक्षस शत्रु से हाथ मिलाई तो नहीं की? उस अवस्था में ऐसी शंका उपस्थित होनी स्वाभाविक ही थी। अज्ञानता-वश भी सीता ने जो कुछ किया उसके परिणाम भी राष्ट्रद्रोह और स्वामिद्रोह जैसे ही गम्भीर थे।

अयोध्या में क्रोध

यह वार्ता जब अयोध्या पहुँची (क्योंकि अयोध्या से ही सारी कुमक आदि आती रहती थी) तो सारी अयोध्या क्रोधित हो उठी। सीता के जीवन के अन्त तक प्रजाजनों में इस बात की चर्चा चलती रही। जैसा सामान्यतया होता है, लाखों लोग जब किसी घटना की चर्चा करते हैं तो अनेक मतमतान्तर होते हैं। एक मत यह था कि सीता ने युद्धनीति के क्षेत्र में वृथा दखल देकर राम का भट्टा बिठा देने की नौबत ला छोड़ी। दूसरा मतप्रवाह था कि सीता रावण से मिली होने के कारण उसने जानबूझकर राम-लक्ष्मण को सेनासहित पंचवटी से दूर निकल जाने के लिए प्रवृत्त किया। युद्धमान अवस्था में प्रत्यक्ष रानी के आचरण से लोगों को उसके राष्ट्रद्रोह-राजद्रोह-पतिद्रोह और कुलद्रोह की शंका आना कितना महान अपराध गिना जाना है? आगे रामायण में किसी धोबी ने आक्षेप उठाने की जो बात है वह इसी कारण आती है। अतः सीता के प्रति प्रजाजनों का जो क्रोध था वह रावण की बन्दिशाला में व्यभिचार की शंका से न होते हुए राष्ट्रद्रोह के आरोप से था। इसीलिए सारे प्रजाजनों में सीता को देहदण्ड देने की बात चल रही

थी। इसी कारण सीता ने एक बार अग्निदिव्य करने पर भी प्रजाजनों में सीता के राष्ट्रद्रोही होने की ही बात चलती रही। इसी के परिणामस्वरूप सीता को सीमा पार छोड़ देने का आदेश राम ने लक्ष्मण को दिया। वहाँ भी सीता को चैन नहीं था। अतः अन्त में सीता को पृथ्वी के तेह में समाधि लेनी पड़ी।

राम की समस्या

राम के लिए भी लोगों का वह आरोप एक बड़ी समस्या बनकर खड़ी हो गई। एक सुशील पत्नी और पटरानी के नाते सीता को राजसिंहासन पर अपने साथ बिठाना राम को अशक्य हो गया। राजद्रोह-राष्ट्रद्रोह और पतिद्रोह करने वाली रानी के नाते सिंहासन पर बैठी सीता को अभिवादन करने से प्रजाजन मुकरने लगे। भला ऐसी सीता को राजमहल में और राजगद्दी पर किस प्रकार और कितनी अवधि तक राम रख सकता था। जब प्रतिदिन या प्रतिक्षण सीता के महान अपराध की बाबत सारे प्रजाजनों में कानाफूसी का कोई अन्त न रहा, इसी कारण सीता को देहदण्ड देना ही न्यायोचित था। फिर भी एक सुशील पत्नी और रानी को देहदण्ड कैसे दिया जाए यही राम के मन में एक पेचीदा प्रश्न था। अतः कठोर न्याय के लिए प्रसिद्ध राम ने जब सीता को अरण्य में बेबस छोड़ देने की लक्ष्मण को आज्ञा दी तो वह अपने आप में लोगों के मन में रामचरित्र पर एक दाग-सा लग गया कि राम ने सीता को राष्ट्रद्रोह के अपराध में कड़ा-से-कड़ा दण्ड देने का राज-कर्त्तव्य नहीं निभाया। यह राम की न्यायशीलता पर एक धब्बा सा था। इसी से राम के मन में एक बड़ा संघर्ष सा उठ खड़ा हुआ जिससे राम बड़ा त्रस्त हुआ। "किं कर्म किं अकर्म इति कवयोप्यत्र मोहिताः" ऐसी राम की अवस्था हो गई।

रामचरित मानस ने रामायण को विकृत किया है

त्रेतायुग के राम-रावण संघर्ष का ऊपर कहे अनुसार विवरण करने के बजाय तुलसीदास जी ने उसे भक्ति का मोड़ देकर सीता की जो अनाप-शनाप स्तुति की है वह वाल्मीकि ने लिखे कथानक या इतिहास के पूर्णतया

विपरीत है। सन्त तुलसीदास का रामचरितमानस एक उत्तम प्रसादपूर्ण काव्यग्रन्थ अवश्य है किन्तु भक्ति के प्रवाह में त्रेतायुग के उस महान इतिहास को तोड़-मरोड़कर विकृत कर रामचरितमानस में उसकी छिन्न-भिन्न अवस्था कर दी गई है।

ऊपर दिए विवरण से ही रामायण की विविध घटनाओं का, राम-सीता अनबन का, प्रजाजनों के सतत् आक्षेपों का और सीता के सम्बन्ध में राम के मन में उठे तूफान का सही पता लगता है। इसके बिना रामायण एक भावुक, असंगत और हास्यास्पद कथा बनकर रह जाती है।

मन्दिरों में भावुक भक्तगणों के सम्मुख तथा शिशु, विधवाओं, अपंग, वृद्ध, गलितांग व्यक्ति आदि श्रोताओं को सम्बोधित करते हुए परम्परागत पद्धति से पौराणिक लोग रामायण का प्रवचन करते हैं उसमें अवास्तव और अतर्क्य तफसील की भरमार होती है। किन्तु नास्तिक हिन्दू तथा विश्व के अन्य धर्मीय लोग, जिनको रामायण की घटनाएँ आम व्यवहारी दृष्टिकोण से समझा दी जाएँ तो ही वह लोग उन घटनाओं को भली प्रकार समझेंगे। भावुक लोगों को भी इस अध्याय में दिए गए वास्तववादी दृष्टि-कोण से रामायण के विविध प्रसंगों का विवरण अधिक रोचक और विश्वास-योग्य लगेगा।

सुग्रीव से सन्धि

मारीच का पीछा करके राम-लक्ष्मण जब निजी छावनी में लौटे तो सीता अपहरण हुआ देखकर उन पर मानों जैसे आकाश टूट पड़ा। इतने वर्ष किए संघर्ष का सारा यश शून्य-सा हो गया।

इससे निकलने का दूसरा कोई मार्ग ढूँढ़ना आवश्यक था। और वह उन्हें बाली और सुग्रीव में पड़ी फूट से मिल गया। बाली-सुग्रीव के पास छापामार सैनिक और प्रबल वायुदल था। किन्तु बाली द्वारा सुग्रीव की पत्नी का अपहरण करने के कारण वे आपस में ही लड़ने लगे थे। उनकी उस फूट का लाभ राम-लक्ष्मण ने उठाया। आरम्भ की सन्धि जैसे राजा जनक से की गई थी वैसे ही यह दूसरी सन्धि सुग्रीव और राम-लक्ष्मण के बीच हुई। रावण द्वारा हरण की गई पत्नी राम को लौटाने में सुग्रीव ने राम को

सभी प्रकार का सहाय्य देना और उसके पूर्व शुल्क के रूप में राम ने बाली को मारकर सुग्रीव को किष्किन्धा का अधिपति बनाकर अपहृत पत्नी सुग्रीव को वापस दिलवाना, ऐसी उस सन्धि की शर्तें थीं।

सीता की जागृत सुबुद्धि

उधर सीता को विमान में बन्दी बनाकर जब रावण का विमान लंका-स्थित रावण के गुप्त केन्द्र के प्रति आकाशमार्ग से चल पड़ा तब कहीं सीता को राक्षसों के उस महान षड्यन्त्र का पता चला और वह विलाप करने लगी। उस क्षण से सीता जागरुक हो गयी और उसने पहली बुद्धिमानी की बात यह की कि अपने आभूषण निकाल-निकालकर वह विमान से फेंकने लगी। वे आभूषण सुग्रीव के गश्ती दस्तों के हाथ लगे और उनसे उन्हें सीता को किस दिशा में ले जाया गया, उसकी अस्पष्ट-सी कल्पना आई। राम-लक्ष्मण से सुग्रीव की सन्धि हो जाने से उन्होंने वह समाचार राम-लक्ष्मण तक पहुँचाया। इस प्रसंग से रावण के विरुद्ध चढ़ाई का दूसरा दौर आरम्भ करने की कुछ आशा पल्लवित हुई।

बाली-सुग्रीव मर्कट नहीं थे

बाली-सुग्रीव को मर्कट या जंगली मानव समझना बड़ी भारी भूल है। राक्षस, वानर, राम, जनक आदि सारे कृतयुग के मानव ही थे। वानर या कपि का अर्थ सैनिकी परिभाषा का लेना चाहिए। जैसे द्वितीय महायुद्ध में जर्मन सेनानी रोमेल और आंग्ल सेनानायक की टुकड़ियों की अफ्रीका महाद्वीप के वीरान प्रदेश में जो झड़पें होती थीं उन्हें तत्कालीन समाचार-पत्रों में Desert rats यानि मरुस्थल के चूहों की लड़ाई कहा जाता था। यदि दस लाख वर्षों के पश्चात् उस परिभाषा से कोई कल्पना करे कि द्वितीय महायुद्ध में इंग्लैण्ड और जर्मनी ने अपने-अपने देश के चूहों की सेना खड़ी की थी तो वह बड़ा हास्यास्पद होगा। सैनिकों में साहस बढ़ाने के हेतु सैनिक टुकड़ियों को भालू, चीते इत्यादि नाम दिए जाते हैं। उसी प्रकार बाली-सुग्रीव की छापामार टुकड़ियाँ वानरों की तरह जंगल में छुपी रहकर शत्रु पर अचानक चपलतापूर्वक आक्रमण करने में प्रवीण थीं, अतः उन्हें

बानर संज्ञा थी। उनके पास एक विशाल विमानदल भी था, किन्तु राम लक्ष्मण जैसा कुशल नेतृत्व नहीं था और बाली-सुग्रीव में फूट पड़ने के कारण वे आपस में ही लड़ने लगे थे। उनकी सारी संपत्ति और सेना उसी में नष्ट हो रही थी।

उसी प्रकार जाम्बुवान को भालू समझना भी गलत है। वह भी एक मानव वीर ही था। हो सकता है कि उनकी सेना के चिह्न बानर, भालू आदि रहे हों, उनके सैनिक उस प्रकार का पहरावा भी पहनते हों। यूरोप के राजदूत आजकल भी Tailcoat यानि पूंछ वाला कोट पहनते हैं। क्यों ? वह इसलिए कि राम को विश्व में आदर्श राजा मानने की पूर्वापर प्रथा रही है। राम का दूत हनुमान टेलकोट (Tailcoat) यानि पूंछवाला कोट पहनता था। इसी कारण आजकल के पाश्चात्य राजदूतों ने भी वही प्रथा कायम रखी है। दस लाख वर्षों से रामकथा का सारे विश्व में कितना प्रभाव रहा है उसका 'टेलकोट' यानि पूंछवाला कोट से और ठोस प्रमाण क्या हो सकता है ? अन्य प्रमाणों का भी हमने इस ग्रन्थ में समय-समय पर अन्यत्र उल्लेख किया है।

रावण की एक और चाल

सीता का अपहरण करने पर भी सीता को लौटाने की शर्त पर राम कोई सन्धि करने के लिए तैयार नहीं हैं यह देखकर रावण ने एक और राजनयिक चाल चली।

रावण की बहन शूर्पणखा उपवर और सुन्दर थी। उससे विवाह करके रावण से नाता जुड़ने के निमित्त से राम युद्धविराम की घोषणा करें ऐसा सुझाव रावण के पक्ष से राम को किया गया। एक पत्नीव्रत के कारण राम ने शूर्पणखा से विवाह करने के सुझाव को अमान्य किया ऐसा परम्परागत कहा जाता है। किन्तु वह ठीक नहीं है। राम के पिता दशरथ की तीन पत्नियाँ थीं। राम के समय और तत्पश्चात् भी छत्रपति शिवाजी तक क्षत्रियों की अनेक रानियाँ होती थीं। राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से अनेक क्षत्रियकुलों से विवाह सम्बन्ध जोड़ना आवश्यक समझा जाता था। अनेक स्त्रियों से जन्मे राजपुत्र भी सेना का नेतृत्व करने में और विविध सूबों का

प्रबन्ध देखने में सहाय्य होते थे। अत: राम का एक पत्नित्व का नियम एक निश्चयी योद्धा के नाते भले ही ठीक हो किन्तु वह मुख्य कारण नहीं था। मुख्य कारण था कि रावण से किसी भी शर्त या प्रलोभन पर सन्धि करने के लिए राम तैयार नहीं था।

इसीलिए राम की तरफ से सुझाव दिया गया कि रावण से शासक से बहनोई का नाता जोड़ने के लिए लक्ष्मण को पूछा जाए। उस समय लक्ष्मण भी तो विवाहित ही था। तथापि राम यह परखना चाहता था कि क्या रावण से सन्धि करने को लक्ष्मण का मन करता है या नहीं? किन्तु लक्ष्मण भी राम के जितना ही दृढ़निश्चयी था। रावण का वध कर लंका जीतने तक युद्ध विराम न करने की राम-लक्ष्मण दोनों की प्रतिज्ञा थी। अत: दोनों द्वारा शूर्पणखा से विवाह करने का रावण का सुझाव ठुकरा देने पर शूर्पणखा के नेतृत्व में राक्षसी सेना ने राम लक्ष्मण की छावनी पर हमला किया। उस हमले में शूर्पणखा को जो वार लगे उससे उसके नाक और कान कट गए।

शूर्पणखा के विवाह प्रस्ताव का हास्यास्पद विवरण

इस घटना का रामायण के वर्तमान प्रवचनों में कितना बेढंगा, अस्वाभाविक और हास्यास्पद विवरण दिया जाता है। कहा यह जाता है कि राक्षसी शूर्पणखा अति कुरूप होते हुए भी स्वयं राम के डेरे में दाखिल होकर राम से प्रणय चेष्टा करने लगी। स्वयं विवाहित होने के निमित्त राम ने शूर्पणखा को लक्ष्मण के पास भेजा (जबकि लक्ष्मण भी विवाहित था)। लक्ष्मण के डेरे में दाखिल होकर जब शूर्पणखा ने विवाह की बात छेड़ी तो लक्ष्मण ने तलवार से शूर्पणखा के नाक-कान काट डाले। उस पर क्रुद्ध हुई शूर्पणखा रावण के दरबार में वापस लौटी।

ऊपर कहे वर्णन में अस्वाभाविक बातों की भरमार है। रावण कुल यद्यपि राक्षस का था। वे सभी व्यक्ति वैसे ही सुन्दर, सुदृढ़ और सुडौल थे जितने अयोध्या के राजकुल के। शूर्पणखा जैसी उपवर स्त्री द्वारा राम जैसे शत्रु के डेरे में दाखिल होकर एकाएक प्रणय चेष्टा आरम्भ कर देना भी तर्कसंगत नहीं था। उसके ज्येष्ठ बन्धु और पालक के नाते विवाह का रिश्ता

कायम करने का सुझाव रावण की ओर से दिया गया था। राम की असहमति के पश्चात् वैसा ही रिश्ता लक्ष्मण से जोड़ने का सुझाव रावण के पक्ष से किया गया। वह दूसरा यत्न भी जब असंमत हुआ तो सिवाय युद्ध आरम्भ करने के अन्य कोई चारा ही नहीं था। शूर्पणखा की सेना उसी तैयारी से आई थी। विवाह का प्रस्ताव मान्य होकर यदि युद्ध विराम हो जाए तो ठीक है, यदि न हुआ तो एकाएक हमला बोल देना।

राम-लक्ष्मण राक्षसों की ऐसी चालों से भली प्रकार परिचित थे। अतः वे सावधान हो गए थे। शूर्पणखा के नेतृत्व में राक्षसी सेना से जो झड़प हुई उसमें शूर्पणखा के नाक-कान लक्ष्मण की सेना के द्वारा कट गए। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्यक्ष राम और लक्ष्मण से शूर्पणखा बोली हो या व्यक्तिगत रूप से उनसे मिली हो। इतिहास में इस प्रकार की बातचीत दूतों द्वारा होती है और युद्ध सैनिकों द्वारा किया जाता है। यद्यपि नाम नेताओं का लिया जाता है।

लक्ष्मण को शूर्पणखा द्वारा विवाह का सुझाव दिए जाने पर लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाक-कान काट डाले यह पौराणिकों का कथन बड़ा हास्यास्पद-सा है। पहली बात तो यह है कि वैदिक संस्कृति में कोई युवती किसी युवक से विवाह का प्रस्ताव स्वयं नहीं करती। ऐसे प्रस्ताव कन्या के पालक करते हैं। दूसरी बात यह है कि ऐसा प्रस्ताव आने पर युवक या तो 'हाँ' या 'न' कहेगा या कहेगा कि "मैं सोचूंगा।" भला एकाएक तलवार उठाकर उस सुन्दरी के नाक-कान थोड़े ही काटेगा। इस बात से पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि रामायण कितने गलत ढंग से जनता के सामने प्रस्तुत की जा रही है। श्रोतागण भी रामभक्ति के नशे में धुत होकर एक के पीछे एक अनेक असंगत घटनाओं और अटपटी कल्पनाओं को बगैर सोचे-समझे निगलते रहे हैं।

बाली-सुग्रीव का युद्ध

बाली-सुग्रीव का जो युद्ध हुआ उसे रामलीलाओं में गदाधारी बाली गदाधारी सुग्रीव से लड़ रहा है और एक वृक्ष की आड़ लेकर राम एक बाण से बाली का वध करते हुए बतलाया जाता है, जो सर्वथा अव्यवहार्य है।

राम, बाली, सुग्रीव विशाल सेनाओं के नायक थे। उनके सैनिक लड़ते थे न कि वे स्वयं।

बाली का वध रामचरित पर कलंक नहीं है

वृक्ष की आड़ से बाली को बाण मारना इसे रामचरित पर कई पौराणिक एक कलंक मानते हैं। यह उनके अज्ञान का लक्षण है। पौराणिक भी बहुश्रुत और विविध विषयों का ज्ञानी हो तो ही वह ठीक प्रकार से रामायण या अन्य भक्तिग्रन्थों का प्रवचन भली प्रकार कर सकता है। 'एकं शास्त्रं अधीयानो न निर्णयं अधिगच्छति' यानि 'एक ही शाखा का ज्ञान जीवन के विविध प्रसंगों में योग्य निर्णय लेने के लिए पर्याप्त नहीं होता', ऐसी उक्ति है। उसी प्रकार रामायण एक युद्धग्रन्थ होने के कारण सैनिक-शिक्षा के बिना केवल हिन्दी या संस्कृत रामायण का पारायण करने वाला व्यक्ति उस ग्रन्थ का ठीक प्रवचन नहीं कर सकेगा। वर्तमान प्रवचनकारों ने प्राय: कोई सैनिक-प्रशिक्षण नहीं लिया होता। अत: विशिष्ट घटनाओं का विवरण वे बड़े बेढंगे प्रकार से करते हैं। वृक्ष की आड़ से बाली पर राम का बाण चलाना ऐसी ही एक घटना है जिसमें राम का कोई दोष न होते हुए भी उसे दोषी ठहराया जा रहा है।

युद्ध में शत्रु पर गोली या बाण चलाने वाले सैनिकों को निजी सुरक्षा के लिए पहाड़, चट्टान, पत्थर, वृक्ष या अन्य किसी की आड़ लेकर ही वार करना पड़ता है। निजी सुरक्षा के कारण राम ने वृक्ष की आड़ ली थी। तथापि उस घटना को ऐसे प्रस्तुत किया जा रहा है जैसे राम को बाली से प्रकट युद्ध करने में कोई लज्जा, झिझक या घबराहट हो रही थी।

सुग्रीव को वचन की विस्मृति

बाली वध के पश्चात् सुग्रीव को जब उसका अपहृत राज्य और पत्नी भी मिल गई तो जैसे व्यावहारिक जीवन में होता है वैसे ही सुग्रीव राम को सैनिक सहाय्य देने के अपने वचन को भूलकर विलासिता में मग्न होने लगा। तब राम ने लक्ष्मण से कहा कि वह सुग्रीव को धमकाकर पूछे कि क्या वह अपना वचन निभाने वाला है या नहीं?

इटली में प्राचीन रामायण-प्रसंग के चित्र

रामायण प्रसंग के चित्र जो इटली देश की एट्रुस्कन् सभ्यता में पाए जाते हैं, उनमें सुग्रीव को धमकाने वाले लक्ष्मण का चित्रण है। कृस्तपूर्व ७वीं शताब्दी से कृस्तपूर्व पहली शताब्दी तक इटली के तीन-चौथाई उत्तरी हिस्से में एट्रुस्कन् सभ्यता थी। वे लोग वेदोपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि पढ़ने वाले वैदिक संस्कृति के लोग थे। वे अपने घरों में रामायण प्रसंगों के चित्र बड़े भक्तिभाव से और कर्त्तव्यबुद्धि से प्रदर्शित करते थे। इस तथ्य का वर्तमान विश्व में सम्पूर्ण अज्ञान है। यूरोप में, भारत में या विश्व में सभी इस बात को भूल गए हैं कि कृस्तपूर्व यूरोप, अफ्रीका आदि खण्डों में पूरी वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा ही प्रसृत थी। यूरोप के सारे लोग कृस्ती बनाए जाने पर उन्होंने कृस्तपूर्व सारा इतिहास ही दबा डाला। अत: इटली में पाए जाने वाले रामायण प्रसंगों के प्राचीन चित्रों को वर्तमान इतालवी या अन्य यूरोपीय विद्वान समझ ही नहीं पा रहे हैं। वे उलझन में पड़ गए हैं कि वे पूँछवाले (बाली-सुग्रीव आदि) नर कौन हैं? धनुषबाण वाले दो युवकों (राम-लक्ष्मण) के साथ स्त्री (सीता) कौन है? इत्यादि। सारे प्रदेश के प्रदेश ईसाई या इस्लामी बन जाने पर कृस्तपूर्व विश्व के वैदिक इतिहास को कैसा नष्ट और लुप्त किया जाता है इसका उदाहरण प्राचीन इटली के रामायण चित्रों से मिलता है।

जनक से पहली सैनिक-सन्धि, सुग्रीव से दूसरी सैनिक-सन्धि और प्रत्यक्ष रावण के भाई विभीषण से राम की तीसरी सैनिक-सन्धि हुई। उस अन्तिम सन्धि की शर्तें थीं कि रावण का वध करके विभीषण को लंका का राज्य सौंपा जाए और उस अन्तिम सागर पार चढ़ाई के लिए लंका की सेना में से कुछ टुकड़ियों को लेकर विभीषण स्वयं राम और लक्ष्मण से आकर मिले।

रामायणकालीन रेडियो यन्त्रणा से दूरभाष

उस प्रसंग का वर्णन वाल्मीकि ने बड़े व्यावहारिक ढंग से किया है। विभीषण की सेना-टुकड़ियाँ विमानों में राम की छावनी के ऊपर चक्कर मारती हुई उतरने की अनुज्ञा माँगने लगीं। उधर राम की छावनी से

रेडियो सन्देश द्वारा कहा गया कि किसी ऐरे-गैरों को छावनी के पास उतरने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती। इस पर विभीषण के विमान से सन्देश आया कि 'हम लंका से आपसे सन्धि करने आए हैं'। तब राम की छावनी से उन्हें कहा गया कि 'अब सन्धि की कोई गुंजाइश नहीं है। सागर पार करके लंका में सेना उतारकर रावण का वध करना ही हमारा लक्ष्य है।' इस पर जब विभीषण द्वारा यह आश्वासन दिया गया कि हम, अपनी सेना सहित, लंका पर हमला करने में आपका साथ देंगे, तभी विभीषण के हवाई बेड़े को राम की छावनी से कुछ दूर उतरने की अनुमति दी गई। उतरते ही विभीषण की राम से भेंट नहीं होने दी गई। प्रथम हनुमान के वानर वीरों द्वारा विभीषण के विमानों की, शस्त्रास्त्रों की तथा उनके अन्दरूनी उद्देश्य की पूर्ण जाँच की गई ताकि किसी प्रकार की दगा न हो। पूरी जाँच के पश्चात्, लंका पर आक्रमण करने में विभीषण की सेना पूरा साथ देगी, ऐसा हनुमान आदि सारे अधिकारियों को विश्वास हुआ तभी राम-लक्ष्मण से विभीषण की भेंट कराकर, सन्धि की शर्तें मंजूर कराकर, उन पर दोनों पक्षों के नामांकन हुए।

राम को पतितपावन कहना अयोग्य है

एक निश्चयी योद्धा, जागरुक सेनानी और कठोर वीर रणनीति में किस प्रकार बर्ताव करे इसका आदर्श ऊपर वर्णित घटनाओं से श्रोताओं को रामचरित द्वारा बताने की बजाय वर्तमान युग के पौराणिक और प्रवचनकार राम को पतितपावन, दीनदयालु आदि आलतू-फालतू असम्बद्ध विशेषण जोड़ते रहते हैं।

भारत के क्षत्रिय वीर शरणागत शत्रु को भी क्षमा कर किस प्रकार जीवनदान देते रहते हैं इस गलत निष्कर्ष का समर्थन हमारे पौराणिक लोग विभीषण का उदाहरण देकर करते हैं। केवल जीवनदान माँगने पर राम ने विभीषण को क्षमा नहीं, विभीषण को जीवनदान इसलिए दिया गया कि वह अपनी सेना सहित किया, बल्कि राम की सेना के साथ लंका पर हमला करने को राजी हो गया।

शत्रु को जीवनदान कब देना चाहिए ?

मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, भगवद्गीता आदि सारे ही वैदिक ग्रन्थों की एक ही शिक्षा है कि दुष्ट और निर्दयी शत्रु को मार ही डालना चाहिए। उसे एक ही अवस्था में जीवित छोड़ा जा सकता है यदि वह विभीषण जैसा अपने बन्धुओं के विरुद्ध लड़ाई में शामिल होने को राजी हो तो। इस आदेश को भूलकर वैदिक पण्डित, पौराणिक और प्रवचनकारों ने ऐसा प्रचार किया कि शरण आए हुए या पराभूत शत्रु पर पूरी दया बरत-कर उससे बड़े मान-सम्मान और आदर का व्यवहार करना चाहिए। भारतीय इतिहास में इस चूक सिखलाई के बड़े घोर परिणाम हुए हैं। महंमद बिन कासिम से लेकर बहादुरशाह जफर तक सारे इस्लामी आक्रामक सुल्तान, व बादशाह लगातार भारत में इतना आतंक मचा रहे थे तब भी भारतीय क्षत्रियों ने दयार्द्रता वाली गलत धारणा के कारण इस शत्रु का सफाया नहीं किया। पृथ्वीराज चौहान ने महंमद गोरी को कई बार बन्दी बनाकर छोड़ दिया और उसे बार-बार भारत पर हमला करने को प्रोत्सा-हित किया। पराजित होकर शरण आया शत्रु दया की भीख तो मांगेगा ही। किन्तु उस झूठी दया याचना से पृथ्वीराज ने धोखा नहीं खाना था। महंमद गोरी को जीवनदान तभी देना उचित होता जब वह सारी सेना के साथ हिन्दू बनकर अफगानिस्तान, ईरान, ईराक आदि देश इस्लाम से मुक्त कराने में पृथ्वीराज का हाथ बंटाता। विभीषण को राम ने शरण ऐसी ही शर्त पर दी थी। यदि वैसा नहीं होता तो रावण, इन्द्रजित् और कुम्भकर्ण के साथ विभीषण भी राक्षसकुल का होने के कारण मारा जाता।

मरहठों की गल्ती

मरहठों ने हैदरअली, टीपू, निजाम उल्मुल्क और मुगल सल्तनत् को कई बार युद्ध में पराभूत किया किन्तु उन्हें पदच्युत कर उनकी सल्तनतें समाप्त नहीं कीं, यह कितनी भारी भूल की। उधर स्पेन में लगभग ६११ वर्ष मुसलमानों का राज्य रहा तथापि जब ईसाई स्पेनिश लोगों का उत्थान हुआ तो उन्होंने एक भी मुसलमान बचने नहीं दिया। या तो उन्हें सीमा पार भगा दिया या क्रस्ती बनाया या देहदण्ड दिया। इसी को दूरदर्शिता

और देशभक्ति कहते हैं।

पुराणों में राक्षसों के बार-बार आतंक मचाने के वैसे ही वर्णन हैं जैसे इस्लामी तवारीखों में सुल्तान और बादशाहों की क्रूर करतूतों के। तथापि वैदिक क्षत्रियों ने कठोर व्यवहार कर उनका ऐसा सफाया किया कि अब राक्षस जाति ही नहीं रही। अतः वैदिक ग्रन्थों का विवरण देने की विद्यमान पौराणिक परम्परा को बदलकर, जिससे लोगों में कठोर क्षात्र-वृत्ति का निर्माण हो, ऐसी प्रवचन परम्परा प्रारम्भ करना एक आवश्यक राष्ट्रकार्य है।

लंका विजय पर राम को सीता से भेंट की कोई उत्कण्ठा नहीं थी

किसी से युद्ध करते समय आधुनिक राष्ट्र भी मित्र राष्ट्रों से सन्धि कर उनसे अधिक-से-अधिक सैनिक सहाय्य लेने की सावधानी बरतते हैं। राम ने भी समय-समय पर जनक, सुग्रीव और विभीषण का सहाय्य लेकर रावण का वध किया और लंका पर विजय पाई। उस चढ़ाई में केवल सीता के दुराग्रही हस्तक्षेप से पंचवटी छावनी में एकाएक राम का सारा प्रयास विफल हो जाने की नौबत आई। अतः रावण का वध कर जब राम की सेना का लंका पर पूरा अधिकार हो गया तो सैनिकों ने राम से भय से पूछा कि क्या अशोक वाटिका से सीता को मिलने के लिए लाया जाए तो राम ने रूखा उत्तर दिया—'उसकी इच्छा हो तो वह भेंट कर सकती है'। उधर सीता से जब राम के सैनिकों ने पूछा कि क्या आप राम से मिलने नहीं चलेंगी तो सीता ने पूछा कि क्या मेरी भेंट लेने को रामचन्द्रजी राजी हैं? इस अवस्था से हमारे निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि चाहे सीता से पंचवटी की छावनी में राक्षसों के सुवर्णमृग षड्यन्त्र के सम्बन्ध में प्रमाद भी हुआ हो, उसके परिणाम राष्ट्रद्रोह और फितूरी के जितने भयंकर होने के कारण रामसहित अयोध्या के लगभग सारे ही लोगों का सीता के प्रति तिरस्कार-सा हो गया था।

राम नाम लिखकर पत्थरों से सेतु बनाना

अब हम रामायण सम्बन्धी प्रवचनकारों के फैलाए हुए दो-तीन और भ्रमों का निराकरण कर इस अध्याय को समाप्त करेंगे। यह कहा जाता

है कि धनुषकोटि से लंका तक जब राम के सैनिकों ने सागरखाड़ी पार करने हेतु सेतु बनाया तो दैवी चमत्कार के कारण पत्थरों पर केवल राम नाम लिखने से ही सागर की लहरों पर पत्थर तैरने लगे और सेतु बन गया। यदि जल पर पत्थर तैरे भी तो सागर की लहरों से सेतु झूले जैसा इतना हिलता रहेगा कि उस पर से युद्ध सामग्री सहित सेना सागर पार ले जाना अशक्य होगा। यदि सेतु स्थिर न हो तो उसका लाभ ही क्या ?

सेतु बनाया यह घटना सही होते हुए भी एक दैवी चमत्कार के रूप में उसका समर्थन करना योग्य नहीं। वास्तविकता कुछ और ही थी। किसी भी सरकार द्वारा जब सागर सेतु जैसी बड़ी योजना अंगीकृत की जाती है तो ईंटों पर तथा पत्थरों पर उस सरकार का नाम अंकित किया जाता है। उसी नियम के अनुसार राम सरकार का नाम उन ईंटों और पत्थरों पर लिखा जाना स्वाभाविक था। विधि अनुसार सागर में स्थान-स्थान पर गहरे गड्ढे खोदकर उसमें ईंट और पत्थरों से सेतु के लिए पक्के आधार-स्तम्भ बनाए गए। इनमें राम-नाम के चमत्कार की बात करना या जल पर पत्थर तैराये गए कहना, बुद्धिमानी नहीं है।

कुम्भकर्ण की दीर्घनिद्रा

रावण के भाई कुम्भकर्ण की प्रगाढ़ निद्रा और उसको जागृत कराने के लिए उसके शरीर पर हाथी चलाए गए आदि का जो रामायण में वर्णन है उसे युद्धकालीन व्यंग्य या विडम्बना के रूप में देखना आवश्यक है। युद्धमान परिस्थिति में शत्रु-पक्ष की ऐसी ही खिल्ली आज भी उड़ाई जाती है। वास्तव में बात यह थी कि विभीषण जैसे ही कुम्भकर्ण भी रावण की सहायता नहीं करना चाहता था। अतः वह अति दूर एकांत में रहता था। निजी निवास स्थान के बाहर उसने सैनिकों का कड़ा पहरा रखा था और कुम्भकर्ण तक रावण के सन्देश पहुँच नहीं पाते थे। अन्त में बड़ी कठिनाई से अनेक असफल प्रयत्नों के पश्चात् कुम्भकर्ण को उसकी अपनी इच्छा के विरुद्ध, रावण के अत्याग्रह के कारण, रणभूमि में लाकर खड़ा कर दिया गया। जैसा बन पाया वैसा कुम्भकर्ण ने युद्ध किया या केवल प्रतिकार का नाटक किया और बेचारा मारा गया।

वानर विमानों की असीम संख्या

रावण की लंका के शोध में वानरों के जो हवाई दस्ते निकले उनकी संख्या रामायण में खर्व, निखर्व आदि असीम बताई गई है। शत्रु को डराने के लिए निजी सेना की ऐसी अपारशक्ति बताकर शत्रुपक्ष को संभ्रम में डालने की प्रथा का वर्तमान युग में भी प्रयोग होता रहता है। अतः उस संख्या से रामायण को ही अविश्वसनीय मानने की बजाय वैसी डरावनी संख्या देना युद्ध की कूटनीति में स्वाभाविक बात होती है यह समझना आवश्यक है।

दूसरी शक्यता यह हो सकती है कि रामायणकाल में यदि मंगल, चन्द्रमा आदि अन्य ग्रह और उपग्रहों तक पृथ्वी के लोगों का जाना-आना रहा हो तो अन्तरिक्ष में रावण की लंका या रावण का दुर्ग कौन से ग्रह पर कहाँ है यह ढूंढ निकालने के लिए असंख्य विमान या अन्तरिक्षयान भेजना अनिवार्य हुआ होगा।

लोहित सागर और शुण्डा

लंका में सीता की शोध में जब सुग्रीव की वायुसेना के जत्थे निकले तो उन्होंने लोहित सागर और शुंडा पर से उड़ान भरने का उल्लेख किया है। लोहित सागर वही है जिसे आजकल 'लाल सागर' (Red Sea) कहते हैं। शुण्डा की खाड़ी (Straits of Sunda) भी आस्ट्रेलिया के उत्तर में कई द्वीपों से निकलने वाली हाथी की सूंड जैसी सुकड़ी सागर खाड़ी का नाम आज भी कायम है।

सागर का जल तो नीला या हरा दीखता है, लाल या शुभ्र नहीं होता। तथापि किसी कारणवश प्राचीनकाल में जब विश्व वैदिक साम्राज्य था तब एक सागर को लोहित सागर नाम दिया जाता था। उसी का प्रचलित आंग्ल अनुवाद लाल सागर (Red Sea) है। सागर या समुद्र इस संस्कृत शब्द का पहला अक्षर ही आंग्ल भाषा में 'सी' यानी सागर रूप धारण कर बैठा है।

वैदिक संस्कृति में 'क्षीर सागर' नाम प्रचलित था। 'व्हाइट सी' (White Sea) यानि 'शुभ्र सागर' यह विद्यमान यूरोपीय नाम उसी का

अनुवाद है। ऐसे भौगोलिक नाम तथा चार दाँत वाले हाथियों का उल्लेख और रामेश्वर के पास सेतु के अवशेष आदि कई प्रमाणों से पता चलता है कि रामायण केवल एक कपोलकल्पित कथा न होते हुए त्रेतायुग के एक महान संघर्ष का इतिहास है।

इस अध्याय में रामायण के विविध प्रसंगों का और घटनाओं का हमने जो विवरण दिया है उससे भी हमने यही सिद्ध किया कि एक देवावतार के जीवन की कल्पित, चमत्कारभरी कथा समझकर जो रामायण का अध्ययन करते हैं वे रामायणकालीन अनेक समस्याओं तथा घटनाओं का तर्कसंगत उत्तर नहीं दे पाते। कई बातें जटिल समस्याएँ बनकर रह जाती हैं। किन्तु यदि रामायण को प्रत्यक्ष घटा हुआ इतिहास समझकर पढ़ें तो उसकी प्रत्येक समस्या का पूरा व्यावहारिक प्रमाण मिलता है।

क्या राम अवतारी व्यक्ति नहीं थे ?

इस अध्याय में हमने जो रामायण का विवरण दिया है उससे कई भावुक व्यक्ति कुपित हो सकते हैं। हमारा यह निष्कर्ष है कि छत्रपति शिवाजी जैसे ही रामचन्द्र को एक ऐतिहासिक वीर निश्चयी योद्धा और प्रजाहितदक्ष शासक मानकर रामायण से वीरता और त्याग आदि की प्रेरणा लेना योग्य होगा। किन्तु केवल रामायण का शुष्क अखण्ड पाठ कराने से या रामनाम जपने से हमारे पापों का क्षालन होगा या मोक्ष प्राप्ति होगी यह धारणा हमारी दृष्टि से केवल निराधार ही नहीं अपितु हानिकारक भी है। क्योंकि वैदिक संस्कृति कहती है कि जैसा कर्म करोगे वैसा फल पाओगे। अतः जो उचित कर्म छोड़कर केवल राम या कृष्ण का नाम जपते रहते हैं उन्हें निष्क्रियता का पाप ही लगेगा। राम या कृष्ण के चित्र को हार पहनाकर, उसके आगे अगरबत्ती जलाकर राम और कृष्ण के नाम का जप करने वाले अपने-आपको ईश्वरभक्त मानकर, 'ईश्वर उन्हें सारे संकटों और पापों से बचाता रहेगा' ऐसी अपेक्षा रखते हैं, वह सरासर गलत है। ईश्वर कोई आपसे चापलूसी, खुशामद या उपहार का भूखा थोड़े ही है। आप यदि स्वार्थी और पापी आचरण करें तो उसका दण्ड आपको मिलेगा। यदि आप निःस्वार्थ भाव से, कर्त्तव्य समझकर, दूसरों की सेवा

करेंगे, जैसे स्त्रियाँ निजी सन्तान की या पति की सेवा करती हैं, तो आप को पुण्य प्राप्त होगा। अत: राम के आदर्शों पर चलने वाले ही राम के भक्त कहलायेंगे।

क्या राम अवतारी व्यक्ति थे ? इस प्रश्न का उत्तर एक तरह से 'हाँ' है तो दूसरी तरह से 'ना' भी है। वैसे देखा जाए तो प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक जीव ईश्वर का ही तो अवतार है। हर एक का प्राण दैवी अंश ही होता है। इस दृष्टि से राम भी देवावतार थे। उन्होंने बड़े-बड़े कर्तृत्व कर दिखाए और बहुत यश कमाया। इस कारण यह भी माना जा सकता है कि उन जैसे व्यक्तियों में दैवी शक्ति कुछ अधिक मात्रा में थी। किन्तु इससे यह अनुमान लगाना कि उनका जप करने से हमें कुछ लाभ होगा, यह कल्पना निराधार है। यदि जप कोई इस दृष्टि से करे कि उस जप से त्याग, साहस और सेवा की स्फूर्ति और शक्ति मिलती रहे तो केवल उसी सीमा तक राम या कृष्ण नाम का जप उपयुक्त कहा जा सकता है।

छत्रपति शिवाजी के चरित्र में भी हमें ऐसे कई प्रसंग दिखाई देते हैं जिनमें सामान्य व्यक्ति या तो डर जाता है या मारा जाता है। उन सब प्रसंगों से शिवाजी महाराज बड़े साहस और वीरता से पार हो गए। अत: कई लोग समझते हैं कि शिवाजी महाराज को भवानी देवी का वरदान था या उन्हें भवानी देवी ने तलवार भेंट दी थी। भावुक लोगों की ऐसी कई निराधार कल्पनाएँ होती हैं। शिवाजी महाराज को भवानी का आशीर्वाद न हो, शिवाजी महाराज की प्रतिमा-पूजा कर या उनके नाम का जप कर किसी को पुण्य, स्वर्ग या मोक्ष तो नहीं मिलेगा। वही बात रामचन्द्र जी की बावत भी कही जा सकती है। वे चाहे अवतारी व्यक्ति हों या न हों उनके नाम के जप से या उनकी प्रतिमा की पूजा कर किसी प्रकार के लाभ की, पुण्य की, आस लगाए बैठना, बुद्धिमानी की बात नहीं है। अत: रामायण को इतिहास समझकर पढ़ें न कि भक्तिग्रन्थ समझकर।

पुष्पक विमान से लौटना विजेता का सम्मान था

कुबेर, रावण का भाई था। कुबेर को भगाकर रावण ने लंका का राज्य और पुष्पक विमान का अपहरण किया था। रामायणकाल में जब हर

प्रकार की शास्त्रीय प्रगति उच्चकोटि की थी तब भी पुष्पक विमान की सुविधाएँ तथा यांत्रिक क्षमताएँ बड़ी आश्चर्यकारी मानी जाती थीं। जैसे हमारे समय में अमेरिकी राष्ट्रपति का विमान सुसज्ज माना जाता है। लंका पर विजय पाकर जब विभीषण को लंकाधिपति बनाया गया तो विभीषण द्वारा राम, सीता आदि को अपने उस प्रसिद्ध पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या तक पहुँचा देना एक विजेता का वैसा ही सम्मान था जैसे सांप्रत-काल में भी स्वाभाविकतया होता है। इस दृष्टि से, आरम्भ से अन्त तक रामायण, त्रेतायुग के एक महान युद्ध का वास्तववादी इतिहास ही दिखाई देता है।

राम राम कहने की प्रथा

भारत में वैदिक संस्कृति टिकी होने के कारण राम नाम बोलचाल के अनेक प्रसंगों में आता है। उदाहरणार्थ दो व्यक्ति जब एक दूसरे से मिलते हैं तो 'राम राम' कहते हैं। यह उस समय की स्मृति है जब चौदह वर्षों की प्रदीर्घ अनुपस्थिति के पश्चात् रामचन्द्र जी अयोध्या लौटे तो सामान्यजन एक-दूसरे से पूछने लगे कि 'क्या राम लौटे ?' तो जानकार उन्हें कहते कि 'हाँ राम आ गए'। इस तरह 'राम राम' नाम ही हर एक व्यक्ति के मुख पर था। रामायण की ऐतिहासिकता का यह एक प्रमाण है।

मरते समय भी सामान्य वैदिकधर्मी व्यक्ति के मुख से उद्गार निकलता है 'हे राम'। महात्मा गांधी की समाधि पर उनके मुख से निकले वही अन्तिम उद्गार अंकित हैं। यह प्रथा भी रामायण की ऐतिहासिकता का प्रमाण है। रावण से हुए भीषण युद्ध में राम के सैनिक मरते समय कहते हैं, 'हे राम आपकी सेवा में हम प्राण त्याग कर रहे हैं'। उसी प्रकार जैसे छत्र-पति शिवाजी के वीर सैनिक मरते समय छत्रपति शिवाजी का स्मरण करके प्राण त्यागते थे।

१७

एशियाई देशों में रामायण

वर्तमान समय के विद्वानों की भी यह धारणा है कि रामायण केवल भारत का और हिन्दुओं का ही ग्रन्थ है और वह भक्तिग्रन्थ और धर्मग्रन्थ है। अतः पूर्ववर्ती इण्डोनेशिया आदि देशों में, जहाँ किसी समय भारतीय राजाओं का शासन रहा, उन्हीं देशों में रामकथा पाई जाती है।

पिछले अध्याय में एक सार्वजनिक कल्पना का भ्रम निवारण हमने किया है कि रामायण भक्तिग्रन्थ नहीं अपितु त्रेतायुग के एक महान युद्ध का इतिहास है। इस अध्याय में और अगले अध्याय में हम यह बताएँगे कि रामायण केवल भारत,का या हिन्दुओं का ही नहीं, अपितु समस्त विश्व के लोगों का मान्यवर इतिहास ग्रन्थ रहा है। अतः विश्व के सारे देशों में रामायण पढ़ी जाती है। यदि कुछ देशों में रामायण का अस्तित्व या ज्ञान लुप्त हो गया है तो उसका कारण यह है कि वहाँ के लोग ईसाई या इस्लामी बन जाने के कारण उन्होंने रामायण की स्मृति दबा दी है। शोध करने से विश्व के हर देश में रामायण का अस्तित्व अवश्य निखर आएगा।

रामायण की विश्वमान्यता और विश्व-प्रसार से एक और मौलिक निष्कर्ष यह निकलता है कि कृतयुग से कौरव-पाण्डवों के महाभारतीय युद्ध तक सारे विश्व के लोग वैदिकधर्मी ही थे। अतः वे रामायण को निजी पूर्वजों का इतिहास मानकर बड़ी श्रद्धा से उसका पठन करते थे।

१४००वर्ष पूर्व जब इस्लाम पंथ नहीं था और १६००वर्ष पूर्व जब कृस्ती पन्थ को मानने वाले लोग मुट्ठी-भर ही थे तब सारे विश्व में रामायण का अध्ययन होता था। इसकी जानकारी हम इस अध्याय में और अगले अध्याय

में प्रस्तुत करेंगे। हम इन अध्यायों में जो सूत्र प्रस्तुत कर रहे हैं उनके आधार पर यदि विश्व के विद्वान बारीकी से शोध कार्य आरम्भ कर दें तो उन्हें हर प्रदेश में रामकथा के अवशेष अवश्य प्राप्त होंगे।

मंगोलिया

.रूस के विद्वानों ने एक ग्रन्थ प्रकाशित किया है जिसमें मंगोल प्रदेश के राम-कथा के अवशेषों का और रूस के कालिमक प्रान्त में पाई जाने वाली राम-कथा का संकलन किया है। इसकी कुछ और जानकारी अगले अध्याय में भी दी जाएगी।

चीन

एक चीनी लेखक कांग-सेंग-हुई ने सन् २५१ में जातक-प्रथा से रामायण का संकलन किया। केकय की लिखी एक संस्कृत कथा का चीनी अनुवाद उपलब्ध है जिसमें राम के वनवास जाने से शोकविह्वल दशरथ की मृत्यु का वर्णन है। वह अनुवाद ४७२ ईसवी का है।

"एशिया का महाकाव्य—रामायण" (Ramayan the Epic of Asia) इस शीर्षक का एक लेख श्री लोकेशचन्द्र (International Academy of Indian Culture, जे-22 हौज खास, नई दिल्ली) ने प्रकाशित किया है। उस शीर्षक से हम सहमत नहीं हैं। वेदोपनिषद्, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, पाणिनी की अष्टाध्यायी, अष्टांग आयुर्वेद, प्राणायाम, योग, वैदिक संगीत, वैदिक स्थापत्य आदि सारे अंग-उपांग सहित पूरी वैदिक संस्कृति विश्व के हर प्रदेश के प्रत्येक मानव की थी। अतः रामायण केवल एशिया खण्ड का ही नहीं अपितु सारे विश्व का पूज्यनीय इतिहास ग्रन्थ रहा है।

लोकेशचन्द्र जी के लेख के अनुसार एशिया खण्ड में पाये जाने वाली रामकथाएँ इस प्रकार हैं—"सोलहवीं क्रुस्ती शताब्दी में हिसी-यी-ची (Hsi-Yii-chi) नाम के चीनी लेखक द्वारा एक दीर्घ उपन्यास लिखा गया। उसका शीर्षक था "कपि"। उस ग्रन्थ में उस कपि के साहस और वीरता की कई कथाएँ वर्णित थीं। सीता की शोध में हनुमान ने किए प्रयासों का वह

वर्णन था। चीनी जनता में हनुमान तथा रामायण सम्बन्धी जो लोककथाएँ विश्रुत थीं उनका संकलन उस ग्रन्थ में किया गया था। उस ग्रन्थ का चीनी साहित्य में मौलिक योगदान रहा।

श्रीलंका

उसी लेख में लोकेश चन्द्र जी लिखते हैं कि छठी क्रुस्ती शताब्दी का सिंहल नरेश कुमार धातुसेन उर्फ कुमारदास कवि भी था। सन् ६१७ के आसपास उसका शासनकाल कहा जाता है। उसका रचा हुआ जानकीहरण नाम का काव्य है। आज तक के ज्ञात इतिहास में वह श्रीलंका का प्राचीनतम संस्कृत साहित्य माना जाता है। बारहवीं शताब्दी में किसी अज्ञात लेखक ने उसका सिंहली भाषा में शब्दश: अनुवाद किया। अनेक सिंहली लेखकों ने उस काव्य की बड़ी प्रशंसा की है। आधुनिक युग में C. Don Bostean नाम के लेखक ने सिंहली भाषा में जो रामायण का अनुवाद प्रकाशित किया है उसका सिंहल की उपन्यास शैली पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। John D'Silva जैसे आधुनिक सिंहली नाटककारों ने राम-कथा पर आधारित नाटक लिखे हैं। श्रीलंका में राम-कथा के प्रति बड़ी श्रद्धा और आदर है और सीता के गुणों की वैसी ही प्रशंसा की जाती है जैसे इण्डोनेशिया में होती है।

काम्बोज

स्याम के पूर्व में काम्बोज देश है जिसे कम्बोडिया या कम्पूचिया भी कहते हैं। सातवीं शताब्दी के काम्बोज के खेमर शिलालेखों से पता चलता है कि रामायण उस समय का बड़ा मान्यता प्राप्त ग्रन्थ था। काम्बोज की ऐतिहासिक इमारतों पर रामायण के कई प्रसंग बड़े गर्व से उत्कीर्ण किए गए हैं। खेमर वंश के शासन में रामायण के प्रसंग या रामकथान्तर्गत विविध व्यक्तियों के नामों के उल्लेख से सामाजिक, नैतिक, ऐतिहासिक घटना या भावनाओं के तोल-मोल करने की प्रथा थी। बेयॉ नाम की इमारत की बाहर की दीवार पर सातवें जयवर्मन राजा ने चम् राज्य पर जो चढ़ाई की थी, उसके दृश्य रामायण प्रसंगों की शैली में ही अंकित हैं।

राम ने लंका का जैसे दमन किया वैसे ही सातवें जयवर्मन ने चम् के

राजा पर विजय पाई, ऐसा दर्शाया गया है। सातवें जयवर्मन के समय से खेमर वंश के जीवन में रामायण का बड़ा महत्त्व रहा। उत्सवों में राम-लीला का अन्तर्भाव होता था, चित्रकारी में रामायण के प्रसंग बताए जाते और कथा-कीर्तनों में राम-कथा कही जाती। खेमर के लोगों का काव्य सारा राममय हो गया था। अंकोर नाम की जो खेमरों की प्राचीन राजधानी काम्बोज देश में है, वहाँ की राम-कथा जावा द्वीप की राम-कथा से मिलती-जुलती है। उसमें और बाल्मीकि द्वारा लिखित राम-कथा में थोड़ा अन्तर पड़ गया है।

रामायण की मूलकथा या इतिहास बाल्मीकि द्वारा ही प्रथम लिखा हुआ विश्व को प्राप्त है। बाल्मीकि ने भी एक संशोधक के नाते नारद जी के सुझाव पर प्राचीनकाल में घटे इतिहास का संकलन किया। तत्पश्चात् समय-समय पर विविध देशों के और विविध युगों के इतिहासकार, कवि, नाटककार, लेखक, चित्रकार, कथाकार, पौराणिक प्रवचनकार आदि ने उस कथा में प्रक्षेप, तोड़-मरोड़ आदि परिवर्तन किए। इसी कारण जावा (इण्डोनेशिया), काम्बोज आदि देशों में चित्रित या वर्णित राम-कथा बाल्मीकि द्वारा लिखी कथा से कहीं-कहीं भिन्न प्रतीत होती है।

इण्डोनेशिया

लोकेशचन्द्र जी लिखते हैं कि "इण्डोनेशिया के लोगों को रामायण से उतनी ही आत्मीयता है जितनी हिन्दुओं को। इसी कारण उन्होंने आधुनिक युग के प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय रामायण समारोह का कुछ वर्ष पूर्व आयोजन किया।"

"इण्डोनेशिया के प्राम्बनन् नगर में चण्डी लोरो जोंगरोंग नाम का जो कन्याकुमारी का मन्दिर है, उस पर नौवीं शताब्दी में रामायण उत्कीर्ण थी ऐसा De Casperis नाम के संशोधक ने एक शिलालेख से निष्कर्ष निकाला है। इण्डोनेशिया में काकाविन नाम की रामायण की सर्वमान्य कथा है, उससे प्राम्बनन् के मन्दिर में उत्कीर्ण रामायण कुछ भिन्न थी। इससे पता चलता है कि इण्डोनेशिया में रामायण के भिन्न-भिन्न संस्करण उपलब्ध थे। पानातरन पर उत्कीर्ण रामायण स्थानीय शैली में हैं। उनमें वही दृश्य

दिखलाए गए जिनमें हनुमान और उसकी वानर सेना की कुछ भूमिका हो।"

लाओस

कम्बोडिया से सटा हुआ "लव" देश है। फ्रेंच स्पेलिंग Laos और आंग्ल उच्चार के कारण जिस देश को कुछ लोग "लाओस" के नाम से जानते हैं वह वास्तव में "लव" देश है। स्थानीय लोग उसका वैसा ही उच्चार करते हैं। राम के पुत्र "लव" का नाम उस देश को पड़ा है। रामायण की प्राचीनता तथा ऐतिहासिकता के ऐसे कई प्रमाण विश्व में उसी प्रकार बिखरे पड़े हैं जैसे अपहरण होने पर बड़ी दूरदृष्टि ने सीताजी निजी अलंकार विमान से एक के पश्चात् एक भू-तल पर फेंकती गईं। लव देश में अनिरुद्ध नाम का राजा था। उसे वहाँ की परम्परा में फ्रा छाओ अनुरुत् कहा जाता है। उसने अपनी राजधानी में वट-सी फुम् (वट श्री भूमि) प्राचीन भग्न मन्दिर के स्थान पर "वट-माई" यानि नव मन्दिर बनवाया। उसकी दीवार पर रामायण के प्रसंग चित्रित किए गए हैं। लव देश का दूसरा प्राचीन मन्दिर "वट पा केव" कहलाता है। उस पर भी रामायण चित्रित है। लव देश के नृत्यनाट्य में कई बार रामलीला ही प्रस्तुत की जाती है।

लव देश की राजधानी फ्रेंच उच्चारण से व्हिएनशियान् कही जाती है। वास्तव में यह "वन चन्दन" का अपभ्रंश है। वहाँ की नाट्यशाला में रामलीला के नृत्यनाट्य का प्रशिक्षण अन्तर्भूत है। उसके आधुनिक नरेश सवंग वत्थन की कन्या राजकुमारी दाला उर्फ तारा का जब राजसी ठाठ से विवाह हुआ उस समय लुआंग प्रबांग नगर में अतिथियों के मनोरंजन के लिए बड़ी चमक-दमक से रामायण का नृत्यनाट्य प्रस्तुत किया गया था।

लव देश में प्रचलित एक प्राचीन रामायण की गाथा उनके वट प्रा केव मन्दिर में सुरक्षित है। उसके २०-२० पृष्ठों के ४० पुट्ठल हैं। इसी तरह की रामायण की दूसरी पोथी वट सिस्केत् मन्दिर में है। Lafont नाम के फ्रेंच लेखक ने "पा लाका—पा लाम्" यानि "प्रिय लक्ष्मण—प्रिय राम" इस लव देश के राम काव्य का संक्षिप्त संस्करण और P'Ommachak (यानि

"ब्रह्मचक्र") नाम की राम-कथा का एक और भिन्न संस्करण प्रकाशित किया है।

स्याम

स्याम में रामायण को रामाख्यान के अर्थ से 'रामकिएन्' या 'रामकीर्ति' भी कहा जाता है। या तो मुखौटे पहनकर वहाँ रामलीला की जाती है या छायानाट्य के रूप में रामलीला बतलाई जाती है। मुखौटे पहनकर किए जाने वाले नाट्य को स्यामी भाषा में 'खोन' कहा जाता है। छाया-नाट्य को 'नंग' कहते हैं। इनके अतिरिक्त साहित्य के रूप में भी रामायण स्याम में प्रस्तुत की जाती है। आधुनिक स्याम के राजा राम प्रथम और राम द्वितीय ने भी स्वयं रामकथाएँ लिखी हैं। शिल्पतोन् (उर्फ शिल्पाधि-करण) नाम का जो सरकारी ललित कला संस्थान स्याम में है वह उन राजलिखित रामकथाओं को विशेष अवसरों पर रंगमंच पर प्रस्तुत करता रहता है। षष्ठम् राम राजा ने भी बाल्मीकि रामायण पर आधारित एक रामलीला लिखी है। धनिनिवत् नाम के एक स्यामी विद्वान ने जावा के श्री विजयहिन्दु साम्राज्य में जो रामकिएन् (रामाख्यान) प्रचलित था उसके आधार पर स्यामी रामलीला काव्य तैयार किया। उस रामलीला को भी पशुचर्म से बनाई आकृतियों द्वारा परदे पर छायानाट्य उर्फ 'नंग' के रूप में प्रेक्षकों को दिखाया जाता है। ऐसे छायानाट्यों का उल्लेख स्याम के राजा ब्रह्मत्रैलोक्यनाथ के सन् १४५८ के घोषपत्र में भी किया गया है।

मलयेशिया

मलाया उर्फ मलयेशिया में १४००-१५०० ई० में लिखी हिकायत सेरी राम के आधार पर रामलीला के छायानाट्य प्रस्तुत किए जाते हैं। उन्हें स्यामी या जावा शैली के अनुसार 'वायांग सयाम' या 'वायांग जाह्वा' कहा जाता है।

मलाया में रामायण के विविध साहित्यिक संस्करण प्रचलित हैं। मलयेशियन् 'दालांग' संस्थान् द्वारा प्रतिवर्ष २०० या ३०० बार रंगमंच पर रामलीला प्रस्तुत की जाती है। उन्हें बड़े भक्तिभाव से आरम्भ किया

जाता है। प्राचीन वैदिक प्रथा के अनुसार मलाया देश में रामलीला के आरम्भ में ईश्वर पूजन, प्रार्थना इत्यादि प्रास्ताविक होता है।

ब्रह्मदेश

ब्रह्मदेश का एक राजा क्यानभित्था (१०८४-१११२) था जो वैदिक परम्परा के अनुसार अपने-आपको प्रभु रामचन्द्र का वंशज ही मानता था। ब्रह्मदेश में राम को 'यम' भी कहा करते थे। सन् १७६७ में ब्रह्मदेश के राजा ने स्याम को परास्त करने के पश्चात् 'यम ध्वे' नाम से रंगमंच पर रामलीला प्रस्तुत कराना आरम्भ किया। वह रामलीला रात्रि के समय लगातार इक्कीस दिन क्रमशः रंगमंच पर दिखाई जाती।

लोकेशचन्द्र कहते हैं, 'अन्य कई देशों में भी रामायण विद्यमान है। तुआन हुआंग की गुफाओं में सातवीं और नौवीं शताब्दी के लिखे रामायण के दो संस्करण हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में बना एक रामकाव्य भी उपलब्ध है। 'काव्यादर्श' और 'सुभाषित रत्ननिधि' जैसे ग्रन्थों में रामायण पर आधारित काव्य, नीतिकथा या नीतिसार, टीकाएँ, Zhang-Zhungpa Chowang-drakpaipal नाम का एक पद्य, तारानाथ द्वारा किया एक अनुपलब्ध अनुवाद आदि रामकथा के विविध संस्करणों का संकलन या उद्देश्य है।

नेपाल

वाल्मीकि रामायण का प्राचीनतम उपलब्ध संस्करण (सन् १०७५ ईसवी का) नेपाल राज्य में रखा हुआ है।

फिलीपीन

प्रशान्त महासागर में फिलीपीन नाम का एक देश है। वहाँ की लोकोक्तियों में, संस्कारों में, परम्पराओं आदि में रामायण की छाप दृष्टिगोचर होती है, ऐसा लोकेशचन्द्र जी का अनुभव रहा है। सन् १९६८ में प्राध्यापक Juon R. Francisco ने स्थानीय इस्लामी मरानियो जाति के लोगों में रामायण की एक संक्षिप्त कथा पाई। उसमें राम को एक प्राचीन

अवतार कहकर प्रस्तुत किया गया है। फिलीपीन में जो अन्य मुसलमान समाज हैं उन्हें Magindanao और Sulu Folk कहते हैं। उनके गीतों में भी रामायण के कुछ अंश गुंथे हुए हैं।

जिस दानव जाति का रावण एक प्रबल राजा था, उसी दानव जाति का नाम आज भी फिलीपीन प्रदेश में रहने वाले लोगों से जुड़ा हुआ है। उस जाति का Magindanao नाम प्राचीन संस्कृत 'महादानव' नाम है। अरबों के आक्रमण के फलस्वरूप रामायण का गान करने वाले फिलीपीन के वे लोग बेचारे छल-बल से मुसलमान बना लिए गए। उनमें चली आई पवित्र रामकथा का स्मरण दिलाकर उन लोगों को पुनः वैदिक परम्परा में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

ईरान

अरबों के आक्रमण से ईरान की सारी जनता छलबल से मुसलमान बनाई गई। उस समय जो थोड़े ईरानी भारत में शरण लेने के लिए भाग आए वे पारसी (उर्फ फारसी) कहे जाते हैं। पूर्वी ईरान में उस समय खोतानी भाषा प्रचलित थी। मध्य एशिया के खोतान् प्रदेश की वह भाषा थी। जब से ईरान पर इस्लाम थोपा गया तब से ईरान में रामायण दबा दी गई।

अति प्राचीनकाल से ईरान पारसिक प्रदेश कहलाता था। फारस, फारसी, पारसी उसी पारसिक शब्द के अपभ्रंश हैं। कालिदास के रघुवंश में रघु द्वारा पारसिक देश पर पाई महान् विजय का वर्णन है। राम रघु-कुल के युवराज के नाते ही राघव कहलाते हैं। जिस रघु ने ईरान उर्फ पारसिक देश को जीता था उस देश पर इस्लाम पन्थ सातवीं शताब्दी में थोपा गया। तब तक रघु के इक्षवाकु कुल में जन्मे और सारे विश्व में प्रख्यात हुए प्रभु रामचन्द्र की पराक्रम गाथा अन्य देशों जैसी ईरान में भी बड़े भक्तिभाव से पढ़ी जाती और रंगमंच पर भी प्रदर्शित होती थी।

बारीकी से खोज करने पर अफगानिस्तान से अल्जीरिया-मोरक्को तक के सारे इस्लामी बने देशों में रामायण के अस्तित्व के प्रमाण अवश्य मिलने चाहिएं।

जो-जो देश-प्रदेश इस्लामी आक्रमण के शिकार हुए उनमें इस्लामी धर्मान्धता के कारण इस्लामपूर्व सारा इतिहास जान-बूझकर नष्ट कर दिया गया। अत: उसमें रामायण भी नष्ट हुआ। तथापि ईश्वर की कुछ ऐसी माया है कि जो वस्तु एक बार प्रकट होती है उसे चाहे कितना ही कुचलने का यत्न किया जाए उसके कुछ-न-कुछ प्रमाण शेष रह ही जाते हैं। इस्लामी प्रदेशों में दबाई गई रामायण पर भी वही नियम लागू है।

इस्लाम का नौवां महीना रामनवमी के उपवास में रामभान् उर्फ राम-दान कहलाता है। भारत के कर्मठ हिन्दू रामनवमी को उपवास रखते हैं। अरबों में 'रामध्यान' का पूरा महीना राम का ध्यान करते हुए उपवास करने का था। उसी प्रथा के अनुसार एक गुफा में राम का ध्यान करते बैठे महंमद पैगम्बर को रामभान के महीने में ही एकान्त में कुराण का स्फुरण हुआ। इससे यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि रामभान नाम और रामभान में उपवास रखने की प्रथा इस्लामपूर्व है।

चित्रल में राम

पाकिस्तान की उत्तरी सीमा में चित्रल प्रदेश है। वहाँ के लोग एक सहस्त्र वर्ष पूर्व ही छलबल से मुसलमान बनाए गए तथापि उनकी बोल-चाल में 'हे राम' या 'हाय राम' का उद्‌गार बराबर आता रहता है। इस सम्बन्ध में २२ फरवरी, १९८५ के आंग्ल दैनिक Indian Express में John V. Bellezza नाम के एक अमेरिकी प्रवासी ने एक लेख लिखकर बड़ा आश्चर्य व्यक्त किया कि वे कट्टर मुसलमान बार-बार राम का नाम कैसे लेते हैं। इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? दस लक्ष वर्षों से जो राम नाम सारे विश्व में प्रसृत है वह भला केवल एक सहस्त्र वर्षों के इस्लामी-करण से कैसे भुलाया जा सकता है ?

रामायण के संस्करण

राम का इतिहास त्रेतायुग का होने के कारण दस लक्ष वर्ष प्राचीन हो सकता है तथापि उसकी प्राचीनतम पोथियाँ ऊपर कहे अनुसार ७वीं, ९वीं या ११वीं शताब्दी की ही पाई गई हैं। इससे पाश्चात्य परम्परा के विद्वान

ऐसा प्रतिपादन करने के आदी हो गए हैं कि जैसे कोई मनगढ़न्त काव्य रामकथा के नाम से प्रथम बार ७वीं शताब्दी में उदित हुआ। वह प्रतिपादन तर्कसंगत नहीं है। ताड़पत्र या कागज पर लिखी पोथियाँ या अन्य प्राचीन साहित्य अधिक काल तक सँभलकर रखना अशक्य था। जल, आग, दीमक, बुजुर्गों की मृत्यु पर कुटुंब में होने वाला बंटवारा, इस्लामी लूट-पाट आदि कई कारणों से प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ नष्ट होती रहती थीं और नई हस्तलिखित प्रतियाँ घटते प्रमाण में बनाकर रख ली जाती थीं। अतः ७वीं, ९वीं या ११वीं शताब्दी में रामायण की जो हस्तलिखित प्रतियाँ पाई गईं वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी हाथ से उतारी गई दस लक्ष वर्ष पूर्व की रामायण की प्रति ही हैं, ऐसा मानने में कोई हिचकिचाहट होनी नहीं चाहिए।

मुसलमानों में रामायण

इटालियन प्रवासी मार्कोपोलो के ग्रन्थ का Sir Henry Yule ने जो आंग्ल अनुवाद किया है (John Murray ने सन् १९०३ में Albemarle Street, लंदन से प्रकाशित किया) उसके द्वितीय खण्ड के पृष्ठ ३०२ पर एक टिप्पणी में उल्लेख है कि It was a story among mediaeval Mohammedans that the members of the imperial house of Trebizond were endowed with short tails while mediaeval continentals had like stories about englishmen as—Matthew Paris relates……। इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है, 'मध्ययुगीन मुसलमानों में एक दन्तकथा प्रचलित थी कि ट्रेबिझाँड के राजघराने के व्यक्तियों की एक छोटी दुम हुआ करती थी। मध्ययुगीन यूरोप के लोग भी कहा करते थे कि आंग्ल भूमि में रहने वाले मानवों को भी पूँछ हुआ करती थी। यह हवाला Matthew Paris के ग्रन्थ में मिलता है"।

ऊपर जो ट्रेबिझाँड प्रदेश का उल्लेख है, हो सकता है वह किष्किन्धा का अपभ्रंश हो।

भारत के हैदराबाद नगर में जो सालारजंग म्यूजियम है उसमें ईरान से लाया एक रंगीन चित्र प्रदर्शित था। उसमें एक खड़ा वानर दोनों बाहों से सर के ऊपर एक बड़ा पत्थर पकड़े हुए प्रदर्शित था। ईरान का

एक जिन् यानि 'भूत' ऐसा उसका विवरण किसी ने वहाँ दिया। इससे एक बात ध्यान में आती है कि द्रोणागिरी हाथ में धारण किए हुए हनुमान का चित्र जो वैदिक परम्परा में बड़ा प्रचलित है उसी का एक विकृत रूप उस ईरानी चित्र में बतलाया गया था और उसका विवरण भी विकृत कर उसे भूत कहा गया था। ईसाई और इस्लामी बने लोगों की यह चाल रही है कि वे उनके पूर्वजों के पूजे हुए वैदिक देवताओं को ही भूत कहकर उनके प्रति निजी लोगों में तिरस्कार फैलाते रहें।

ऊपर उल्लिखित टिप्पणी में ही Sir Henry Yule ने आगे यह भी लिखा है कि पोरबन्दर का गुजराती राजकुल हनुमान के वंशज होने के नाते 'पुछड़िया' यानि 'पूंछवाले' कहलाता था। चीनी लोग भी कँटन नगर के उत्तर में मर्कट मानवों का अस्तित्व बताया करते हैं।

अफ्रीका खण्ड में भी मर्कट मानवों की दन्तकथाएँ प्रचलित थीं। उनका उल्लेख Bulletin de le Soc de Geog. Ser. iv Tom iii नाम के ग्रन्थ में पृष्ठ ३१ पर मिलता है।

१८

प्राचीन यूरोप में रामायण

वर्तमान पाश्चात्य-प्रणाली के विद्वानों में रामायण की प्राचीनता और उसके विश्व प्रसार के बारे में गहरा अज्ञान है। पाश्चात्य प्रणाली कृस्त-मूलक होने के कारण कृस्तपूर्व में यूरोप की सभ्यता नगण्य थी, ऐसी उन लोगों ने निजी धारणा बना ली है। आंग्लशिक्षा पाए हुए भारतीय विद्वान भी उसी अज्ञानधारा के स्नातक बनने में अपने-आपको धन्य मानते हैं। वे यह नहीं जानते कि वैदिक संस्कृति सारे विश्व में छायी हुई थी। अतः यूरोप, अफ्रीका आदि सभी प्रदेशों में रामायण विद्यमान थी।

अफ्रीका और अर्बस्थान की सीमा के निकटवर्ती जॉर्डन नदी के पश्चिमी तीर वाले प्रदेश को गाझा पट्टी (Gaza Strip) कहते हैं। उसके प्रमुख नगर का नाम है रामल्ला। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस्लाम-पूर्व अरब लोग राम को अल्ला मानते थे।

अफ्रीका खण्ड का एक देश है इथियोपिया उर्फ अबीसीनिया। वे लोग अपने-आपको Cushites यानि 'कुश के प्रजाजन' मानते हैं। राम के एक पुत्र का नाम 'कुश' था।

ईजिप्त देश 'अजपति' राम का देश कहलाता है। उसकी दन्तकथाओं में दशरथ का अन्तर्भाव है।

आधुनिक काल में रामायण विषय को लेकर दो-तीन बार अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाए गए। उनमें विश्व-भर के सैकड़ों विद्वानों ने भाग लिया तथापि उनमें से एक को भी यह पता नहीं था कि यूरोप, अफ्रीका आदि देशों में भी रामायण थी। वे केवल इण्डोनेशिया आदि गिने-चने पूर्ववर्ती

देशों में रामकथा पाई जाती है, यही बात दोहराते रहे। इससे पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि वर्तमान इतिहास-ग्रन्थों में कितने न्यून और कितनी त्रुटियाँ हैं।

रामचन्द्र का अपभ्रंश रिचर्ड

यूरोपीय लोगों में रिचर्ड नाम रखा जाता है जो रामचन्द्र का अपभ्रंश है। यूरोप में Richard the Lion-hearted नाम के काव्य लैटिन, फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी आदि कई यूरोपीय भाषाओं में अभी भी उपलब्ध हैं। उन्हें यदि ध्यान देकर पढ़ा जाए तो उनमें रामकथा के अंश मिलते हैं। यद्यपि जितना अधिक समय बीतता गया उतनी ही रामायण की कथा में अधिकाधिक तोड़-मरोड़, त्रुटियाँ और मिलावट होती रही। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यूरोप में जितनी प्राचीन-से-प्राचीन Richard the Lion-hearted कथा का संस्करण मिले उतना उसमें राम-कथा का अंश अधिक पाया जाएगा।

वैदिक संस्कृति को नष्ट करने के प्रयास

जिन-जिन देशों में जनता पर इस्लाम और ईसाई पंथ थोपे गए वहाँ-वहाँ वैदिक समाज-व्यवस्था, पूजा-पाठ, मन्त्र-तन्त्र, संस्कृत-शिक्षा और मन्दिरों की देवी-देवताओं की मूर्तियाँ तोड़-फोड़कर उन्हीं इमारतों को कब्रें, मसजिद या गिरजाघर घोषित करने की प्रथा चालू कराई गई। इसी प्रकार रामायण की कथा को जानबूझकर १२वीं ईसाई शताब्दी के आंग्ल नरेश Richard the Lion-hearted की कथाओं से इसलिए मिला दिया गया कि आगामी पीढ़ियों को रामायण की कथा का अस्तित्व ही भुला दिया जाए। झूठा व्यवहार करने वाले लोभी व्यापारी जैसे निजी लाभ के लिए दूध में पानी मिलाकर बेचते हैं या खानपान की अन्य वस्तुओं में मिलावट करते हैं उसी प्रकार ईसाई और इस्लामी लोगों ने निजी नेतागिरी के लालच में वैदिक संस्कृति को नष्ट करना चाहा।

बारहवीं ईसाई शताब्दी में मुसलमान और यूरोप के क्रुस्ती गोरों में धर्मयुद्ध हुए थे जिन्हें इतिहास में क्रूसेड्स (crusades) कहा गया है। अफ्रीका और एशिया में फैला इस्लाम, यूरोप के गोरे क्रुस्तियों पर भी

छलबल से इस्लाम पंथ थोपना चाहता था। किन्तु यूरोप के लोगों ने बड़ी दूरदर्शिता, धर्मनिष्ठा और वीरता से मुसलमानों को परास्त कर निजी प्रदेश इस्लाम के अत्याचारों से बचा लिए।

ईसाई चालाकी

चौथी ईसाई शताब्दी से लगभग ६०० वर्षों में दक्षिण से उत्तर तक सारा यूरोप छलबल से ईसाई बनाया गया। यह तो हुआ उस समय के कृस्ती नेताओं का अन्याय, अधर्म और अत्याचार। किन्तु वर्तमान युग के जो कृस्ती लोग हैं उनका भी तो एक बहुत बड़ा अपराध है। वह अपराध यह है कि वे अपने पुरखों द्वारा दबाए हुए वैदिक परम्परा और इतिहास के प्रमाणों के प्रति जान-बूझकर आंखमिचौनी कर रहे हैं। वर्तमान यूरोपीय विद्वानों की बाबत सामान्य धारणा ऐसी है कि गोरे यूरोपीय कृस्ती विद्वानों के विचार बड़े उदार होते हैं, उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण होता और उन्हें सत्य का पता चले तो तुरन्त उसका पुरस्कार करते हैं।

मेरा अनुभव इससे पूरी तरह विपरीत है। मैंने यह देखा है कि यूरोपीय ईसाई विद्वान मुसलमानों जितने ही कट्टर और धर्मांध होते हैं। विज्ञान, यान्त्रिक प्रगति आदि के बारे में यूरोपीय या अमेरिकी गोरे, कृस्ती विद्वान भले ही प्रगतिशील प्रतीत हों किन्तु जहाँ उनकी कृस्ती भावनाओं को ठेस पहुँचने का भय हो वहाँ उनकी उदारता या तर्कबुद्धि, अड़ियल टट्टू जैसी यकायक रुककर धरना दे देती है।

प्राचीन इतिहास के संशोधन पर लगा कृस्ती अंकुश

ईसाई पंथ के प्रति यूरोप के लोगों का झुकाव इतना अधिक है कि उसके समक्ष वे कृस्तपूर्व यूरोप की कोई और सभ्यता होनी चाहिए, इस तथ्य को साफ ठुकरा देते हैं। उन्हें यदि पूछा जाए कि ईसाई पंथ से पहले यूरोप के लोगों का रहन-सहन, उनका धर्म, उनकी परम्परा क्या थी ? तो वे बगैर सोचे-समझे कह देते हैं कि उस समय के लोग काफिर, जंगली, पिछड़े, हीदन, पेगन (यानी पेड़, पत्थर और नदियों आदि की पूजा करने वाले) गँवार थे। इस तरह गाली प्रदान से वे दर्शाना चाहते हैं कि उस समय के लोग इतने निकम्मे थे कि उनके इतिहास का शोध करना ही व्यर्थ

है। इस तरह के क्रोध और तिरस्कारपूर्ण उद्गारों से तो विश्व की बड़ी-से-बड़ी घटना को निकम्मी-से-निकम्मी बनाया जा सकता है।

मुसलमान भी ऐसा ही धर्मांध प्रचार करते हैं कि कुराण और मुहम्मद के अतिरिक्त विश्व में आदरणीय कुछ है ही नहीं। अतः वे मुहम्मदपूर्व सारे इतिहास को काफर और बुतपरस्तों का इतिहास कहकर भूल जाने को कहते हैं।

कम्युनिस्टों का भी वही हाल है। कार्लमार्क्स और लेनिन उनके परम गुरु हैं। उनके वचनों के अलावा कम्युनिस्टों को विश्व में कुछ भाता ही नहीं। कालमार्क्स के समय तक का इतिहास सरमाएदारों की नगण्य धाँधलेबाजी कहकर कम्युनिस्ट लोग उसे टाल जाते हैं।

ईसाई, इस्लामी और कम्युनिस्ट इतिहास के शत्रु

इससे सच्चे ज्ञानी और इतिहासप्रेमी व्यक्ति ने समझ लेना चाहिए कि किसी एकपंथ या व्यक्ति का अपने-आपको बँधा गुलाम मानने वाला व्यक्ति कभी ईमानदार इतिहासकार नहीं बन सकता। निष्पक्ष इतिहासकार वही हो सकता है जो किसी एक धर्म, पंथ, संस्था, व्यक्ति या अधिकारी का अपने-आपको गुलाम न मानता हो। काँच या चीनी मिट्टी के बर्तनों की दुकान में यदि कोई साँड घुस जाए तो वे सारे बर्तन जैसे टूट-फूट जायेंगे वैसे ही इस्लामी, ईसाई या कम्युनिस्ट व्यक्ति के हाथों सत्य इतिहास तहस-नहस हो जाता है।

ईसाई, इस्लामी और कम्युनिस्ट लोग इतिहास के शत्रु होते हैं। इस हमारे निष्कर्ष का एक प्रमाण यह है कि इन तीनों पंथों ने पूर्ववर्ती लोगों के इतिहास को निकम्मा समझकर पूरी तरह नष्ट कर दिया। उन्हें इतनी भी सूझ-बूझ नहीं रहती कि भूले-बिसरे और गए-बीते दिनों की और लोगों की कहानी ज्यों-की-त्यों आगामी पीढ़ियों की जानकारी और मार्गदर्शन के लिए साबुत और सुरक्षित रखना यही तो इतिहास का उद्देश्य होता है। किसी एक लाड़ले व्यक्ति को सर्वश्रेष्ठ मानकर उसके पूर्व की सारी तफसील नष्टभ्रष्ट कर देने का किसी को कोई अधिकार नहीं। ऐसे लोगों को मानव-जाति के शत्रु या राक्षस कहा जाना चाहिए।

ऐसे ही लोगों के अन्धाधुन्ध अत्याचारों के कारण ईसाई और इस्लामी बने देशों में से राम-कृष्ण-शिव-गणेश-चण्डी-भवानी आदि वैदिक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ, मन्दिर, चित्र, स्रोत, ग्रन्थ आदि सब नष्ट करा दिए गए। ऐसे सर्वनाश में से भी कुछ प्रमाण यहाँ-वहाँ अब भी बारीकी से शोध करने पर किस प्रकार हाथ आ सकते हैं इसके कुछ उदाहरण हम इस अध्याय में प्रस्तुत कर रहे हैं। भारत के एक कोने में बैठे-बैठे ही मैंने यह जो प्रमाण प्राप्त किए हैं उनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि ईसाई और इस्लामी बने देशों में प्रत्यक्ष जाकर यदि पूरा जोर लगाकर शोध किया जाए तो अब भी अनेक प्रकार के प्रमाणों के ढेर लगाए जा सकते हैं।

यूरोप

शोध करने पर यूरोप के विभिन्न देशों में अभी भी खण्डित, मिलावटी और विकृत रूप में रामायण के चिह्न किस प्रकार पाए जाते हैं इसके कुछ नमूने हम इस अध्याय में प्रस्तुत कर रहे हैं।

जॉर्ज हेनरी नीडलर नाम के एक अंग्रेज ने जर्मनी के लेपजिग विश्व-विद्यालय में Richard the Lion-hearted की कथाओं के संस्करणों के सम्बन्ध में Doctorate की उपाधि के लिए जो शोध प्रबन्ध (thesis) प्रस्तुत किया था उसके कुछ अंश मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूँ। आश्चर्य की बात यह कि स्वयं नीडलर या उसके वरिष्ठ परीक्षक विद्वान इनमें से किसी को तनिक भी कल्पना नहीं आई कि 'रिचर्ड दि लायन-हार्टेड' की कथा वास्तव में रामकथा ही है। इससे पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि यूरोपीय विद्वान कितने अनभिज्ञ और अज्ञानी होते हैं। ईसाइयत् के लेप के नीचे दबी उनकी तर्कशक्ति सादी और स्पष्ट बातों को ग्रहण नहीं कर पाती।

नीडलर द्वारा प्रस्तुत किए प्रबन्ध (thesis) का मुखपृष्ठ इस प्रकार है—

RICHARD COEUR DE LION IN LITERATURE
INAUGURAL DISSERTATION
DER
HOHEN PHILOSOPHISCHEN FAKULTAT
DER

UNIVERSITAT LEIPZIG
ZUR
ERLANGUNG DER DOCTORWURDE
VORGELEGT VON
GEORGE HENRY NEEDLER

—

LEIPZIG
GUSTAVE FOCK
1890

Its contents are as under—

CONTENTS

टिप्पणी—ऊपर III५ ए में Caius college (केम्ब्रिज विश्वविद्यालय) का उल्लेख है। उसमें C का "श" उच्चार करने से पता चलेगा कि "केअस" वस्तुतः शिवस् शब्द है। आंग्लभूमि में दूसरा प्रसिद्ध विश्वविद्यालय है ऑक्सफोर्ड (Oxford)। उसके एक कॉलेज का नाम है Balliol जो संस्कृत "बल्लाक" गणेश का नाम है। इस प्रकार पाठक देख सकते हैं कि आंग्ल द्वीप छठी शताब्दी में क्रुस्ति बनाए जाने पर भी उनके विद्यालयों के नामों में अभी भी वैदिक देवताओं के नाम जुड़े हुए हैं।

पूर्व जर्मनी के लेपजिग विश्वविद्यालय के उच्च दार्शनिक विभाग में ऊपरनिर्दिष्ट प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया था। सन् १८६० में वह प्रकाशित हुआ।

मेरे कई मित्रों के बार-बार कहने पर दिल्ली-निवासी डॉक्टर ना०

कृ० भिड़े जी ने अपने एक यूरोपीय मित्र से कहा और उसने मुझे लेपजिग में प्रकाशित उस प्रबन्ध के कुछ पृष्ठ भेजे। बस, मेरा काम बन गया। उन पृष्ठों में मुझे रामकथा के अंश अवश्य मिले जबकि वे पृष्ठ भेजने वाले यूरोपीय व्यक्ति को स्वयं उसमें राम-कथा का कोई चिह्न दिखाई नहीं दिया। इससे पाठक यूरोपीय कृस्ती विद्वानों की दूषित शोध दृष्टि का अनुमान लगा सकते हैं। मुझसे हजारों मील दूर यूरोप में वहाँ का प्राचीन साहित्य अवलोकन न किए हुए मैंने उसमें राम-कथा अवश्य होनी चाहिए ऐसी अटकल बाँधी थी, जबकि उस यूरोपीय साहित्य का बारीकी से अध्ययन किए हुए कई यूरोपीय विद्वानों को उस साहित्य में राम-कथा का कोई अस्तित्व नहीं दिखा। अत: यूरोपीय विद्वान बड़े निष्पक्ष होते हैं या उनकी शोधबुद्धि बड़ी सूक्ष्म होती है वगैरह जो धारणाएँ आंग्ल शासन में भारतीयों की बनी हुई थीं, वह निराधार हैं। पाश्चात्य विद्वान भी अन्य लोगों की तरह ढोंगी, पाखण्डी या अज्ञानी होते हैं। मानव स्वभाव सर्वत्र एक है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण ताजमहल सम्बन्धी शोध में मैंने पाया। ताजमहल तेजोमहालय नाम का शिवमन्दिर है न कि शाहजहाँ द्वारा मुमताजमहल के लिए बनाई गई कब्र। यह मेरा शोध भली प्रकार प्रस्थापित होने के चौबीस वर्ष पश्चात् भी हजारों पाश्चात्य-इतिहासवेत्ता उस शोध के प्रति आँखें मूँदकर ताजमहल को कब्र बताने वाला पारम्परिक झूठ ही बिना हिचकिचाहट दोहराते रहे हैं।

उस यूरोपीय व्यक्ति ने मुझे पृष्ठ ७ से ५५, पृष्ठ ८० से ९५ और पन्द्रह अन्य पृष्ठों की यांत्रिक Xerox प्रति भेजी। उनमें पृष्ठ ८० से ९५ मेरी दृष्टि से बड़े महत्त्वपूर्ण साबित हुए, क्योंकि उनसे यह बात स्पष्ट हुई कि यूरोप में कृस्ती लोगों द्वारा लगातार १५०० वर्ष तक लूटपाट और विध्वंस मचाने पर भी दशलक्ष वर्षों की राम-कथा यूरोप से पूरी तरह नष्ट नहीं की जा सकी।

उन पृष्ठों के अतिरिक्त यूरोप में जहाँ-तहाँ राम-कथा के अंश बिखरे पड़े हैं इसके भी प्रमाण नीडलर के प्रबन्ध में दी गई सामग्री से पाए जाते हैं।

मूल फ्रेंच संस्करण का नाश

वर्तमान यूरोप में फ्रेंच लोगों की कला और संस्कृति के प्रति भक्ति का बड़ा बोलबाला है। इसके पीछे एक बड़ा ऐतिहासिक रहस्य छिपा है। फ्रेंच लोग जब ईसाई बनाए गए तब उन्होंने मुसलमानों जितनी ही क्रूरता और दुष्टता से वैदिक धर्म और परम्परा को फ्रांस से उखाड़ फेंकने की पराकाष्ठा की। फ्रांस में कैथोलिकपन्थी लोग इतने दुष्ट और क्रूर थे कि उनमें जो फ्रेंच बान्धव प्रॉटेस्टैण्ट पन्थ के प्रति झुकते दिखाई दिए उन्हें निजी प्राण बचाने के लिए सीमापार जर्मनी में शरण लेनी पड़ी। उन भागे हुए फ्रेंच लोगों को ह्यूजेनॉट्स कहते हैं। दूसरी बार सन् १७९० के लगभग जब फ्रांस में एक और क्रान्ति हुई तो फ्रेन्च लोगों ने निजी महाराज-महारानी, सरदार-दरबारी आदि को पकड़-पकड़कर कुल्हाड़े से उनके सिर कटवाये। अतः फ्रेंच लोगों की नाजुकता, कलाप्रियता आदि बातों पर विश्वास कर पाठकों ने धोखा नहीं खाना चाहिए।

उसी धर्मान्धता के कारण फ्रेंच लोगों ने फ्रांस से रामायण नष्ट की। इस सम्बन्ध में नीडलर के प्रबन्ध में पृष्ठ २४ पर दी टिप्पणी में लिखा है कि "रिचर्ड कर द लिआँ"। कथा मूलतः फ्रेंच भाषा में थी वह आंग्ल अनुवादक ने कई स्थानों पर स्पष्ट लिखा है। उदाहरणार्थ उस काव्यग्रन्थ की प्रस्तावना में आंग्ल अनुवादक ने लिखा है—"In Fransshe bookys this rym is wrought" यानि फ्रेंच पुस्तक का यह काव्य है। (सन्दर्भ Weber का संस्करण II, पृष्ठ २१ से २४)

टिप्पणी में लिखा है कि "कालान्तर में मूल फ्रेंच काव्य से आंग्ल काव्य लम्बा बनता चला गया। उसके कुछ प्रमाण भी इस प्रकार मिलते हैं कि—(१) उस काव्य के विभिन्न भागों में मेलजोल नहीं है। (२) कई भागों में मूल फ्रेंच संस्करण का उल्लेख नहीं है। (३) कई स्थानों पर उस कथा में आंग्ल जीवन की झलक दिखती है। हो सकता है कि मूलतः फ्रेंच भाषा से अनुवादित होने पर उस काव्य में और अधिक मिलावट होती रही।"

नीडलर के उस वक्तव्य से हम पूर्णतया सहमत नहीं हैं। हमारा अपना निष्कर्ष यह है कि महाभारतीय युद्ध के समय तक यूरोप के प्रत्येक देश में वाल्मीकि की संस्कृत रामायण उपलब्ध थी। महाभारतीय युद्ध से जो

विध्वंस और विघटन हुआ उससे यूरोप में टूटी-फूटी, भूली-बिसरी, लंगड़ी-लड़खड़ाती वैदिक संस्कृति किसी प्रकार चालू रही। तथापि आंग्ल भूमि सागर पार होने के कारण उसमें कायम रहने वाले लोग नगण्य और विरल थे। उस समय मुख्यत: फ्रांस से ही लोग आंग्ल द्वीपों में आया-जाया करते थे। इसी कारण सैंकड़ों वर्षों तक आंग्ल द्वीपों की जनभाषा तथा राजभाषा फ्रेंच ही थी। अत: आंग्ल द्वीपों में भी अन्य साहित्य के साथ रामायण भी फ्रेंच भाषा में होना अनिवार्य था। धीरे-धीरे फ्रेंच भाषा और फ्रांस की भूमि से सम्पर्क टूटते-टूटते इंग्लैण्ड स्वतंत्र देश बनने पर उसने फ्रेंच भाषा को पदच्युत कर आंग्ल भाषा को अपनाया। अत: कालान्तर में मूल फ्रेंच रामायण में आंग्ल लेखकों ने मिलावट करना अनिवार्य था। भारत में भी तो मूल बाल्मीकि रामायण को छोड़ तुलसीदास, कम्ब, एकनाथ आदि विविध भारतीय प्राकृत भाषाओं के सन्तों ने और कवियों ने रामायण में मनमानी तोड़-मरोड़ की है।

फ्रेंच रामायण के आंग्ल संस्करणों में मिलावट होते रहने का और भी एक विशेष कारण था।

बारहवीं शताब्दी में मुसलमानों के हमलों से यूरोप को बचाने के लिए यूरोप के कृस्ती नरेश एकजुट होकर इस्लामी आक्रमणों के विरुद्ध लड़े। उस समय इंग्लैण्ड का रिचर्ड नाम का राजा था। उसे भी लोग Lion-hearted (यानि सिंह हृदयी) कहने लगे। उस समय आंग्ल जनता को कृस्ती बने लगभग ५०० वर्ष हो गये थे। कृस्तपन्थ के प्रसार तक राम को ही (राम सिंह यानि सिंह हृदयी राम (Ramachandra the Lion-hearted) कहा जाता था। आंग्लजन कृस्ती बनने के पश्चात् उनकी जीवन परम्परा से दिन-प्रतिदिन राम-कथा अस्पष्ट होते-होते नष्ट होती चली गई। उधर मुसलमानों के विरुद्ध संघर्ष में आंग्ल राजा रिचर्ड के कड़े प्रतिकार के कारण उसे भी दरबारी, साहित्यिक तथा कवि आदि ने Richard the Lion-hearted यानि शूरवीर, सिंह हृदयी Richard बखानना आरम्भ कर दिया। होते-होते रामचन्द्र The lion-hearted और Richard the Lion-hearted इन दो भिन्न-भिन्न कथाओं की मिलावट होने लगी।

मुसलमान विरोधी युद्ध में सारे यूरोप के कृस्ती राजा एक होकर

लड़ने के कारण यूरोप के अन्य देशों की रामायणों में भी इंग्लैण्ड के क्रुस्ती रिचर्ड राजा के गुणगान मिलाए जाने लगे। इस प्रकार यूरोप में पाये जाने वाले सभी संस्करणों में वैदिक राम-कथा और क्रुस्ती रिचर्ड कथा की मिलावट हो गयी हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

रिचर्ड द लायन-हार्टेड का फ्रेंच अनुवाद है "रिचर्ड कर दि लिआँ"। "रिचर्ड-कर दि लियाँ" यह मूल फ्रेंच काव्य अब फ्रेंच भाषा में उपलब्ध नहीं है, नीडलर के इस निष्कर्ष से हम सहमत नहीं हैं। शोध करने पर पेरिस नगर के National-Bibliotheque नाम के राष्ट्रीय ग्रन्थालय में या अन्यत्र उस फ्रेंच काव्य की प्रति अवश्य मिल जानी चाहिए। मैंने एक मित्र से कहा था। अमेरिका जाते समय वे पेरिस के ग्रन्थालय में गये थे। माँग करने पर उन्हें वहाँ "रिचर्ड कर द लिआँ" काव्य के लेटिन आदि विविध भाषा के संस्करण ढेर के ढेर प्राप्त हुए। किन्तु उन सबको खोलकर देखने का भी उनके पास समय नहीं था। अतः हमारा विश्वास है कि फ्रेंच भाषा में भी ईसाई रिचर्ड की वीर गाथा से मिलावट किया हुआ ही रामायण क्यों न हो अवश्य प्राप्त होगा। केवल संशोधन की देर है।

लेटिन संस्करण

यूरोप में रामायण के शुद्ध या मिलावटी लेटिन संस्करण अवश्य प्राप्त हो जाने चाहिएँ। लेटिन, यह प्राचीन इटली की भाषा थी और इटली के रामायण प्रसंगों के चित्र उत्खनन में निकले प्राचीन घरों में पाये गये हैं। जहाँ रामायण के चित्र पाए गए हैं उस देश में प्रत्यक्ष लिखित रामायण अवश्य पाई जानी चाहिए।

लगभग ईसवीं सन् ३१२ तक रोम स्थित वेद वाटिका (Vatican) में पापहर्ता वैदिक शंकराचार्य रहता था। सन् ३१२ के लगभग रोमन सम्राट् कांस्टेनटाइन ने उस पर झपट्टा मारकर उस हिन्दु वैदिक शंकराचार्य का वध करके उसी धर्मपीठ में क्रुस्ती बिशप को बैठाकर उसी को पापहर्त (पाप-ह उर्फ पोप) घोषित किया। उस समय तक रोम उर्फ रामनगर की उस वेद-वाटिका में वेदोपनिषद, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, पाणिनी की अष्टाध्यायी आदि वैदिक ग्रन्थभण्डार था। क्रुस्ती सम्राट् कांस्टेंटाइन के

उस स्थान पर हमला करते ही वहाँ भागदौड़ व लूटपाट हुई। उस समय रामायण की प्रतियाँ कुछ नष्ट की गयीं, कुछ छुपा दी गयीं और कुछ अन्य स्थानों पर ले जायी गयीं।

नीडलर का भ्रम

नीडलर ने अपने प्रबन्ध के पृष्ठ १८ पर लिखा है कि "यद्यपि रिचर्ड के लड़ाई के वर्णन (मुसलमानों के विरुद्ध) बड़े रोचक हैं तथापि उनमें कई स्थानों पर दैवी चमत्कार आदि की मिलावट की गई है। नीडलर का यह कितना बड़ा भ्रम है। वस्तुस्थिति तो पूरी तरह से विपरीत है। प्राचीनतम-काल से विश्व के अन्य प्रदेशों की तरह इटली में भी रामायण उपलब्ध थी। किन्तु बारहवीं शताब्दी में मुसलमानों से छिड़े युद्ध में आंग्ल राजा रिचर्ड की शौर्यगाथा चल पड़ी। आगे चलकर उस कथा की प्राचीन राम-कथा में मिलावट होने लगी।

जर्मनी

तेरहवीं शताब्दी का एक जर्मन कवि है जिसका नाम है वूर्झबर्ग का कॉनरेड् (Konrad of Wurzburg)।

निजी प्रबन्ध के पृष्ठ २० पर नीडलर लिखते हैं—"उस जर्मनी कवि ने "नेनटीज नगर की वीरस्पर्द्धा" (The Tournament of Nantes) शीर्षक का काव्य लिखा है। उसमें प्रत्येक काव्यपंक्ति,में आठ-आठ शब्द हैं। हर श्लोक की दो पंक्तियाँ हैं। कथा काल्पनिक है। उसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। अखाड़े में जितने वीर उतरते हैं उन सब पर उस काव्य का नायक सबसे बढ़कर प्रवीण सिद्ध होता है। वह सत्यवादी, निर्भय, शक्तिमान, सद्‌गुणी और अजेय था। उसकी बराबरी का कोई अन्य व्यक्ति नहीं था। कई प्रदेशों के राजा, युवराज आदि उस स्पर्द्धा में शामिल हुए थे किन्तु उस कथानक के सामने वे सारे फीके पड़ गए। रिचर्ड ही उन सबसे प्रवीण और शक्तिमान सिद्ध हुआ। नौका का तला जैसे सागर के फेन को चीरता जाता है वैसे ही रिचर्ड ने उस स्पर्द्धा में अन्य स्पर्द्धकों से बढ़कर धनुष की प्रत्यंचा चीर डाली।

इस वर्णन से रामायण से परिचित कोई भी व्यक्ति एकदम पहचान

जाएगा कि सीता स्वयंवर के समय शिवधनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने की जो शर्त राजा जनक ने रखी थी, ठीक वही जर्मन कवि कॉनरेड के काव्य का विषय बन गया है। तथापि कॉनरेड भी उसे राम की कथा नहीं कहता तो नीडलर की तो बात ही क्या। दोनों कितने अज्ञानी हैं। तेरहवीं शताब्दी का जर्मन कवि कॉनरेड और १९वीं शताब्दी का संशोधक नीडलर, दोनों के मन में जरा-सी शंका भी नहीं आई कि जनक के दरबार के सीता स्वयंवर प्रसंग की होड़ कॉनरेड के काव्य का विषय है। यूरोपीय विद्वानों के अज्ञान और अयोग्यता का इससे बड़ा सबूत और क्या हो सकता है? अतः यूरोप के प्राचीन इतिहास का दुबारा पूरा अध्ययन-संशोधन करने की बड़ी आवश्यकता है। कृस्ती लोगों के हाथों यूरोप के कृस्त पूर्व इतिहास का सर्वनाश हुआ है।

जर्मनी में हनुमान का नाम

इसी सन्दर्भ में हम पाठकों को स्मरण दिलाना चाहते हैं कि होमियोपेथी चिकित्सा पद्धति के जर्मन निर्माता का नाम हेहनेमन् (Hahnemann) कहा जाता है जो स्पष्टतया हनुमान शब्द का अपभ्रंश है। जर्मन साहित्य में तेरहवीं शताब्दी तक रामायण प्रसंग का वर्णन, काव्य का विषय बनते रहे। अतः हेहनेमन नाम निश्चित ही रामायणकालीन हनुमान नाम है।

कॉनरेड् की काव्यपंक्ति आठ-आठ शब्दों की थी यह भी जर्मनी की प्राचीन वैदिक परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण है क्योंकि वैदिक संस्कृति में अष्टदिशा, अष्टदिक्पाल, अष्टावधनी, अष्टमंगल, मंगलाष्टक, साष्टांग नमस्कार, योग की आठ सिद्धि, अष्टांग आयुर्वेद, पाणिनी की अष्टाध्यायी, अष्टधातु का कलश, स्वामि श्री १०८, जप १०८, सद्गुरु श्री श्री १००८, अष्टपुत्रासौभाग्यवती भव, आदि उदाहरण आठ अंक का महत्त्व बताते हैं। रामायण प्रसंग पर काव्य करते समय कॉनरेड् द्वारा प्रत्येक काव्यपंक्ति में आठ ही शब्द ग्रन्थित करना जर्मनी की अज्ञात वैदिक परम्परा का एक प्रबल प्रमाण है।

वेबर का संस्करण

हेनरी डब्लू. वेबर (Henry W. Weber) नामक अंग्रेज ने Metrical

Romances नाम का एक काव्यसंग्रहए डिनबरो नगर से सन् १८१० में प्रकाशित किया। उसके भाग १ के, अध्याय १, रिचर्ड क्र द लिआँ काव्य की प्रस्तावना में लिखा है कि "दरबारियों के आग्रह पर राजा रिचर्ड के पिता किसी सुन्दरतम राजकन्या से विवाह करना मान्य करते हैं। ऐसी राजकन्या का पता लगाने के लिए दूत भेजे जाते हैं। विवाह सम्पन्न हो जाता है, किन्तु रानी को किसी संस्कार में बँधा रखने के कारण वह चर्च की छत से अपने दो पुत्रों को साथ लेकर निकल जाती है। राजा हेनरी की मृत्यु होती है और उसके पश्चात् रिचर्ड राजा बनता है।"

ऊपर लिखी कथा में रामायण की दो-तीन घटनाएँ उल्टी-सीधी मिलाई गई दीखती हैं। किन्तु यूरोपीय कृस्ती विद्वान तो उसकी बाबत पूर्णतया अनभिज्ञ हैं।

अशोक वन में सीता बन्दी बनाई गई थी। यूरोप के लोग कृस्ती पंथी बन जाने के कारण अज्ञानतावश राम-कथा प्रसंगों में चर्च का उल्लेख तथा "कृस्त की शपथ लेकर हम कहते हैं" आदि अप्रासंगिक उल्लेख कर जाते हैं। चर्च की छत छेदकर बन्दीस्थान से निकल जाने की जो बात है वह अशोक वाटिका का कारावास समाप्त होते ही सीता ने किए अग्निदिव्य का उल्लेख है। दो पुत्रों का जो उल्लेख है वे हैं लव और कुश। हेनरी राजा की मृत्यु और उसके पुत्र का राज्याभिषेक—ये घटनाएँ दशरथ की मृत्यु और भरत या राम के राज्याभिषेक से सम्बन्धित हैं। आरम्भ में सुन्दरी के विवाह का जो वर्णन है वह सीता स्वयंवर की घटना है। ऐसे-ऐसे प्रसंग यूरोप की विविध भाषाओं के गद्य और पद्य साहित्य में बारहवीं शताब्दी के आंग्ल राजा रिचर्ड के नाम गढ़-मढ़ दिए गए हैं जबकि वे सारे यूरोप के लोगों की स्मृति में चिरन्तन निवास करने वाले अति प्राचीन रामायण के प्रसंग हैं।

यूरोप में प्राप्य एक और रामायण संस्करण

यूरोप में पाये जाने वाले एक और रामायण संस्करण को देखें। उसे भी इंग्लैण्ड के राजा रिचर्ड-द-लायन हर्टेड के जीवन का ही एक अभिन्न अंग बना दिया गया है। उस रिचर्ड का शासनकाल ईसवी सन् ११८९ से ११९९ था। नीडलर के प्रबन्ध के चौथे अध्याय में उस संस्करण का विवरण

है। अध्याय के आरम्भ में कथासार इस प्रकार प्रस्तुत है—

"रिचर्ड नॉव में बैठकर लंका की ओर निकल पड़ता है। तूफान से उसकी तीन नौकाएँ सायप्रस द्वीप पर पहुँच जाती हैं जहाँ उन नौकाओं का सारा माल लूट लिया जाता है और सैनिक या तो मार दिए जाते हैं या बन्दी बना लिए जाते हैं। रिचर्ड वहाँ पहुँच जाता है और सायप्रस के सम्राट् से बातचीत करने अपना दूत भेजता है। सायप्रस का सम्राट् उन दूतों का अपमान करता है। इस पर सम्राट् का एक मंत्री सम्राट् का विरोध करता है। मंत्री को पकड़कर सम्राट् उसकी नाक काट देता है। रिचर्ड सम्राट् के "लीमासोर" नगर पर कब्जा कर लेता है। सम्राट् की कन्या, जवाहरात और १०० सेनानायक, सम्राट् का मंत्री रिचर्ड को भेंट देता है। रिचर्ड सम्राट् की छावनी पर हमला कर उस पर विजय पाता है। सम्राट् रिचर्ड की शरण जाता है, उसके जो सेनानी रिचर्ड को भेंट दिए गए थे उन्हें रिचर्ड के विरुद्ध उकसाने का सम्राट् विफल प्रयत्न करता है। किन्तु वे सेनानी सम्राट् की आज्ञा नहीं मानते और सम्राट् स्वयं रिचर्ड द्वारा बन्दी बना लिया जाता है।"

ऊपर दिया सार स्पष्टतया रामायण की ही कथा है। रिचर्ड तो रामचन्द्र नाम का अपभ्रंश है। वह नौकाओं में बैठकर सागर पार लंका पर चढ़ाई करने निकलता है। लंका की बजाय ऊपर "सायप्रस" का उल्लेख है। लंका जैसा ही सायप्रस द्वीप है। सायप्रस का सम्राट यानि लंकाधिपति रावण। राम के सैनिकों को राक्षस सेना द्वारा बन्दी बनाया जाता है या मारा जाता है। राम का दूत बनकर हनुमान रावण से वार्ता-विमर्श करने जाता है। रावण उसका अपमान करता है। इस पर रावण का भाई विभीषण विरोध प्रकट करता है। उससे क्रुद्ध होकर विभीषण की नाक रावण ने काटी। मूल रामायण में ऐसा प्रसंग नहीं है। वहाँ तो लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के नाक-कान काटने का उल्लेख है। यूरोपीय रामायण में वह घटना विभीषण से जोड़ दी गई है। सम्राट की कन्या रिचर्ड के हवाले करने का उल्लेख वास्तव में विभीषण ने सीता को बन्दिवास से छोड़ देने की जो बिनती रावण से की थी उस पर आधारित है। रावण के कुछ सेनानी विभीषण के साथ रामचन्द्र का साथ देने गए थे। उन्हें रावण ने

राम के विरुद्ध उकसाना स्वाभाविक था। किन्तु वे अपने निश्चय पर अटल रहे। अन्त में रावण स्वयं पराभूत होकर बन्दी बना दिया गया। ऐसा यूरोपीय रामायण में पाठ भेद है जबकि बाल्मीकि रामायण में रावण का राम ने रण में वध किया। इस प्रकार यूरोप की रामायण स्पष्टतया बाल्मीकि रामायण का वैसा ही विकृत रूप है जैसे भारत और अन्य देशों की रामायण।

यूरोपीय रामायण के दोहे

नीडलर के प्रबन्ध में पृष्ठ ८० से ९५ तक यूरोपीय रामायण के जो दोहे उद्धृत हैं उनमें से कुछ हम नीचे दे रहे हैं। प्राचीन आंग्ल भाषा की लेखन शैली आधुनिक आंग्ल भाषा से भिन्न थी। वे दोहे पढ़कर यूरोप में प्रचलित रामायण की कल्पना की जा सकती है। वे दोहे इस प्रकार हैं—

King Richard in Peace and rest
Fro crystmas, the high feste
Dwelled there till after the lent
And then on his way he went.

इसका क्वैर हिन्दी अनुवाद इस प्रकार होगा—

राजा रिचर्ड ने शान्ति से किया विश्राम
क्रुस्तमास के महान् पर्व के नाम
वसन्त तक था वही उनका धाम
फिर वे निकले करने अगले काम

समय-समय पर अरण्य में किसी स्थान पर कुछ दिन बिताकर रामचन्द्र जी दूसरे किसी स्थानपर चले जाते थे ऐसा जो बाल्मीकि रामायण में उल्लेख है वही यूरोपीय रामायण में भी है।

दूसरा प्रदीर्घ उद्धरण इस प्रकार है—

Towards Cyprus all sayland
charged with treasure every deal
And soon a sorrowful case there fell
A great tempest arose sodaynly

That lasted five days sykerly
It broke their mast and their Oar
And their Tackle lesse and mhore
Anker, both Shrette and rother
Ropes, Cords one and other
And were in point to sink adown
As they came against the Lymosoure
The three ships right anon
Broke against the hard stone
All to pieces they to tore
Unnathe the folk saved were
the mariners unnsth it withhelde
That shyppe left in the shelde
For the Griffons with sharp swordes
Grete slaughter of our English maked
And spoiled the quick all naked
Sixteen hundred they brought on-live
And to prison hundreds five
And also naked sixty score
As they were of their mothers bore

इनका अनुवाद इस प्रकार होगा—

सायप्रस की ओर नावें चल पड़ीं
धन और सामग्री से लदी थीं बड़ी
हाय ! यकायक एक संकट छा गया
तूफान से हताहत बेड़ा बिखर गया
पाँच दिन चली वह तूफान की लपेट
नावों को मारी उसने ऐसी चपेट
रस्सी और बल्ली, बाजू और तले
टूटे या फूटे या हो गए ढीले

ऐसा लगा कि अब डूबेंगे सागर तले
तीन नावें तो पहुँची लंका किनारे
किन्तु पत्थरों से टकराई और हुई चकनाचूर
कुछ सैनिक बचकर किनारे लगे
कुछ डूबे और कुछ बन्दी बनाए गए
औरों पर राक्षसों की तलवार ऐसी पड़ी
हम अंग्रेजों की हुई कतल बड़ी
लूटपाट से सेना नंगी कर छोड़ी
सोलह सौ तो जीवित पकड़े गए
पाँच सौ कारागृह में बन्द किए गए
बारह सौ को तो ऐसा नंगा किया गया
जैसे उन्हें हो गर्भ से निकाला गया

राम का सागरी बेड़ा जब लंका की ओर चल पड़ा तब का यह वर्णन है। सागरीय तूफान से रामचन्द्र जी के बेड़े की भारी हानि हुई। कुछ सैनिक डूबे, कुछ बन्दी बना लिए गए और अन्य अनेक राक्षसों के हमले में मारे गए। लीमासोर जो नाम है वह स्पष्टतया लंकेश्वर नाम का यूरोपीय अपभ्रंश है। ग्रीफॉन्स शब्द राक्षसों का द्योतक है।

भारत में जिस प्रकार हम लोग अपने आपको रामचन्द्र जी के पक्ष का मानकर राक्षसों को शत्रु पक्ष मानते हैं उसी प्रकार यूरोप के लोग भी राम के सैनिकों का राक्षसों द्वारा वध को "हम अँग्रेजों की बड़ी पिटाई हुई, बड़ी कतल हुई" ऐसा राम की सेना का उल्लेख आत्मीयता से करते हुए दिखाई देते हैं। इस सूक्ष्म प्रमाण से भी पता चलता है कि कृस्ती-पूर्वकाल में यूरोप की जनता वैदिक धर्मी होने के कारण उसे भी रामचन्द्र जी के प्रति वैसा ही आदर था जैसा आज के हिन्दुओं को है।

उसी काव्य की २०७३ से २०८८ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

The thridde day afterward
the wind came driving Kyng Richard
with all his grate navyes
And his sayling galyes

To a ship that stode in depe
the gentlemen therein dide wepe
And when they saw Richard the King
their weeping turned al to laughing
they welcomed him with worshippes
And told him the breaking of their shippes
And the Robbery of his Tresour
And al that other dishonour
Then waxed king Richard ful warth
And he swore a full grete othe
By Jesus Christ our Saviour
It should abye the emperor

इनका अनुवाद हम नीचे दे रहे हैं—

तीन दिन पश्चात् ऐसा हुआ
राजा रिचर्ड का वायु ने साथ दिया
और उसका सारा बेड़ा वहाँ चल पड़ा
जहाँ गहरे सागर में एक जहाज था खड़ा
उसमें थे सैनिक बड़े शोक में पड़े
किन्तु जब देखा उन्होंने राजा रिचर्ड को खड़े
आनन्द से ऐसे वे सारे हँस पड़े
और राजा के बार-बार पैरों पड़े
उन्होंने कहा किस प्रकार बेड़ा टूटा
और राक्षसों ने कैसे सारा धन लूटा
अपमान से कैसे घसीटा और पीटा
तब राजा रिचर्ड बड़े क्रोध से बोला
"शपथ है क्रुस्त की जो हमारा रखवाला
सम्राट (लंकेश्वर) को कौन बचाए भला ?"

उपरोक्त पंक्तियों में रामायण का उस समय का वर्णन है जब राम की सेना नावों में बैठकर लंका की ओर चली। सागर में बड़ा तूफान

उठा। कई नावें टूटीं, कुछ डूब गईं, कुछ राक्षसों ने नष्ट कर दीं और राम की सेना को हताहत किया। कई सैनिक राक्षसों द्वारा बन्दी भी बनाए गए। राक्षसों के उस हमले से बानर सेना में बड़ी घबराहट फैली। बानर-सेना की ऐसी उदासीन अवस्था में जब रामचन्द्र जी निजी नाव में बैठकर बीच सागर में पहुँचे तो बानर सैनिकों में फ़िर उत्साह भर आया। चेहरों परकी उदासीनता नष्ट हो गई, सारे मुस्कराने लगे। सारे सैनिकों ने रामचन्द्र जी को प्रणाम किया। यहाँ यह कल्पना करना कि रामचन्द्र जी भगवान थे इसलिए सैनिकों ने उन्हें प्रणाम किया, गलत है (सेनानी जब सैनिकों के समीप जाता है तो सेना की शिस्त के अनुसार सारे सैनिक उसे भक्ति और श्रद्धा से प्रणाम करते हैं और सेनानी का निश्चय और धीरज देखकर सैनिक भी उत्साहित होते हैं)।

इस काव्य में जो बीच-बीच में येशू क्रुस्त और उसकी माता मेरी को देवी मानकर उनके नाम से प्रतिज्ञा करना आदि तफसील घुसेड़ दिया है वह क्रुस्ती लोगों द्वारा किया गया प्रक्षेप है। मुसलमान आक्रामक जैसे शिकार देशों के पानी में विष मिला देते थे वैसे क्रुस्ती लोगों ने यूरोप की प्राचीन रामकथा में समय-समय पर क्रुस्ती-पन्थ की सामग्री की मिलावट करते-कराते रामायण को पूरी तरह से यूरोप से नष्ट करना चाहा।

अब नीडलर द्वारा प्रस्तुत किए काव्य में पंक्ति क्रमांक २०८९ से आगे देखें। वे इस प्रकार हैं—

He clepyd Sir Stephen and William
And also Robert of Tournham
three gentil barouns of England
Wise of speech doughty of hand;
Now go and say to the emperor
that he yeild agnin my tresour,
Or, I swear by St· Denys
I will have three sythe double of his,
And yeild my men out of prisoun,
And for the dead pay ransoun,

Or hastily, I him warne
I will worke him a harm
Both with spere and with lance
Anou I shall take vengeance

इन पंक्तियों का अनुवाद इस प्रकार होगा—

उसने सर स्टीफन् और विल्यम् को बुला भेजा
टूर्नहम् के रॉबर्ट से कहा "तू भी आ जा !"
वे तीन बड़े प्रख्यात थे दरबारी
वाणी से प्रभावी और योद्धा भी भारी
"तुम तीनों जाकर उस सम्राट से कहो
मेरा धन सारा लौटा दो
नहीं तो सेंट इसका साक्षी रहे
मैं ऐसा बदला लूंगा जो स्मरण रहे
अपने सारे सैनिक कैद से छुड़ा लूंगा
और दण्ड भी भारी वसूल करूँगा
और भी सुन लो मेरा आह्वान
इतना मैं करूँगा तुम्हारा नुकसान
भाला, बर्छी आदि विविध शस्त्रों से
निश्चय ही मैं निपट लूंगा तुमसे।

ऊपर दिए आंग्ल दरबारी, सेनानी स्टीफन, बिलयम और टूर्नहम् के रॉबर्ट आदि जो नाम हैं वे रामायण के नल, नील, अंगद, हनुमान, सुग्रीव आदि के बदले घुसेड़ दिए गए हैं। इन सेनानियों का वर्णन wise of speech, doughty of hand यानी बोलचाल से चतुर और युद्ध में प्रवीण स्पष्टतया बाल्मीकि रामायण की ही शैली के वाक्य प्रचार हैं।

वे सारे राम के बानर वीर थे, अंग्रेज राजा रिचर्ड के कुस्ती सेनानी नहीं। यह बात पंक्ति क्रमांक २१०३ से अगले भाग में और भी स्पष्ट हो जाती है। वे पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

The messengers anou forth went
To do their Lord's Commandment

And hendely sayd the message
the emperor began to rage
He grunte his teeth and fast blewe
A knife after Sir Robert he threw
He blent away with a leap
And it flew in a door a span deep
And syth he cried, as uncourteys
"Out Taylords of my paleys
Now go and say your Toyld King
That I owe him nothing..."

इनका अनुवाद इस प्रकार है—

वे दूत वहाँ से तुरन्त निकले
प्रभु की आज्ञा को निभाने चले
वहाँ पहुँचकर उन्होंने वही कहा
जो सुनकर सम्राट को क्रोध न सहा
दाँतों से ओंठ दबाकर चिल्लाया
सर रॉबर्ट की दिशा में चाकू फिंकवाया
चपलता से रॉबर्ट ने छलाँग लगाई
तब चाकू एक द्वार की दरार में घुस गई
क्रोध से सम्राट ने उन्हें ललकारा
"निकल आओ मेरे महल से साले बन्दर आवारा
और जाकर अपने मर्कटराज से कहना
मेरा ना उनसे लेना है ना देना ?"

यह उस प्रसंग का वर्णन है जब हनुमान आदि बानर वीर लंका में पहुँचकर उधम मचाते हैं। उन्हें बन्दी बनाकर रावण के सम्मुख लाया जाता है। हनुमान के बजाय यहाँ सर रॉबर्ट नाम लिखा है। किन्तु रॉबर्ट कपि नहीं था। और यहाँ तो यह बात स्पष्ट है कि हनुमान ने राम की तयारी की जो बात कही उससे क्रुद्ध होकर रावण ने हनुमान पर शस्त्र से वार करना चाहा। किन्तु हनुमान ने चपलता से छलाँग मारकर उस वार

से निजी बचाव किया। इसके आगे की पंक्तियों में तो बड़ा ही स्पष्ट उल्लेख है कि उस सम्राट ने (यानी रावण ने) उन दूतों को कहा कि "ओ पूँछ वाले बानरो; तुम मेरे महल से तुरन्त निकल जाओ और अपने पूँछ वाले राजा (यानी सुग्रीव) को जाकर कहो कि मुझे उसका कोई लेना-देना नहीं।

यूरोप के रामायण का शोध मैंने कैसे किया ?

एक बड़े विचित्र योगायोग से सन् १९७७ में वे तीन पंक्तियाँ ही मेरे पढ़ने में आईं। उस समय मैंने ८ मास लंदन में अपने परममित्र डॉक्टर रघुबीर बक्षी के घर निवास किया था। संयोग से उनका नाम भी रघुबीर था और उनके घर का पता था लंकास्टर रोड, जबकि लंकास्टर शब्द "लंका अस्त्र" शब्द का ही अपभ्रंश है।

मैं प्रतिदिन प्रात: ९ बजे से शाम के ५ या ६ बजे तक लंदन नगर की ब्रिटिश लाइब्रेरी में विविध ग्रन्थ पढ़कर उनसे उपयुक्त टिप्पणियाँ लेता और रात को यदाकदा सभाओं में अपनी ऐतिहासिक शोधों पर भाषण देने जाता।

उस अवधि में मैंने मार्कोपोलो नाम के इतावली द्वारा लिखा उसके अन्तर्राष्ट्रीय-प्रवास का ग्रन्थ पढ़ा। उसका अनुवाद किया है सर हेनरी यूल (Sir Henry Yule) ने। अनुवादक ने उस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर कुछ टिप्पणियाँ दी हैं। उनमें एक टिप्पणी में उल्लेख था कि प्राचीन यूरोप में बानरों की कई कथाएँ प्रचलित थीं। उनका उदाहरण देते हुए वेबर (Weber) द्वारा सम्पादित और संकलित बानर कथाओं से निम्नलिखित तीन पंक्तियाँ उद्धृत की थीं—

Out Taylards, of my paleys
N w go and say your Tayld King
That I owe him nothing

इनका अनुवाद है—

"निकल जाओ मेरे महल से साले बन्दर आवारा
और जाकर अपने मर्कटराज से कहना

मेरा ना उनसे लेना है ना देना।"

ये पंक्तियाँ पढ़ते ही मैंने पहचान लिया कि यह तो रावण के हनुमान के प्रति कहे क्रोध-भरे उद्‌गार थे। उन तीन पंक्तियों से मुझे एकदम विश्वास हो गया कि प्राचीन यूरोप में पूरा रामायण अवश्य होना ही चाहिए।

तब से Weber के उस ग्रन्थ का मैं शोध करने लगा। किन्तु Sir Henry Yule द्वारा उल्लेख किया गया ग्रन्थ मेरे हाथ नहीं लगा। मूल कथा फ्रेंच में थी यह पता लगने पर फ्रांस देश और फ्रेंच भाषा जानने वाले मित्रों से मैं उन बानरों की कथा का ग्रन्थ पेरिस के प्रमुख राष्ट्रीय संग्रहालय में ढूँढ़ने को कहता रहा।

इस अवधि में मैंने वही बात अपने घनिष्ठ मित्र डाक्टर ना० कृ० भिड़े जी से भी कही थी। उनकी किसी डाक्टरी परिषद् में फ्रांस के एक डाक्टर उपस्थित थे। उनसे डाक्टर भिड़े जी ने मेरा प्रस्ताव कहा और उस फ्रेंच डाक्टर ने नीडलर के संकलित ग्रन्थ में से सौ डेढ़ सौ पृष्ठों की यान्त्रिक प्रति भेज दी। वह भेजते समय पत्र में उन्होंने भिड़े जी को लिखा कि "आपके निर्देशानुसार कुछ पृष्ठों की प्रतियाँ—इस पत्र के साथ संलग्न तो हैं किन्तु मुझे तो इसमें रामायण का कहीं नामोनिशान नहीं दिखता"।

अब बताइए! यह हाल है यूरोप के विद्वानों का! जिस ग्रन्थ में रामायण के प्रसंग भरे पड़े हैं उसमें केवल राम, लक्ष्मण, सीता, रावण आदि नाम न होने से यह लोग उन प्रसंगों को पहचान नहीं पाते। ऐसी दुर्दशा है वर्तमान विद्वज्जगत् में।

अतः इस अध्याय में दिए उद्धरणों का सूत्र लेकर भारतीयों और अन्य विद्वानों द्वारा यूरोप, अफ्रीका, अरब आदि में प्राचीन ग्रन्थों और बानरों की दन्तकथाओं को छान मारना आवश्यक है। वैसा संशोधन यदि बारीकी से, निश्चय से और व्यवस्थित ढंग से आरम्भ कर दिया तो केवल रामायण ही नहीं अपितु वेदोपनिषद, मनुस्मृति, अष्टांग आयुर्वेद, वैदिक स्थापत्य, वैदिक संगीत वाली पूरी वैदिक संस्कृति कृस्तपूर्वकाल में सारे विश्व में प्रसृत थी इसका पूरा ब्यौरा हाथ लग जाएगा और यह भी पता चलेगा कि

उस संस्कृति को ईसाई और इस्लामी षड्यंत्रों द्वारा किस प्रकार दबाकर छिपा दिया गया।

यूरोप से उस रामायण का ही नहीं बल्कि विश्व के अन्य भू-खण्डों से सदियों से लुप्त गुप्त वैदिक संस्कृति का जो पता मैं लगा सका वह मेरे जीवन का सबसे बड़ा चमत्कार ही समझना चाहिए।

ऊपर उद्धृत काव्य पंक्तियों में अपार कृत्ती मिलावट होते हुए भी उसमें रामायण के प्रसंग और बदल दिए गए सारे नाम झट पहचाने जाते हैं। जैसे रामचन्द्र के बजाय रिचर्ड नाम लगाया गया है। लीमामोर यह लंकेश्वर शब्द का अपभ्रंश लंकास्थित रावण के दुर्ग का निर्देश करता है। लंका द्वीप के बजाय सायप्रसद्वीप कहा गया है। रावण नाम न देकर सायप्रस का सम्राट कहा गया है। हनुमान को सर रॉबर्ट कहा है। शूर्पणखा की नाक कटाई बिभीषण पर लाद दी है। सीता को अशोक वाटिका से छुड़वाया इसके स्थान पर सम्राट की लावण्यवती कन्या को राजा रिचर्ड के हवाले कर देने का उल्लेख है। अस्तु।

रावण ने हनुमान के द्वारा सन्देशा भिजवाया कि चाहे जो हो सीता को बन्धमुक्त नहीं किया जाएगा। तत्पश्चात् यूरोपीय काव्य में उल्लेख है कि सायप्रस सम्राट (यानि रावण) ने कहा—

I am feel glad of his lore
I will him yield none other answore
And he shall find me tomorrow
At the haven to do him sorrow
And work him as much wrake
As his men that I have take

इसका आशय है कि रावण ने सुग्रीव के लंका के पास आने की वार्ता सुनकर कहा—

उसके आगमन की वार्ता सुनी
देख लूँगा जो होगी होनी या अनहोनी
कल उसे मैं रण में मिलूँगा
वहाँ उसे मैं ऐसा मजा चखाऊँगा

वैसी ही करूँगा उसकी दुर्दशा
जो उसके सैनिकों की हुई थी दशा।

राम के बानर दूतों का लंका से प्रस्थान यूरोपीय रामायण में इस प्रकार वर्णित है—

The messengers went out ful swythe
Of their escaping they were blithe
The emperor's Steward with honour
Said thus unto the emperor
"Sir" he said, "thou hast un-right
thou haddest almost slain a Knight'
That was messenger unto a king
the best under sun shining
Thou hast thyself tresour grete plente'
If thou it witheld it were pite
For he is crossed a pilgrim
And all his man that be with him
Let him do his pilgrimage
And kepe thyself from damage

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार होगा—

(बानर) दूत सारे बन्धमुक्त हुए
मरने से बचने के आनन्द मनाए
तब मंत्री ने सम्राट से बड़े आदर से कहा
आपने एक बड़ा प्रमाद किया
दूत को आपने मार ही डालना था
जो सर्वश्रेष्ठ राजा का दूत बनकर आया था
तुम्हारे अपने धन की कोई कमी नहीं
तब उसका हड़पना योग्य नहीं
वह तो बेचारा एक तपस्वी है
उसके साथी भी सारे साधु-संन्यासी हैं

उनकी यात्रा उन्हें पूरी करने दो
और तुम अपना नुकसान मत करवा लो

उपरोक्त पंक्तियों में वर्णन है कि हनुमान आदि को रावण मार ही डालता किन्तु वे बाल-बाल बचे। बन्धमुक्त हो जाने पर वानर फूले न समाए और कुछ ही समय में वे लंका से चल पड़े।

तत्पश्चात् राजा के मंत्री ने (यानि विभीषण ने) आदरपूर्वक रावण से कहा कि राम के दूतों से उसने यथायोग्य बर्ताव नहीं किया। दूत होने के नाते उनका सम्मान करना उचित होता। वे एक श्रेष्ठतम (ईश्वरतुल्य) राजा के प्रतिनिधि थे। रावण ने लूटपाट से बहुत धन कमा लिया था। अत: उसने राम के धन (और रामपत्नि सीता) की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए। और राम तो बेचारा तपस्या के लिए अरण्य में निवास कर रहा है। उसके सहायक भी सारे साधु-संन्यासी हैं। अत: यदि राम का विरोध करने पर ही रावण तुल गया तो इसमें उसी की अन्तिम हानि होगी।

इस पर रावण की प्रतिक्रिया यूरोप की रामायण में निम्न प्रकार से वर्णित है—

The eyes twinkled of the emperour
And smiled as an evil Traytour
His knife he drew out of hisshe the
therewith to do the steward scathe
And called him without fail
And said he would him accounsayl
The steward on Knees him set down
with the emperor of evil trusle
Carved off his nose by his grusle
And said "traytour, theif Steward
Go playne to Englyshe Taylarde
And if he come on my londe
I shall him do Swiche a shonde
Him and all his men quick slain

But he in haste turn again".

उसका हिन्दी अनुवाद होगा—

सम्राट के नेत्रों में चमके क्रोध के अंगार
तिरस्कार से चिल्लाया "अबे गद्दार"
म्यान से निकाला उसने खंजर
मंत्री का बनाने अस्थिपंजर
मंत्री को बोला सम्राट पुकारकर
"बच्चू अब रहना खबरदार"
मंत्री को खींचकर घुटनों पर झुलाया
गुस्से में सम्राट ने खंजर चलाया
मंत्री की नाक पकड़कर काटा
और कहा "अबे चोर राजद्रोही"
अंग्रेज बन्दरों को जाकर बूही
मेरे देश में यदि वो घुसे
उन्हें प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे
ताकि मुड़के कभी वे इधर देख न सकेंगे।

विभीषण ने जब रावण को उपदेश दिया कि सीता को मुक्त कर राम से संधि कर लेना ठीक रहेगा तो रावण ने विभीषण को विद्रोही, देशद्रोही आदि दूषण लगाए और छुरी से नाक काट डाली। यूरोपीय रामायण में यह परिवर्तन आ गया है जबकि बाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के नाक-कान काटे जाने का उल्लेख है।

तत्पश्चात् विभीषण स्वयं लंका से निकला या रावण ने उसे बहिष्कृत किया इस सम्बन्ध में यूरोपीय रामायण की पंक्तियाँ कहती हैं—

The steward his nose hente
(I wyes his visage was y-shente)
Quickly out of the castle ran
Leave he took of no man
The messengers mercy he cried
For Mary's love in that tide

they sholde tell to their lord
of dishonour end and word—
And haste you again to lord
And I shall sese into your hand
The keys of every tour
And I shall bring him this Knight
the emperor's daughter bright
and also an hundred Knights
stout in battle good in fights.
Agenst that false emperour
that hath done this dishonour.

इसका हिन्दी भावार्थ इस प्रकार है—

मंत्री की नाक जो कटी
जैसे चेहरे की धुरा ही फटी
वह तुरन्त दुर्ग से बाहर भागा
अपने लोगों से मिल भी नहीं पाया
"दूतो, भाई मेरे पर दया करो
देवी मेरी भी मेरे पर कृपा करो
जाकर अपने स्वामी से कहो
मेरे अपमान का हाल बताओ
और कहो कि यदि वे यहाँ आ धड़केंगे
सारे महलों की चाबियाँ हम उनके हवाले कर देंगे।
सम्राट की सुन्दर कन्या भी"
जो रणवीर युद्ध में अभी
उस सम्राट के विरुद्ध लड़ेंगे
अत्याचार और अपमान का बदला लेंगे।

रावण से अपमानित होकर विभीषण तुरन्त निकला। निजी आप्तेष्टों से विदा लेने का भी समय न रहा। उसने राम के बानर दूतों से सम्पर्क कर उनसे कहा कि "रावण ने मेरा किस प्रकार अपमान किया यह प्रभु राम

को विदित कराओ और राम को विश्वास दिलाओ कि उनकी सेना जब यहाँ आ धमकेगी तो मैं सारे दुर्ग, महल आदि की चाबियाँ उन्हें सौंप दूँगा।" यहाँ तक का वर्णन यूरोपीय रामायण में बाल्मीकि रामायण से मिलता-जुलता है। किन्तु तत्पश्चात् सीता को बन्धमुक्त करने के बजाय रावण की लावण्यवती कन्या राजा रिचर्ड के हवाले करने की बात यूरोपीय रामायण में कही गई है। राक्षस सेना की कुछ टुकड़ियाँ विभीषण के साथ राम को जा मिलीं यह जो वर्णन बाल्मीकि रामायण में है यूरोपीय रामायण में भी लगभग वैसा ही कहा है कि विभीषण ने १०० राक्षस सेनानी रामसेना का सहाय करने हेतु देने का आश्वासन दिया।

उसी यूरोपीय रामायण में आगे कहा गया है—

The messengers then hyed hard
Till they came to king Richard
they found kyng Richard at play
At the chess in his geelaye
The Earl of Richmond with him played
And Richard won all that he layd

इसका हिन्दी अनुवाद होगा—

वायुगति से वे दूत चल पड़े
तुरन्त राजा रिचर्ड के सम्मुख हुए खड़े
तब नौका में राजा रिचर्ड शतरंज में मग्न था
रिचमाँड का अर्ल दूसरा खिलाड़ी था
जो जो चाल उसने चली
नाकाम कर रिचर्ड ने बाजी जीत ली

वानर दूत राम की छावनी में लौटे। एक युद्ध नौका में रामचन्द्र जी शतरंज खेल रहे थे। यह उल्लेख बाल्मीकि में नहीं है। किन्तु शतरंज के खेल में भी दोनों पक्षों की सेना का संघर्ष ही होता है। अतः यूरोपीय रामायण में किया उल्लेख प्रसंगानुकूल लगता है। खेल में भी रामचन्द्र जी पूर्ण विजयी हुए यह उल्लेख भी, रामचन्द्र जी एक यशस्वी, विजयी, अवतार व्यक्ति थे, इस कल्पना से मेल खाता है।

तत्पश्चात् रामदूत हनुमान की राम से हुई बातचीत यूरोपीय रामायण में इस प्रकार वर्णित है—

The messenger told al the dishonour
That them did the emperour
And the despite he did his steward
And the steward's presenting
His behest and his helping
Then answered King Richard
"of your sawes I am blythe
Anon let us to land swythe"

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार होगा—

दूत ने सारी बात बतलाई
निजी अपमान और मंत्री की नाक कटाई
मंत्री का सन्देश भी सुनाया
कि मंत्री ने सहाय्य का आश्वासन भी दिया
तब रिचर्ड बोला अब चलो भाई
सारे मिलकर करें चढ़ाई

बानरों का जो अपमान हुआ था वह हनुमान ने राम को सुनाया। विभीषण की अनुकूलता की वार्ता भी सुनायी। तब राम ने युद्ध की सिद्धता करने का आदेश दिया—यह ऊपर दिया वर्णन लगभग बालमीकि की रामायण जैसा ही है।

युद्ध छिड़ जाने का वर्णन यूरोपीय रामायण में इस प्रकार है—

A great cry arose fote-hot
Out was shot many a bote
the bowmen and eke the arblasters
Armed them all at aventers
And shot quarelles and eke flone
As thick as the hail-stone
the folk of the countre gan reune

And were fain to void and fleune
The barons and good Knightes
After came anon rights
With their Lord Ring Richard
That never was found coward

इसका हिन्दी अनुवाद होगा—

एक साथ सारे गर्ज उठे
सैनिकों ने सारे जहाज गठे
भाला, बर्छी, धनुष-बाण
शस्त्रास्त्रों की रही ना बाण
बम् और गोले ऐसे चले
जैसे आकाश से बरसते ओले
तब घबराकर लंकावासी ऐसे भागे
जैसे होड़ लगी हो कौन पीछे कौन आगे ?
रथी महारथी उनका पीछा करते
निडर रघुवीर उनका नेतृत्व करते।

राम ने चढ़ाई का आदेश दिया। तैयारी आरम्भ हुई। सारी नौकाएँ सैनिकों से लद गई। लंका के किनारे के समीप पहुँचकर हमला आरम्भ हुआ। आकाश से जैसे ओले बरसते हैं वैसे शस्त्रास्त्रों की बौछार चली। लंकानिवासी भागने लगे। सेना का नेतृत्व रघुवीर कर रहे थे। रण में राम जरा भी डरता नहीं था। यूरोपीय रामायण का यह कथन बालमीकि का ही अनुकरण करता है।

आगे चलकर यूरोपीय रामायण में कहा है—

And when he came into Cyprus Land
The ax he tok in his hand
All that he hit he all to-frapped
the Griffons away fast rapped
Natheles many he Cleaved
And their unthanks their bylived

And the prisonn he came to
With his ax he smot right tho
Dores, barres and iron chains
And delivered his men out of pains
He let them all deliver cloth
For their despyte he was wroth
And Swore by Jesus our savyour
He should abye that false emperour
At the burgesses of the town
Richard let slee without ransoun
their tresour and their meles
He took to his own deles.

इसका हिन्दी अनुवाद होगा—

रिचर्ड ने जब सायप्रस में पैर रखा
हाथों में एक परशु लिया
प्रहारों से सारा चकनाचूर हुआ
राक्षस सेना का संहार हुआ
एसे अनेक राक्षस मरे
रिचर्ड ने उनके प्राण हरे
और रिचर्ड जब बंदिशाला पहुँचे
द्वार, जाली, बेड़ियाँ आदि बंध समूचे
निजी प्रहारों से तोड़े-फोड़े
बन्दी जितने थे सारे छोड़े
उन सबको कपड़े पहनाए
उनकी दुर्दशा पर आँसू बहाए
और जीसस् परमात्मा के नाम प्रतिज्ञा की
उस पापी सम्राट के विनाश की
नागरी राक्षस रईसों को मारा
उनका धन जप्त किया सारा

राम ने लंका में उतरते ही हाथों में एक परशु लिया। राक्षसों का पीछा करते हुए उनका संहार किया। राक्षसों को यूरोपीय रामायण में ग्रिफॉन्स् कहा गया है। राक्षसों के किले, बाड़े, महल आदि सब तोड़-फोड़ दिए गए। फिर रामचन्द्र जी लंका की बन्दीशाला के प्रति गए। वहाँ सारे द्वार, ताले, बेड़ियाँ आदि तोड़ी गयीं और सारे बन्दी मुक्त किए गए। लंका निवासी राक्षस सेनानी, दरबारी और अन्य रईसों का पीछा करके उनको मारा आदि सारा वर्णन यूरोपीय रामायण में इस तरह दिया है।

Tidings came to the emperour
Kyng Richard was in Lymasour
And had his burgesses to death do
No wonder though him were wo
He sent anon without fail
After all his counsayl
That they come to him on hie
To wreck him of his enemy

इसका हिन्दी अनुवाद होगा—

जब सम्राट् को वार्ता पहुँचाई गई
रिचर्डराज की सेना लीमासोर में उतर आई
उसके राक्षस दरबारी सारे मारे गए
लंकाधिपति दुःख में चूर हुए
उसने तुरन्त सारे मंत्रियों को बुलवाया
उनको सारा हाल सुनाया
शत्रु पर मात करने का उपाय पूछा

लंका को या रावण के दुर्ग को लीमासोर कहा है जबकि लीमासोर शब्द लंकेश्वर का अपभ्रंश प्रतीत होता है। भारत में जैसे रामेश्वर एक स्थान है जो लंका पर की गई चढ़ाई से सम्बन्ध रखता है। रामेश्वर और लीमासोर में कितनी समानता है। रामेश्वर जैसे एक मन्दिर के देवता का नाम है और उस पूरी बस्ती का भी नाम है, वैसे हो सकता है कि लंकेश्वर

नाम रावण का हो और लंका प्रतिष्ठित शंकर भगवान के मन्दिर का नाम भी लंकेश्वर हो। अत: लीमासोर नाम लंका, लंकाधिपति रावण और लंकेश्वर शिव इन तीनों का द्योतक हो सकता है।

इस प्रकार यूरोपीय रामायण का स्वरूप है। यूरोप में रामायण के अस्तित्व से एक तरह से पूरी वैदिक संस्कृति के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है।

हमने जो अवतरण ऊपर उद्धृत किए हैं वे तेरहवीं शताब्दी की यूरोपीय रामायण के हैं। उस समय कृस्ति-पंथ लगभग सारे यूरोप पर छा गया था। मुसलमानों की तरह ईसाईयों ने भी जहाँ-जहाँ आक्रमण किया वहाँ से वैदिक संस्कृति के सारे चिह्न मिटा देने की पराकाष्ठा की। तथापि हम जिस यूरोपीय रामायण का पता लगा सके हैं उससे प्रेरणा लेकर अन्य निष्पक्ष विद्वान यूरोप की प्राचीन वैदिक संस्कृति के अंग उपांग ढूंढ़ निकालने का यत्न करेंगे, ऐसी हम आशा करते हैं।

यूरोपीय परम्परा में नारद का उल्लेख

वैदिक परम्परा में नारद जी का एक अटल और अनोखा स्थान है। नारद जी तीनों लोकों में परमात्मा से पामरों तक सबसे हार्दिक वार्तालाप करते दीखते हैं। उनके इस त्रैलोक्य संसार में कुछ छेड़छाड़, कुछ मजाक, कुछ गहरी योजना, कुछ नीतिमत्ता, कुछ हास्यविनोद, कुछ दर्शनतथ्य आदि कई बातों का समावेश होता है। वही नारद जी प्राचीन यूरोपीय धार्मिक साहित्य में भी विद्यमान हैं। फिर भी उनके यूरोपीय अस्तित्व का आज तक किसी विद्वान को पता तक नहीं लगा यह आश्चर्य की बात है।

इस सम्बन्ध में नीडलर महाशय के प्रबन्ध में पृष्ठ १५ पर देखिए क्या लिखा है। वे लिखते हैं—"In the year 1180-1200 blourished the Troubadour known by the name of the Monk of Mantandon. This peculiarly favoured individual tells us how that Enoch-like he frequently visited paradise during his Lifetime, and in his poems he gives account of the conversatinos that he there held with the Almighty.

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

"सन् ११८० से १२०० तक तंबोराधर होते थे जिनका नाम था मौटंडन के सन्त। यह बड़े प्रभावी व्यक्ति बताते हैं कि वे किस प्रकार लीलया स्वर्ग में भी जीवन में कई बार चक्कर लगाया करते थे और उनके गीतों में भगवान से हुए प्रत्यक्ष वार्तालाप के उल्लेख होते थे।" जो व्यक्ति भारतीय पुराणों में और रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में, नारद जी की भूमिका जानते हैं वे जानते हैं कि यूरोप की परम्परा में भी नारद जी की कथाएँ थीं। वह कथाएँ सन् ११८० से १२०० वाले किसी मौटंडन् के साधु के नाम गढ़ दी गई हैं। उस सन्त को ट्रूबँडोर कहा गया है जो स्पष्टतया 'तंबोराधर' का अपभ्रंश है।, नारद जी सर्वदा तंबोरा हाथों में लिए ही बताए जाते हैं। मौटंडन् नाम मार्तंडन् यानी सूर्य इस संस्कृत शब्द का अपभ्रंश प्रतीत होता है। क्योंकि पुराणों में सूर्यलोक, चन्द्रलोक आदि का उल्लेख होता ही है। स्वर्ग में चक्कर लगाना और प्रत्यक्ष परमात्मा से वार्तालाप करना यह सारी नारद जी की विशेषताएँ हैं।

फ्रेंच, स्पेनिश, पोर्चुगीज, इटालियन, जर्मन आदि यूरोप के भिन्न-भिन्न प्रदेशों के कृस्ती लोगों ने मिलकर और जमकर यूरोप में वैदिक संस्कृति का नामो-निशान मिटाने में एड़ी-चोटी का किस प्रकार जोर लगाया उसका नारद की विकृति में सबूत मिलता है। अतः वैटिकन् आदि यूरोप के जितने प्राचीन धर्मपीठ हैं उन सबका सारा प्राचीन साहित्य ढूँढ निकालकर उसका बारीकी से यदि अध्ययन किया जाए तो यूरोप में दबाई गई वैदिक संस्कृति के भरपूर प्रमाण मिलेंगे।

नार्स-जर्मन् रामायण

उत्तरी यूरोप के साहित्य में आठवीं शताब्दी में एक दन्तकथा है। उसका नाम है Hildebrand Lied। वह एक प्राचीन जर्मन् ग्रन्थ का बचा हुआ टुकड़ा है। हिल्डेब्रांड एक वीर योद्धा तीस वर्षों के संघर्ष के पश्चात् घर लौटता है जैसे रामचन्द्र जी चौदह वर्षों के बाद अयोध्या लौटे। घर आते ही उसकी एक युवा वीर से लड़ाई छिड़ती है। बाद में पता चलता है कि वह युवक उसी वीर योद्धा हिल्डेब्रांड का पुत्र है। राम का जैसे लव और कुश से युद्ध हुआ और बाद में पता चला कि वे राम ही के पुत्र थे।

हिल्डेब्रांड की पत्नी भी उसमें उल्लिखित है जैसे लव-कुश और राम एक दूसरे से सीता के कारण परिचित होते हैं। इस प्रकार हिल्डेब्रांड की कथा भी वाल्मीकि रामायण का ही एक टूटा-फूटा रूप है।

रूस

भारत के बंगलौर नगर से Deccan Herald आंग्ल दैनिक प्रकाशित होता है। उसके दिसम्बर १५, १९७२ के अंक में एक वार्ता प्रथम पृष्ठ पर छपी थी। उसमें लिखा था कि रूस देश में एक कालिमक (Kalmyk) प्रदेश है। उसकी प्रमुख राजधानी का शहर है एलिस्ता (Elista)। उस नगर में कालिमक भाषा में रामायण छपी है। कुछ विद्वानों ने संस्कृत रामायण का अनुवाद किया है। कालिमक दन्तकथाओं में रामायण के कई प्रसंग प्रस्तुत किए जाते हैं। उस प्रान्त के ग्रन्थालयों में प्राचीन कालिमक लिपि में लिखे रामायण के सात संस्करण सुरक्षित हैं।"

उस वार्ता से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रूस में प्राचीनकाल से रामायण प्रचलित है। मौखिक कथाओं के रूप में और लिखित साहित्य के रूप में भी। वह कालिमक प्रदेश में होना भी बड़ा ही औचित्यपूर्ण है क्योंकि कालिमक यह वाल्मीकि का ही तो अपभ्रंश है। रूस उर्फ Russia ऋषीय देश है और वाल्मीकि एक प्रसिद्ध ऋषि हैं। हो सकता है कि वाल्मीकि कालिमक प्रदेश में ही रहते हों और उन्होंने रामायण वहीं लिखी हो।

इस प्रकार ईसाई और इस्लामी प्रदेशों की लोकपरम्परा और साहित्य का यदि बारीकी से शोध किया जाए तो छिपाए गए या नष्ट किए गए वैदिक संस्कृति के ढेर के ढेर प्रमाण मिलेंगे।

मंगोलिया

रूसी भाषा में Domodin Suren नाम के लेखक ने लेनिनग्राड नगर से प्रकाशित किए ग्रन्थ में मंगोलियाई और कालिमक भाषा की रामकथाओं का संकलन प्रस्तुत किया है। दामोदिन संस्कृत दामोदर का अपभ्रंश है। सुरेन् नाम सुरेन्द्र और शूरसेन का अपभ्रंश है।

प्राध्यापक C. F. Golstunky का लिखा एक हस्तलिखित ग्रन्थ Academy of Sciences, U. S. S. R. की साइबेरियन् शाखा में सुरक्षित है। उसमें व्होलगा नदी के किनारे के प्रदेश में जो रामकथा प्रचलित

है वह कालिमक भाषा में प्रस्तुत की गई है। लेनिनग्राड नगर में रूसी और मंगोलियाई भाषाओं में लिखी और भी रामकथाएँ उपलब्ध हैं।

आयरलैंड में राम

Shell Company's Guide to Ireland नाम के ग्रन्थ में पृष्ठ २६८ पर एक उपयुक्त उल्लेख है। वह ग्रन्थ Lord Killanin व॰ Michael V. Duignan (Eubury Press, London) ने सन् १६६७ में लिखकर प्रकाशित किया।

इसमें गोरे जिला (Gorey County) सम्बन्धी जानकारी देते हुए लिखा है कि Wexford नगर के उत्तर में एक मील की दूरी पर Ramsfort House यानी रामदुर्ग गृह है। सन् १६५१ में उसका निर्माण हुआ। उस इमारत में अन्य स्थान से लाया एक शिलालेख रखा है। वह फर्न्स (Ferns) नाम के गाँव में बने धर्मगुरु के प्रासाद (Bishop's Palace) का शिलालेख है। यह महल सन् १६३० में वयोवृद्ध कृस्ती पुरोहित थॉमस राम (Thomas Ram) ने बनाया। वह काव्यमय शिलालेख है—this house Ram built for his succeeding brother's

Thus sheep bear wool not for themselves but others.

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार होगा—यह महल धर्मगुरु राम ने आगामी पीठाधीशों के लिए इस प्रकार बनाया जैसे निजी बदन का ऊन दूसरों को पहनाती हैं भेड़ें।

इस शिलालेख से ज्ञात होता है कि कृस्ती बनने पर भी यूरोप में राम नाम रखने की प्रथा कायम है। दुर्ग का भी राम से नाम रखा जाता था। Killanin यह एक ग्रन्थकार का नाम किलेदार अर्थ से पड़ा है।

इंग्लैण्ड में सागर के किनारे Ramsgate नगर है जो स्पष्टतया रामघाट का ही विकृत रूप है। रामद्वार भी उसका प्रचलित नाम सार्थ है।

आंग्ल भाषा में किले की दीवार के ऊपरी किनारे को rampart कहते हैं जो रामपद या रामपथ का अपभ्रंश है।

ठूस मारकर द्वार आदि तोड़ने के लिए जो बड़ी मोटी लकड़ी या खम्भे प्रयोग किए जाते हैं उन्हें रामरॉड (Ramrod) इसलिए कहा जाता है कि वानर सैनिकों ने बड़े-बड़े वृक्ष गिराकर उन्हें ठूस-ठूसकर लंका द्वार तोड़े।

१६
श्रीकृष्ण भी विश्वदेव रहे हैं

पिछले अध्याय में हमने यह दर्शाया है कृस्तपूर्व समय में रामचन्द्र जी को सारे विश्व के लोग ईश्वरावतार मानते थे। उसी प्रकार श्रीकृष्ण की भी सारे विश्व में मान्यता थी।

आधुनिक युग में जब बड़ी संख्या में लोग इस्लामी या ईसाई बनाए गए हैं, लोगों को ऐसी कल्पना करा दी गई कि राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा आदि देवता केवल भारत में या हिन्दु लोगों में ही पूज्य हैं। उस भ्रम को दूर करना आवश्यक है।

कृस्त सन् पूर्व समय में विश्व के सारे लोग सनातन वैदिक आर्य धर्म के ही अनुयायी थे। आजकल की परिभाषा में वैदिक संस्कृति का ही नाम हिन्दु धर्म है। अतः इस अर्थ से कृस्तपूर्व काल में विश्व के सारे लोग हिन्दु ही थे। इसी कारण आजकल हम जिन्हें हिन्दु देवता कहते हैं वे सारे विश्व में पूजे जाते थे। उन्हीं देवताओं के प्राचीन मन्दिर आज कब्रें, मस्जिदें या गिरजाघर कहला रहे हैं।

इसका प्रमाण प्राचीन लेखकों के ग्रन्थों में पाया जाता है, जिनके नाम मेगॅस्थेनीज, स्ट्राबो, हीरोडोटस, जोसिफस आदि हैं। लेखकों के वे नाम भी स्वयं वैदिक परम्परा के और संस्कृत भाषा के हैं। मेगॅस्थेनीज यह मेघस्थानईश का अपभ्रंश है। हीरोडोटस् यह हरिद्रुतस् नाम का विकृत ग्रीक उच्चार है। हरिद्रुत यानि भगवान का दूत। पैगम्बर यह इस्लामी शब्द "प्र-ग-अंबर' का अपभ्रंश है। "प्र-ग-अंबर" भी आकाश से पृथ्वी की ओर निकला दूत ही है। प्रगम्बर शब्द का उच्चार पैगंबर हुआ है।

हीरोडोटस् के ग्रन्थ में लिखा है, "फिनीशिया प्रदेश के टिरा नगर में हरक्युलिस का एक बड़ा प्रसिद्ध मन्दिर है। यह सुनकर मैं वह मन्दिर देखने गया। मैंने वह देवस्थान देखा।" (पृष्ठ १३८, खण्ड १, हीरोडोटस्)।

हीरोडोट्स स्वयं भावुक स्वभाव का हिन्दू उर्फ वैदिकधर्मी था। उस समय सारे ही लोगों में धर्म के प्रति बड़ी श्रद्धा होती थी। उस काल में सर्वत्र वैदिक संस्कृति ही प्रसृत थी। दूसरा कोई धर्म था ही नहीं। ग्रीक साहित्य में हेराक्लीज् (Heractles) या हरक्युलिस् (Hercules) यह जो दो नाम आते हैं वे "हरिकुल-ईश" इस संस्कृत शब्द के विकृत या प्राकृत रूप हैं। हरि यह विष्णु भगवान का नाम है। राम और कृष्ण उसी के अवतार हैं। अतः हरि-कुल-ईस यानि हरि के कुल में अवतरित भगवान राम, कृष्ण आदि।

वैदिक संस्कृति में देवताओं के सैकड़ों या हजारों नाम होते हैं। इसी कारण इस्लामी बने लोगों में भी ईश्वर (अल्ला) के ९९ नामों की माला जपी जाती है।

कृष्ण का अपभ्रंश भारत में भी कृस्त या कृष्ट होता है। कन्नड़ और बंगाली, भारतीय कृष्ण नाम के व्यक्ति को 'कृष्ट' कहकर पुकारते हैं। उसी प्रकार विष्णु को भी विष्टु या विष्टू कहा जाता है। भारत के जमशेदपुर नगर में एक विभाग का नाम विष्णुपुर होते हुए भी वह विष्टुपुर कहलाता है।

यूरोप के ग्रीस देश में 'ईशस् कृष्ण' नाम का कुछ लोग 'जीझस् क्रस्त' ऐसा उच्चारण करते थे। जैसे वचन और बचन, योगी और जोगी तथा यशवंत और जसवंत ऐसे विविध उच्चारण लोगों में रूढ़ रहते हैं। उस समय भगवद्गीता को ग्रीस और रोम में कृष्णनीति कहा जाता था। कई लोग बिछुड़कर उसका उच्चार 'क्रस्तनीति' करते थे। वही पंथ वैदिक परंपरा से बिगड़कर क्रिश्चियानिटी कहलाने लगा। अतः वास्तव में अपने आपको कृस्ती या ईसाई मानने वाले लोग कृष्ण ईश् या ईश कृष्ण पंथ के लोग हैं। इस बात का आगे हम और भी विवरण देंगे।

हॉलैण्ड में कृष्ण

यूरोप में जो हालैण्ड देश है उसकी राजधानी है अम्स्टरडम्। उस

नगर का सबसे बड़ा होटल कृष्णपोल्सकी कहलाता है। कृष्णपोल्सकी का अर्थ है पोलैण्ड देश का कृष्ण। इससे पता चलता है कि यूरोप के पोलैण्ड, हालैण्ड आदि देशों में ढूंढने से कृष्ण नाम अभी भी कहीं पाया जाता है।

ॲम्स्टरडम् यह संस्कृत "अंतर्धाम" शब्द है क्योंकि वह नगर सागर स्तर से नीचे होने से सागर किनारे पर बाँध बनाकर जल अन्दर आने से रोकना पड़ता है। आंग्लभाषा में हॉलैण्ड प्रदेश को नीदरलैण्ड (Netherland) कहते हैं। उसके आरम्भ में यदि A अक्षर लगाकर उस शब्द को पढ़ा जाए तो वह अंतरलैण्ड उर्फ अन्दरलैण्ड, यानि 'सागर स्तर से निम्न भूमि' ऐसा ही होगा। अतः राजधानी "अन्तरधाम" व देश "अन्दरलैण्ड" दोनों ही वैदिक संस्कृत शब्द हैं। इस प्रकार यूरोप का प्राचीन भूगोल सारा संस्कृतमय है।

स्पेन देश में कृष्ण

स्पेन देश के दक्षिणीतट पर कॅडीज नगर है। वहाँ भूमि का एक लम्बा सुकड़ा भाग सागर में गया दीखता है। उसे promontary या समुद्रधुनि कहते हैं। उसे पवित्र भूमि कहा जाता था क्योंकि वहाँ कृष्ण के मन्दिर होते थे। स्ट्रॅबो नाम के ग्रीक ग्रन्थकार ने लिखा है कि उस भूमि में Rhadamanthus के बहुत मन्दिर थे। राधामंथस शब्द "राधा-मनस्थ-ईश" इस संस्कृत समास का अनाड़ी ग्रीक उच्चार था। राधा-मनस्थ-ईश का अर्थ है "राधा के मन में निवास करने वाले भगवान अर्थात् कृष्ण। (पृष्ठ २५३, खण्ड १, स्ट्रॅबो द्वारा लिखित भूगोल)। ग्रीक परम्परा में राधा-मनस्थ-ईश के अनेक मन्दिरों का उल्लेख है। भारत में जिस प्रकार राधाबल्लभ, राधारमण आदि नाम होते हैं वैसे यूरोप में 'राधा-मनस्थ-ईश' हरक्युलिस उर्फ हेरॅक्लिश यानी हरि-कुल-ईश आदि कृष्ण के नाम रूढ़ थे।

Albert J. Edmunds लिखते हैं, "स्ट्रॅबो के अनुसार भारत तक का एशिया खण्ड बकस (Bachhus) को समर्पित था। उसी प्रदेश में हरि-कुल-ईश और बॅकस् को पूर्ववर्ती प्रदेशों के स्वामी कहा जाता था। बॅबिलोन और मिस्र की संस्कृति के वही उद्‌गमस्थल थे। ग्रीक और रोमन जनता

के बॅकस् और मित्रस् देवता उसी प्रदेश के थे।"(पृष्ठ ४४ Buddhist and Christian Gospels, The Yukwan Publishing House, Tokyo, 1905)

इस अवतरण से यह जान पड़ता है कि स्ट्रॅबो के अनुसार सारे एशिया खण्ड में बॅकस् यानि 'त्र्यंबकेश उर्फ शिव' की भक्ति होती थी। ग्रीस और रोम में बॅकस् (Bacchus) देवता त्र्यंबकेश नाम का विकृत रूप था। त्रिअंबक यानि तीन चक्षु वाला (शिव) और मित्रस् सूर्य का नाम था। यह सारे वैदिक देवता होने के कारण महाभारतीय युद्ध के पश्चात् विविध देवताओं के नाम से भिन्न-भिन्न पंथों में सर्वत्र छिन्न-भिन्न रूप में वैदिक संस्कृति ही चल रही थी।

एक प्राचीन ग्रीक लेखक का नाम है Onesicritus जो स्पष्टतया Om Shrikrisnas यादि ॐ श्रीकृष्णस् है। ग्रीक लोग एक दूसरे से मिलने पर "हरि तुते" कहते हैं जो "हरि रक्षतु ते" का ही फटा-टूटा रूप है।

ग्रीस में कृस्तपूर्वकाल में ईशानी पंथ होता था। ईशान् 'शंकर' का नाम है। उसी से उत्तर पूर्व दिशा को ईशान्य कहते हैं। शंकर का निवास-स्थान कैलाश-पर्वत वहीं है। अतः ग्रीस के ईशानी उर्फ Essense लोग शिवपंथी लोग थे। इसी कारण ग्रीस और रोम में शिव की मूर्तियाँ और शंकर की पिण्डियां भी बड़ी संख्या में प्राप्त होती रही हैं।

पोप के वॅटिकन् में वैदिक साहित्य छिपाया गया

यूरोप खण्ड के दक्षिण में इटली देश है। उसकी राजधानी रोम मूलतः रामनगर है। उस नगर में वेटिकन (Vatican) नाम का प्राचीन कृस्तपूर्व धर्मपीठ है। आजकल वहाँ जो कृस्तिपंथ का सर्वोच्च धर्मगुरु रहता है उसे पापह उर्फ पोप उर्फ पापा कहते हैं। वह वैटिकन शब्द 'वाटिका' का अपभ्रंश है। कृस्तपूर्व काल में वह वेद-वाटिका थी। सन् ३१२ के लगभग नए कृस्ती बने सम्राट कांस्टेंटाइन ने अचानक उस वेद वाटिका पर छापा मार कर वहाँ के वैदिक शंकराचार्य का वध करके उस धर्मपीठ पर एक कृस्ती को बिठाकर उसे कृस्ती धर्मगुरु घोषित किया। उस समय जो भगदड़ मची उसका वर्णन अनजाने H. Spencer Lewis नाम के व्यक्ति ने लिखा है,

(पृष्ठ २१, The Secret Doctrines of Jesus, Supreme Grand Lodge of A M O R C, San Jose, California..., सन् 1972)। वे लिखते हैं, "Unquestionably the holy Roman Church has preserved in its secret archives in Rome or elsewhere many sacred manuscripts. There is considerable evidence to indicate that within its sealed vaults INACCESSIBLE TO ALL BUT A VERY FEW, ARE CERTAIN ORIGINAL DOCUMENTS. Some other rare documents preserved in the Vatican or within the walls of Vatican city are copies of original documents and records which are preserved in archives outside of the control of the holy Roman Church. In other places fortified archives of great antiquity are preserved other documents and records, and in the secret archives of several monastic orders OF A NONSECTA-RIAN NATURE ARE PRESERVED and open to occasional examination by competent authorities...To be-lieve that the creators of the Holy Roman Church made no exhaustive study of the manuscripts and records in their possession or which they had agents searching for in every land, is to ignore the fact that their own records of their council discussions and debates reveal how carefully they weighed every reference. Year after year, century after century, these debates continued, and the records of them clearly show that the councillors had before them many rare records which they officially proclaimed as either INCOMPETENT, DANGEROUS, secret or contradictory to the principles of Christian theology which they were gradually establishing...The matter of the selection of the manuscripts constituting. The books of the Bible offers an

excellent picture of how these high councils ARBITRARILY choose and rejected authentic and reliable sources of information at their disposal.

उपरोक्त उद्धरण के लेखक स्वयं एक कट्टर ईसाई व्यक्ति हैं। उनका विश्वास है कि यीशु कृस्त ईश्वर अवतार थे और पापा उर्फ पोप का सचमुच एक पवित्र कृस्ति धर्मपीठ है। तथापि उन्होंने ऊपर जो जानकारी दी है वह अनजाने कृस्ति धर्म की कृत्रिमता का सारा भण्डाफोड़ कर देती है। ऊपर दिए आंग्ल उद्धरण का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

"ईसाई धर्मपीठ ने निश्चय ही रोमनगर में या और कहीं बहुत से पवित्र दस्तावेजों के गुप्त भण्डार रखे हैं। विपुल प्रमाणों से पता चलता है कि धर्मपीठ के बन्द तहखानों में कुछ मूल दस्तावेज इतनी गुप्तता से रखे हैं कि चन्द व्यक्तियों को छोड़कर अन्य किसी को वे कागजात देखने को नहीं मिलते और अन्य बड़े महत्त्वपूर्ण कागजात जो वैटिकन् नगर में रखे हुए हैं वे ऐसे कुछ मूल दस्तावेजों की प्रतियाँ हैं जो वैटिकन् धर्मपीठ के नियंत्रण के बाहर किसी अन्य स्थान पर रख दी गई हैं। कुछ और दस्तावेज बड़े प्राचीन समय से अन्य सुरक्षित स्थानों में रखे हुए हैं। और जो साधु-सन्त किसी विशिष्ट पंथ के नहीं हैं उनके पोथीखाने में भी कुछ दस्तावेज ऐसी गुप्तता से रखे हुए हैं कि वे क्वचित् किसी विशेष अधिकारी व्यक्ति को ही बताए जाते हैं। ईसाई धर्मपीठ के प्रस्थापकों ने, उनके निजी कब्जे में जो मूल प्राचीन दस्तावेज हैं या जिनका पता लगाने के लिए उनके कार्यकर्ता कई स्थानों पर हो आए, ऐसे दस्तावेजों का, स्वयं अध्ययन न किया हो ऐसा हो ही नहीं सकता। क्योंकि उनके धर्मसंसद और धर्मचर्चाओं की टिप्पणियों से पता लगता है कि वे सारी बातों का कितना ध्यान रखते थे और कितनी सूक्ष्मता से विचार करते थे। सैकड़ों साल प्रतिवर्ष उनकी चर्चाएं चलती रहीं जिनसे पता चलता है कि उन्होंने कई दस्तावेज देख डाले और उनमें से कुछ निकम्मे, कुछ संकटकारी, कुछ गुप्त और कुछ कृस्ती धर्मतत्वों से असंगत ऐसा उनका वर्गीकरण किया। Books of the Bible नामक ग्रन्थों में जो दस्तावेज संकलित किए गए हैं उनसे पता चलता है कि ईसाई पंथ के सूत्रधारकों ने कितनी अंटशंट और अंधाधुन्ध पद्धति से

दस्तावेजों का वर्गीकरण किया।

जिस कृस्ती लेखक H. Spencer Lewis ने ऊपर लिखी जानकारी दी है वह भोले-भाले और भावुक कृस्ती दीखते हैं। यदि ऐसा न होता तो उन्हीं के लिखे उस विवरण से वे जान जाते कि जिसे वे ईसाई धर्म या पंथ समझते हैं वह एक बड़ा गहरा और विशाल षड्यंत्र है। यदि सचमुच ही कृस्त नाम का कोई अवतारी व्यक्ति होता और वह कोई नया धार्मिक पंथ चलाता तो उसके दस्तावेज छुपाने की और उनके सम्बन्ध में गुप्तता रखने की आवश्यकता ही नहीं होती। किन्तु पीटर, पाल आदि कुछ दहशतवादियों को एक कपोलकल्पित ईसा के नाम सत्ता और अधिकार की अभिलाषा से एक नया पंथ चलाने के कारण सारी हेरा-फेरी करने की आवश्यकता पड़ी। यदि वैटिकन कृस्ती पीठ ऐसे षड्यन्त्र पर आधारित हो तो उसे पवित्र, धार्मिक पीठ मानना कहाँ तक उचित है? राजनयिक बातों में जिस प्रकार हेरा-फेरी, गुप्तता, उल्टा-सीधा आदि तिकड़म व्यवहार होते रहते हैं वैसे ही यदि किसी धर्मपीठ में होते रहे तो ऐसा धर्मपीठ पवित्र नहीं माना जाना चाहिए। वैटिकन् ने कुछ कागजात, धर्मग्रन्थ आदि यदि छुपा रखे हैं, तो हो सकता है कि उन्होंने राम, कृष्ण, शिव आदि वैदिक देवताओं की मूर्तियाँ, शिलालेख, वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत आदि सामग्री भी संकटकारी, गुप्त, निकम्मी आदि कहकर किसी के हाथ न लगे ऐसी गुप्तता से रख दी हो या नष्ट कर दी हो।

ऊपर दिए प्रमाणों से एक बात स्पष्ट है कि कृस्ती धर्म के निर्माण के सम्बन्ध में कई बातें इसलिए गुप्त रखी गई हैं कि यदि जनता को पता लगे कि वह पंथ निर्मूल, निराधार है तो विश्व भर में शक्ति सम्पन्न और धनवान कृस्ती पंथ का भट्टा ही बैठ जाएगा।

सम्राट कांस्टेंटाइन की रोमन सेना ने यूरोप पर उसी प्रकार कृस्त पंथ छलबल से थोपा जैसे उसके ३०० वर्ष बाद अरबों ने मारकाट से मुसलमान बनने को लोगों को बाध्य किया।

ईशानी (शिव) पंथ

The Mystical Life of Jesus ग्रन्थ के पृष्ठ २८ पर लेखक

H. Spencer Lewis ने कहा है "Every member of the Essenese in Egypt or Palestine, had to be a pure-blooded descendant of the Aryan race".

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है "ईजिप्त यापैलेस्टाइन में ईशान्-पंथी लोग सारे पक्के आर्यवंशी ही होते थे।"

आर्य नाम का कोई वंश कभी विश्व में था ही नहीं। आर्य धर्म है। उसी के वैदिक धर्म, सनातन धर्म और आधुनिक नाम हिन्दु धर्म हैं। किसी भी वंश के व्यक्ति आर्यधर्मी हो सकते थे। क्रिस्तपूर्व काल में तो सारे विश्व में आर्यधर्म ही था। अतः Spencer Lewis लेखक ने अनजाने में जो तथ्य प्रकट किया है वह बड़ा मौलिक है। उनके उद्गार का तात्पर्य है कि ईशानी लोग आर्यधर्मी यानि वैदिकधर्मी थे। यह सोलह आने सही है है क्योंकि शिव वैदिक देवता होने के कारण ईशानी लोग वैदिक या सनातनी या आर्य के अतिरिक्त हो ही क्या सकते थे?

उसी लेखक ने आगे लिखा है "पंथ दीक्षा लेते ही प्रत्येक ईशानी एक एक शुभ्र कौपीन धारण कर पैर में खड़ाऊ पहनता था।" यह और भी पक्का सबूत है कि ईशानी एक वैदिक पंथ ही था।

प्राचीनकाल में आर्य, ईशानी, समरीटन् (यानी मनुस्मृति आदि स्मृति ग्रन्थों के अनुसार आचरण करने वाले), स्टोइक्स् (यानि स्तविक जो स्तवन करा करते), सडुशिअन्स् (यानि साधुजन), रोमन् (यानी रामपंथी), ईजिप्शियन्स (यानि अजपति राम के देश के), असीरियन्स् (यानि असुर) सीरियन्स् (यानि सुर) बॅबीलोनियन् (यानी बाहुबलिनीय), ग्रीक, ज्यू (यदु), अरब, चीनी आदि वैदिकधर्मी यानि हिन्दु ही होते थे। मलेन्शियन्स् (Malencians) नाम के लोगों का भी उल्लेख आता है। ये म्लेच्छ लोग थे।

स्पेंसर लुइस लेखक ने अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ३५ पर लिखा है, "ये जो ईशानी लोग होते थे, वे बात के इतने पक्के थे कि उनके मुँह से निकला कोई भी शब्द पक्का वचन होता था।" यह भी तो वैदिक धर्म का ही लक्षण है। इसका एक बड़ा प्रमाण संस्कृत के "वचन" शब्द में मिलता है। संस्कृत में सादे कथन को भी "वचन" कहते हैं और प्रतिज्ञा को भी "वचन" ही

कहते हैं। 'प्राण जाई पर वचन न जाई' यह प्रत्येक वैदिक धर्मी व्यक्ति के आचरण का पक्का नियम था।

प्राचीन विश्व में कृष्ण पूजन

H. Spencer Lewis के ग्रन्थ में पृष्ठ १३५ पर मुकुटधारी शिशु का एक चित्र मुद्रित है और उसके नीचे उल्लेख है "Research has revealed that a similar statue of a holy child was exhibited on Christmas Day in many lands before the Christian era." यानि ऐसे एक दैवी बालक की प्रतिमाएँ कृस्तपंथ प्रस्थापित होने के पूर्व कृस्तमास दिन को कई प्रदेशों में प्रतिस्थापित की जाती थीं।

स्पेंसर लुइस के ग्रन्थ में ऐसे कई बड़े अर्थगर्भित वाक्य हैं जिनका मर्म स्वयं उनके ध्यान में नहीं आया। कृस्ती विद्वानों की यही दुर्दशा रही है कि ईसाई पंथ और परम्परा की कृत्रिमता और निराधारिकता के ऐसे कई प्रमाण उनकी दृष्टि पथ में आने पर भी वे उन प्रमाणों का मर्म या रहस्य समझ नहीं पाए। इतनी उनकी मति और बुद्धि कृस्ती पंथ की अंटशंट कल्पनाओं से भ्रष्ट और बधिर हो गई थी कि जो-जो प्रमाण वे स्वयं प्रस्तुत करते हैं उन्हीं का मर्म वे स्वयं आकलन नहीं कर पाते।

अब उनके उपरोक्त वाक्य में ही देखें कितनी महत्त्वपूर्ण बातें कही गई हैं। एक तो यह कि कृस्ती के पूर्व ही एक दैवी बालक की मूर्ति प्रस्थापित करके उसकी पूजा करने की प्रथा थी। भला वह दैवी बालक कृष्ण के अतिरिक्त और हो ही कौन सकता है? उसी कृष्ण का अपभ्रंश जैसे कृस्त हुआ वैसे कृष्ण मूर्ति की ही नकल में कृस्त मूर्ति बनाई गई। अत: कृष्ण जन्म की झाँकी और कृस्त जन्म की झाँकी एक जैसी होती है।

दूसरी बात स्पेन्सर लुइस ने यह कही है कि ईसा उर्फ कृस्ती के पूर्व ही कृस्तमास का त्योहार भी होता था। यदि वह कृस्तमास का त्योहार प्राचीनकाल से ही होता रहता था तो वह स्पष्टतया कृष्णमास का ही त्योहार था। यदि आजकल उस त्योहार को कृस्ती उर्फ ईसाई लोग ही मनाते हैं तो उसका रहस्य क्या है? वह कृस्ती त्योहार तो है नहीं क्योंकि कृस्त के तथाकथित जन्म के पूर्व भी वह मनाया जाता था। कर्मठ कृस्तीजन

और कृस्त प्रथा के जानकार भी यह मानते हैं कि तथाकथित कृस्तमास कृस्ती त्यौहार नहीं है।

कृष्णमास का त्यौहार

अत: जिसे आजकल कृस्मास या कृस्तमास कहते हैं वह वास्तव में कृष्णमास त्यौहार है। यह त्यौहार मध्यरात्रि को ठीक बारह बजे घंटियाँ बजाकर मनाया जाता है। वह पूरी वैदिक प्रथा ही तो है।

यह रात्रि के १२ बजे इसलिए मनाया जाता था कि लम्बी अँधेरी रातें समाप्त होने पर उत्तरायण में दिन धीरे-धीरे बड़ा होने लगता है। इसलिए उस त्यौहार को "बड़ा दिन" भी कहा जाता है। उस दिन मध्यरात्रि को लम्बी अंधेरी रातों की चरमसीमा मानी जाती थी। उसका नाम कृष्णमास यानि काला महीना या लम्बी अँधेरी रात वाला महीना इसी कारण से पड़ा।

उसे कृष्णमास यानी कृष्णपूजन का महीना कहने का और एक प्रयोजन भगवद्गीता में दिया हुआ है। कृष्ण भगवान् कहते हैं, "मासानां मार्गशीर्षोऽहम्" यानी सारे महीनों में मार्गशीर्ष मास ईश्वर रूप है। दिसम्बर ही मार्गशीर्ष होता है। इस प्रकार दिसम्बर २३-२४-२५ को दक्षिणायन का अन्त और उत्तरायण का आरम्भ दर्शाने वाले कृष्ण मास का उत्सव समूचे विश्व में कृस्तपूर्व काल से ही मनाया जाता था।

उस मास में कृष्ण का पूजन रूढ़ होने का एक कारण यह था कि महाभारतीय युद्ध भी मार्गशीर्ष में ही समाप्त हो गया था। शरशैया पर लेटे भीष्मपितामह इच्छामरण स्वीकारने के लिए उत्तरायण आरम्भ होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कौरव सारे मारे गए थे और पाण्डव सारे उदासीन हो गए थे। ऐसी अवस्था में श्रीकृष्ण ही एकमात्र देवतुल्य व्यक्ति माने गए। युद्ध-समाप्ति का आनन्दोत्सव भी मनाना था। ऐसे अनेक कारणों से महाभारतीय युद्ध-समाप्ति का वह उत्सव कृष्ण मास के नाम से मध्य-रात्रि के समय बड़े हर्षोल्लास से मनाने की प्रथा पड़ी। योगायोग से कृष्णजन्म समय और लम्बी रात्रि की चरमसीमा का समय एक ही था। अत: मध्य-रात्रि को (१२ बजे) घण्टानाद से मध्य रात्रि को वह आनन्दोत्सव आज तक मनाया

जाता है। क्रुस्ती कर्मठ लोग, धर्मगुरु और क्रुस्ती विद्वान सारे ही, क्रुसमास्, यह ईसाई त्योहार नहीं होने से उसे मनाना योग्य नहीं, ऐसे चिल्ला-चिल्लाकर कहते रहे हैं, फिर भी क्रुस्तपन्थी जनता ही वह त्योहार बड़ी धूमधाम से और चाव से क्यों मनाती है ? इसलिए कि वे मूलतः कृष्णपन्थी लोग होने से मना करने पर भी कृष्णमास का त्योहार मनाना निजी कर्त्तव्य समझते हैं।

इसे X'mas क्यों कहते हैं ?

कृष्णमास की वैदिक विशिष्टता का ऊपर हमने जिस तरह सर्वांगीण और परिपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है वैसा क्रुस्ती लोग कभी दे नहीं पाएँगे।

क्रुस्ती लोगों से पाठक यह भी पूछें कि क्रुसमास् (Chrismas) को X'mas ऐसा भी लिखा जाता है, वह क्यों ? उसका भी ठीक विवरण वे दे नहीं पाएँगे। आंग्लभाषा में तो फलाना, ढिमका आदि अर्थों में X Y Z कहा जाता है। तो पाठक क्रुस्ती लोगों से यह पूछ सकते हैं कि X'mas को Y'mas या Z'mas क्यों नहीं कहा जाता ? इसका सही उत्तर वे इसलिए नहीं दे पाएँगे क्योंकि सारी क्रुस्ती प्रथा ही उल्टी-सीधी काल्पनिक, निराधार, कृत्रिम कल्पना पर ढाली गई है, अतः पग-पग पर उसमें असंगत बातों की भरमार है।

संस्कृत और वैदिक परम्परा के आधार पर विश्व इतिहास की ऐसी कई गुत्थियाँ झट सुलझ जाती हैं क्योंकि सारे विश्व में लाखों वर्ष तक वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा ही रही है। उसके आधार पर देखिए ऊपर प्रस्तुत की हुई समस्या को हम किस तरह सुलझाते हैं।

पुराणों में वर्णित वैदिक क्षत्रियों का जब विश्व साम्राज्य था तब चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ आदि मासों के नाम थे और उन्हें क्रम के अनुसार आकाश (यानी अम्बर) का पहला भाग, दूसरा भाग आदि दृष्टि से एकाम्बर, द्वितीयाम्बर आदि भी कहा जाता था जैसे आजकल जानेवारी को पहला मास, फेब्रुवारी को द्वितीय मास इत्यादि गिना जाता है। मार्च के लगभग वैदिक नववर्ष सारे विश्व में आरम्भ होता था, अतः उसे पहला मास समझकर ही सेप्टेंबर (सप्ताम्बर) सातवाँ मास, ऑक्टोबर (अष्टाम्बर)

आठवाँ मास, नव्हेम्बर (नवाम्बर) नौवाँ मास और डिसेम्बर (दशाम्बर) दसवाँ मास कहलाता था।

आजकल हम यदि गोरे यूरोपीय लोगों को पूछें, "भाई सेप्टेम्बर-ऑक्टोबर-नव्हेम्बर-डिसेम्बर, नामानुसार तो ७वें, ८वें, ९वें और १०वें मास हैं किन्तु यूरोपीय क्रम में उन्हें ९वाँ, १०वाँ, ११वाँ और १२वाँ मास माना जाता है। ऐसा क्यों ? तो वे उत्तर दे नहीं पाएँगे। क्योंकि अतीत के वैदिक विश्व साम्राज्य के समय का मास-क्रम उन्हें अज्ञात है। ऐसी और ढेर सारी बातें हैं जो अधिकतर लोगों को अज्ञात रह जाती हैं क्योंकि उनका मूल वैदिक इतिहास में है जो आधुनिक पाठ्य-पुस्तकों में अन्तर्भूत नहीं है।

सन् १७५२ तक इंग्लैण्ड का नववर्ष मार्च २२ को ही आरम्भ होता था। अतः मार्च ही पहला मास होता था। सारे यूरोप में और अन्य देशों में भी यही प्रथा थी। किन्तु एकाएक यूरोप के लोगों ने कुछ सदियों पूर्व जानेवारी को पहला मास किया और सेप्टेम्बर आदि क्रम असंगत हो गया। फिर भी नाम वही रहा पर क्रमसंख्या बदल गई। अतः इतिहास विकृत हो गया।

गणराय ईश का मास

जानेवारी को पहला मास कहने की प्रथा भी एक तरह से वैदिक संस्कृति के दूसरे एक आधार पर की गई। कई प्रदेशों में माघी गणेशोत्सव का भी बड़ा महत्त्व होता है। मार्च में यदि चैत्र आरम्भ होता हो तो जानेवारी में माघ और फ़ेब्रुवारी में फाल्गुन पड़ेगा। माघी गणेशोत्सव की प्रथा जैसी अभी भारत में विद्यमान है वैसी कृस्तपूर्व विश्व में होती थी। इसी कारण इस मास की पहचान गणरायईश का मास ऐसी होती थी। उस गणराय-ईश शब्द को ग्रीक व रोमन् लोग Jana-rai-is लिखने लगे। अतः उसका स्पेलिंग Januarius होने लगा। जानेवारी January यह उसी का बिगड़ा रूप है। इस प्रकार वर्ष के मासों का मूलक्रम हो या कुछ सदियों पूर्व उनका परिवर्तित रूप हो, दोनों वैदिक आधार पर ही किए गए हैं। ऐसे ही उदाहरणों से वैदिक संस्कृति की विश्वव्यापकता सिद्ध होती है। गणेश की पूजा सर्वप्रथम होती है अतः वर्ष भी उसी के पूजा मास से आरम्भ हो न

कि अन्नपूर्णा के, ऐसा परिवर्तन किया गया।

डिसेम्बर, यह दसवाँ मास होने के कारण उसका दशाम्बर नाम पड़ा। वही आँकड़े में दसवाँ मास X'mas ऐसा लिखा जाता है। क्योंकि रोमन् गिनती में १० का आँकड़ा X था। अतः X'mas यानी दशम मास और डिसेम्बर यानि दशाम्बर का अर्थ भी दसवाँ मास है। तथापि वर्तमान यूरोपीय प्रथा में २५ डिसेम्बर के दिन को या तो X'mas कहते हैं या २५ से ३१ डिसेम्बर के पूरे सप्ताह को X'mas कहते हैं। यह कितना बड़ा प्रमाद है कि नाम है दसवाँ मास और उसे आजकल समझा जाता है एक अकेला दिन या केवल एक सप्ताह।

X'mas यानी दसवाँ मास

दूसरी एक समस्या यह है कि X'mas को क्रुस्त उर्फ ईसा का जन्म-दिन भी मानते हैं। क्रुस्ती लोग स्वयं कबूल करते हैं कि क्रुस्त के जन्म का पता ही नहीं है। किन्तु २५ डिसेम्बर तो क्रुस्त की जन्म तारीख कतई नहीं है।

अतः २५ डिसेम्बर को क्रुस्त का जन्मदिन मानना ही चूक है। एक और प्रश्न यह उठता है कि यदि २५ डिसेम्बर क्रुस्त की जन्म-तारीख मान भी ली जाए तब भी उसे X'mas क्यों कहते हैं ? X कोई क्रुस्त का द्योतक चिह्न नहीं है और "मास" का अर्थ जन्मदिन नहीं है। अतः X'mas मास का अर्थ पूरे यूरोप में क्रुस्त का जन्म-दिन ऐसा जो किया जाता है वह पूर्णतया निराधार है। इस पर सारे विश्व में पढ़ाई जाने वाली बातें कितनी तर्कहीन और निराधार हैं यह पाठक सोच सकते हैं। इतना अज्ञान, इतनी अविद्या विश्व में इसलिए फैली हुई है कि विश्व को उसका मूल वैदिक इतिहास भुला दिया गया है और कुछ अण्ट-सण्ट, टेढ़ी-मेढ़ी बातों पर ही प्रचलित इतिहास का ढाँचा उल्टा-सीधा खड़ा किया गया है।

क्रुस्तपूर्व काल में जिस देवी शिशु की मूर्ति प्रस्थापित कर उसकी पूजा की जाती थी वह बालक मुकुटधारी बताया जाता था यह भी एक बड़ा प्रमाण है। वैदिक संस्कृति में राम, कृष्ण आदि देवावतार मुकुटधारी बनाए जाते हैं। क्रुस्त तो कभी मुकुटधारी था ही नहीं। वह तो एक गरीब बढ़ई

का शिशु था। उसकी मृत्यु भी इतनी भीषण तरह की हुई कि उसे क्रूस पर लटकाते समय उसे काँटों की पगड़ी पहनाई गई थी। क्रुस्त का सारा व्यक्तित्व और जीवनी कपोलकल्पित है। हम उसे सही नहीं मानते। तथापि ईसाइयों ने क्रुस्त की जीवनी जिस प्रकार बताई है, उसका हमने इस ग्रन्थ में समय-समय पर विश्लेषण किया है।

कृष्ण और कालिया

Spencer Lewis के ग्रन्थ में पृष्ठ ८२ पर एक नाग का चित्र छपा है और लिखा है कि The serpent was used as a mythical symbol in the early sacred writings of various schools of religion. The serpent was also the emblem of the holy ghost.

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार होगा, "प्राचीन पन्थों के धर्मग्रन्थों में नाग एक गूढ़ चिह्न था। नाग ईश्वर का भी प्रतीक था।"

ऊपर जो तथ्य कहा है वह सही होने पर भी अनाड़ी ढंग से प्रस्तुत किया गया है, ऐसा कहना पड़ता है। वैदिक संस्कृति में सारे देवस्वरूप व्यक्ति शेषनाग के तीन या पाँच या सात फणों की छाया में प्रसन्नता से बैठे, लेटे या खड़े बताए जाते हैं। वह इस हेतु की विश्व के शक्तिमान् और विषैले-से-विषैले प्राणी किस प्रकार दैवी शक्ति के अधीन होते हैं यह दर्शाने के लिए।

भगवान विष्णु जब भी प्रकट होते हैं शेषनाग की छाया में होते हैं। बैकुण्ठ में विष्णु भगवान शेषशय्या पर लेटे दिखाए जाते हैं। शिवजी के गले में भी नाग होता है। गणेश का कमरबन्द नाग का होता है। हिन्दु स्त्रियाँ सोने के नाग का बाजूबन्द पहनती हैं। पण्ढरपुर के विठोबा रघुराई की मूर्तियों के शीर्ष पर नागफणा होती है। ईजिप्त के फॅरोहा सम्राटों के ललाट पर नागमूर्ति होती थी। अतः प्राचीनकाल में नाग को देवस्वरूप या देवचिह्न माना जाता था। Spencer Lewis का कथन भी यही सिद्ध करता है कि प्राचीन विश्व में वैदिक संस्कृति होने के कारण नाग को परमात्मा का चिह्न माना जाता था।

कृष्ण की गेंद यमुना के डोह में चली जाने पर कृष्ण ने नदी में जब

गोता लगाया तो वहाँ कालिया नाग से उसकी झड़प हुई और कृष्ण ने कालिया नाग पर विजय पाई यह वैदिक परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कथा है।

योग में भी शरीरस्थ कुण्डलिनी शक्ति को सर्प माना गया है। व्यवहारी जीवन में यह देखा गया है कि जो व्यक्ति लेटा हुआ हो और योगायोग से उसके ऊपर कोई नाग निजी फण की छाया करे, तो वह व्यक्ति भाग्यवान् होता है। मल्हारराव होल्कर भेड़ चराने वाले गरीब देहाती थे। वे बढ़ते-बढ़ते मध्यभारत में मालवा प्रान्त के अधिपति बन गए। शिशु अवस्था में वे भेड़ चराते-चराते एक पेड़ के तले लेटे। उन्हें झपकी आई। उस समय बिल से एक नाग निकला। उसने सोये हुए मल्हारी के सिर के ऊपर फण फैलाकर कुछ क्षण साया की और चुपचाप बगैर उसे कुछ कहे मुँह फेरकर बिल में घुस गया। तत्पश्चात् मल्हारी को पेशवा के राजदरबार में पेशवा के कीमती जूतों की रखवाली करने की नौकरी मिली। वहाँ से फौजों के साथ मुसलमानों के विरुद्ध लड़ाई लड़ने के प्रसंग आते गए। करते-करते वे बड़े सेनानी और प्रदेश अधिपति बन गए।

क्रुस्त कृष्ण का ही अपभ्रंश है

Spencer Lewis के ग्रन्थ में पृष्ठ १५६ पर उल्लेख है कि "क्रुस्तस् यह नाम या उपाधि पूर्ववर्ती देशों के अनेक गूढ़ पंथों में देवावतार की द्योतक थी। क्रुस्तस्, यह मूलत: ईजिप्त के एक देवता का नाम था। दूसरा देवता था हरमिस्। उसी को टायर (Tyre) नगर में हिरम् कहते थे। ईजिप्त के लोग जिस अक्षर को "ख" कहते थे उसे ग्रीक छोग "क्ष" लिखा करते। ग्रीक "क्ष" का उच्चार कई बार "क" भी किया जाता था। इसी कारण ईजिप्त में, जिसका उच्चार खेरु किया जाता था, वह ग्रीक भाषा में "कृ" लिखा जाता था। उसी के XP यह अक्षर प्रारम्भिक इकाई प्रथा में बार-बार प्रयोग होते रहे। रोम नगर में भूलभुलैया जैसे अनेक कक्षों में जो कब्रें बनी हैं उन पर मैंने वे XP अक्षर देखे हैं। इसका मूल आंग्ल उद्धरण इस प्रकार है—The word or title Christos had been used in the mystery schools and in the orient for the name and title

of many of the former Avatars. Christos originally came from the name of one of the Egyptian deities. There was old Hermes, whose name has been corrupted or translated into Hirman of Tyre. The Egyptian letter or dipthong 'KH' is a highly aspirated 'H' and by the Greeks is usually transcribed as X and vice-versa. The value of the greek X is usually transcribed as 'ch', the Kharu of the Egyptians would be therefore 'Cheru' or 'CH-R'. These latter letters from the famous 'X' of the early Christians, which I personally saw and traced on several stones of the tombs in the Catacombs of Rome.

ऊपर दिए विवरण से यह स्पष्ट है कि ईजिप्त, ग्रीस आदि देशों में कृष्ण भगवान के मन्दिर होते थे। गुरुकुल संस्कृत शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् प्रादेशिक उच्चार भिन्न होते-होते कृष्ण को ईजिप्त वाले खृष्ण या खृष्त कहने लगे और ग्रीस में कृष्णस् के बजाय क्रस्टस् उच्चार होने लगा। इसी कारण कृष्णमास का उच्चार कृसमास या कृस्तमास किया जाने लगा। कृष्ण तथा विष्णु को हरि भी कहते हैं। अत: टायर आदि नगरों में हरि मंदिर को हरियम् कहते-कहते उसका उच्चार हरमिस् या हरम् होने लगा। इस्लामी काबा, अलअक्सा आदि तथाकथित मस्जिदों के पवित्र परिसर को "हरम्" कहते हैं। वह इसी कारण कि वहाँ इस्लामपूर्व काल में भगवान कृष्ण या विष्णु की मूर्ति होने से उस परिसर को हरियम् कहते थे। भारत के अमृतसर नगर में जो स्वर्ण मंदिर है उसे आज भी हरमंदिर यानी शिवजी का मंदिर और हरिमंदिर यानी कृष्ण या विष्णु की मूर्ति का मंदिर कहते हैं। इस प्रकार प्राचीनकाल में सारे विश्व के देवालयों में वैदिक देवताओं की मूर्ति होती थी।

ईजिप्त में कृष्ण मन्दिर

ईजिप्त में भी कृष्ण मन्दिर होते थे। The Celtic Druids नाम का ग्रन्थ है। उसके लेखक हैं Godfrey Higgins। उसमें पृष्ठ १२ पर जो

टिप्पणी है उसमें लिखा है, "In the French war, the British sepoys on their arrival from India at ancient Thebes in Egypt, found their God Krishna and instantly fell to worshipping...।" यानि फ्रांस से युद्ध के समय ब्रिटिश सेना के जो भारतीय सिपाही इजिप्त के प्राचीन थीब्ज नगर में लाए गए उन्होंने वहाँ के मन्दिर में कृष्ण की मूर्ति देखी और वे तुरन्त भगवान को प्रणाम आदि करने लग गए।

कृष्ण पुरुषोत्तम

Sinclair Lewis ने, प्राचीन कृस्तपन्थी लोग XP अक्षर लिखा करते थे, ऐसा कहा है। वह इसलिए कि X यह कृष्ण शब्द का पहला अक्षर था और P यह पुरुषोत्तम शब्द का प्रथम अक्षर है। आजतक के यूरोपीय विद्वानों को वैदिक संस्कृति की ऐसी बारीकियाँ अज्ञात होने के कारण वे XP अक्षरों का प्रयोजन नहीं बता सके। अतः यूरोप में गत एक या दो सहस्र वर्षों से जो पुरातत्वीय या ऐतिहासिक संशोधन हुआ है उसका वैदिक विद्वानों द्वारा पुनरावलोकन होना आवश्यक है, क्योंकि यूरोपीय विद्वानों को पर्याप्त ज्ञान न होने के कारण वे कई बातों से योग्य निष्कर्ष नहीं निकाल सके।

कृस्त को ईसाई लोग देवपुत्र इसी कारण कहते हैं कि कृस्त यह कृष्ण का अपभ्रंश है और कृष्ण देवावतार हैं। मानव के रूप में उन्होंने देवकी के गर्भ से जन्म लिया।

कृस्च्यानिटी कृष्ण पंथ था

'कृस्तनीति' उर्फ कृस्च्यानिटी शब्द 'कृष्ण नीति' का अपभ्रंश है। कृष्णनीति भगवद्गीता में कही गई है, अतः कृस्च्यानिटी वस्तुतः कृष्णनीति पन्थ है।

इराक में कृष्ण

सन् १९७९ के वसन्तोत्सव की स्मृति में इराक की इस्लामी सरकार ने जो तीन डाक टिकट छपवाए उनके ऊपर मयूरपंखधारी मुरलीधर

भगवान कृष्ण के चित्र थे। चौथे एक टिकट पर जेरूसलेम के Dome on the Rock नाम के प्राचीन अष्टकोने मन्दिर का चित्र है। उस मन्दिर को मस्जिद कहा जाता है और उसे किसी अब्दुल मलिक ने बनवाया ऐसा माना जाता है। किन्तु ऐसी अफवाहों पर विश्वास रखना योग्य नहीं। जिस अब्दुल मलिक का स्वयं के निवास का कोई महल नहीं था और न ही जिसने निजी निवास के लिए कोई महल बनवाया, उसे Dome on the Rock मस्जिद ऐरे-गैरे गरीब लोगों की नमाज के लिए बनवाने की क्या आवश्यकता पड़ी ? वसन्तोत्सव की स्मृति में कृष्ण का डाक टिकट विशेष अर्थपूर्ण है क्योंकि वसन्तोत्सवों में भगवान कृष्ण की रासलीला होती थी।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि वह इमारत मस्जिद तो है ही नहीं बल्कि एक मन्दिर है। क्योंकि उसका आकार वैदिक अष्टकोना है और उसके गुम्बद के नीचे अन्दर जो rock यानी चट्टान है वह स्वयंभू महादेव ही तो हैं। वही वहाँ के देवता हैं। भक्तगण उन्हीं की पूजा और परिक्रमा करते हैं।

जेरूसलेम में शिवमन्दिर

इतना ही नहीं अपितु भावुक लोग उस चट्टान को पवित्र समझकर उसके टुकड़े पूजा के लिए घर ले जाते थे, अतः उस चट्टान को जाली लगाकर बन्द करवा दिया गया है। अब लोग उसकी परिक्रमा जाली के बाहर से करते हैं। परिक्रमा की प्रथा और चट्टान को महादेव समझकर पूजना यह इस्लामी प्रथाएँ कतई नहीं हैं। तथापि आज तक विद्वान इस धौंसबाजी में विश्वास करते रहे कि वह इस्लामी इमारत है। प्रचलित इतिहास के अध्ययन तथा लेखन-पद्धति में यही बड़ा दोष है कि उसमें कही-सुनी बातों पर ही विश्वास किया जाता है। इसमें सर्वाधिक आश्चर्य की बात यह है कि विश्व में जितनी भी विशाल और प्रेक्षणीय इमारतें मुसलमानों की कब्रें या मस्जिदें कही जाती हैं, उनमें से एक भी उनकी अपनी बनाई हुई नहीं है, सारी दूसरों की कब्जा की हुई हैं।

संशोधन की आवश्यकता

इराक जैसे इस्लामी देश में डाक टिकटों पर किसी का चेहरा छापना

आश्चर्यजनक घटना है क्योंकि कुरान में किसी जीवित प्राणी के चित्रण का निषेध किया है। और तो और वह चेहरा मुरलीवाले श्रीकृष्ण का होना एक बड़ी विचित्र बात है। इराकी मुसलमान भी क्या करें बेचारे, जब उनकी इस्लामपूर्व परम्परा में श्रीकृष्ण की गहरी स्मृति दृढ़मूल रही है।

यहाँ अधिक खोजबीन की आवश्यकता है। इराक सरकार के डाक विभाग ने जिस चित्रकार से वह टिकट बनवाया उससे पूछना चाहिए कि उसे वह चित्र कहाँ से मिला और ऐसे अन्य कौन-कौन से चित्र और कहाँ-कहाँ उपलब्ध हो सकते हैं?

आज तक इस्लामी और ईसाई भावनाओं के डर से विद्वान ऐसे संशोधन से झिझकते रहे और इस्लामी और ईसाई धौंसों पर विश्वास करते गए। यहाँ यह पहचानने की आवश्यकता है कि ईसाई और इस्लामी पन्थ दोनों जोर-जबरदस्ती से जनता पर थोपे जाने के कारण, उनके मूल सिद्धान्तों या प्रतिपादनों की जाँच करने की प्रथा कभी पनपी ही नहीं।

बगदाद भगवद्नगर है

इराक की राजधानी बगदाद भगवद्नगर का संक्षेप और अपभ्रंश है। वहाँ महाभारतीय युद्ध के समय से श्रीकृष्ण ही प्रमुख देवता रहे हैं। इराक का समीपवर्ती देश सीरिया "सुर" का अपभ्रंश है। कृष्ण "सुर" यानी देव ही थे। अतः कृष्ण के नाम से ही इराक की राजधानी को भगवद्नगर या केवल भगवद् कहते-कहते उसका अपभ्रंश बगदाद हुआ।

मक्का में कृष्ण

सऊदीअरब के मक्का नगर में काबा का तीर्थक्षेत्र है। सातवीं शताब्दी तक उसमें सैकड़ों (वैदिक) मूर्तियाँ होती थीं। इस्लामी ज्ञानकोष (Encyclopaedia Islamia) में उन मूर्तियों की संख्या ३६० बताई गई है। उनमें शनि, चन्द्रमा आदि की मूर्तियाँ होती थीं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि काबा मन्दिर में नवग्रहों की पूजा होती थी। उस परिसर को हरम् कहते हैं जो हरियम् का बिगड़ा रूप है—हरियम् यानी हरि का मन्दिर।

जेरूसलेम कृष्णनगर है

जेरूसलेम् नाम का जो अरबों का नगर है उसका नाम भगवान कृष्ण से पड़ा है यह सुनकर सब पाठकों को आश्चर्य होगा। इस उदाहरण से पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि आधुनिक युग में विद्वानों की संशोधन कार्य में कितनी असावधानी रही है। किसी ने नामों तक का विश्लेषण नहीं किया। Encyclopaedia Judaica यानि 'यहूदी लोगों का ज्ञानकोष' में जेरूसलेम नगर का मूल नाम येरूशालेइम् (Yerusaleim) था, ऐसा लिखा है। येरूशालेइम् का उच्चार जेरूशालेइम् उर्फ जेरूसलेम है। ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि योगी का जोगी और यशवन्तसिंह का उच्चारण जसवंतसिंह होता ही है। येरूशालेइम् (Yerusaleim) यह यदुईशालयम् का अपभ्रंश है क्योंकि भारतीय वैदिक "ड" का उच्चार पाश्चात्य देशों में "र" बन जाता है। जैसे "साड़ी" शब्द को यूरोपीय लोग "सारी" और "घोड़ा" का "घोरा" कहते हैं। अतः यदुईशालयम् (Yeduisalayam) शब्द का उच्चारण वह यरूईशालयम् करने लगे। यरूईशालयम् का अपभ्रंश जरूईशालयम् और जरूईशालयम् का थोड़ा-सा संकोच होकर जेरूसलेम् नाम रूढ़ हो गया।

इस्लाम में कृष्ण

इस्लाम् यानि ईशालयम् यह संस्कृत शब्द है। ईशालयम् का अर्थ है देव का मन्दिर। काबा प्राचीनकाल से अरबों का प्रमुख ईशालयम् यानि देवमन्दिर होने से उस पर मुहम्मद पैगम्बर ने कब्जा करते ही उसी ईशालयम् के स्वामित्व से उस महंमदी पन्थ का नाम ईशालयम् उर्फ इस्लाम हुआ।

इस्लाम में ईश्वर उर्फ अल्ला का एक नाम "करीम" है जो कर्म का सिद्धान्त कहने वाले कर्मी भगवान श्रीकृष्ण का विशेषण है।

सीरिया सुर प्रदेश है

सीरिया आजकल मुसलमान देश बना हुआ है, किन्तु सातवीं शताब्दी से पूर्व वह वैदिक 'सुर' प्रदेश कहलाता था। संस्कृत "सुर" प्रदेश का ही बिगड़ा ग्रीक उच्चारण सीरिया हुआ। श्रीकृष्ण सुर थे। उन्हीं का वह

प्रदेश था अतः द्वारिका राज्य में जब बाढ़ आई और डाकुओं का उपद्रव बढ़ा तब यदु लोग भारत से निकलकर सुर प्रदेश में जा बसे। वहाँ से वे ईजिप्त में गए। उसी परिसर में जेरूसलेम यानि यदुईशालयम् यह कृष्णनगर है। स्वयं यदु लोगों का यानि ज्यू लोगों का जो छोटा राष्ट्र बना हुआ है उनका नाम Israel भी ईश्वरालय शब्द का अपभ्रंश है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि यहूदियों के देश का नाम भी संस्कृत वैदिक प्रथा का ईश्वरालय है और इस्लाम पन्थ का नाम भी वैदिक संस्कृत प्रथा का ईशालयम् है। ईश्वरालय और ईशालयम् दोनों का अर्थ एक ही है। यहूदी और अरब (मुसलमान) दोनों एक ही प्रदेश के निवासी हैं। दोनों के रीति-रिवाज भी एक जैसे हैं, फिर भी दोनों में परस्पर भयानक शत्रुता रहती है। यदि दोनों को उनके वैदिक संस्कृत उद्‌गम की पहचान हो जाए और दोनों यदि प्राचीन वैदिक नीति नियमों के अनुसार रहने लगें तो दोनों सुख, शान्ति, एकता और भाईचारे से रह सकते हैं।

राम और कृष्ण की विश्व-कीर्ति और विश्वभक्ति

त्रेता युग में रामावतार होने के पश्चात् जैसे सारे विश्व में राम के मन्दिर स्थापित होकर राम, हनुमान आदि की भक्ति होने लगी उसी प्रकार महाभारतीय युद्ध के पश्चात् सर्वत्र कृष्ण के मन्दिर स्थापित होकर कृष्ण की भक्ति प्रारम्भ हुई। राम और कृष्ण की यह विश्वकीर्ति और विश्वभक्ति प्राचीन विश्वव्यापी वैदिक संस्कृति का कितना बड़ा प्रमाण है। राम-भक्ति का विश्व प्रसार हम देख ही चुके हैं। अब हम कृष्ण-भक्ति के विश्व प्रसार का सिंहावलोकन कर रहे हैं।

यह कितने 'विचित्र योगायोग की बात है कि मूल वैदिक धारा से बिछुड़े इस्लामी और ईसाई पन्थों ने राम मास और कृष्ण मास की प्रथाएँ दृढ़ता से चला रखी हैं। मुसलमान लोग रामध्यान उर्फ रामदान यानि रामध्यान के महीने को महत्व देते हैं तो उधर ईसाई लोग कृष्णमास उर्फ क्रुसमास के महीने को महत्त्व देते हैं।

रशिया में कृष्ण

रशिया देश के पूर्ववर्ती शिबिरीय उर्फ सायबेरिया प्रदेश में एक शहर

का नाम कृष्णोयारक (Krsnoyarak) है। यूरोप का एक अन्य देश पोलैण्ड है। उसमें कृष्णपोल्स्की यानि 'पोलैण्ड का कृष्ण" यह कई व्यक्तियों का नाम होता है। पोलैण्ड की भाषा में "देखो" कहना हो तो "पपश्य" कहते हैं जबकि संस्कृत में केवल "पश्य" कहा जाता है।

जापान में कृष्ण

जापान में सरस्वती, गणेश, कृष्ण आदि वैदिक देवताओं के हजारों मन्दिर हैं। जापानी डाक-विभाग द्वारा भी मुरलीधर कृष्ण का टिकट उतने ही श्रद्धाभाव से प्रकाशित हुआ है जितने श्रद्धाभाव से इराक ने किया है।

ग्रीस में कृष्ण

ग्रीस प्रदेश के कॉरिन्थ नगर के म्यूजियम् में दीवार पर चित्रित किया हुआ भव्य कृष्णचित्र प्रदर्शित है। उसके नीचे अज्ञानी यूरोपीय पुरातत्व-विदों ने केवल "एक देहाती दृश्य" ऐसा वर्णन लिख छोड़ा है जबकि वह स्पष्टतया भगवान कृष्ण का ही चित्र है। क्योंकि उसमें एक वृक्ष की छाया में एक पैर के आगे दूसरा पैर धरे हुए कृष्ण मुंह से अड़ी बाँसुरी बजाते हुए धेनु चरा रहे हैं। अतः यूरोपीय पुरातत्वविदों के निष्कर्षों पर या निर्णयों पर विश्वास करना बड़ी भूल होगी। ग्रीस के नरेशों के सिक्कों पर क्रस्त-पूर्व दूसरी शताब्दी तक कृष्ण-बलराम की प्रतिमाएँ खुदी होती थीं। कृष्ण की मूर्तियाँ यूरोप, अफ्रीका इत्यादि कई देशों के मन्दिरों में होती थीं और उन्हें रधमन्थस, हेराक्लीज, हर्क्युलीज, हिरम, हर्मिस, कृष्ण, क्रष्ट, ईशस् आदि संस्कृत के अपभ्रष्ट उच्चारों से उल्लिखित करते थे। इन सारे प्रमाणों से पता चलता है कि बायबल और कुरान का प्रचार किए जाने के पहले सारे विश्व में भगवद्गीता, वेदोपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थ पढ़े जाते थे।

ज्यू लोगों के भगवान कृष्ण

यहूदी लोगों को Judaists, Xionists और Jews भी कहा जाता है। ये यदुकुल के लोग हैं। यदु का अपभ्रंश ही यहूदी और जुडेई हुआ है। देवनिभम् शब्द बिगड़कर Xionism हुआ है। ज्यू लोगों का ईसवी सन् १९८९ में ५७४८वां वर्ष चल रहा था। उन्हें द्वारिका राज्य से, भगवान

कृष्ण से बिछड़े हुए उतने वर्ष बीत चुके थे। उनके संवत् को Passover वर्ष कहते हैं। Passover का अर्थ है देश छोड़कर निकल जाना। वे जब द्वारिका से बिछड़े तब से उन्होंने निजी संवत् गणना आरम्भ की। अतः महाभारतीय युद्ध हुए लगभग ५७४७ वर्ष बीत गए, ऐसा हम मानते हैं।

उनकी बोलचाल में कृष्ण नाम नहीं आता और न ही उनके मन्दिरों में कृष्ण की मूर्ति होती है तथापि कृष्ण ही उनके भगवान थे यह स्पष्ट करने वाले कई प्रमाण उपलब्ध हैं। 'The chosen People' नाम के ग्रन्थ के पृष्ठ १० पर लेखक John M. Allegro (Granoda Publishing Ltd., Park Street, St. Albans, Herts. 1973) लिखते हैं, "The corpus of Hebrew moral and religious legislation,set in a framework of ancient mythology, was endued with a mystic aura of sanctity. It was the very word of God, almost God himself together with the Temple as the seat of the god and fount of all interpretative inspirative inspiration. It formed the focus of worship and the directive power of post-exile Judaism."

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

"हिब्रू नैतिक और धार्मिक नियम प्राचीन पौराणिक चौखट में बिठाए गए हैं। उनकी एक गूढ़ पवित्रता होती है। वह प्रत्यक्ष परमात्मा के केवल आदेश ही नहीं अपितु प्रत्यक्ष परमात्मा और उसकी प्रतिष्ठापना जहाँ होती थी, ऐसे मन्दिरों से ही उन आदेशों के अर्थ समझने की प्रेरणा मिलती थी। देश छोड़कर निकले हुए यहूदियों का वही श्रद्धाकेन्द्र और आदेश स्रोत होता था।"

ऊपर दिए उद्धरण से यह प्रतीत होता है कि भारत में जैसे कृष्ण मन्दिरों से और वहाँ चलने वाले भगवद्गीता और महाभारत के प्रवचनों से लोग प्रेरणा लेते हैं, वैसी ही यहूदी लोगों की प्रथा थी। वे अपने-आपको The Chosen People of God यानी ईश्वर के चुने हुए अपने लाड़ले कहलाते हैं। उनकी यह कहावत भी सारगर्भित है क्योंकि वे भगवान कृष्ण के यदु लोग हैं। उनके एक देवतुल्य व्यक्ति को वे Moses कहते हैं। वास्तव

में वह महेश (महा+ईश) यानी 'श्रेष्ठ देव' अर्थ का शब्द है। कृष्ण उनके स्वामी, प्रभु या नेता थे। महेश का वही अर्थ है। और Moses के जन्म की कथा जो यहूदी लोग कहते हैं, वह कृष्ण जन्मकथा की ही नकल है।

जेरूसलेम् नगर में जिस इमारत को मुसलमान अल्अक्सा मसजिद् कहते हैं वह इस्लामपूर्व काल में 'अक्षयदेव कृष्ण का मन्दिर' था। उस तथाकथित मसजिद् के परिसर को भी हरियम् इसलिए कहते हैं कि वह हरि यानि भगवान कृष्ण का मन्दिर था।

Dome on the Rock वैदिक मन्दिर में विपुल सम्पत्ति होती थी। क्योंकि वैदिक प्रथा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति सादा जीवन बिताते हुए सारी सम्पत्ति, मूल्यवान वस्तुएँ आदि मन्दिर को ही अर्पण करता था। उसी सम्पत्ति से सारे देश के सेवाकार्य, शिक्षा आदि निभाए जाते थे। यहूदी लोगों के वैदिक मन्दिरों में जतन किया हुआ धन आक्रामक शत्रु किस प्रकार लूटते थे इसका उदाहरण The Chosen People ग्रन्थ के पृष्ठ २० पर लेखक अँलेग्रो ने इस प्रकार दिया है—"When returning from a successful invasion of Egypt, Antiochus replenished his failing coffers enroute by looting the Jerusalem temple to the extent even of stripping the gold leaf from its facade." यानी ईजिप्त पर विजय पाकर लौटते हुए अँटिओकस का खजाना खाली हो गया था। अतएव उसने मार्ग के जेरूसलेम् के मन्दिर की सम्पत्ति इतनी लूटी कि बाहर की दीवारों पर लगा सोने का पत्तर भी उतरवा लिया। अमृतसर के स्वर्ण मन्दिर से पता चलेगा कि मन्दिर, दीवारें, गुम्बज आदि सोने या चाँदी के वर्ख से चमकाना वैदिक, हिन्दु प्रथा ही रही है।

उसी ग्रन्थ के पृष्ठ २९ पर लेखक अँलेग्रो ने लिखा है कि, "The names of the patriarchal heroes, as that of god himself are non-semetic ? and go back to the earliest known civilisation in the near east, indeed of the world." इसका अर्थ है कि "यहूदियों के प्रख्यात पूर्वज तथा उनके भगवान के नाम सेमेटिक परम्परा के नहीं हैं। वे तो किसी प्राचीनतम पौर्वात्य ही नहीं अपितु प्राचीनतम

जागतिक परम्परा के हैं।"

अॅलेग्रो ने बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही है कि यहूदी लोगों के आदरणीय और प्रातःस्मरणीय पूर्वज तथा उनके परमात्मा सेमेटिक यानी अरबी प्रदेश के नहीं थे, अपितु वे प्राचीनतम (वैदिक) परम्परा के थे।

इस प्रकार भगवान कृष्ण सारी मानव-जाति के भगवान रहे हैं। पुरातत्त्वविदों को इस बात का अज्ञान होने के कारण उन्होंने यूरोप में पाए गए वैदिक सभ्यता के प्रमाणों को या तो नष्ट किया, दबा डाला, छुपा रखा अथवा उनका अर्थ विकृत कर छोड़ा।

प्राचीन विश्व में भगवद्गीता

प्राचीनकाल में वैदिक संस्कृति सर्वत्र होने के कारण वेदोपनिषद्, १८ पुराण, रामायण, महाभारत आदि सारा वैदिक साहित्य पूरी मानवजाति में प्रचलित था। वेद, रामायण आदि पढ़े जाते थे। इसके सम्बन्ध में हमने इस ग्रन्थ में अन्यत्र समय-समय पर कुछ प्रमाण दिए हैं। यहाँ हम भगवद्-गीता भी यूरोप में पढ़ी जाती थी इसका प्रमाण दे रहे हैं। इस सम्बन्ध में यह उद्धरण पढ़ें।

"According to Hippolytus, Basilides Taught this (Haer, VII, 14 Edinburgh translation)that "the Gospel came(says Basilides) first form the Sonship through the son that was seated beside the Archon, to the Archon, and the Archon learned that he was not God of the Universe but was begotten. But he was above himself, the deposited treasure of that ineffable and unnamable non-existant one, and of that sonship he was both converted and filled with terror, when he was brought to understand in what ignorance (he) was involved. This, he says, is what has been declared, the fear of the Lord is the beginning of wisdom. For being orally instructed by Christ (i. e. Chrisn) who was seated near, he began to acquire wisdom (in as much as he thereby) learns

who is the non-existent one, what the sonship (is) and what the holy spirit (is), what the apparatus of the universe (is), and what is likely to be the consummation of things. This is the wisdom spoken in a mystery, concerning which (says Basilides) scripture uses the following expression. Not in words Taught of Human wisdom, but in (Those) Taught of the spirit, The Archon than being orally instructed, and taught, and being (thereby) filled with fear, proceeded to make confession concerning the sin which he had committed in magnifying himself, This he says, is what he declared: 'I have recognised my sin, and I know my Transgression, and about this I shall confess for ever."

ऊपर दिया उद्धरण पृष्ठ ४० से ४७ Buddhist and Christian Doctrines, लेखक Albert J. Edmunds, The Yukwan Publishing House, Tokyo, १९०५ पुस्तक से लिया है। इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार होगा—

"बॅसिलिडस् के अनुसार परमेश्वर का उपदेश देवावतार देवपुत्र ने अर्जुन के पास बैठकर (अर्जुन) को दिया। उससे अर्जुन को विदित हुआ कि वह (पास बैठा हुआ व्यक्ति) प्रत्यक्ष परमेश्वर नहीं किन्तु परमात्मा का मानवावतार है। तथापि वह उस अक्षय, अच्युत, अजन्मा, अनामिक परमात्मा का अंश था। यह ज्ञान होते ही अर्जुन (उस देवावतार से) बड़ा भयभीत होकर उसकी शरण गया और उस उपदेश के पूर्व वह अज्ञान के कितने गहरे गर्त में डूबा था इसका उसे पता चला। ईश्वरीय अधिकार और शासन का अनुभव होना ही (एक तरह से) ज्ञान का आरम्भ है। पास बैठे हुए देवावतार से (अर्जुन ने) सुना और जाना कि अजन्मा, अदृश्य, परमात्मा का वास्तविक रूप क्या होता है? अवतारी व्यक्ति के लक्षण क्या होते हैं? यह विश्वयन्त्र कैसे चलता है? और (चराचर) सृष्टि का आगे क्या होना है? यह सारा अद्‌भुत ज्ञान (कृष्ण ने अर्जुन को) सुनाया। भगवद्‌गीता ग्रन्थ में कहा है कि वह कोई मानवीय ज्ञान नहीं था

अपितु दैवीज्ञान था। इस प्रकार उपदेश किए जाने पर वह भयभीत होकर कृष्ण की शरण गया और उसने कृष्ण से प्रार्थना की कि "हे भगवन् मैं अपने-आपको वृथा ही बड़ा कर्ता-धर्ता समझता रहा। अब मुझे पता चला कि परमात्मा ही इस विश्व की सारी यन्त्रणा चलाता है"।

गीता से परिचित व्यक्ति एकदम पहचान जाएँगे कि ऊपर दिया उद्धरण कृष्णार्जुन सम्वाद सम्बन्धी ही है। यह कितना ठोस प्रमाण है कि कृस्तपूर्व काल में ग्रीस में (और सारे यूरोप में) गीता धर्मग्रन्थ के रूप में पढ़ी जाती थी और इसी कारण ईसाई परिभाषा और परम्परा सारी वैदिक, संस्कृत उद्गम की है।



ऊपर चार इराकी टिकटों के चित्र दिए हैं। वे सन् १९७९ में भोसल बसन्तोत्सव के अवसर पर प्रकाशित किए गए थे। उनमें तीन पर मुरली-धर बालकृष्ण के चित्र हैं। चौथे टिकट पर जेरूसलेम नगर के प्राचीन अष्टकोने वैदिक मन्दिर का चित्र है। उसे आजकल मुसलमानों के कब्जे के कारण मस्जिद कहा जाता है।

यह एक प्रत्यक्ष प्रमाण है कि इस्लामी समझे जाने वाले प्रदेशों में भी वैदिक संस्कृति कितनी दृढ़मूल है। इराक की प्राचीन परम्परा की गहराई

में अभी तक भगवान कृष्ण की स्मृति अनजाने टिकी हुई है। यदि ऐसा न होता तो डाक कार्यालय के चित्रकार ने सिर पर मोरपंख लगाए, आड़ी बाँसुरी बजाने वाले कृष्ण का चित्र न निकाला होता। विशेषत: तब जब किसी जीव की प्रतिमा इस्लामी प्रथा में वर्जित है। उस चित्रकार के संग्रह में वैदिक परम्परा के ऐसे और भी दैवी चित्र अवश्य होंगे, विद्वानों को शोध करने की आवश्यकता है।



जापानी डाक टिकट का यह एक बड़ा चित्र है। इसमें भगवान कृष्ण मुरली बजाते दिखाए गए हैं।

बसन्तोत्सव के प्रसंग से कृष्ण का सम्बन्ध जोड़ा जाना भी महत्व का प्रमाण है। क्योंकि भगवान कृष्ण की रासलीला सर्वज्ञात है।

इराक की राजधानी बगदाद भी भगवद्नगर का अपभ्रंश संक्षिप्त रूप है। 'वहाँ की बसों में भी ऐसे बड़े चित्र लगे होते हैं,' ऐसा वहाँ के एक भारतीय निवासी ने बताया।

गत दो सहस्र वर्षों से तो जापान बौद्धधर्मी देश माना गया है, किन्तु उसके पूर्व चीन, जापान आदि सारे पूर्ववर्ती देश वैदिक धर्म का ही पालन करते थे। अत: जापान में गणेश, सरस्वती, राम आदि वैदिक देवताओं के हजारों मन्दिर आज भी हैं। मुरलीधर भगवान की अनेक कथाएँ अनेक देशों में प्रचलित हैं, उनमें से कृष्ण नाम अनवधानी से लुप्त हो गया है।

शोध करने पर सारे देशों के प्राचीन साहित्य में और दन्तकथाओं में भगवद्गीता, कृष्ण चरित्र, महाभारत, रामायण, हनुमान की कथाएँ, वेदोपनिषद् आदि के अस्तित्व के प्रमाण अवश्य मिलेंगे। अभाव केवल संशोधन का है। इस्लामी, ईसाई, यहूदी या कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित व्यक्ति निजी संकुचित दृष्टि त्यागकर यदि क्रुस्तपूर्व काल के इतिहास का निष्पक्षता से अध्ययन करें तो उन्हें अवश्य वह सारा दबाया गया इतिहास प्राप्त होगा।



ऊपर का चित्र ग्रीस देश के कॉरिंथ नगर के म्यूजियम में प्रदर्शित है।

कॉरिंथ नगर अथेन्स से ६० किलोमीटर दूर है। प्राचीनकाल से कॉरिंथ कृष्णभक्ति का केन्द्र रहा है। यह भव्य भित्तिचित्र उसी नगर के एक मन्दिर से प्राप्त हुआ था। एक वृक्ष के नीचे खड़े धेनु चराते और मुरली बजाते कृष्ण इस चित्र में प्रदर्शित हैं। तथापि यूरोपीय विद्वानों की यूरोप की लुप्त-गुप्त कृष्ण परम्परा और वैदिक अतीत के प्रति इतनी अनवधानी है कि वे ऊपर दिए चित्र में कृष्ण को पहचान ही नहीं पाते। उन्होंने उस चित्र के नीचे वर्णन लिखा है A Pastoral Scene यानी "एक देहाती दृश्य"।

यूरोपीय विद्वानों के अज्ञान की यह परिसीमा है। इस ग्रन्थ में हमने स्थान-स्थान पर यह बतला दिया है कि यूरोप में रामायण, कृष्ण परम्परा, भगवद्गीता आदि के अस्तित्व के भरपूर प्रमाण उपलब्ध होते हुए भी क्रुस्ती विद्वानों को वे प्रमाण दिखाई नहीं देते। क्रुस्ती परम्परा के अभियान ने उन्हें अन्धा बना दिया है और उनकी बुद्धि की ग्रहणशक्ति भी नाकाम बना दी है। अतः भारतीय विद्वानों द्वारा यूरोप, अफ्रीका आदि देशों का क्रुस्तपूर्व सभ्यता के संशोधन की बागडोर निजी हाथों में लेकर आज तक पाई गई सामग्री का पुनरावलोकन करना आवश्यक है, क्योंकि यूरोपीय विद्वानों द्वारा किया हुआ मूल्यांकन और निकाले हुए निष्कर्ष विश्वसनीय नहीं हैं।

ग्रीस में ईशस् कृष्ण यह नाम प्रचलित था। उसका ही जीभस् क्रुस्त ऐसा विकृत उच्चारण करके कृष्ण परम्परा की सारी सामग्री जीभस् क्रुस्त नाम से जोड़ दी गई है। इस विशाल हेरा-फेरी और षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ करना आवश्यक है।

नई दिल्ली नगर में सन् १९८७ में फरवरी १७ से २० तक साहित्य अकादमी ने महाभारत ग्रन्थ सम्बन्धी एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया था। उस समय मंगोलिया, कम्पूचिया, इण्डोनेशिया, स्याम, चीन, जापान आदि देशों में महाभारत से सम्बन्धित जो चित्र, पोथियाँ व अन्य साहित्य प्राप्य है उसकी एक छोटी प्रदर्शनी भी लगाई गई थी।

इण्डोनेशिया के वायांग नाट्य द्वारा महाभारत के कई प्रसंग या कथाएँ रंगमंच पर बताई जाती हैं। कई रंगीन चित्रों में भी महाभारत के प्रसंग दर्शाए जाते हैं। कृष्ण भगवान अर्जुन को गीतोपदेश करते हुए बाली

द्वीप की चित्रकला में प्रदर्शित थे। वैसे ही चित्र द्रौपदी, कुन्ती, घटोत्कच, भीष्म, अभिमन्यु आदि के भी थे। वे सन् १९१९ में सुलरदी नाम के चित्रकार ने मंकुनगर दरबार की आज्ञा से बनाए थे।

कम्बोडिया के प्राचीन अंकोरवट राजधानी के राजप्रांगण के विशाल महलों पर कौरव-पाण्डव युद्ध का जो १५० फुट लम्बा भित्तिचित्र खुदा हुआ है उसका भी फोटो प्रदर्शित था। मंगोलीय, चीनी, जापानी और जावा के प्राचीन साहित्य में पाए गए महाभारतीय उल्लेख भी प्रदर्शित थे।

ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी में एक बड़ा न्यून यह रहा है कि वहाँ अधिकतर यूरोपीय लेखकों या विद्वानों द्वारा प्रकट की हुई सामग्री ही शोध की परिसीमा मानी जाती है। ग्रीस और अन्य यूरोपीय देशों में भी कृष्ण, बलराम, अर्जुन आदि के चित्र, मूर्तियाँ आदि प्राप्त हुई हैं, किन्तु वह सारी सामग्री दबाई, छिपाई गई है या उसे क्रुस्ती पन्थ की सामग्री समझकर टाल दिया है। फ्रेंच भाषा में Georges Dumozil द्वारा लिखित Mythes et Epopee नाम का तीन खण्डों का ग्रन्थ है जिसमें महाभारत की चर्चा है और उन कथाओं को भारतीय तथा यूरोपीय विरासत कहा गया है। उस नई दिल्ली वाली गोष्ठी में सारे विद्वान वक्ता यही मानकर चलते रहे हैं कि वेदोपनिषद्, रामायण, महाभारत वाली संस्कृति कभी पश्चिमी देशों में गई ही नहीं। हम नहीं जानते कि जो वैदिक संस्कृति मद्रास के पूर्ववर्ती देशों में २००० मील का समुद्र पार कर फैली, क्या उस संस्कृति को भारत की वायव्य दिशा से जहाँ भू-मार्ग से रूस के पूर्वी किनारे से यूरोप और अफ्रीका के कोने-कोने तक पहुँचा जा सकता है वहाँ पहुँचने में कोई भय लगा या प्रतिबंध था या कोई बाधा आई? आज तक इतिहासकारों ने ऐसी बातों का विचार ही नहीं किया। यूरोपीय विद्वानों के बहकावे में आकर विश्व के विद्वान यह समझे बैठे हैं कि गँवार वैदिक संस्कृति को "शानदार" यूरोप में कभी प्रवेश ही नहीं मिला।

२०

यहूदी लोगों की वैदिक परम्परा

१६३३ से जर्मनी के शासक हिटलर ने यहूदी लोगों की निर्मम हत्या करना आरम्भ किया। उसका यह सिद्धान्त था कि जर्मनी के मूल निवासी आर्यवंश के श्रेष्ठ मानव हैं और जर्मनी में रहने वाले यहूदी लोग कोई हीन जाति के पराए लोग होने के कारण उनका अन्त करना उसका परम कर्त्तव्य था। इस दुराग्रही, निराधार सिद्धान्त से प्रेरित होकर हिटलर ने लगभग ७० लाख यहूदी लोगों का अन्त किया। गलत इतिहास पढ़ा हुआ व्यक्ति कितना भयंकर आतंक मचा सकता है इसका यह एक मोटा उदाहरण है।

हम इस ग्रन्थ में कई बार विविध विषयों के सन्दर्भ में कह चुके हैं कि आर्य नाम की कोई जाति या वंश नहीं। आर्य तो धर्म है। किसी भी वंश का व्यक्ति उसे अपना सकता है। सनातन वैदिक धर्म को ही आर्य धर्म कहा जाता है। भगवान कृष्ण उसी आर्यधर्म के अनुयायी थे। भगवद्गीता में उन्होंने उसी धर्म का प्रवचन किया है। यहूदी लोग भगवान कृष्ण के यदु लोग थे। उनके नेता भगवान कृष्ण जब स्वयं आर्य धर्म के जाने-माने प्रवक्ता थे तो अन्य यहूदी लोग अनार्य कैसे हो सकते हैं? अतः ज्यू लोगों को अनार्य कहकर उनकी हत्या करने में हिटलर ने बड़ा अत्याचार और अनाचार किया।

यहूदी पंथ को Judaism कहा जाता है। वह Yeduism का अपभ्रंश है। सौराष्ट्र यह यदु लोगों का प्रदेश था। श्रीकृष्ण की द्वारिका उसी प्रदेश में है। वहाँ के शासक जाडेजा कहलाते हैं। जाडेजा यह "यदु-ज" शब्द का वैसा ही अपभ्रंश है जैसे Judaism है। जाडेजा और Judaism दोनों का

अर्थ है यदु उर्फ जदुकुलवंशी।

उसी पंथ का दूसरा नाम है Xionism। उसका उच्चार है "जायो-निज्म्" जो "देवनिज्म्" का अपभ्रंश है। भगवान कृष्ण देव थे अतः उनका यदुपंथ देवपंथ कहलाने लगा। द या ध का अन्य देशों में "ज" उच्चारहोने लगा। जैसे ध्यान बौद्धपंथ का उच्चार चीन-जापान में "जेन्" बौद्ध पंथ किया जाता है, उसी प्रकार "देवनिजम्" का उच्चार झायोनिजम् हुआ।

यहूदी परम्परा के प्रथम नेता अब्रह्म माने गए हैं। यह "ब्रह्म" शब्द का अपभ्रंश है। उनके दूसरे नेता "मोजेस्" कहलाते हैं, जो महेश शब्द का विकृत उच्चार है। मोझेस् की जन्मकथा कृष्ण की जन्मकथा से मेल खाती है, अतः वह महा-ईश भगवान कृष्ण ही हैं, इसके सम्बन्ध में किसी को शंका नहीं रहनी चाहिए।

महाभारतीय युद्ध के पश्चात् द्वारिका प्रदेश में शासकों के अभाव से लूटपाट, दंगे आदि आरम्भ हुए। धरती कम्प आदि से सागर तटवर्ती प्रदेश जलमग्न होने लगा। अतः यादव लोग टोलियाँ बनाकर अन्यत्र जा बसने के लिए निकल पड़े। कुल २२ टोलियों में वे निकले। उनमें से १० टोलियाँ उत्तर की ओर कश्मीर की दिशा में चल पड़ीं और कश्मीर, रूस आदि प्रदेशों में जा बसीं। अन्य १२ टोलियाँ इराक, सीरिया, पॅलेस्टाईन, जेरूसलेम्, ईजिप्त, ग्रीस आदि देशों में जा बसीं। मध्य एशिया के १२ देशों में यदुवंशियों की वही १२ टोलियाँ हैं। वही यहूदियों की १२ टोलियाँ कहलाती हैं।

भगवान कृष्ण के अवतार समाप्ति के पश्चात् यहूदी लोगों को जब कठिन और भीषण अवस्था में द्वारिका प्रदेश त्यागना पड़ा तभी से यहूदी लोगों ने मातृभूमि से बिछड़ने के दिन गिनने शुरू किए। उसी को यहूदियों का passover शक कहा जाता है। उसका अर्थ है मातृभूमि त्यागने के समय से आरम्भ की गई कालगणना। सन् १९८६ में यहूदी लोगों का ५७४७वाँ वर्ष चल रहा था।

यह एक विचित्र योगायोग है कि कृष्ण की मूर्ति का, भगवद्गीता का और वैदिक धर्म का तिरस्कार करने वाले मुसलमान लोग भी यहूदियों को वैसे ही शत्रु मानते हैं जैसे वे भारत के हिन्दुओं को मानते हैं।

यहूदियों का सालोमन् नामक राजा था। सॉलोमन् यह शालमानव इस संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है। वनों में जो बड़े ऊँचे और पुष्ट वृक्ष होते हैं उनका शाल-वृक्ष नाम है। कालिदास ने दुष्यन्त को शालवृक्ष की उपमा दी थी, क्योंकि शालवृक्ष जैसी दुष्यन्त की शरीरयष्टि ऊँची और पुष्ट थी। इस्लामी नाम सुलेमान और यहूदी नाम सॉलेमन् उसी संस्कृत शाल-मानव शब्द के अपभ्रंश हैं।

उस यहूदी सॉलेमन् राजा के प्रासाद की विपुल शोभा-सामग्री भारत से ही प्राप्त की गई थी। इस सम्बन्ध में Edward Pocock ने India in Greece नाम के अपने ग्रन्थ में पृष्ठ २२१ पर लिखा है, "That India is the point whence came the gold; and the luxurious appliances of Solomon's court is clear; both the length of the voyage, and the nature of the commercial ports, and the original land of the Phoenicians, establish the fact, that it was a coasting voyage of Three years." अर्थात् "सॉलेमन् के प्रासाद में दृष्टिगोचर होने वाला सुवर्ण और अन्य मूल्यवान सामग्री भारत से ही लाई गई थी। वे वस्तुएँ, उन्हें लाने के लिए किया गया दीर्घ-प्रवास, फणि उर्फ फिनीशियन् लोगों का निवास स्थान और सागर के किनारे किया हुआ तीन वर्षों का प्रवास आदि तफसील ध्यान में रखते हुए वह सारी कीमती सामग्री अवश्यमेव भारत से आई होगी।"

उसी ग्रन्थ में पृष्ठ २२४ पर पोकॉक लिखते हैं "When Judah did evil in the sight of the lord and built them high places and images, and groves on every high hill, and under every tree, the object was Bal and the pillar was his symbol. It was on this alter they burnt incense and sacrificed the calf on the 15th day of the month, The sacred Amavas of the Hindus, The calf of Israel is the bull of Balesar or Iswar !!

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

"यदु लोगों से यदि कोई पाप होता तो वे पहाड़ के ऊपर कुंजवनों में या वृक्ष के तले मन्दिर बनाते और उसमें बाल (कृष्ण) की मूर्ति-स्थापन

कर देते। मन्दिर के आगे (गरुड़) स्तम्भ होता था। मन्दिर की वेदी पर धूप जलाते थे और प्रति अमावस्या को एक बछड़े की बलि देते थे।"

कृस्ती धर्मग्रन्थ बायबल में भी यहूदी लोगों के भगवान का नाम "बाल" उल्लिखित है जो स्पष्टतया बालकृष्ण ही है। बालेसर यह कलेश्वर का ही अपभ्रंश है।

ऊपर दिए उद्धरण में गाय के बछड़े की बलि देने की बात वैदिक संस्कृति से मेल नहीं खाती। भारत के हिन्दुओं की वैसी प्रथा नहीं है। गोहत्या तो निषिद्ध मानी गई है। मण्डन में एक बात कही जा सकती है कि केवल बछड़े का उल्लेख है। उसे गाय का बछड़ा नहीं कहा है। तो हो सकता है किसी और प्राणी का बछड़ा हो। किन्तु पाप करने पर प्रायश्चित् के रूप में मन्दिर बनवाना, उसमें मूर्ति की स्थापना करना, मन्दिर के प्रवेश-द्वार के आगे स्तम्भ खड़ा करना, वेदी पर धूप जलाना या अगरबत्ती सुलगाना यह सारी वैदिक प्रणाली ही प्राचीन यहूदी प्रथा में अन्तर्भूत थी।

सुवर्ण गोवत्स

वर्तमान युग में यहूदियों के मन्दिरों में भगवान की मूर्ति भले ही न रहती हो फिर भी यहूदियों को मूर्तिपूजा से तिरस्कार नहीं। मूर्ति देखते ही जैसे उसे तोड़ने के लिए एक कर्मठ मुसलमान का मस्तिष्क भड़क उठता है वैसा यहूदी का कभी नहीं होता। भारत में हजारों यहूदी हिन्दुओं से इतने घुलमिल गए हैं कि उनकी भिन्नता पहचानी नहीं जा सकती।

हिन्दु वैदिक-प्रथा में मूर्ति-पूजा करना या न करना, जाप करना या न करना, गुरु करना या न करना, ईश्वर को मानना या न मानना आदि बातों में प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता होती है। यहूदियों की वही भावना होती है। इस प्रकार के कर्मठ या अकर्मठ व्यवहार का आदर करना यहूदियों की भी प्रथा है।

इसी कारण द्वारिका से प्रस्थान करते समय यहूदियों में भी आस्तिक-नास्तिक, कर्मठ-अकर्मठ, मूर्तिपूजक या निर्गुणभक्त आदि सब प्रकार के लोग थे किन्तु उन्हें जब स्वदेश छोड़ना पड़ा तो मूर्तिपूजकों ने भी मूर्तिपूजा बन्द कर दी। इसके कारण थे—(१) प्रवास में मूर्तियों का भार उठाना

कठिन था। (२) प्रवास में मूर्तियाँ टूट-फूट जाती थीं। (३) मूर्ति स्थापित करने की या पूजापाठ की सुविधाएँ नहीं होती थीं। (४) जल के अभाव में मूर्ति को नहलाना या भक्त ने स्वयं नहाना नियमित रूप से शक्य नहीं था। (५) देवी, गणेश, शिव, राम, कृष्ण आदि विविध मूर्तियों के भक्तों में वादविवाद होकर यहूदी समाज में पराए प्रदेश में फूट पड़ने का डर था। मन्दिर की सम्पत्ति की अभिलाषा से शत्रु द्वारा लूटपाट की शक्यता होती थी, आदि ऐसे अनेक कारणों से यहूदी परम्परा से मूर्ति पूजा हट गई। किन्तु यहूदी आत्मा को मूर्ति-पूजा से चिढ़ या तिरस्कार नहीं है। यहूदी लोग और पारसीजन बड़ी श्रद्धा से मूर्ति-पूजा में सम्मिलित होते हैं क्योंकि वे मूलतः वैदिकधर्मी ही हैं।

इसी कारण यहूदी इतिहास में उनके मन्दिरों में सोने के गोवत्स की मूर्ति होती थी ऐसा उल्लेख बार-बार आता है। बालकृष्ण की भी मूर्ति होती थी। बछड़े को टेककर बालकृष्ण मुरली बजाया करते थे। इस प्रकार चित्रों और मूर्तियों से भारतीय लोग भली प्रकार परिचित हैं। किन्तु द्वारिका छोड़ने के पश्चात् देश-विदेश में भटकते-भटकते यहूदियों का सारा इतिहास छिन्न-भिन्न हो गया। तथापि यहूदियों का वह फटा-टूटा इतिहास वैदिक संस्कृति के आधार से कैसे संवारा जा सकता है वह हमने यहाँ बतलाया है। यही नहीं वैदिक संस्कृति के आधार पर सारे विश्व के इतिहास की टूटी-फूटी कड़ियाँ जोड़ी जा सकती हैं।

यहूदियों के मन्दिरों में गोवत्स और बालकृष्ण की सोने की प्रतिमाएँ होती थीं इस बात का एक और प्रमाण यह है कि यहूदी इतिहास के विभाग उनके (कृष्ण) मन्दिर के आधार पर "प्रथम मन्दिर के काल का इतिहास", "द्वितीय मन्दिर के कालखण्ड का इतिहास" ऐसा करने की प्रथा पड़ी है।

हिब्रू भाषा यानी "हरि ब्रूते" इति हब्रू

यहूदियों की भाषा का नाम "हब्रू" है। यहूदियों के आंग्ल ज्ञानकोष का नाम है Encyclopaedia Judaica। उसमें "हब्रू" शब्द का विवरण देते हुए कहा है कि उस शब्द का पहला अक्षर जो "ह" है वह परमात्मा के नाम का संक्षिप्त रूप है।

अब देखिए कि ऊपरले विवरण में दो न्यून हैं। एक न्यून तो यह है कि "ह" से निर्देशित होने वाला यहूदियों के भगवान का पूरा नाम क्या है? यह उन्होंने स्पष्ट नहीं किया। करेंगे भी कैसे, जब ज्ञानकोषकारों का ही ज्ञान अधूरा है। हम वैदिक संस्कृति के आधार पर उस कमी को दूर करते हैं। "हरि" यह कृष्ण का नाम है, उसी का "ह" अद्याक्षर है।

अब दूसरा न्यून यह है कि यहूदी ज्ञानकोष वालों ने हब्रू शब्द में ब्रू अक्षर क्यों लगा है? यह कहा ही नहीं। उस महत्त्वपूर्ण बात का उन्हें ज्ञान न होने से वे उसे टाल गए। ब्रू अक्षर का तो बड़ा महत्त्व है। "ब्रूते" यानी बोलता है इस संस्कृत शब्द का वह अद्याक्षर है। अतः हब्रू का अर्थ है "हरि (यानी कृष्ण) बोलता था वह भाषा"। ठीक इसी व्याख्यानुसार संस्कृत और हब्रू में बड़ी समानता है।

हब्रू संस्कृत से भिन्न क्यों?

यदि कोई ऐसी शंका करे कि हरि यानी भगवान कृष्ण तो ठेठ संस्कृत बोलते थे। उनकी वाणी महाभारत में और भगवद्गीता में ग्रथित है। तो जो भाषा श्रीकृष्ण बोलते थे यही यदि हब्रू का अर्थ है तो हब्रू संस्कृत ही क्यों नहीं है?

इस शंका का उत्तर यह है कि महाभारतीय युद्ध के अपार संहार से वैदिक शासन टूट गया और संस्कृत गुरुकुल शिक्षा बन्द हो गई। युधिष्ठिर ने लगभग ३७ वर्ष राज्य किया और कलियुग आरम्भ होने पर भगवान कृष्ण के अवतार की समाप्ति हुई। तत्पश्चात् द्वारिका प्रदेश पर धरती कंप, बाढ़, लूटमार आदि कई संकट आ पड़े। वह अवधि सौ दो सौ वर्ष की थी या पाँच सौ, सात सौ वर्ष या उससे भी अधिक थी, हम नहीं जानते किन्तु द्वारिका राज्य में कृष्णावतार के अन्त से संस्कृत का भी लोप हुआ। तत्पश्चात् वहाँ की सामाजिक, प्राकृतिक तथा राजनयिक उथल-पुथल में संस्कृत ने जो प्राकृत-विकृत मोड़ लिया वह हब्रू बनी। आगे चलकर यहूदियों के देश-विदेश भटकते-भटकते कृष्ण की पावन स्मृति में उस भाषा का नाम (हरि जो भाषा बोलता था—इस अर्थ से) हब्रू ही रहा।

यहूदी लोगों का धर्मचिह्न

यहूदी लोगों के मन्दिर को Synagogue कहते हैं। उसका वर्तमान उच्चार "सिनेगॉग" मूल संस्कृत "संगम" शब्द है। "संगम" शब्द का अर्थ है "सारे मिलकर प्रार्थना करना"। संकीर्तन, संतसमागम आदि शब्दों का जो अर्थ है वही सिनेगॉग उर्फ संगम शब्द का अर्थ है।

यहूदी मन्दिरों पर षट्कोण चिह्न खींचा जाता है। वह वैदिक संस्कृति का शक्तिचक्र है। देवीभक्त उस चिह्न को देवी का प्रतीक मानकर उसे पूजते हैं। वह एक तांत्रिक चिह्न है। घर के प्रवेश द्वार के अगले आँगन में हिन्दु महिलाएँ रंगोली में वह चिह्न खींचती हैं। दिल्ली में हुमायूँ की कब्र कही जाने वाली जो विशाल इमारत है वह देवी भवानी का मन्दिर था। उसके ऊपरले भाग में चारों तरफ बीसों शक्तिचक्र संगमरमर प्रस्तर पट्टियों से जड़ दिए गए हैं। यहूदी लोगों में David नाम होता है वह "देवि + द" यानी देवी का दिया पुत्र इस अर्थ से डेविद् उर्फ डेविड कहलाता है। अरबों में उसी का अपभ्रंश दाऊद हुआ है। अतः हिब्रू और अरबी दोनों संस्कृतोद्भव भाषाएँ हैं।

ईश्वर के अपने लाड़ले जन

यहूदी लोग अपने आपको 'ईश्वर के अपने लाड़ले लोग' मानते हैं। Chosen People of God यह उनकी कहावत है। उसे महाभारत का ऐतिहासिक आधार मानें। भगवान कृष्ण के पास जब दुर्योधन और अर्जुन दोनों ही आगामी युद्ध के लिए सहायता माँगने पहुँचे तो श्रीकृष्ण ने एक तरफ अपने आपको रखा और दूसरी तरफ अपनी पूरी यादव सेना को और अर्जुन से पूछा कि इनमें से तुम क्या चाहते हो? अर्जुन ने श्रीकृष्ण को चुना और कौरवों की तरफ से यादव सेना लड़ी।

इस घटना से महाभारत का ऐतिहासित्व सिद्ध होता है। क्योंकि यादव लोग और श्रीकृष्ण की जीवनकथा यदि काल्पनिक होती तो यदु उर्फ जदु यानि यहूदी लोगों की परम्परा में हमें उस यादव परम्परा के चिह्न नहीं मिलते जो इस ग्रन्थ में हमने प्रस्तुत किए हैं।

ऊपर कहे विभाजन में एक आध्यात्मिक तत्त्व दिखाई देता है कि

श्रीकृष्ण ने जैसे अपने को एक तरफ और अपनी यादव सेना को दूसरी तरफ ऐसा बाँटा वैसा ही ईश्वरीय तत्त्व इस विश्व की चराचर वस्तुओं में अच्छे-बुरे, शीत और उष्ण, उच्च और नीच आदि द्वन्द्वों में विभाजित रहता है। दोनों विरोधी तत्त्व ईश्वर-स्वरूप ही होते हैं।

भारत में यादव का उच्चार जाधव और जाडेजा जैसे बना वैसे ही यदु लोग यहूदी, ज्यूडेइस्टस्, ज्यू और झायोनिटस् कहलाते हैं।

निर्देशित देश

ज्यू लोग जब द्वारिका से निकल पड़े तो उन्हें साक्षात्कार हुआ जिसमें उन्हें कहा गया कि "Canaan प्रदेश तुम्हारा होगा"। "कानान" यह कृष्ण कन्हैया जैसा ही कृष्ण प्रदेश का द्योतक था। यहूदी लोगों को भविष्यवाणी के अनुसार भटकते-भटकते सन् १६४६ में उनकी अपनी भूमि प्राप्त हो ही गई जिसका नाम उन्होंने Isreal रखा जो Isr = ईश्वर और ael = आलय इस प्रकार का "ईश्वरालय" संस्कृत शब्द है। यह एक और प्रमाण है कि यहूदी लोगों की परम्परा वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा से निगडित है। हिटलर उनसे टकराकर नामशेष हो गया। अरब मुसलमान भी यहूदियों से टकराने के लिए आतुर हैं तो उनका भी हिटलर जैसा ही अन्त होगा।

यहूदी ग्रन्थ की भविष्यवाणी

कृस्ती बायबल का Testament नाम का जो पूर्व खण्ड है उसमें समय-समय पर ईश्वर का अवतरण होता है ऐसी भविष्यवाणी है। वह भगवद्गीता से ही यहूदी धर्मग्रन्थ में उतर आई है। भगवद्गीता में भगवान कहते हैं—

"यदा यदा हि धर्मस्यग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्"॥

उस भविष्यवाणी का ही आधार लेकर पीटर, पॉल आदि कुछ महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों ने भाषण देने आरम्भ कर दिए कि बेचारा ऐसा एक गरीब व्यक्ति (ईशस् कृष्ण के बजाय) जीसस् कृस्त जन्मा और सूली पर भी चढ़ाया गया। वह ईश्वरावतार था। धीरे-धीरे उस अफवाह पर विश्वास करने वाले एक-दूसरे की पहचान के लिए गले में पीतल का चमकीला क्रूस पहनने लगे ताकि उससे अपने साथी पहचाने जा सकें। आगे

चलकर जब सन् २१२ ईसवी में रोमन् सम्राट् कॉंस्टेन्टाइन ही उनके पक्ष में मिल गया तो फिर देर ही क्या थी। छल, बल और कपट से ६०० वर्षों में सारा यूरोप कृस्ती बना दिया गया। उधर सातवीं शताब्दी से अरब मुसलमानों ने भी वैसे ही एक सहस्र वर्ष तक जुल्म और जबरदस्ती करके फिलीपीन से लेकर अफ्रीका खण्ड तक करोड़ों लोगों को मुसलमान बनाया।

तालमुड

यहूदी दन्तकथा और नीति-नियमों के धर्मग्रन्थ को Talmud कहते हैं। वह संस्कृत शब्द ताडमुद्र उर्फ तालमुद्र है। ताड़ के पत्तों के ऊपर प्राचीन धर्मग्रन्थ, स्तोत आदि लिखे जाते थे। भारतीय पोथियाँ या अन्य ग्रन्थ सारे ताड़पत्रों के होते थे। तालमुद शब्द का वही अर्थ है कि तालपत्रों पर मुद्रित किए हुए या लिखे हुए अक्षर।

साक्षात्कार

यहूदी नेता Moses की जन्मकथा श्रीकृष्ण की जन्मकथा जैसी ही है। और तो और श्रीकृष्ण का जैसा विराट् रूप कुरुक्षेत्र में अर्जुन ने देखा वैसा ही विराट् रूप यहूदी लोगों ने रेगिस्तान में मोझेस का देखा, ऐसी यहूदियों की दन्तकथा है।

गॉलिली यानी गावालय

यहूदी और कृस्ती दन्तकथाओं में गलीली नगर का बार-बार उल्लेख आता है। वह गाश्वालय इस संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है। श्रीकृष्ण का लांगोपन, नन्द की गौशाला उर्फ गावालय में हुआ था। वही गावालय शब्द गॅलीली के अपभ्रंश से यहूदी और कृस्ती परम्परा में प्रचलित है।

नॅझरेथ यानी नंदरथ

नॅझरेथ यह दूसरा एक नगर नाम कृस्ती और यहूदी कथाओं में उल्लिखित होता रहता है। वह नन्दरथ शब्द का अपभ्रंश है। जहाँ रथ रखे जाते थे ऐसे स्थानों पर नगर बसने से उस नगर के नाम में रथ शब्द अन्तर्भूत हो गया है। आयरलॅण्ड में Nill of Tara नाम का एक अति प्राचीन और अति पवित्र स्थान है। वहाँ ऊबड़-खाबड़ भूमि पर हरी घास उगी हुई है।

वैसे वहाँ देखने योग्य कुछ बचा ही नहीं है तथापि स्थानीय पुरातत्व विभाग की तरफ से वहाँ जो सूचनाफलक लगाए गए हैं उन पर प्रत्येक स्थान के नाम के साथ "रथ" शब्द जोड़ा गया है।

पूर्ववर्ती पर्वत

यदुईशालयम् उर्फ जेरूसलेम नगरी में दो पहाड़ियाँ हैं। उनमें से पूर्व-वर्ती पहाड़ी पर Dome on the Rock और अल्अक्सा नाम के दो प्राचीन वैदिक मन्दिर हैं, जो सातवीं शताब्दी से मुसलमानों के कब्जे में होने के कारण मस्जिदें कहलाती हैं। Dome on the Rock स्वयम्भू महादेव का मन्दिर है और अलअक्सा अक्षय्य भगवान कृष्ण का मन्दिर है। पूर्ववर्ती पहाड़ी पर ये मन्दिर बनाए जाना उनकी वैदिक विशेषता का द्योतक है।

यहूदी विवाह-पद्धति

जिस प्रकार भारत में दो कुटुम्बों के बुजुर्गों से विवाह प्रस्ताव सम्मत होने पर युवक-युवतियों के विवाह होते हैं वैसी ही प्रथा-यहूदियों में भी है। वे भी भारतीयों की तरह प्रेम-विवाह को अच्छा नहीं समझते। वैदिक विवाहों के लिए मण्डप बनाए जाते हैं। यहूदियों की भी वही प्रथा है। वे भी मण्डपों में विवाह-संस्कार कराना शुभ समझते हैं।

दीपावली

यहूदियों में भी अनेक दीप लगाकर वैसा ही एक त्यौहार मनाया जाता है जैसे भारतीय लोग दीपावली मनाते हैं।

वृक्ष-पूजन

वैदिक संस्कृति में जिस प्रकार तुलसी, पीपल, बड़ आदि वृक्षों का पूजन किया जाता है, उन्हें पानी दिया जाता है और उनकी परिक्रमा की जाती है, वैसे ही यहूदी भी वृक्षों को पूज्य मानते हैं।

वही शत्रु

मुसलमान लोग यहूदियों को उतना ही कट्टर शत्रु मानते हैं जितना वे भारत के हिन्दू लोगों को मानते हैं।

यहूदियों में वेदों का उल्लेख

मार्कोपोलो के प्रवास वर्णन के ग्रन्थ में पृष्ठ ३४६ पर एक टिप्पणी इस प्रकार है—"Much has been written about the ancient settlement of Jews at Kaifungfu (in China). One of the most interesting papers on the subject is in Chinese Repository, Vol. XX. It gives the translation of a Chinese Jewish inscription...Here is a passage "with respect to the Israelitish religion we find an inquiry that its first ancestor, Adam came originally from India and that during the (period of the) Chau State the sacred writings were already in existence. The sacred writings embodying eternal reason consist of 53 sections. The principles therein contained are very abstruse and the external reason therein revealed is very mysterious being treated with the same veneration as Heaven. The founder of the religion is Abraham, who is considered the first teacher of it. Then came Moses, who established the law, and handed down the sacred writings. After his time this religion entered China."

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार होगा—

"चीन के कायफुंगफू नगर में यहूदियों की एक बस्ती थी जिसके बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। उसमें एक बड़ा ही रोचक लेख Chinese Repository नाम के ग्रन्थ के बीसवें खण्ड में सम्मिलित है। चीन में प्राप्त एक यहूदी शिलालेख का वह अनुवाद है। उसमें ऐसा उल्लेख है कि "यहूदियों के मूल धर्मसंस्थापक अॅडम् (यह "आदिम" ऐसा संस्कृत शब्द है। उसी से इस्लामी भाषा में आदमी यह शब्द बना है) भारत-निवासी था। चौ शासन के पूर्व ही उनके पवित्र ग्रन्थ उपलब्ध हो गए थे। उन ग्रन्थों में अनादि, अनन्त तत्त्व का विवरण ५३ भागों में प्रस्तुत है। उसके तत्त्व बड़े गूढ़ हैं और उसमें दिया अनादि-अनन्त का वर्णन बड़ा रहस्यमय है। प्रत्यक्ष परमात्मा के जितना ही उनका महत्त्व माना गया है। अब्राहम

उसका प्रजनेता और प्रथम प्रवक्ता है। उसके पश्चात् मोझेस का अवतार हुआ। उसी ने नीति-नियम बनाकर पवित्र ग्रन्थ रचे। उसके समय के पश्चात् इस धर्म का चीन देश में प्रसार हुआ।"

चीन में उपलब्ध उन प्राचीन दस्तावेजों के संकलित ग्रन्थ का अध्ययन करने से और भी बड़ी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होने की सम्भावना है। तथापि ऊपर दिए उद्धरण से यहूदी लोगों के वैदिकधर्मी होने का पूरा सबूत मिलता है। शिलालेख में कहा गया है कि ॲडम् (Adam) यह यहूदियों का मूल धर्मसंस्थापक भारत का निवासी था। ॲडम यह संस्कृत आदिम शब्द का अपभ्रंश है। आदिम यानी सबसे प्रथम। जैन सम्प्रदाय में उसे आदिनाथ कहते हैं। वैदिक संस्कृति में उसे विष्णु कहा है। अनादि, अनन्त तत्त्व का गूढ़ और रहस्यमय वर्णन देने वाले ग्रन्थ वेदों के अतिरिक्त कोई अन्य हो ही नहीं सकते। क्योंकि वेदों का महत्त्व परमात्मा के जितना ही माना गया है। वेदों का दाता अब्रह्म कहा है। वह ठीक ही है क्योंकि ब्रह्मा जी ने मानवजाति को वेद उपलब्ध कराए। अब्रह्म यह ब्रह्मा का वैसा ही उच्चार है जैसे कुछ लोग स्नान को अस्नान कहते हैं। अन्तिम वाक्य के अनुसार ब्रह्मा के वेद देने पर कुछ ही समय में चीन में भी वही धर्म चला। इसका अर्थ स्पष्ट है कि बौद्ध समझे जाने वाले चीनी लोग आरम्भ में वैदिक-धर्मी यानि हिन्दु ही थे।

यहूदी लोगों के मूल धर्मग्रन्थ भी वेद ही हैं यह ऊपर उद्धृत टिप्पणी से स्पष्ट है। मोझेस् ने उसी धर्म की नीति की व्याख्या की ऐसा जो उल्लेख टिप्पणी में है वह महा-ईश-कृष्ण की भगवद्गीता के प्रति निर्देश करता है। इसी ग्रन्थ में अन्यत्र हमने दर्शाया है कि जिस प्रकार यहूदी परम्परा में वेदों का उल्लेख आता है उसी प्रकार इस्लामी परम्परा में भी वेदों का उल्लेख आया है।

हरि का सुर देश

Encyclopaedia Judaica यानी यहूदी लोगों के ज्ञानकोष में (पृष्ठ 108, खण्ड 2, Keter Publishing Co., जेरूसलेम द्वारा प्रकाशित) लिखा है कि "Erez Israel and (Central-Southern) Syria were

referred to as Hurru chiefly as an ethnic term after the Horites who inhabited the country."

यानी "एरेभ इस्राइल और मध्य दक्षिण प्रदेश को हुरू प्रदेश कहा जाता था। होराइत लोगों के वहाँ बसने से उस प्रदेश को वह जातिवाचक नाम प्राप्त हुआ।" इस उद्धरण में जो हुरू, होराइत आदि उल्लेख हैं वह हरि उर्फ कृष्ण के अनुयायी के अर्थ से यहूदियों का निर्देश करते हैं। सीरिया शब्द "सुर" यानी देवों का प्रदेश इस अर्थ का है।

सिंह और कमल

जेरूसलेम् उर्फ यरुईशालयम् नगर में वैदिक परम्परा के कई प्राचीन चिह्न हैं। नगर का एक कोट है उसमें कई नगरद्वार बने हैं। वैदिक शासकों के नामों में सिंह शब्द जोड़ा जाता था। अत: नगर का भी सिंहद्वार होता था। जेरूसलेम का ऐसा ही एक सिंहद्वार (Lion's gate) है क्योंकि वहाँ सिंह की मूर्ति बनी है। मुसलमान तो प्राणी की मूर्ति नहीं बनाते अत: जेरूसलेम् नगर इस्लाम से कितना ही प्राचीन है। इस सन्दर्भ में हम पाठकों को अपने एक शोध-सिद्धान्त का स्मरण दिलाना चाहते हैं कि विश्व-भर के ऐतिहासिक स्थलों में Construction is all Hindu and Destruction all Muslim यानी बनवाई सारी हिन्दुओं ने हैं और तोड़-फोड़ मुसलमानों द्वारा की गई है। उसी सिद्धान्त के अनुसार जेरूसलेम में जो कुछ दीवारें-इमारतें आदि अभी तक खड़ी हैं वे वैदिक धर्म के लोगों की बनाई हुई हैं और जो तोड़-फोड़ है वह मुसलमानों ने की है। अत: विश्व भर के विद्वानों को हम सावधान करना चाहते हैं कि इस्लाम ने यह आलीशान मस्जिद बनाई और वह विशाल कब्र बनाई आदि जो अनाप-शनाप वर्णन देने वाले ग्रन्थ लिखे गए हैं वे सारे निराधार और निकम्मे हैं। मुसलमानों ने ७वीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक एक भी प्रेक्षणीय इमारत या नगर नहीं बनाया। वे दूसरों के ही नगर और इमारतों पर कब्जा जमाते रहे और उनके दरबारी खुशामदकार कब्जा किए हुए परायों के नगरों का और इमारतों का श्रेय मुसलमानों को देते रहे। सिंह, कमल आदि वैदिक चिह्नों के कारण उस हेरा-फेरी का रहस्य खुल जाता है।

इस्लामी अफवाहों का षड्यन्त्र

उस इस्लामी षड्यन्त्र के अन्तर्गत यह धौंस दी गई है कि सुलेमान नाम का कोई सुल्तान था। उसे यह स्वप्न आया कि यदि वह यदुईशालयम् (जेरूसलेम) नगर का कोट न बनवाए तो सिंह उसे खा जाएँगे। इस स्वप्न की स्मृति में सुल्तान सुलेमान ने यदुईशालयम् नगर का कोट बनवाया और उसके एक द्वार पर सिंह की प्रतिमा बनवा दी। लगभग प्रत्येक प्रेक्षणीय ऐतिहासिक इमारत की बाबत मुसलमानों ने ऐसी ही कोई बालिश और हास्यास्पद अफवाह फैलाकर लोगों की आँखों में धूल झोंकी है।

ऊपर कही अफवाह का विवरण करके हम पाठकों को बताना चाहते हैं कि ऐसी इस्लामी तिकड़मबाजी का भण्डाफोड़ किस प्रकार किया जा सकता है।

प्रथम समझने की बात यह है कि इस्लाम को स्थापित हुए केवल १४०० वर्ष हुए हैं जबकि यदुईशालयम् नगर कम-से-कम पाँच-छह सहस्र वर्ष प्राचीन है। उसका नाम भी यदुईशालयम् यानी श्रीकृष्ण नगर है। हर घर की चारदीवारी करना जितना आवश्यक होता है उतना ही प्राचीन-काल में नगर की भी चारदीवारी या कोट करना आवश्यक समझा जाता था। अतः सुल्तान सुलेमान के हजारों वर्ष पहले से ही यदुईशालयम् का कोट बना हुआ था।

कोट नहीं बनाया तो शेर खा जायेगा ऐसे स्वप्नों से क्रूर, दुष्ट, अत्याचारी इस्लामी सुल्तान बच्चों की भाँति कभी डरते थे क्या? सिंह खा जाएगा इस भय से यदि कोट बनाया जाता तो कोट के एक द्वार पर सुल्तान भाले से उस पापी सिंह को मारता हुआ बताया जाता।

जब कुराण मुसलमानों को सजीव प्राणियों की प्रतिमा बनाने से रोकता है तो कर्मठ मुसलमान सुल्तान सुलेमान् ने कुराण की आज्ञा के विरुद्ध सिंह की प्रतिमा कैसे बनवाई? अल्लाह की आज्ञा भंग करने से जहन्नुम् में उसकी अल्लाह जो हालत कर देता उससे भी सिंह द्वारा फाड़े जाने का उसे अधिक डर लगता था क्या?

हो सकता है कि प्रसिद्ध यहूदी सम्राट सॉलोमन् (शालमानव) ही यदुईशालयम् नगर का और उसके कोट का निर्माता हो। सॉलोमन् और

सुलेमान नाम की समानता का अयोग्य लाभ उठाकर मुसलमानों ने यहूदियों के कर्तृत्व का श्रेय किसी सुलेमान् के नाम के साथ जोड़ देने की हेरा-फेरी की।

प्राचीन नगर कभी कोट के बगैर बनते ही नहीं थे। अतः यह कहना कि नगर तो पहले से ही था किन्तु उसे कोट पहनाया या बगैर कोट का नगर बनवाता तो सिंह उसे फाड़ खाते, वगैरह इस्लामी धौंसबाजी पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।

उस नगर-द्वार पर केवल सिंह ही नहीं अपितु दूसरा भी एक महत्वपूर्ण वैदिक चिह्न है। वह है अनेक कमल की आकृतियाँ। उन चिह्नों का चित्र यहूदी ज्ञानकोष के नौवें खंड के पृष्ठ १४३२ पर दिया है। वैसे ही कमल चिह्न भारत स्थित लालकिला आदि इमारतों पर पाए जाते हैं। प्रथम ब्रिटिश पुरातत्त्व अधिकारी अलेक्झेण्डर कनिंघम ने भारतीय ऐतिहासिक इमारतें हिन्दु राजाओं की होते हुए भी जानबूझकर इस्लामी सुल्तान बादशाहों द्वारा बनवाई गई ऐसा पुरातत्त्वीय दफ्तर में लिख मारा। अतः भारत में भी जिन इमारतों पर कमल चिह्न बने हुए हैं वे इमारतें इस्लाम द्वारा नहीं बनवाई गई हैं यह पहचान लेना चाहिए।

२१

पूर्ववर्ती देशों की वैदिक संस्कृति

आजकल की बोलचाल में Oriental यानी पूर्ववर्ती देशों की संस्कृति तथा Occidental यानि यूरोप आदि पश्चिमी देशों की संस्कृति, इनका उल्लेख इस प्रकार किया जाता है कि जैसे दोनों में बड़ा विरोध है। आर्य और द्रविड़ संज्ञाएँ भी इसी प्रकार परस्पर-विरोधी समझी जाती हैं।

ईसाई बनने के पश्चात् भले ही यूरोपीय लोगों के रहन-सहन में भिन्नता प्रकट हुई हो किन्तु ईसा-पूर्व समय में यूरोप और अन्य सारे खण्डों में वही वेदोपनिषद, रामायण, महाभारत वाली सभ्यता थी जो हम आजकल भारत की विशेषता मानते हैं। उसी प्रकार आर्य और द्रविड़ों में भी कोई विरोध नहीं है। द्रविड़ लोग तो आर्यधर्म उर्फ वैदिक संस्कृति के संचालक, निरीक्षक और व्यवस्थापक थे।

वर्तमान इतिहास शिक्षा में ऐसे और भी अनेक दोष प्रविष्ट हैं जैसे जात-पाँत की बाबत विकृत कल्पनाएँ। ऐसे सारे भ्रम दूर करके इतिहास की शिक्षा शुद्ध करने की बड़ी आवश्यकता है। सारी मानव-जाति आरम्भ से एक ही वैदिक सभ्यता में जुड़ी हुई थी। उस एकता का लुप्त इतिहास विश्व को उपलब्ध कराना ही इस ग्रन्थ का मूल उद्देश्य है।

वर्तमान विचारधारा के अनुसार ईसाई जीवन-पद्धति पश्चिमी कहलाती है किन्तु पूर्ववर्ती प्रदेशों की सभ्यता बौद्ध, हिन्दु, मुसलमान आदि अनेक धर्मों और पन्थों की खिचड़ी मानी जाती है।

इस अध्याय के आरम्भ में ही हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वर्तमान युग में सूट-बूट पहनकर, चर्च में यीशु की प्रार्थना करने वाले

पाश्चात्य लोग ईसापूर्व काल में उसी प्रकार योग, प्राणायाम, वेद पठन, रामायण, महाभारत पारायण और संस्कृत में संभाषण आदि करते थे जैसे भारतीय लोग करते थे। अतः कृस्तपूर्व काल में पश्चिमी और पूर्वी सभ्यता में कोई अन्तर नहीं था। वह अन्तर तब पड़ने लगा जब लोग छल-बल से ईसाई और मुहम्मदपन्थी बनाए जाने लगे।

आरम्भ में पूर्वी और पश्चिमी देशों का विभाजन किस आधार पर किया गया है यह भी देखना आवश्यक है। पृथ्वी गेंद जैसी गोल है। उसमें पूर्व और पश्चिम यह संज्ञाएँ क्यों, कैसे और किन प्रदेशों को सम्बोधित करती हैं? जापान के लोग अमेरिकनों को पश्चिमी समझते हैं और अमेरिका के लोग जापानियों को पूर्वी समझते हैं। किन्तु पृथ्वी के गोले पर तो जापान के पूर्व में अमेरिका और अमेरिका के पश्चिम में जापान स्थित है।

भारत से ही सभ्यता का आरम्भ

अतः आरम्भ में यह समझ लेना आवश्यक है कि पूर्वी देश और पश्चिमी देश यह जो विभाजन हुआ है वह भारत को प्रमाण और मूल देश मानकर हुआ है। इससे एक बहुत महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकलता है कि भारत से ही मानवीय सभ्यता और मानवी शिक्षा आरम्भ हुई। भारतवासियों के सूर्योदय के क्षितिज पर ही अन्तर्राष्ट्रीय तिथि सीमा (International Date Line) बनी हुई है। वहाँ जब क्षितिज से सूर्य ऊपर उठता है तो नई तिथि मानी जाती है जबकि उसके पूर्ववर्ती प्रदेशों को पश्चिमी मानकर वहाँ पुरानी तिथि या तारीख ही जारी रहती है।

भारत को मध्यवर्ती देश मानकर उसकी अगल-बगल वाले जापान से तुर्कस्थान तक के देश पूर्वी देश कहे गए हैं। तुर्कस्थान से अमेरिका तक के देश पश्चिमी देश माने जाते हैं।

हिन्द चीन

इण्डोचायना उर्फ हिन्दचीन नाम का जो प्रदेश है वह अब तीन राज्यों में बँटा हुआ है। वीएतनाम, लव उर्फ लाओस और काम्बोज (उर्फ कम्पूचिया या कम्बोडिया) नाम के वे तीन प्रदेश हैं।

उस प्रदेश में सैकड़ों वर्ष तक जयवर्मा, सूर्यवर्मा आदि भारतीय राजाओं का साम्राज्य था। अंकोरवट नाम की उनकी वहाँ प्राचीन राजधानी बनी हुई है। उस राजधानी के विशाल और नयनमनोहर महल, मन्दिर आदि के खण्डहर १०० चौरस किलोमीटर भूमि पर बने हुए हैं। उनके परकोटे में स्थान-स्थान पर त्रिमूर्ति की विशाल प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। उनके बीच में से उगे हुए ऊँचे पीपल, बड़ आदि वृक्षों की मूलियाँ उन मूर्तियों को घेरे हुए हैं। रात के घने अँधेरे और सन्नाटे में उन विशालकाय मूर्तियों को देखकर डर-सा लगता है।

अंकोरवट की विशाल कलाकृति

उन प्रासादों और मन्दिरों के प्रांगणों में कहीं-कहीं विशाल प्रस्तर मूर्तियों के पौराणिक दृश्य भी बनाए गए हैं। उदाहरणार्थ समुद्र-मन्थन का दृश्य। यह दीवार पर खुदा नहीं है। आंगन मे एक तरफ देवों की मूर्तियाँ और दूसरी तरफ राक्षसों की मूर्तियाँ, बीच में मन्दार पर्वत और उसे मथनी जैसा घुमाने के लिए लम्बे वासुकी सर्प की लपेट—ऐसे वहाँ भव्य दृश्य बनाए गए हैं। इस प्रकार का मनोहारी और विशाल दृश्यस्थल सारे विश्व में प्राय: यह एकमेव है। भारत सरकार ने इस कलास्थल की जानकारी और प्रसिद्धि विश्व को कराने का कर्तव्य नहीं निभाया। यह भारत के वर्तमान कांग्रेसी शासकों का बड़ा दोष है। अंकोरवट का प्रदेश आजकल भले ही भारत के शासन में न हो किन्तु वहाँ के प्रासाद, मूर्तियाँ, शिलालेख आदि तो भारतीय ही हैं। वहाँ की कला भी भारतीय है। फिर भी अधिकतर भारतीय लोग उस अपने प्राचीन बृहद्भारत की राजधानी के नाम से, वहाँ के शिलालेख आदि ऐतिहासिक सामग्री से और वहाँ की कला से पूर्णतया अनभिज्ञ रह गए हैं। वहाँ बैठे भारत के राजदूत क्या करते रहे हैं? चित्रकला, फिल्म वीडियो कैसेट, मूर्तियों की प्रतिमाओं आदि द्वारा भारत की उस दूरस्थ प्राचीन कला की जानकारी की भरमार भारत में कराने की बड़ी आवश्यकता है। इससे भारत का गौरवशाली अतीत वर्तमान पीढ़ी को प्रेरित और उत्साहित करता रहता, भारत का लुप्तगुप्त इतिहास उभर आता और उस कला का भारत में पुनरुद्धार किया जा सकता।

भारत के परराष्ट्रमन्त्री ऐसे विशाल दृष्टि के होने चाहिएं। नटराज, शिव जैसे तांडव नृत्य द्वारा सारी पृथ्वी हिला देते हैं, वैसे भारतोद्भव वैदिक संस्कृति ने किस प्रकार सारी धरती जगमगा दी थी, यही इस ग्रन्थ में दर्शाया गया है। भारत लक्ष्मी के वे मौलिक गहने सारे विश्व में बिखरे पड़े हैं। उनका ज्ञान स्वयं अर्जन करना, उन्हें संवारना और उस मौलिक सामग्री का विश्व को ज्ञान कराना भारत के विदेशमंत्री और राजदूतों का कर्त्तव्य है। राजदूतों को इस सम्बन्ध में विशेष शिक्षा देने वाले वर्ग चलाए जाने चाहिएं और जागरूक रहकर विविध प्रदेशों से वैदिक संस्कृति का नाता किस तरह जुड़ा हुआ है इसकी जानकारी प्राप्त कराते रहना चाहिए। किन्तु इस कर्त्तव्य का वर्तमान भारतीय शासकों को जरा भी ज्ञान नहीं है। सारे ही गोबर-गणेश बने हुए हैं जो सरकारी नौकरी को केवल पैसा कमाने का धन्धा समझे बैठे हैं।

कम्बोडिया में जो वह प्राचीन भारतीय राजधानी अंकोरवट है उसकी सीमावर्ती भूमि का, अभी तक अरण्य प्रदेश, यही संस्कृत नाम है। कभी-कभी उस प्रदेश को स्थानीय अपभ्रंश में 'प्राथेट' भी कहा जाता है।

विशाल कलाकृतियां भारत में कहां हैं ?

यह विचार करना आवश्यक है कि जिन भारतीयों ने कम्बोडिया जैसे दूर के प्रदेश में पत्थर की ऐसी विशाल मूर्तियां, प्रासाद आदि बनाए क्या उन्होंने भारत में वैसी विशाल कलाकृतियां नहीं बनाईं ? इतिहास के वर्गों में, कला वर्गों में ऐसे प्रश्नों की चर्चा होनी चाहिए और परीक्षा में भी छात्रों से ऐसे प्रश्न पूछे जाने चाहिएं।

इस प्रश्न का उत्तर है कि भारत में भी वैसी सुन्दर और विशाल कलाकृतियां थीं किन्तु ७१२ से १७६१ तक के १०४९ वर्षों के इस्लामी हमलों में प्राय: सभी नष्ट हो गईं। भारत में करोड़ों मुसलमानों को यह ऐतिहासिक सत्य चुभेगा इस डर, झिझक और लज्जा के कारण वर्तमान कांग्रेसी शासक ऐसे प्रश्नों की इतिहास में चर्चा ही नहीं होने देते। परिणाम-स्वरूप भारत के वर्तमान शासक ही भारत का सत्य इतिहास निजी राजनीतिक स्वार्थ के कारण झुठलाने में जुट गए हैं। अतीत में जो घटनाएँ

हुई उनकी ज़्यों-की-त्यों जानकारी आगामी पीढ़ियों को देना इसी का नाम इतिहास है। सत्य इतिहास कथन करने से कभी हानि नहीं होती। इस्लामी आक्रामकों ने भारत में जो उधम मचाया, जो सर्वनाश किया, छलबल से जिस प्रकार करोड़ों लोगों को मुसलमान बनाया उसका खरा-खरा इतिहास आगामी पीढ़ियों को ज्ञात कराने से ही भारत के मुसलमान अच्छे नागरिक बनेंगे।

इसी दृष्टि से भारत में विशाल मूर्तियाँ, प्रासाद, मन्दिर आदि कहाँ-कहाँ हैं उसकी सूची बनाना आवश्यक है। कम्बोडिया से कलिंग यानी उड़ीसा के लोगों का सीधा सम्बन्ध था। दोनों के प्राचीन नृत्य, गान, वेषभूषा, वाद्य, गहने और प्रासाद तथा मूर्ति शैली में गहरा साम्य है। अतः उड़ीसा में भी वैसी विशाल और सुन्दर कलाकृतियाँ पाई जानी चाहिएँ। अरण्यों में जहाँ वैसी विशाल मूर्तियाँ आदि बनी हों उनकी सूची बनाई जानी चाहिए और फोटो आदि उपलब्ध कराए जाने चाहिएँ।

उड़ीसा का कोणार्क मन्दिर एक भव्य रथ के आकार का बना वैसी कलाकृति है। उसमें विशालकाय सूर्यमूर्तियाँ कुछ अभी हैं और कुछ इस्लामी आक्रामकों ने नष्ट कर दीं। उस मन्दिर का गर्भगृह भी इस्लामी आक्रामकों द्वारा तोड़ा-फोड़ा, मन्दिर के मध्य में मलवे का ढेर बनकर पड़ा है। वह मन्दिर किस दुष्ट आक्रामक ने कैसे और कितने दिन में भंग किया वह सारा इतिहास उस भग्न मन्दिर के बाहर पुरातत्वीय सूचनापट पर लिखा जाना चाहिए। यही तो पुरातत्व विभाग का मुख्य कर्त्तव्य है। किन्तु मुस्लिम वर्ग की तुष्टिहेतु पुरातत्व विभाग भी निजी कर्त्तव्य नहीं निभाता।

उड़ीसा के वन प्रदेशों में तथा और भी कुछ स्थानों पर विशालकाय प्रस्तर प्रतिमाएँ अज्ञात पड़ी या खड़ी हैं ऐसा सुना है।

विजयनगर की राजधानी, जो मुसलमानों ने नष्ट की और आंध्र प्रदेश में वारंगल का जो किला मुसलमानों ने तोड़ा, उसमें कुछ विशाल प्रतिमाएँ नष्ट किए जाने की आशंका है।

दिल्ली में जो ऊँचा विष्णुस्तम्भ आजकल कुतुबमीनार कहलाता है वह सात मंजिला था किन्तु अब केवल पाँच मंजिला रह गया है। उसकी सातवीं मंजिल पर चतुर्मुख ब्रह्मा की मूर्ति, एक संगमरमरी गुम्बद की छांव में

कमलासन पर विराजमान थी और विष्णुस्तम्भ के तले शेषशायी विष्णु की विशालकाय मूर्ति थी जिसकी नाभि से निकला विष्णुस्तम्भ कमलदण्ड के रूप में खड़ा किया गया था। उस विष्णु स्तम्भ को दुबारा तले में विष्णु और शिखर पर ब्रह्मा की मूर्ति से सजाने की आवश्यकता है।

अंकोरवट का वस्तु संग्रहालय (Museum) भारतीय मूर्ति और संस्कृत शिलालेखों से भरा पड़ा है।

लव देश का चन्दनवन

कम्पूचिया उर्फ काम्बोज के पड़ोस का देश है "लव" जो प्रभु रामचंद्र के एक पुत्र के नाम से पड़ा है। उसका फ्रेंच स्पेलिंग *Laos* है जिसका फ्रेंच उच्चार लव बनता है। उस देश की राजधानी चन्दनवन उर्फ वनचंदन कहलाती थी। उसी का फ्रेंच स्पेलिंग Vientianne होने से पश्चिमी जन उसका उच्चार व्हिएन्शिऑन् करते हैं। कहाँ वनचन्दन और कहाँ व्हिएनशिऑन् !

संस्कृत में एक सुभाषित इस प्रकार है—

अतिपरिचयात् अवज्ञा, संतत गमनात् अनादरो भवति।
मलये भिल्ल पुरंध्री चन्दनतरुकाष्ठं इंधनं कुरुते॥

इस उक्ति से ऐसा अनुमान निकलता है कि सांप्रत जिसे मलाया या मलयेशिया देश कहते हैं उसमें क्रुस्तपूर्व समय में चन्दनवृक्ष के वन होते थे। उसी देश की ईशान्य में थोड़ी ही दूरी पर लव देश है। उसमें भी चन्दन के वृक्ष होते थे। इतिहास के ऐसे सबक से उन देशों को चन्दन के वृक्ष लगा कर उनका सुगन्ध विश्व में फैलाने का और निजी धनकोष वृद्धि का लाभ उठाना चाहिए। इतिहास से ऐसा प्रतीत होता है कि उन देशों की भूमि और वायुमान चन्दन वृक्षों के लिए अनुकूल होंगे।

गंगा मैया

काम्बोज, लव, वीएतनाम आदि प्रदेशों की प्रमुख बड़ी नदी का नाम है मेकांग जो "माँ गंगा" यानी गंगा मैया शब्द का अपभ्रंश है। विश्व भर में बिखरे ऐसे संस्कृत नामों को इतिहास की सही शिक्षा द्वारा लोगों को विदित कराना इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य होना चाहिए।

उस प्रदेश में १९वीं और २०वीं शताब्दी में फ्रेंच लोगों का अधिकार ७०-८० वर्ष रहने के कारण वहाँ प्राप्य ऐतिहासिक सामग्री सम्बन्धी ग्रंथ फ्रेंच पुरातत्त्वविदों ने लिखे हैं।

सयाम

कम्बोडिया की पश्चिमी सीमा से सटा हुआ देश है स्याम। इसे यूरोपीय पद्धति का थायलैंड नाम भी पड़ा है। सयामी भाषा के शब्द संस्कृत के हैं किन्तु उच्चार चीनी पद्धति के हैं। जैसे "राजवंश" शब्द सयामि भाषा में रछत्रौग कहा जाता है। छाया चित्रकार का उच्चार छायाचितकॉन (यानी फोटोग्राफर), शुत्थ भोजन होटल, अयुत्थ्या (अयोध्या) चूड़ालंकारण (चुलालकोर्न) क्रुट (गरुड़-गृह) –इत्यादि उच्चार सयामि भाषा में रूढ़ है। अतः प्राकृत उच्चारों को छोड़कर सयामि भाषा एक तरह से पूरी संस्कृत है। इसी कारण सयामि भाषा का विद्वान होने के लिए संस्कृत का विद्वान होना आवश्यक होता है।

यद्यपि वहाँ के लोग बौद्ध बन गए हैं लेकिन वहाँ के राजपुरोहित वैदिक धर्मी यानी हिन्दू ही हैं। स्याम के राजा का राज्याभिषेक प्राचीन वैदिक संस्कारों से वैदिक मंत्रों सहित होता है। प्रत्येक राजा को "राम" पदवी ही दी जाती है। अभी जो उनके राजा गद्दी पर हैं वे नौवें राम हैं।

स्याम की राजधानी भी अयोध्या उर्फ अयूत्थ्या ही कही जाती थी। किन्तु उसे ब्रह्मदेश की सेना द्वारा एक युद्ध में तहस-नहस कर देने के कारण सयामि लोगों ने बैंकॉक में नई राजधानी बनाई।

उस बैंकॉक नगर के मध्य में एक विशाल राम मन्दिर है। उसके परकोटे पर उरली तरफ रामायण प्रसंग के रंगीन चित्र अंकित हैं। किन्तु आजकल मन्दिर के गर्भगृह में राम की मूर्ति न होकर बुद्ध की मूर्ति प्रस्थापित है। वह पन्ने की बनी होने के कारण उसे Emerald Buddha कहते हैं। परकोटे के अन्दर विस्तीर्ण आंगन है। उसके मध्य में मन्दिर है। उसके प्रवेश द्वार पर राक्षसी मुद्रा की पहरेदार यक्ष मूर्तियाँ हैं।

सयामी भाषा में मन्दिर को वट कहते हैं क्योंकि वहाँ बड़ के वृक्ष होते थे। बड़ का संस्कृत नाम है वट। वट अरुण, वट देव शिवींद्र (यानी देव

श्री इन्द्र) आदि सयामि देवमन्दिर के नाम होते थे।

व्रतबन्ध होने पर गुरुगृह में भिक्षा माँगकर विद्यार्जन करने की स्मृति में वर्तमान समय में भी कर्मठ कुटुम्बों में युवकों का व्रतबन्ध होने पर वे गेरुए वस्त्र पहनकर किसी नदी के किनारे पुरोहित के या अन्य गुरु के आश्रम में कुछ दिन बिताते हैं।

सयामि लोग एक-दूसरे से मिलने पर "सवड्डी" कहते हैं। वह स्वस्ति शब्द का विकृत उच्चार है। स्वस्ति का अर्थ है "सु+अस्ति" यानी सब क्षेम है, ठीक चल रहा है।

सयामि राजधानी का प्राचीन प्रणाली के अनुसार लम्बा-चौड़ा वर्णन इस प्रकार है---देवदूतों का नगर, अमरपुरी, इन्द्र की रत्नजड़ित चमकती-धमकती बस्ती, शोभायमान मन्दिरों से भरी अयोध्यानरेश की नगरी, राजा के विशाल एवं सुन्दर महलों का नगर, विष्णु और अन्य समस्त देवी देवताओं का निवास स्थान। इन सारे विशेषणों से नगर को सुन्दर, स्वच्छ, आकर्षक और सुरक्षित रखने का ध्येय प्रतीत किया जाता था।

मलयेशिया

स्याम के दक्षिण में प्राचीन मलाया देश है। मलाया चन्दन का देश कहलाता था। उस देश के नगरों के नाम अधिकतर प्राचीन संस्कृत ही हैं। उसकी राजधानी कोलालम्पुर कहलाती है। वह 'चोलानाम्पुरम्" का अपभ्रंश है। उससे पता चलता है कि उस नगरी का नाम चोल राजवंश से जुड़ा है। सुंगाईपट्टानि नाम का दूसरा एक नगर है जो शृंगपट्टण यानी पहाड़ी नगर कहलाता था। तीसरा एक नगर है सेरंबन जो "श्रीरामवन" का अपभ्रंश है। अन्य एक नगर का वर्तमान नाम "पेटलिंगजाया" है जो 'स्फटिकलिंग जायान्' ऐसे संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है। स्फटिकलिंग जापान का अर्थ है "महान् स्फटिक का शिवलिंग"। उस नगर के बीचोंबीच एक बड़ा शिवमन्दिर था जिसमें स्फटिक के विशाल शिवलिंग की पूजा होती थी। उत्खनन में उस नगर के मध्यवर्ती भाग में शिवमन्दिर के अवशेष पाए गए हैं। अरबों ने वहाँ आक्रमण कर सारे मन्दिर नष्ट करके मलाया के सारे लोगों को छल-बल से मुसलमान बनाया ? तथापि वहाँ के मुसलमान

बने राजपरिवार में अभी तक श्री, महादेवी, महाश्री, पुत्री, विद्याधरी, राम हुसेन, लक्ष्मण हुसेन आदि प्राचीन वैदिक परम्परा, इस्लामी नामों से जुड़ी हुई हैं।

मलाया के दक्षिण में जोहोरबारू नाम की रियासत है। उसके राजा प्रमुख मुसलमान बनाए जाने के पश्चात् सुल्तान कहलाए। तत्पूर्व उन्हें महाराज कहा जाता था। सन् १९४३-४४ में जोहोरबारू के राजप्रासाद में जाने का मुझे अवसर मिला था। तब मेज पर जो लम्बी चादर बिछी हुई थी उसके ऊपर बड़े अंग्रेजी अक्षरों में कशीदाकारी से Maharaja of Johore ऐसे अक्षर निकाले गए थे।

उस महल को स्थानीय भाषा में भी "आस्थान" इस संस्कृत शब्द से ही सम्बोधित किया जाता है। इससे वहाँ की संस्कृत परम्परा की गहराई का पता चलता है। स्थानीय लोगों को प्राचीन संस्कृत परम्परा में Sons of the soil के अर्थ से 'भूमिपुत्र' ही कहा जाता है।

मलाया के सागरतट के एक नगर का नाम मलाक्का है जो मल्लिकार्जुन शिवलिंग स्थान था। उसी का मलाक्का यह अपभ्रष्ट संक्षिप्त रूप है।

सिंहपुर

मलाया देश के दक्षिणी किनारे के निकट जो द्वीप है उसे सिंगापुर कहते हैं। जो सिंहपुर इस संस्कृत नाम का विकृत उच्चार है। प्राचीन वैदिक विश्वसाम्राज्य में अमेरिका से आस्ट्रेलिया तक जाने वाली नौकाएँ सिंहपुर में रुकती थीं। सन् १४९२ में एक अंग्रेज पर्यटक Sir Stanford Raffles जब उस द्वीप पर पहुँचा तो सागर-किनारे एक पहाड़ी के ऊपर उसने एक किला देखा जिसके ऊपर परमेश्वर नाम के राजा का संस्कृत शिलालेख था। Raffles Memoires नाम के संस्मरण रफल्स साहब ने लिखे हैं, जिनसे ऐसी जानकारी प्राप्त होती है।

मलाया देश में पाए गए ऐतिहासिक अवशेषों के सम्बन्ध में ब्रह्मचारी कैलासम् (उर्फ स्वामी सत्यानन्द) नाम के महात्मा द्वारा लिखा Glimpses of Malayan History ग्रन्थ भी उपलब्ध है। वे लेखक मेरे अच्छे मित्र रहे हैं। एक मोटर दुर्घटना में उनकी मृत्यु हुई।

इण्डोनेशिया

जावा, सुमात्रा, बाली आदि हजारों द्वीपों का देश इण्डोनेशिया कहलाता है। विश्व में India उर्फ भारत का नाम जितने प्रदेशों से जुड़ा हुआ है उतना और किसी देश का नहीं। वेस्टइंडीज, ईस्टइंडीज, इंडोनेशिया इंडोचायना, इंडियन ओशन् (यानि हिन्द महासागर) और अमेरिका में इंडियाना, इंडियानापोलीस आदि नाम इस बात के साक्षी हैं कि भारत का नाम प्राचीन विश्व में सर्वत्र गूंजता रहा है क्योंकि विश्वव्यापी वैदिक संस्कृति की जड़ भारत में थी और विश्व पर शासन करने वाले वैदिक क्षत्रियों का प्रशिक्षण भारत में हुआ करता था। ऊपर उल्लिखित नामों में इण्डियाना और इंडियानापोलीस नाम यद्यपि आधुनिक हैं पर वे यह सिद्ध करते हैं कि विश्व पर भारत का शासन मिटकर हजारों वर्ष बीत जाने पर भी अभी तक भारत के नाम की इतनी प्रतिष्ठा बनी हुई है कि आधुनिक नामों में भी भारत के अतीत का वह गौरव प्रतिबिम्बित होता रहता है।

बाली द्वीप में तो अभी तक चातुर्वर्ण्यधर्माश्रम पद्धति का हिन्दु धर्म ही प्रतिष्ठित है। वहाँ के पण्डित को पंडा कहा जाता है। बाली में परम्परागत सारे उत्सव, त्यौहार, व्रत, पर्व आदि अभी तक वैदिक पद्धति से ही मनाए जाते हैं।

बाली की हिन्दू संस्कृति

भारत से लगभग २५०० मील दूर सागर पार बाली द्वीप में प्राचीन हिन्दु जीवन-पद्धति इसलिए बच पाई है कि वहाँ के डच यूरोपीय शासकों ने जब वह अति सुन्दर और लुभावनी जीवन-पद्धति देखी तो उन्होंने उसे सुरक्षित रखना चाहा। अतः किसी अन्य धर्म प्रचारकों को उस द्वीप में प्रवेश न करने देने का दूरदर्शी निर्णय डच शासकों ने लिया। इसी कारण वह वहाँ सीधी-साधी, धार्मिक, भावुक, कर्मठ, प्राचीन वैदिक जीवन पद्धति शान्त और सुखद वातावरण में अभी तक अखण्ड चल रही है।

जावा द्वीप की राजधानी जोगजकर्ता के पास प्राचीनकाल के हिन्दु शासकों द्वारा बनाया एक महान मन्दिर है जिसे बोरोबिदुर कहते हैं। वह

बुद्ध का वह अपभ्रंश हो सकता है। उस चौकोने मन्दिर में शान्त ध्यान-मग्न बुद्ध की सैंकड़ों प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। यद्यपि अरबी हमले के कारण सैंकड़ों वर्ष पूर्व से इण्डोनेशिया के लोग मुसलमान बनाए गए हैं फिर भी उनकी संस्कृति हिन्दू ही टिकी हुई है।

भारत का तेजोमहालय (उर्फ ताजमहल), कांबोज का अंकोरवट और जावा का बोरोबिदुर—यह प्राचीन हिन्दू संस्कृति के तीन प्रसिद्ध कला स्थान कहे जा सकते हैं।

जावा में प्रंबनन् नाम का नगर है। वहाँ रात्रि की चाँदनी के शान्त शीतल वातावरण में खुले मैदान में सैंकड़ों लोग बानर, राक्षस आदि की वेशभूषा में कई दिन बड़ी धूमधाम से रामलीला मनाते हैं।

इण्डोनेशिया में भाषा को भाषाही कहते हैं। महिलाओं को 'वनिता' कहते हैं। इस प्रकार उनकी भाषा संस्कृत प्रचुर है।

बर्निओ

इण्डोनेशिया के उत्तर में बोर्नियो नाम का बड़ा द्वीप है। वहाँ बस्ती बड़ी विरल है। अधिकतर प्रदेश बड़े-बड़े वृक्षों के वन से ढका हुआ है। उस वन में प्राचीन हिन्दु शासन के अनेक अवशेष अज्ञात बिखरे पड़े हुए नष्ट होते जा रहे हैं। बोर्नियो द्वीप के एक हिस्से को सारावाक कहते हैं। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व उसका शासक एक गोरा अंग्रेज था। फिर भी उसे 'राजा" ही कहा जाता था। जिससे पता चलता है कि अतीत में वहाँ भारतीय हिन्दू वैदिक राजकुल का शासक होता था।

ब्रह्मदेश

वर्तमान "बर्मा" नाम प्राचीन ब्रह्मदेश नाम का संक्षिप्त रूप है। विश्व के निर्माता ब्रह्मा से उस प्रदेश का नाम ब्रह्मदेश पड़ा। उस प्रदेश में तीन बड़ी नदियाँ बहती हैं—इरावती, ब्रह्मपुत्रा और चिद्विन्। "इर" संस्कृत धातु से ही प्रेरणा, इरावती, ऐरावत आदि शब्द बने हैं। इन्द्र का सफेद हाथी ऐरावत कहलाता है। वैसे हाथी इसी प्रदेश में पाए जाते हैं। इरावती के इस प्रदेश में विहरने वाले हाथी का नाम ऐरावत हुआ। चिद्विन् नाम "चिन्तनवन" से पड़ा। तपस्यायोग्य इस घने जंगल प्रदेश को

चिन्तनवन कहा गया। ब्रह्मदेश के अन्य नगर भी सारे संस्कृत नाम धारण किए हुए हैं जैसे रंगून, मंडाले, प्रोम, मेक्टीला (यानी मिथिला) प्रांगण नाम का एक अन्य प्राचीन नगर है जिसमें अनेक सुन्दर प्राचीन वैदिक मन्दिर बने हुए हैं। ब्रह्मदेश के राष्ट्रपति को "आदिपदि" कहते हैं जो "अधिपति" का अपभ्रंश है।

विपश्यन् योग ध्यान पद्धति

ब्रह्मदेश में "विपस्सना" नाम की एक योगध्यान पद्धति प्रचलित है। वह "विपश्यन्" संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है। "विपश्यन्" यानि (परमात्मा) के दृष्टिपथ में बैठना। जड़जगत् सम्बन्धी सारे विकल्प त्यागकर एकाग्रचित्त से परब्रह्म के ध्यान में लीन होकर परमात्मा को देखना या परमात्मा के दृष्टिपथ में अपने-आपको ले जाना, इसे विपश्यन् अवस्था कहते हैं। यह वैदिक योगध्यानपद्धति ब्रह्मदेश में प्रचलित है। आधुनिक समय में कुछ भारतीयों ने उसे फिर भारत में रूढ़ किया है।

ब्रह्मदेश में होली उसी तरह मनाई जाती है जैसे भारत में। बड़े-बड़े पीपों से पानी निकाल-निकालकर रास्ते पर जाने वालों के ऊपर छिड़का जाता है। ब्रह्मदेश के लोग, जो अभी बौद्ध कहलाते हैं, प्राचीनकाल में अन्य पूर्ववर्ती देशों की तरह पूर्णतया वैदिकधर्मी थे।

शुण्डा की खाड़ी

सीता जी का शोध करते समय वानरों के वैमानिकों ने जब सारी पृथ्वी छान मारी तब उन्होंने कुछ विशिष्ट स्थानों को उल्लेख किया। उसमें शुण्डा की खाड़ी का उल्लेख है। आस्ट्रेलिया खण्ड के उत्तर में स्थित यह खाड़ी भी शुण्डा ही कहलाती है। इससे पता चलता है कि वैदिक क्षत्रियों के शासन में किस प्रकार पूरी पृथ्वी का भौगोलिक अध्ययन, निरीक्षण, नामांकन इत्यादि होता रहता था।

फिलीपीन

फिलीपीन लगभग ७००० द्वीपों का समूह है। यहाँ के लोग अधिकांश ईसाई बनाए गए हैं। कुछ मुसलमान बनाए गए। अत: यहाँ प्राचीन वैदिक

संस्कृति के लगभग सारे ही चिह्न मिटा दिए गए हैं। किन्तु जब ऊपर-नीचे, दाएँ-बाएँ के सारे प्रदेशों में वैदिक संस्कृति थी और क्रुस्तपूर्व समय में जब वैदिक धर्म के अतिरिक्त विश्व में अन्य कोई सभ्यता थी ही नहीं तो फिलीपीन में भी वही संस्कृति होनी चाहिए। ऐसे निष्कर्ष निकालकर उस दृष्टि से संशोधन करने की पद्धति इतिहासकारों ने अपनाना आवश्यक है। इसी ग्रन्थ में अन्यत्र हमने रामकथा के कुछ अंश फिलीपीन में कैसे पाए जाते हैं, उसका निर्देश किया है। फिलीपीन में विश्वविद्यालय के उपकुलपति को गुरो करते हैं जो "गुरु" शब्द का ही सम्बोधन है। ऐसे बचे-खुचे सूक्ष्म प्रमाणों का भी फिलीपीन की प्राचीन लुप्त-गुप्त वैदिक संस्कृति का पता लगाने में बड़ा महत्त्व होता है।

ऑस्ट्रेलिया

विश्व के दक्षिणी गोलार्द्ध में अन्य खण्डों से कुछ दूर ऑस्ट्रेलिया नाम का भूखण्ड अलग-सा पड़ गया है! उस विशाल खण्ड में अंग्रेज आदि कुछ थोड़े गोरे लोग निवास करते हैं। कहीं-कहीं उस खण्ड के प्राचीन वनवासी लोग भी पिछड़ी अवस्था में रहते हैं। उस जाति का नाम है माओरी। उनकी भाषा तमिल से कुछ मिलती है। अतः हो सकता है कि यहाँ के वह वनवासी लोग प्राचीनकाल में आ बसे तमिलजन ही हों जिनका भारत से सम्बन्ध इसलिए टूटा कि बीच में एक विस्तीर्ण सागर था। आस्ट्रेलिया के सागरतट पर कुछ गहराई में से एक मच्छिमार के जाले में एक घण्टी निकल आई। किसी प्राचीन नौका की वह घण्टी थी। उस घण्टी के ऊपर एक तमिल लंका खुदा था। उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि भारत की नौकाएँ ऑस्ट्रेलिया से अमेरिका खण्डों के पश्चिमी तट तक जाती थीं।

जहाजों के बेड़ों को आंग्ल भाषा में "नेवी" (Navy) कहते हैं। वह संस्कृत नौ-नौका-नाव-नाविक आदि वर्ग का ही शब्द है। अनादिकाल से संस्कृतभाषी वैदिक क्षत्रियों की नावें ही विश्व के सागरों पर संचार करती थीं, अतः वह संस्कृत "नावि" शब्द आंग्लभाषा का अंग बन गया।

ऑस्ट्रेलिया यह आंग्ल प्रतीत होने वाला शब्द भी "अस्त्रालय" ऐसा शुद्ध संस्कृत है। महाभारतकाल में जब वर्तमान रूस-अमेरिका की तरह

कौरव-पाण्डव विविध प्रकार के महासंहारी अस्त्र बनाते थे तो वे उत्तर गोलार्द्ध से दूर के उस खण्ड में अस्त्रों का परीक्षण किया करते थे। परीक्षण के लिए सारे अस्त्र वहाँ भेजे जाते। इसलिए उस भूमि का नाम अस्त्रालय पड़ा, और बारम्बार विषैले अस्त्रों के विस्फोटों से उस खण्ड की अधिकांश भूमि वीरान् अनउपजाऊ बन गई। यदि छह सहस्त्र वर्ष पूर्व अण्वास्त्र के विस्फोटों का पता लगाया जा सकता है तो आजकल के वैज्ञानिकों ने निजी यन्त्रों से आजमाना चाहिए कि क्या छह सहस्त्र वर्ष पूर्व ऑस्ट्रेलिया में अण्वस्त्रों के विस्फोट किए गए थे।

ऑस्ट्रेलिया में प्राचीनकाल में वैदिक संस्कृति थी इसका एक और प्रमाण यह है कि वहाँ के कई माओरी आदिवासी ललाट पर आड़े या खड़े शैवी-वैष्णवी आदि पद्धति के तिलक लगाते हैं।

उन माओरी लोगों को वहाँ के मूल निवासी जानकर उनका आदर करने की बजाय वहाँ जा बसे गोरे यूरोपीय लोगों ने उन आदिवासियों का उपहास और अवहेलना ही की है। गोरे लोगों के ऐसे बर्ताव की एक यूरोपीय महिला ने भर्त्सना की है। लेखिका हैं Miss Ernestine Hill। सन् १६४२ अँगस्त के Modern Review मासिक में उस महिला ने एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था Great Australian Loneliness यानी ऑस्ट्रेलिया के (आदिवासियों) का सूना जीवन। उसमें लेखिका कहती है कि "ऑस्ट्रेलिया के आदिवासियों को बुद्धू या बन्दर समझना एक बड़ा अन्याय है। गम्भीर चेहरा, कुछ आगे निकल आई ठुड्डी, ललाट कुछ पीछे की तरफ झुका हुआ, वे लम्बी उँगलियाँ जो आधुनिक औजार चलाने की आदि नहीं हैं आदि देखकर आधुनिक पाश्चात्य शास्त्रज्ञों ने किया हुआ उन गरीब-अबोल लोगों का मूल्यांकन अयोग्य है। अधिक बारीकी से और समीप से यदि उनका परिचय कोई कर ले तो वह बड़ा भावुक, संगीतप्रेमी और विनोदी स्वभाव का प्रतीत होगा। कई युगों से बेचारा एक द्वीप पर बिछड़ा-पिछड़ा वह व्यक्ति इसलिए घरबार बनाने के चक्कर में नहीं पड़ा, क्योंकि यहाँ सदा ही धूप होती है और घर बनाए बगैर ही इसका सारा जीवन कट जाता है।

भाग्य के उतार-चढ़ाव का ऐतिहासिक सिद्धान्त

कई विद्वान "मू" (Mu), गोंडवन (Atlantis) आदि कई नष्ट भू-खण्डों का और लुप्त सभ्यताओं का उल्लेख करते रहते हैं। हो सकता है कि ऐसी कई सभ्यताएं प्रकट हुई हों और नष्ट होती रही हों। व्यक्तिगत मानवी जीवन में जिस प्रकार बाल, यौवन और वृद्धावस्था होती है, कभी बड़ा अधिकार, सत्ता, धन, सम्पत्ति होती है तो कभी व्यक्ति नगण्य बन जाता है, वैसे ही उतार-चढ़ाव अनेक सभ्यताओं के सम्बन्ध में होना भी क्रम प्राप्त ही समझा जाना चाहिए। जन्म और मृत्यु तथा भाग्य के उतार-चढ़ाव का नियम चराचर विश्व पर लागू है चाहे वह व्यक्ति हो या समूह।

इस सम्बन्ध में ब्रह्मपुराण (१/२/१६१-६३) का वचन देख—

एतेन क्रमयोगेन कल्पमन्वन्तराणि च।
सप्रजातानि व्यतीतानी शतशोऽथ सहस्रशः॥
मन्वन्तरान्ते संहारः संहारान्ते च संभवः॥

इस क्रम के अनुसार हो सकता है कि जो लोग आज पिछड़े और अशिक्षित दिखाई देते हैं वे कभी बड़े प्रगत रहे हों। उसी प्रकार यह भी हो सकता है कि जो भूमि आज सागर के तले चली गई है वहां कभी मानव बस्ती रही हो और आजकल जहाँ मानव बस्ती है वह भूमि कुछ समय पूर्व जलमग्न रही हो।

वर्तमान युग में ईसाई और इस्लामी पंथों का बड़ा बोलवाला है। एक समय आएगा कि वे दोनों नष्ट हो जाएँगे। इस्लामी परम्परा में ही महंमद पैगम्बर द्वारा स्थापित इस्लाम को १४०० वर्ष पूरे होते ही इस्लाम की अधोगति कही गई है। इस अधोगति का आरम्भ हो गया है।

ऑस्ट्रेलिया के माओरी जमात के आदिवासी का चित्र पृष्ठ २३२ पर The Manual of Geography...पृष्ठ ५५ पर और Long Missing Links ग्रन्थ के पृष्ठ १८५ से उद्धृत किया गया है। उसके माथे पर लगा चन्दन का तिलक यह सिद्ध करता है कि यह लोग वैदिक सम्प्रदाय के अनुयायी थे। उसका चेहरा भारत के तमिल लोगों जैसा ही है। इन लोगों की भाषा तमिल से मिलती है। तमिल भाषा वैदिक संस्कृत से मिलती है।

इन मॉओरी आदिवासियों की धारणा है कि किसी खेल में पराजित



होकर बैठा दिया गया व्यक्ति जैसे दूसरे दाँव में फिर बुला लिया जाता है वैसे ही एक जीवन के अन्त में मरा हुआ व्यक्ति दुबारा मानव, पशु या वनस्पति के रूप में जन्म लेता है । यह उनकी धारणा उनके वैदिक अतीत का ही परिचय देती है ।

प्राचीन ग्रन्थालयों का नाश

धरतीकम्प, ज्वालामुखी का विस्फोट, बाढ़, आग, शत्रु का हमला, दीमक, डकैती आदि कई कारणों से समय-समय पर ग्रन्थालय और दस्ता-

वेजों के भण्डार नष्ट होते रहे हैं। अँथेन्स् नगर में पिसिस्ट्रेटस् का बड़ा ग्रन्थालय ईसापूर्व छठीं शताब्दी में जला दिया गया। मेफिस नगर में जगत्पिता के मन्दिर में ताड़पत्रों पर लिखे ग्रन्थों का एक बड़ा संग्रह था वह नष्ट हो गया। सारे विश्व में फैले गुरुकुलों के लिए वैदिक पण्डितों ने अनेक नगरों में विभिन्न विषयों के श्रेष्ठतम ग्रन्थभण्डार बनाए थे। वे वहाँ का वैदिक शासन टूटने के पश्चात् लूट लिए गए। भारत के बनारस, गया, प्रयाग, नालन्दा, अवन्तिका, काँचीपुरम्, मद्रास, रावलपिण्डी, स्थानेश्वर, लाहौर, मक्का, काबुल आदि कई नगरों की तरह समरकन्द, बुखारा, दमस्कस, कैरो, रोम आदि नगरों में भी वैदिक ग्रन्थों के बड़े भण्डार थे। उन प्रदेशों में ईसाई और इस्लामी पंथों का प्रभाव आरम्भ होते ही वे सारे ग्रन्थ जला दिए गए। एशिया माइनर प्रदेश में पेरॅम्मस् नगर में दो लक्ष पोथियाँ थीं, उनका क्या हुआ पता ही नहीं चला। कार्थेज नगर में ईसापूर्व वर्ष १४६ में रोमन आक्रामकों द्वारा लगाई आग में पाँच लक्ष हस्तलिखित ग्रन्थ जलकर राख हो गए। वह आग सत्रह दिन तक जलती रही। जूलियस सीजर ने इजिप्त पर आक्रमण करने पर अलेक्झँड्रिया नगर के सात लक्ष हस्तलिखित ग्रन्थों का भण्डार जला दिया। उस ग्रन्थालय में १२० खण्डों में सैकड़ों लेखकों के नाम और उनकी संक्षिप्त जीवनी अंकित थी। संस्कृत वैदिक शिक्षा का अलेक्झँड्रिया एक विशाल और प्रसिद्ध अन्तरराष्ट्रीय केन्द्र था। वहाँ एक साथ १४००० विद्यार्थी पढ़ा करते थे।

फ्रांस देश के Autun नाम के नगर में Bibractis Druids के गुरुकुल में ताड़पत्रियों पर लिखे हजारों ग्रन्थ थे जो रोमन् सैनिकों ने नष्ट किए।

चीन देश में सम्राट् Tsin-She Hwange की आज्ञा से हजारों हस्तलिखितों ग्रंथों का एक भण्डार आग लगाकर जला डाला गया। उनमें वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थ थे।

तुर्कस्थान के इस्तम्बूल नगर में तीन लक्ष हस्तलिखित ग्रन्थों का भण्डार जलाया गया। उसमें प्राचीन वैदिक संस्कृत साहित्य ओतप्रोत था।

यह तो कुछ चंद गिने-चुने उदाहरण हैं। हजारों वर्षों के सारे विश्व के इतिहास में ऐसे कितने ही मौलिक ग्रन्थालय नष्ट हुए होंगे। वे ग्रन्थालय

जल जाने से अनादिकाल से विश्व में फैली वैदिक संस्कृति का इतिहास जनस्मृति से नष्ट हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। ईसाई और इस्लामी प्रचारकों ने निजी पंथ को विश्व की जनता पर थोपने के लिए प्राचीन वैदिक देवालय, ग्रन्थालय, विद्यालय आदि सारे संस्कृति केन्द्र नष्ट करने की पराकाष्ठा की।

रोम साम्राज्य का इतिहास

एक तुर्की सुल्तान के जनानखाने में एक दिन आग लगी। उस समय जो भगदड़ मची उसमें स्थानीय फ्रेंच दूतावास का एक कर्मचारी था। जो हाथ लगा वह लेकर लोग इधर-उधर भाग रहे थे। आग की लपटों के धुआँ मिश्रित उस भीषण प्रकाश में एक व्यक्ति के हाथ लगे एक बड़े मोटे ग्रन्थ का शीर्षक स्पष्ट दिखाई दिया। वह Titus Livius द्वारा लिखित रोम साम्राज्य का इतिहास था। उन दिनों भी वह इतिहास बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता था। कई लोगों ने उसका केवल नाम ही सुना था किन्तु वे ग्रन्थ को प्राप्त नहीं कर पाए थे। फ्रेंच कर्मचारी ने उस तुर्की मुसलमान से वह ग्रन्थ माँगा। उस मुसलमान ने उसकी बड़ी ऊँची कीमत माँगी। कोई अन्य चारा न होने से उस फ्रेंच कर्मचारी ने वह कीमत देना स्वीकार किया किन्तु उसके पास उतनी रकम नहीं थी, अत: उसने अगले दिन उस तुर्की मुसलमान को मिलना चाहा। किन्तु उस मुसलमान का पता पूछने से पूर्व ही उस अँधेरी रात में और आग की भगदड़ में दोनों एक-दूसरे से बिछुड़ गए और मौलिक इतिहास की एकमेव प्रति देखते-देखते हाथों से निकल गई। हो सकता है कि रोम नगर के राम साम्राज्य के वैदिक परम्परा की बड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारी उसमें थी। Titus Livius नाम स्वयं "दैत्यस् लव ईश" ऐसा वैदिक परम्परा का संस्कृत है।

लगभग १५० वर्ष पूर्व Champollion नाम के एक फ्रेंच व्यक्ति ने Turin नगर के म्यूजियम के भण्डार कक्ष में रखे हुए कुछ फटे-टूटे कागजों के सम्बन्ध में कुतूहलस्वरूप जानना चाहा। उसे उत्तर मिला कि वे तो ऐसे ही रद्दी कागज हैं। तथापि Champollion ने कुछ टुकड़े जोड़कर उनके ऊपर की लिखाई पढ़ी। तब उसे बड़ा आश्चर्य लगा कि वह तो ईजिप्त के

प्राचीन राजाओं की बड़ी उपयुक्त वंशावली थी। विश्व के इतिहास में ऐसी अपार मौलिक सामग्री बार-बार नष्ट होती रही। उसको ध्यान में रखते हुए अन्य अनेक उपलब्ध प्रमाणों की कड़ी तर्क द्वारा जोड़ते रहने का इतिहासकारों का कर्तव्य होता है।

ऊपर कहे उदाहरण से एक विपरीत घटना भी देखिए कि जहाँ मौलिक ऐतिहासिक सामग्री जान-बूझकर नष्ट करा दी गयी। सन् १५४६ में एक ईसाई पादरी Diego de Landa को मेक्सिको देश में ताड़पत्री पर लिखा एक दस्तावेज मिला। उसे रखना बेकार है ऐसा सोचकर उसने वह जला डाला। काफिरों के दस्तावेजों के प्रति उसे बड़ा तिरस्कार था। कुछ वर्ष के पश्चात् उसका मत परिवर्तन हुआ। उसकी पदोन्नति होकर वह अब Bishop कहलाने लगा। वे दस्तावेज जला देने का उसे बड़ा पश्चाताप् हुआ। आगामी पीढ़ियों को उसने अतीत के मौलिक ज्ञान से बिना कारण वंचित किया था। तथापि इस पश्चाताप् का क्या उपयोग ? मौलिक दस्तावेज तो नष्ट हो चुके थे। मुसलमान और कृस्तिओं ने धर्मांधता से किस प्रकार अतीत का इतिहास नष्ट किया इसका यह एक लाक्षणिक उदाहरण है।

इतिहास का अभाव क्यों ?

रामायण, महाभारत, भगवद्गीता, वेद, उपनिषद् आदि ग्रन्थ नष्ट इसलिए नहीं हो सके कि उनकी प्रतियाँ घर-घर में उपलब्ध थीं और वे ग्रन्थ हजारों व्यक्तियों को कण्ठस्थ भी थे। अन्य दस्तावेजों का ऐसा नहीं था। उनकी तो केवल एक-एक, दो-दो प्रतियाँ ही कहीं-कहीं होती थीं। अतः यह अनुमान करना कि प्राचीन वैदिक संस्कृति में लोग केवल धार्मिक साहित्य ही लिखकर रहते थे, किन्तु इतिहास या अन्य शास्त्रीय वाङ्मय नहीं लिखते थे, यह निष्कर्ष निकालना अयोग्य है।

इस प्रकार का नाश समय-समय पर होता रहना अटल दीखता है। जैसे किसी घड़ी को पीछे करके दुबारा वही समय आंका जाता है। वैसे हो सकता है कि विधाता बार-बार सभ्यताएँ नष्ट कर देता है ताकि नई पीढ़ी को ऐसा लगे कि विश्व पर मानवी जीवन अभी-अभी नया-नया ही आरम्भ

हुआ है। ऐसी छिन्न-भिन्न घटनाओं की ऊँच-नीच से इतिहासकारों को बड़ी सावधानी से छोटे-छोटे प्रमाणों की संगति लगाते-लगाते अतीत का धुंधला इतिहास साकार करना पड़ता है।

उदाहरणार्थ २५०० वर्ष पूर्व Democritus नाम के एक ग्रीक खगोल ज्योतिषी ने प्राय: दूरबीन के बिना ही अनुमान लगाया कि आकाशगंगा में असंख्य तारिकाएँ हैं। अठारहवीं शताब्दी में दूरबीन से आकाशगंगा का निरीक्षण करके फर्ग्युसन नाम के आंग्ल शास्त्रज्ञ ने भी वैसा ही निष्कर्ष निकाला। इस उदाहरण से यह प्रतीत होता है कि यन्त्र, औजार आदि जड़ सामग्री से मानवी तर्कशक्ति कहीं अधिक प्रभावशाली है।

प्राचीनकाल से विभिन्न देशों में नष्ट किए ग्रन्थ भण्डारों का ऊपर उद्धृत ब्यौरा Tom Andrews द्वारा लिखित We are not the first नामक ग्रन्थ के पृष्ठ २०, २१ और २२ से लिया गया है। उस ग्रन्थ में लेखक ने स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार की शास्त्रीय प्रगति पर वर्तमान पीढ़ी को गर्व है वैसी ही शास्त्रीय प्रगति या उससे भी अधिक प्रगति के युग अतीत में भी बीत चुके हैं।

जापान का वैदिक अतीत

आजकल किसी भी देश का अधिकृत सरकारी इतिहास ढाई या तीन हजार वर्ष तक ही सीमित रहता है जबकि मानव का इतिहास करोड़ों वर्ष का होना चाहिए। उसी प्रथा के अनुसार जापान देश भी निजी इतिहास केवल २५०० वर्ष का ही बतलाता है। अत: सरकारी स्तर पर जापान का इतिहास पढ़े हुए अन्य देशों के विद्वान भी यह कल्पना कर बैठते हैं कि जब स्वयं जापानी विद्वान और सरकार जापान का इतिहास केवल २५०० वर्ष का बतलाते हैं तो वह गलत कैसे हो सकता है? इसी से हम पाठकों को सावधान करना चाहते हैं कि प्रत्येक देश की सरकार, जो निजी देश का इतिहास कहती रहती है, उसे कभी अधिकृत या प्रामाणिक नहीं मानना चाहिए क्योंकि सरकारी बन्धनों में बँधे विद्वान निष्पक्ष या स्वतन्त्र नहीं होते। भारत का ही उदाहरण लें। ताजमहल शाहजहाँ द्वारा बनाई कब्र नहीं अपितु एक प्राचीन तेजोमहालय शिवमन्दिर है यह हमने पच्चीस वर्षों

से भरपूर प्रमाणों द्वारा सिद्ध कर रखा है तथापि न तो स्वयं भारत सरकार और न ही सरकारी तबके का एक भी भारतीय विद्वान उस सत्य को प्रकट रूप से मानने के लिए तैयार है। पराए देशों के सरकारी विद्वान भी भारत के सरकारी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विभिन्न मत प्रकट करने का कभी साहस नहीं करते। अतः सत्यप्रेमी संशोधक को न तो सरकारी प्रणाली के इतिहास पर कभी विश्वास करना चाहिए और न ही विविध पन्थों और संस्थानों द्वारा प्रस्तुत इतिहास पर ही विश्वास करना चाहिए। प्रत्येक कथन की स्वतन्त्र और निष्पक्ष रूप से जाँच करना आवश्यक होता है।

जापान देश आज भले ही एक स्वतन्त्र बौद्धधर्मी देश कहलाता हो किन्तु कृतयुग से महाभारतीय युद्ध तक वहां भी वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा ही थी। महाभारतीय युद्ध लगभग ५८०० वर्ष पूर्व हुआ था। उस युद्ध में हुए संहार के कारण वैदिक-शासन, वैदिक समाज-पद्धति और गुरुकुल-शिक्षा समाप्त होने के कारण पृथ्वी के अन्य प्रदेशों की तरह जापान भी बिछड़-पिछड़ गया। आंग्ल भूमि जैसे ही जापान की भूमि द्वीप समूह होने के कारण वह रूस, यूरोप, अफ्रीका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि विस्तीर्ण खण्ड प्रदेशों से अलग-थलग पड़ गया। अतः उसमें जनजीवन प्रगत और प्रवाही न रहते हुए टूटा-फूटा-सा ही रह गया। इसी कारण बौद्ध धर्म के सूत्र को पकड़कर ही जापानी लोग निजी इतिहास कुछ कह पाते हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि बौद्ध धर्म अपनाने से पूर्व जापानियों का कोई इतिहास ही नहीं था।

निप्पॉन—जापानी लोग निजी देश को निप्पॉन कहते हैं जो निपुण इस संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है। जापानी भाषा को निहॉनगो कहते हैं जिसका अर्थ है निप्पान की भाषा। 'गो' यह भाववाचक धातु भी संस्कृत ही है।

हिरोहिटो—जापानी सम्राट का नाम हिरोहिटो 'सूर्यसूत' या 'सुरसुत' इन संस्कृत शब्दों का अपभ्रंश है। 'स' का उच्चार कई स्थानों पर 'ह' किया जाता है। वैसा ही यहाँ भी हुआ है। प्राचीन सूर्यवंशी क्षत्रियों की परम्परा के अनुसार जापानी राजकुल भी सूर्य देवता से निजी उद्गम मानता ही है। अतः सूर्यसुत नाम बनता है। सुरसुत का अर्थ है 'देवपुत्र'। वह भी सार्थ ही है।

जापानी सम्राट से प्रथम मन्त्री भी बात करे तो वह सम्राट की आँख से आँख नहीं मिलाता। भूमि पर ही दृष्टि रखते हुए सम्राट के केवल शब्द सुनना यह जापानी शिष्टाचार है। सम्राट सूर्य का अवतार होने से उसके चक्षु का तेज दूसरों को अन्धा कर देगा, अत: सामान्य व्यक्ति को सम्राट की दृष्टि से दृष्टि नहीं मिलानी चाहिए ऐसा जापानी शिष्टाचार है। इस प्रथा का इतिहास में एक बड़ा लाभ यह है कि सम्राट की आज्ञा प्रत्यक्ष परमेश्वर के ही शब्द मानकर उनका उल्लंघन करने की चेष्टा कोई जापानी कभी नहीं करता।

वैवस्वत मनु स्वयं सूर्य पुत्र थे और मनु से ही सारे मानव हुए। इस दृष्टि से जापानी राजकुल की उत्पत्ति सूर्य से माना जाना जापान की वैदिक परम्परा ही सिद्ध करती है।

लिपि—जापानी लोग चीनी लोगों की तरह ऊपर से नीचे चित्रलिपि लिखते हैं, यानी वर्णमाला नहीं होती। प्रत्येक वस्तु के चिह्न होते हैं। अत: चीनी और जापानी लोग जब किसी विदेशी का नाम लिखना चाहते हैं तो उन्हें वे सारे चिह्न लिखने पड़ते हैं जिनके चित्रों का उच्चार उस नाम के सदृश होता हो। इससे बड़ी असुविधा होती है। कई उच्चार ठीक नहीं लिखे जाते थे। कभी घोटाला हो जाता कि जो लिखा है वह कोई नाम है या वस्तुवाचक शब्द है। अत: जापानियों ने वैदिक वर्णमाला के बारहखड़ी से केवल पाँच वर्णों के पाँच-पाँच उच्चार लेकर उन्हें काताकाना वर्णमाला कहा है। उदाहरणार्थ उन्होंने था-थी-थु-थे-थो; सा-सी-सु-से-सो ऐसे पांच अक्षरों से पाँच-पाँच ही रूप लिए हैं। जापानी लोग उन २५ अक्षरों से ही सारे नाम लिखने का काम चला लेते हैं। आवश्यकता पड़ने पर जापानियों को वैदिक वर्णमाला के पाँच उच्चारों का आसरा लेना पड़ा। मूलत: उनकी परम्परा वैदिक होने से ही उन्हें वैदिक वर्णमाला के पाँच-पाँच अक्षर भारत से लेने पड़े।

भाषा—विशिष्ट उच्चारण पद्धति के कारण चीनी और जापानी भाषा भले ही संस्कृत से पूर्णतया भिन्न लगती हो किन्तु उन शब्दों के मूल अर्थों के प्रति ध्यान देने पर वे संस्कृतमूलक ही दिखेंगे। स्यामि भाषा की चर्चा करते समय हमने इस मुद्दे का स्पष्टीकरण किया।

जापानी लोग 'श्री' या 'साहब' के अर्थ में 'सन्' शब्द नाम के अन्त में उसी प्रकार लगाते हैं जैसे भारतीय लोग 'दिवाकरजी' या 'प्रभाकर साहब' कहते हैं। जापानी लोग कहेंगे मिकिमाटो सन् या फूजीवारा सन्। सन् यह सन्त शब्द का अपभ्रंश है। सीधे-सादे, समझदार, दयालु, सरल, विनम्र स्वभाव का द्योतक 'सन्' शब्द होता है जैसे ईसाई लोग सेन्ट डेनिस्, सेन्ट मायकेल या सेन्ट पॅट्रिक कहते हैं।

का ? प्रश्नार्थक अक्षर—जापानी भाषा में प्रश्नार्थक अक्षर 'का ?' होता है। जैसे 'सो देस् का ?' यानी 'ऐसा है क्या ?' यह संस्कृतमूलक ही है। संस्कृत प्रश्नार्थक शब्द 'किम्' है। जैसे 'इत्थं अस्ति किम् ?' यानि 'ऐसा है क्या ?' हिन्दी का प्रश्नार्थक अक्षर है "क्या ?"

ओजी—जापानी लोग दादा को 'ओजी' कहते हैं। मराठी भाषा में दादा के लिए 'आजा' शब्द है। रामचन्द्र जी के दादा (यानी दशरथ के पिता) 'अज' थे। उन्हीं 'अज' से मराठी में 'आजा' और जापानी में 'ओजी' यह दादावाचक शब्द बने हैं। संस्कृत उच्चार जापानी भाषा में विकृत बनने का एक विशिष्ट कारण यह भी है कि संस्कृत में प्रत्येक वर्ण के बारह उच्चार हैं जबकि जापानी भाषा में प्रत्येक वर्ण के केवल पाँच ही उच्चार हैं। अतः 'क' के बजाय जापानी लोग 'कु' उच्चार करते हैं।

उदयमान सूर्य का ध्वज—एक सफेद चौकोर वस्त्र के बीच में एक लाल सूर्य गोल यह जापानी ध्वज की आकृति होती है। वह गोल लाल चिह्न उदयमान सूर्य का प्रतीक है। भारत के सूर्योदय के क्षितिज पर स्थित जापान देश ध्वज पर अरुण सूर्यबिम्ब होना उस देश की वैदिक परम्परा का प्रमाण है।

शिंटोइझम् (Shintoism)—जापानी लोग बौद्ध होते हुए भी बौद्ध धर्म से भी प्राचीन एक शिन्टो आचार-प्रणाली का श्रद्धापूर्ण पालन करते हैं। Shintoism यह 'सिन्धुइझम्' (Sindhuism) यानी सिन्धु-पद्धति उर्फ हिन्दु जीवन-प्रणाली का ही अपभ्रंश है। Sindhu-ism या Hindu-ism आदि शब्दों में जो ism अन्त्यपद है वह 'स्म' इस संस्कृत शब्द का 'इस्म' ऐसा विकृत उच्चार हुआ है।

जापान का बौद्धधर्मी होना ही उसके पूर्ववर्ती हिन्दुत्व का प्रमाण है।

जो जमातें या देश बौद्धधर्मी बने वे तत्पूर्व सारे हिन्दु थे। बौद्ध पहले हिन्दु थे। शाक्यमुनि सिद्धार्थ गौतमबुद्ध एक सीधा-सादा हिन्दु साधु था। उसने न ही कभी हिन्दु धर्म का त्याग किया और न ही कोई दूसरा धर्म स्थापन किया। जन्म से मृत्यु तक सिद्धार्थ हिन्दु ही रहा। किन्तु राजसी जीवन त्यागकर साधु बन जाने पर सिद्धार्थ के त्याग से प्रभावित लोग उसके व्यक्तिगत अनुयायी बन गए। विदेशों में भी जब सिद्धार्थ के अपार त्याग का बोलबाला बढ़ा तो लोग अपने आपको उसके अनुयायी कहने लगे। अत: इतिहास की दृष्टि से पाठकों को यह समझ लेना आवश्यक है कि जो लोग पहले वैदिकधर्मी थे वही आगे चलकर बौद्धपन्थी कहलाए।

टाका कामु नाम के एक जापानी विद्वान ने सन् १९१० के भारत-जापान संघटन संस्थान के जनवरी मास के अंक में एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था What Japan owes to India यानी जापान ने भारत से क्या कुछ लिया? उसी अंक में साधु दायतो शिमाभी नाम के दूसरे जापानी विद्वान का भी लेख है जिसका शीर्षक है India and Japan in Ancient Times यानी प्राचीन समय के भारत और जापान। इन दोनों लेखों में कहा गया है कि प्राचीन युग में कई भारतीय जापान में आते रहे क्योंकि बड़ी मात्रा में भारतीय लोग चीन जाया करते और वहाँ से जापान के प्रति प्रस्थान करते। एक बार चम्पा प्रदेश से होते हुए दो भारतीय पण्डित जापान के ओसाका नगर में दाखिल हुए। वहाँ से वे नारा नाम के नगर में गए। वहाँ उन्हें अन्य एक भारतीय पण्डित मिला। उन तीनों ने जापानियों को संस्कृत की शिक्षा दी। नारा में एक आश्रम और उन लोगों की समाधि अभी तक बनी हुई है और उस पर उन पण्डितों के कार्य की प्रशस्ति अंकित है। जापान के ऐतिहासिक दस्तावेजों में उल्लेख है कि दो भारतीयों ने जुलाई, ७९९ में और सन् ८००के अप्रैल महीने में जापानियों का कपास से परिचय कराया।

ऊपर उल्लिखित व्यक्तियों के पूर्व हजारों भारतीय जापानी द्वीपों में जाते-आते रहते थे। जिनका उल्लेख ऊपर आया है वे तो कुछ आधुनिक काल के भारतीय थे। उनसे कई गुना अधिक भारतीय बौद्धकाल से पूर्व जापान जाते रहे। उनका उल्लेख अब उपलब्ध नहीं क्योंकि विश्व में प्राचीन-

काल के उल्लेख नष्ट होते रहते हैं। जैसे बहुसंख्य व्यक्तियों को उनके पर-दादा का नाम तक अज्ञात रहता है।

'कृष्णवन्तो विश्वं मार्यम' इस आदेश को ध्यान में रखकर भारत के पण्डित और उनके सहायक, विश्व के हर प्रदेशों में जाकर शिक्षा, समाज-सेवा आदि का कार्य अनादिकाल से अविरल करते रहे हैं। उस समय संस्कृत ही विश्वभाषा थी और सर्वत्र वैदिक समाज-व्यवस्था ही थी। भाषा-पंथ आदि के भेद महाभारतीय युद्ध के पश्चात् उत्पन्न होने लगे।

मुसमुशी—कोई जापानी जब दूरभाष द्वारा किसी अन्य व्यक्ति से सम्पर्क करता है तो 'हलो' के बजाय 'मुसमुशी' कहकर दूसरे व्यक्ति को सम्बोधित करता है। संस्कृत "महाशय" या अंग्रेजी "Mr." शब्द का उस 'मुसमुशी' उद्गार में भाव होता है। भारत के बंगाल प्रान्तीय लोग 'महाशय' का उच्चार 'मोशाय' करते हैं। जापान उसी दिशा में और पूर्व की तरफ होने के कारण "मोशाय" का अपभ्रंश जापान में "मुसमुशी" हो गया है।

अन्त्यक्रिया—जापानी लोग वैदिक परम्परा के अनुसार मृतकों का दाह-संस्कार ही करते हैं। मृत व्यक्ति के शव के आगे या उसकी राख और अस्थि आदि अवशेषों के आगे दीप जलाकर, प्रसाद रखकर, घण्टानाद के साथ ॐ के साथ मन्त्रोच्चार करने की जापानी-प्रथा है। मृत व्यक्ति को घर पका हुआ भोजन अर्पणकर उसे विदा किया जाता है।

जापान में नवरात्रि उत्सव—दशहरा के पूर्व के नौ दिन वैदिक परम्परा में नवरात्रि पूजा मनाई जाती है। नवरात्रि से पूर्व का जो कृष्ण पक्ष होता है उसमें सारे मृत-पूर्वजों का श्राद्ध किया जाता है। उस कृष्ण पक्ष में कोई नया या शुभ कार्य प्रारम्भ नहीं किया जाता।

मृतकों के श्राद्ध का वह पखवाड़ा और तत्पश्चात् देवी की नवरात्रि पूजा यह दोनों विधि अनादिकाल से सारे विश्व में मनाई जाती रही हैं।

कृस्ती लोगों में जो All Souls Day कहलाता है वह उसी श्राद्ध के पखवाड़े का एकदिवसीय अवशेष है।

कृस्ती बने हुए प्रदेशों में Mother Goddess यानी अम्बा (चण्डी, भवानी, दुर्गा, पार्वती) की पूजा होती थी। उसी को लॅटिन भाषा में

Mater Dei यानी मातृदेवी इस संस्कृत नाम से ही जाना जाता था। संस्कृत शब्द 'मातर' है।

जापानियों का हीना मातसुरी यह गुड़ियों का उत्सव उस नवरात्रि उत्सव का ही आधुनिक अवशेष है। प्राचीनकाल में भारत जैसा ही वह स्त्रियों का उत्सव होता था किन्तु आधुनिक युग में वह सारे कुटुम्ब का उत्सव बन गया है।

राजा, दरबारी, नौकर-चाकर, पशु-पक्षी आदि की छोटी गुड़ियों जैसी प्रतिमाएँ हर घर में बक्से में रखी हुई होती हैं। वे इस उत्सव के दिनों में निकालकर सोपान की तरह ऊपर से नीचे विविध श्रेणियों में रखकर उनकी एक आकर्षक झाँकी हर घर में बनाई जाती है। उन गुड़ियों को तरह-तरह के आकर्षक रंगीन वस्त्र पहनाए जाते हैं। घर की स्त्रियाँ अच्छी वेशभूषा में उस झाँकी के सम्मुख इष्टमित्रों का स्वागत कर उन्हें तीर्थ प्रसाद देती हैं। भारत में भी नवरात्रि में ऐसी ही झाँकियाँ करके अड़ोसी-पड़ोसी, इष्ट-मित्र, सगे-सम्बन्धी आदि सबका आगत स्वागत किया जाता है।

हनुमान जयन्ती—भारत में हनुमान जयन्ती लगभग अप्रैल के महीने में पड़ती है। जापान में सन् १९८२ में वही उत्सव अप्रैल की ८ तारीख को मनाया गया। भारत में भी उस उत्सव की उस वर्ष में वही तारीख थी। जापानी लोग उस उत्सव को 'हनुमत श्री' का उत्सव कहते हैं। 'हनुमतश्री' उर्फ 'श्री हनुमान' संस्कृत वचन ही है। जापानी-परम्परा में कई नामों के अन्त में सम्मानजनक 'श्री' अक्षर जोड़ा जाता है।

जब हनुमान का उत्सव जापान में मनाया जाता है तो जापान में अवश्य ही रामायण की कथा भी किसी-न-किसी रूप में होनी ही चाहिए। संशोधकों को उसका पता लगाना चाहिए।

जापान की द्वन्द्व-युद्ध पद्धतियाँ—प्राचीनकाल में द्वन्द्वयुद्ध की पद्धति थी। जब दो व्यक्ति मेलजोल से रह नहीं पाते थे और एक-दूसरे से अलग भी शान्ति से रह नहीं पाते थे तो वे एक-दूसरे से व्यक्तिगत लड़ाई करते थे जिसे द्वन्द्वयुद्ध कहा जाता था। इस प्रकार का युद्ध भीम और जरासंध तथा भीम और कीचक में हुआ था, यह हम महाभारत में पढ़ते हैं। इस प्रकार के द्वन्द्व-युद्ध में या यदि अपने पर अचानक कोई हमला करे तो निजी

संरक्षण कैसे करना इस सम्बन्ध में जापान में तीन द्वन्द्व युद्ध पद्धतियों के नाम सुने जाते हैं। वे हैं जुडो (Judo), जुजुत्सु और कराटे। ये तीनों नाम संस्कृत हैं जिनसे पता चलता है कि वैदिक गुरुकुलों में शिष्यों को आत्म-रक्षा का और द्वन्द्व-युद्ध का प्रशिक्षण दिया जाता था।

जुडो (Judo) यह युद्ध का अपभ्रंश है। युद्ध का अपभ्रंश जुद्ध हुआ और जुद्ध का उच्चार जुडो किया जाने लगा।

'जुजुत्सु' यह युयुत्सु शब्द का अपभ्रंश है। संस्कृत शब्द युयत्सु का अर्थ है युद्ध की इच्छा करने वाला। गीता के आरम्भ में ही 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता-युयुत्सवा:' वचन में 'युयुत्सु' शब्द आया है।

'कराटे' शब्द करहस्त का अपभ्रंश है। खाली हाथ व्यक्ति पर एका-एक कोई हमला करे तो वह अपने आपको कैसे बचाए, इस प्रकार के आत्म-रक्षण के प्रशिक्षण को कराटे कहा जाता है।

२२

चीन का वैदिक अतीत

चीन देश का विस्तीर्ण प्रदेश, उसकी विशाल जनसंख्या और चीनी भाषा के टुंग-लिंग-फुंग आदि विशिष्ट प्रकार के उच्चारणों के कारण सामान्य लोगों की ऐसी धारणा रहती है कि चीन की कोई निजी विशिष्ट सभ्यता होगी। अर्वाचीन संशोधन पद्धति में एक बड़ा दोष यह है कि उनमें उल्लिखित धारणा जैसी अन्य अनेक घटनाओं को जाँच-पड़ताल के बिना ही सही मान लिया जाता है। उदाहरणार्थ भारत में आजकल कई विद्वान चीनी भाषा और संस्कृति विषय लेकर कॉलेज से पदवी प्राप्त कर लेने पर भी, चीनी भाषा और संस्कृत में कोई समानता होगी या चीन में कभी वैदिक संस्कृति होगी, इन बातों की कल्पना भी नहीं कर पाते। और तो और चीनी भाषा का संस्कृत से और चीनी जीवन का वैदिक संस्कृति से कोई सम्बन्ध हो ही नहीं सकता ऐसी कॉलेजीय अल्पशिक्षा से उनकी दृढ़ भावना बनने के कारण वे कभी इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का शोध-कार्य करने का विचार भी मन में नहीं लाते।

विश्व के अन्य प्रदेशों की तरह महाभारतीय युद्ध तक चीन में भी वैदिक जीवन-पद्धति और संस्कृत भाषा ही थी। इसी कारण महाभारत आदि प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में चीन का बार-बार उल्लेख होता है।

हिन्दु प्रथा को ही बौद्ध प्रथा नाम प्राप्त हुआ

चीन का बौद्ध-धर्म इसका एक प्रमाण है। बौद्ध-पन्थ वैदिक परम्परा की केवल एक शाखा है। जो देश वैदिक-प्रणाली का जीवन बसर करते थे

वही बौद्ध-पन्थी बने।

प्रचलित धारणा के अनुसार शाक्यमुनि गौतमबुद्ध का काल, ईसापूर्व छठीं शताब्दी समझा जाता है। किन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने संकुचित कल्पनाओं के आधारपर भारतीय इतिहास की प्राचीनता में मनमानी काँट-छाँट की। भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें (Some Blunders of Indian Historical Research) शीर्षक ग्रन्थ में हमने विविध प्रकरणों में उस विषय का विश्लेषण कर यह दर्शाया है कि आद्य शंकराचार्य, चन्द्रगुप्त मौर्य और बुद्ध का काल लगभग १३०० वर्ष पीछे ले जाने की आवश्यकता है।

राजकुल का आराम छोड़कर सिद्धार्थ ने जब घोर तपस्या कर एक भिक्षु का जीवन अपनाया तो तत्कालीन विश्व की जनता इतनी प्रभावित हुई कि अनेक देशों के लोग सिद्धार्थ को बुद्ध कहकर उसकी प्रतिमाएँ पूजने लगे और अपने आपको उसका अनुयायी मानने लगे।

भारत के अनेक राजकुमारों में से एक के भिक्षु बनने पर विश्व के विभिन्न प्रदेश के लोग उसके अनुयायी कहलाने लगे। इससे एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह निकलता है कि उन देशों में सर्वत्र हिन्दु मन्दिर और वैदिक मठ थे। उन मठ और मन्दिरों में जब भिक्षु बने राजकुमार सिद्धार्थ के सर्व-संगपरित्याग की वार्ता पहुँची तो सारे ही गद्‌गद् हो उठे और बुद्ध को नौवाँ अवतार मानने लगे। इससे पाठक यह न समझें कि विश्व के लोगों ने वैदिक धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म अपनाया। शाक्यमुनि गौतमबुद्ध ने कोई धर्म स्थापन किया ही नहीं। बुद्ध स्वयं एक वैदिक भिक्षु था। उसका नाम वैदिक लोगों द्वारा ही आदरणीय माना गया। वैदिक धर्म में जैसे कबीर, तुलसीदास, सूरदास, नरसिंह भगत, एकनाथ, नामदेव, तुकाराम, रामदास, मीराबाई, आद्य शंकराचार्य आदि अनेक सन्त-महात्मा हुए वैसा ही गौतम बुद्ध हुआ। अतः आज जिस-जिस प्रदेश के लोग अपने-आपको बौद्ध कहते हैं वे वास्तव में बुद्ध से प्रभावित हिन्दु, आर्य, वैदिक, सनातनधर्मी ही लोग हैं। अतः जो अध्यापक, प्राध्यापक या पीठाधीश आदि व्यक्ति बौद्ध पन्थ को वैदिक धर्म से अलग मानते हैं या भिन्न बतलाते हैं वे स्वयं भूलकर दूसरों को भी भुला रहे हैं।

गणेश

तथाकथित बौद्धपन्थी बनने पर भी चीनी लोग वैदिक देवताओं का पूजन करते ही रहे। वैदिक धर्म की यही तो विशेषता है कि वैदिक, सनातन, आर्य, हिन्दु धर्म का अनुयायी किसी भी अच्छे गुणी देवता या व्यक्ति का आदर करने के लिए स्वतंत्र होता है। चीनी भाषा की विशिष्ट उच्चार पद्धति के कारण अनेक वैदिक देवताओं के नाम वहाँ बदल गए हैं। चीन में गणेश की पूजा होती रही है किन्तु चीन और जापान में गणेश को कांगिजेन कहते हैं। चीन में शिवजी की पूजा भी होती थी। स्थान-स्थान पर वैदिक देवताओं के अनेक मन्दिर होते थे।

Ideals of the East नामक ग्रन्थ में पृष्ठ ११३ पर, ग्रन्थ लेखक ओकाकुरा ने लिखा है कि "चीन का धर्म और संस्कृति निःसन्देह हिन्दु स्रोत की है। एक समय था कि लोयंग प्रान्त में ही ३००० हिन्दु साधु और दस सहस्त्र भारतीय कुटुम्ब बसे हुए थे जो वैदिक धर्म, संस्कृति और कला को बराबर चला रहे थे।

चीन की लंका

Journal of the Royal Asiatic Society, १९६५, के खण्ड ६ के पृष्ठ ५२५ पर प्रोफेसर G. Phillips का लेख है जिसमें वे कहते हैं कि "भारत और चीन का सागर मार्ग से सम्पर्क बहुत प्राचीन है। ईसापूर्व ६८० में नौकाओं से चीन में पहुँचे भारतीयों ने चीन में लंका नाम की बस्ती स्थापित की जो Kias-Tehoa सागर तट पर बनी थी। वहाँ पहुँचे भारतीयों की नौकाओं के अग्र पर कल्पतरु नाम के ग्रन्थ में दिए वर्णनानुसार विविध पशु या पक्षियों के आकार बने हुए थे। 'युक्ति कल्पतरु' प्राचीन भारतीय शिल्पकला का एक ग्रन्थ है। उसमें वर्णित विविध आकार की प्राचीनकाल की छोटी-बड़ी नौकाएँ कहीं-कहीं पाई गई हैं।"

काउण्ट बिजॉनस्टिअर्ना ने लिखे The Theogony of the Hindus ग्रन्थ के पृष्ठ ८५ पर उल्लेख है कि "यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि चीन का धर्म भारतोद्भव है।"

भारत की कला का चीन पर प्रभाव

अंग्रेजों के शासन में मुम्बई और कलकत्ता के सरकारी कला विद्यालयों के प्राचार्य E. B. Havell नाम के एक अंग्रेज व्यक्ति थे। उन्होंने लिखा है कि ईसवी सन् के आरम्भ के वर्षों में चीन की चित्रकला का स्फूर्तिस्थान भारत ही था। वही चीनी चित्रकला ७वीं से १३वीं शताब्दी तक विश्व में अग्रसर रही। चीन तथा कोरिया द्वारा भारतीय चित्रकला ने जापान में भी प्रभाव डाला।

आर्यतरंगिणी (खण्ड २, पृष्ठ ८) ग्रन्थ में प्रकाशित एक टिप्पणी के अनुसार "रामायण में चीन को 'कोषकार' (रेशम का कोष निर्माण करने वाले) कीड़ों का प्रदेश कहा गया है'। ग्रन्थ लेखक हैं ए० कल्याणरामन्, Asia Publishing House, मुम्बई।

ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी का एक चीनी सिक्का मैसूर में प्राप्त हुआ था। उससे भी पता चलता है कि प्राचीन वैदिक विश्व का चीन भी एक भाग था। चीन और भारत को जोड़ने वाला प्राचीन भूमिमार्ग उत्तर-पथ कहलाता था। वही मार्ग आगे ईरान, एशिया आदि देशों में भी जाता था। पामीर-पठार सप्तसिन्धु प्रदेश का एक भाग था। भारत से पामीर पठार से जाने वाला मार्ग पूर्वी और पश्चिमी तुर्कस्थान और अफगानिस्तान से भारत का सम्बन्ध जोड़ता था। खोतान यह प्रादेशिक नाम गोस्थान इस संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है। फरगाणा नाम का जो रूस देश का भाग है उसका प्राचीन संस्कृत नाम प्रकण्व था। कण्व ऋषि का पुराणों में उल्लेख आता है और रूस ऋषियों का देश रहा है अतः उसमें विविध ऋषियों के नाम से भिन्न-भिन्न प्रदेश प्रसिद्ध हैं।

Auriel Stein नाम के एक संशोधक को तुर्कस्थान और खोतान प्रदेशों में भारतीय शासन के प्रमाण मिले। उनमें कुछ भारतीय सिक्के, कुछ शिलालेख और तीसरी शताब्दी तक उस प्रदेश के शासन में प्रयोग होने वाली एक भारतीय भाषा का भी अन्तर्भाव था। वहाँ के शासकों के नाम भारतीय थे जैसे नन्दसेन और भीम। उनके अधिकार पदों के भी नाम संस्कृत थे। उदाहरणार्थ डाक लाने और ले जाने वाले को लेखहारक कहा जाता था। इसी का अपभ्रंश आंग्ल भाषा में Clerk बना। सन्देशवाहक को

दूत कहा जाता। गुप्त बातों का पता लगाने वाले को "चर" कहा जाता। उत्तर पामीर, तिब्बत आदि सारे प्रदेशों में सर्वत्र वैदिक संस्कृति ही थी।

Gobi Desert नाम का जो मरुस्थल है उसकी सीमा पर कुचिअन और खोतानी लोग रहते हैं। यद्यपि पंजाब और उत्तर के उन प्रदेशों में सहस्त्र मीलों का अन्तर है फिर भी उन प्रदेशों में भी वही वैदिक संस्कृति होती थी जो पंजाब में थी।

चीन के सीमावर्ती विविध प्रदेशों में इस प्रकार वैदिक सभ्यता ही होने के कारण चीन में भी वही सभ्यता थी। वैदिक संस्कृति का इतिहास प्रलय के पश्चात् मनु द्वारा पुनः मानवी संस्कृति का आरम्भ बतलाता है। चीनी परम्परा भी उसी प्रकार प्रलय से इतिहास आरम्भ करती है।

प्रलय और मनु

चीन के एक प्रसिद्ध और प्रमुख प्राचीन इतिहासकार का नाम है Su Mo Chien। उनका काल ईसापूर्व वर्ष १४६ का बताया जाता है। उनके नाम से जो "सु" अक्षर आरम्भ में जुड़ा है वह "श्री" का अपभ्रंश हो सकता है। वे लिखते हैं कि चीन के मध्य भाग में जो दलदल का प्रदेश था वह किसी Yu The Great नाम के पौराणिक व्यक्ति ने उसका जल सोखकर उसे साफ-सुथरा बनाया। वह "यु" वास्तव में "मनु" नाम का अपभ्रंश है। इस प्रकार चीनी इतिहास प्रलय और मनु से ही आरम्भ होता है। "यू" नाम "मनु" शब्द का ही टुकड़ा है इसमें कोई सन्देह नहीं रहता। जब उस नाम का सम्बन्ध प्रलय से और दलदली प्रदेश को ठीक कराने से जुड़ा हुआ हम देखते हैं। अरबी लोग मनु नाम को केवल "नु" ही लिखते हैं। अतः चीन की विशिष्ट और विचित्र उच्चार शैली में "नु" का "यु" हो जाना असम्भव नहीं।

चीन का सिंह वंश

वैदिक क्षत्रियों के नाम का अत्यप्रद प्रायः "सिंह" हो गया जैसे नारायण सिंह या रामसिंह। चीन में भी प्राचीन समय में वैसे ही नाम होते थे। प्रचलित धारणाओं के अनुसार चीनी सभ्यता का इतिहास ईसापूर्व वर्ष १५०० के Shang (यानि सिंह) घराने के शासन से आरम्भ होता है।

किन्तु उस समय के धातु पात्र आदि इतने अच्छे बने हुए हैं कि उसके पूर्व भी चीन देश का इतिहास बड़ा लम्बा होना चाहिए ऐसा अनुमान निकलता है। भारत में जैसा सिंह शब्द का उच्चार "सिंग" किया जाता है उसी प्रकार चीन में उसका उच्चार "शांग" किया जाना असम्भव नहीं। वैदिक संस्कृति से महाभारतीय युद्ध के पश्चात् सैंकड़ों वर्ष चीन का सम्बन्ध टूटा रहने से चीनी लोगों को चित्रलिपि अंगीकार करनी पड़ी। यदि चीन की संस्कृत गुरुकुल परम्परा में खण्ड नहीं पड़ता तो वहाँ भी संस्कृत का और ब्राह्मी या देवनागरी लिपी का लोप नहीं होता।

शांग वंश Tang नाम के किसी व्यक्ति ने स्थापपित किया। उस Tang ने Hsia वंश का अन्त किया। उस वंश में १७ या १८ राजा हुए। उन्होंने ईसापूर्व वर्ष २२०५ से ईसापूर्व वर्ष १७६५ तक शासन किया। ईसापूर्व २२०५ में यदि ईसवी सन् के १९८७ वर्ष मिला दिए जाएँ तो वही लगभग ५००० वर्ष बनते हैं। यानि किसी भी प्रदेश का इतिहास देखो तो वह लगभग ५००० या ५५०० वर्ष का ही प्राप्त होता है। पृथ्वी के किसी भी प्रदेश का इतिहास देखें वह आज से ५००० से ५५०० वर्ष पूर्व से ही एकाएक आरम्भ होता है। लगभग ५००० या ५५०० वर्ष पूर्व कौन-सा ऐसा परदा या दीवार है जिसके पीछे विविध प्रदेशों के इतिहास की भिन्नता समाप्त हो जाती है? इतिहास की वह सीमा है महाभारतीय युद्ध। वह युद्ध होने तक अनादिकाल से सारे भू-मण्डल पर वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा का ही अमल था। उस युद्ध से एक संध वैदिक संस्कृति टूटी, खण्ड राज्य निर्माण हुए और उनके इतिहासों ने भिन्न-भिन्न मोड़ लिए।

चीन का ईक्ष्वाकु कुल

चीन के प्राचीनतम वंश का नाम जो ऊपर Hsia कहा गया है वह ईक्ष्वाकु नाम का चीनी अपभ्रंश है। वैदिक परम्परा में ईक्ष्वाकु राजकुल बड़ा प्रसिद्ध रहा है।

Dr. Li Chi नाम के एक चीनी इतिहासज्ञ की शोधों से भी हमारे निष्कर्ष की पुष्टि होती है। भारत के मोहनजोदड़ो में पाए गए मिट्टी के बर्तन और मैसोपोटामिया में पाए गए बर्तन और चीन में मिले उस समय के

बर्तन एक जैसे हैं। जब उनकी सभ्यता एक जैसी होगी तभी बर्तन भी समान होंगे। यह भी विश्वव्यापी वैदिक संस्कृति का एक प्रमाण है।

Sir L. Wooley और Arnold Toynbee इन दोनों आंग्ल लेखकों के अनुसार कहीं से एक बनी बनायी सभ्यता चीन को प्राप्त हुई। उनका अनुमान सही है। वह सभ्यता थी भारत की वैदिक सभ्यता जिसमें संस्कृत भाषा और उसकी पारम्परिक लिपियों का अंतर्भाव था। ज्योतिषशास्त्र का चीनी लोगों में ज्ञान, ग्रहण के सम्बन्ध में उनके ठीक निष्कर्ष, गृह शान्ति के लिए किए जाने वाले यज्ञ, चीनी दर्शनशास्त्र और उनकी समाजव्यवस्था आदि की तफसील से की गई जाँच से चीनी लोगों की सभ्यता भी वेदमूलक ही थी, यह बात स्पष्ट हो जाती है। अन्य एक प्रमाण यह है कि अनादि काल से चीनी यात्री, छात्र, पंडित आदि भारत से शिक्षा और हर प्रकार का मार्गदर्शन पाने के लिए बार-बार भारत आते रहे हैं।

Taoism यानि Devaism

चीनी दार्शनिक Lao Tse ने अद्वैत मत का प्रतिपादन किया। उसके उस दर्शन को Taoism कहा जाता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि देश-विदेश के विद्वान Taoism को चीन देश का एक विशिष्ट दर्शन मानकर चल रहे हैं जबकि टाओइझम् केवल Deva-ism का अपभ्रंश है। संस्कृत देव शब्द का ही विकृत चीनी उच्चार Tao किया जाता है। सारे विश्व में इतिहास-दर्शनशास्त्र आदि की शिक्षा कितने अन्धाधुन्ध, अनाड़ी और अंधी पद्धति से चल रही है इसका यह एक मोटा उदाहरण है।

एक ओर चीनी लोग मार्गदर्शन, प्रशिक्षण, विद्या आदि के लिए भारत आए और दूसरी तरफ भारतीय पंडित, शिक्षक, वैद्य, शास्त्रज्ञ, शासक, कारीगर, शिल्पकार, समाजसेवक आदि चीन जाकर वहाँ के समाज की सेवा करते थे। यह तभी हो सकता था जब वहाँ वैदिक संस्कृति होती।

चीनी वैदिक ऋषि कन्फूशिअस्

योग, वैदिक जीवन प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। कन्फूशियस् नाम का प्रसिद्ध चीनी नीतिज्ञ ईसापूर्व सन् ५०० के लगभग था। वह योग मुद्रा में ध्यानमग्न रहा करता था। चीनी समाज का मार्गदर्शन करने के

उद्देश्य से उसने योगध्यान का त्याग किया ऐसा उसकी जीवनी में उल्लेख है। कन्फूशियस् लगभग सिद्धार्थ गौतमबुद्ध का ही समकालीन था। अत: कन्फूशियस् के समय चीनी लोग बौद्धपंथी नहीं बने थे। यदि कन्फूशियस् बौद्ध नहीं था और योगमुद्रा में ध्यान लगाता था तो वह वैदिक ऋषि के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता था? कन्फूशियस् की चीनी परम्परा में इसी कारण असीम मान्यता है कि वह एक श्रेष्ठ समाजसेवी वैदिक ऋषि एवं योगी था।

उत्तर भारत के राजा कनिष्क ने यूरोप के रोम से सुदूरपूर्व के चीन देश तक सब देशों से भारत के दृढ़ सम्बन्ध कायम रखे थे। उन सम्बन्धों को इतिहासकारों ने ठीक प्रकार आंका नहीं। दूसरे देशों से व्यापार करना या दूसरे देशों में अपने वकील या प्रतिनिधि रखना कोई बड़ी बात नहीं, यह तो सभी देश करते हैं। वे सम्बन्ध थे वैदिक-संस्कृत परम्परा के। अत: उनमें पूर्ण भ्रातृभाव और एकात्मकता थी। ऐसे भ्रातृभाव के वे घनिष्ठ वैदिक सम्बन्ध महाभारतीय युद्ध के पश्चात् दिन-प्रतिदिन विरल होते-होते टूटते रहे।

ईसाई सन् के पहले शतक में कश्मीर में जो पहला बौद्ध महासम्मेलन हुआ था उसके प्रस्तावानुसार महाविभाषा नाम का ग्रन्थ प्रकाशित किया गया। उसकी मूल संस्कृत प्रति भारत में हुए इस्लामी हमलों में नष्ट हो गई किन्तु उसका चीनी अनुवाद सुरक्षित है।

ईसाई सन् के पहले शतक में चीन में सेवाकार्यार्थ गए तीन भारतीयों के नाम चीनी इतिहास ग्रन्थों में अंकित हैं। वे विद्वान शास्त्री थे—कश्यप, मिलंगी और धर्मरत्न।

तोखारिस्थान उर्फ चीनी तुर्कस्थान की राजधानी थी—कुच नगरी। कुमारजीव वहाँ का राजकुमार था। अनेक विद्वान शिक्षक, शास्त्रियों के सहित कुमारजीव सन् ४१२ ईसवी में चीन में जाकर रहा था। सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री हुएन्त्संग के समय में भी कुच नगरी संस्कृत विद्या का एक बड़ा केन्द्र थी। पड़ोस के खोतान प्रदेश में भी आठवीं शताब्दी तक संस्कृत का प्रचार भरपूर था। मध्य एशिया में अनेक संस्कृत हस्त-लिखित ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। एक गुफा में तो Sir Aurielstein को हजारों

संस्कृत दस्तावेजों का एक पूरा भण्डार मिला। उन दस्तावेजों में तथा गुफा की दीवारों पर जो चित्र थे उन पर ब्राह्मी लिपी अंकित थी। वह उल्लेख आर्यतरंगिणी ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में पृष्ठ १८ पर दी गई एक टिप्पणी में है।

खोतान, तुर्कस्थान, अफगानिस्तान अदि शब्दों का अंत्यपद "स्थान" यह संस्कृत शब्द सिद्ध करता है कि प्राचीन विश्व में शासन की भाषा संस्कृत रही है। उसी प्रकार अस्त्रालय (ऑस्ट्रेलिया), अस्त्रीय (ऑस्ट्रिया) रशिया (ऋषीय), प्रशिया (प्रऋषीय), शिबिरीय (सायबेरिया) आदि नाम भी संस्कृत ही हैं।

ऊपर उल्लिखित गुफा भी प्राचीन वैदिक संस्कृति का एक महत्वपूर्ण चिह्न है। विश्व के सभी प्रदेशों में ऐसी गुफाएं पहाड़ियों में या भूमि के अन्दर पाई जाती हैं। उनमें वैदिक गुरुकुल होते थे। विश्व भर की ऐसी गुफाओं की एक सूची बनानी आवश्यक है।

दूसरी मोटी बात जो इतिहास-प्रेमी व्यक्तियों को ध्यान में रखनी आवश्यक है वह यह है कि बुखारा, समरकन्द, अलेक्झेंड्रिया, जेरूसलेम, बगदाद, दमस्कस, मास्को, पेरिस, रोम, लण्डन, एडिनबरो आदि नगरों में भी वैदिक शासन में संस्कृत के विद्याकेन्द्र होते थे। व्यापार आदि तो गौण बातें थीं। संस्कृत वैदिक शासन और समाज-पद्धति के अन्तर्गत ही भारत सारे विश्व को विविध प्रकार की सामग्री भेजता रहता था।

मार्कोपोलो के मन्दिरों के उल्लेख

Marcopolo नाम के एक इतालवी व्यक्ति का मूल नाम था महर्षि पाल। Maharshi Pala शब्द का ही यूरोपीय अपभ्रंश मार्कोपोलो हुआ है। वह वेनिस नगर का निवासी था। उसने सैकड़ों वर्ष पूर्व चीन तक का प्रवास किया था। उसके द्वारा लिखा उस प्रवास का वर्णन उपलब्ध है। Sir Henry Yule ने उसका आंग्ल अनुवाद कर स्थान-स्थान पर टिप्पणियाँ देकर उस ग्रन्थ को प्रकाशित किया। उस खण्ड १ में पृष्ठ ७६ पर दी गई टिप्पणी में कटन् नगर स्थित एक चीनी देवालय का वर्णन है। उस मन्दिर में पाँच-सौ देव मूर्तियाँ थीं। उस मन्दिर का फोटो भी पृष्ठ ८२ के सामने

के पृष्ठ पर छपा है। वैदिक संस्कृति में ३३ करोड़ देवी-देवताओं का उल्लेख है। एक वैदिक चिह्न भी उस फोटो में देखा जा सकता है वह है उन देवताओं के अष्टकोने चबूतरे।

फ्रांस देश के Louvere Museum में चीन देश के फोकियान प्रांत में पाया शांग राजकुल के शासनकाल का एक अगरबत्ती पात्र प्रदर्शित है। उसका आकार भी अष्टकोना है।

उसी ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में पृष्ठ ११ पर छपी टिप्पणी में लिखा है— "चीनी लोगों में निजी पूर्वजों का श्राद्ध करने की प्रथा थी। शिष्य गुरुजनों की पाद-पूजा करते थे। किसान लोग प्रथम पीढ़ी के किसान का पूज्यभाव से स्मरण करते थे। रेशम का वस्त्र बुनने वाले लोग अपने मूल पुरुष को श्रद्धाभाव से पूजते थे। यदि देश पर कोई आपत्ति आ पड़े तो उनके सच्छील नेतागण विश्व देवों की प्रार्थना किया करते। जिस जुजू नगर में लगभग २००० लोग रहते हैं उसमें विविध प्रकार के ५८ मन्दिर हैं। उनमें वायु, मेघ, मेघों की गड़गड़ाहट, वर्षा आदि की देव-प्रतिमाएँ हैं और रेशमी वस्त्र बुनने वालों का देव, हयग्रीव, टिड्डियों का देवता, आठ अन्य विध्वंसक कीटकों पर नियंत्रण रखने वाला देव, पंचनाग देवता और वरुण आदि की प्रतिभाएँ हैं। इनके अतिरिक्त अनेक प्राचीन प्रसिद्ध व्यक्ति और कुछ आधुनिक शूरवीरों की स्मृति में भी मन्दिर बने हुए हैं।

पूर्वजों को श्रद्धाभाव से स्मरण करना और चराचर विश्व पर प्रभु का नियंत्रण मानना यह सारे वैदिक संस्कृति के लक्षण चीन की प्राचीन सभ्यता में दिखाई देते हैं।

चीन के कियांग-हान प्रान्त में सूजू उर्फ सूचाऊ नाम का एक नगर है। मार्कोपोलो के ग्रन्थ में द्वितीय खण्ड में पृष्ठ १८३ पर उल्लेख है कि "सुजू एक बड़ा और अच्छा नगर है। यहाँ के निवासी देवमूर्तियों का पूजन करते हैं। कन्फूशिअस मन्दिर में उस नगर का संगमरमर पर खुदा नक्शा प्रदर्शित है।

इसी सम्बन्ध में दी टिप्पणी में लिखा है कि सू चाऊ नगर के दक्षिणी भाग में उद्यान है। उसके चारों तरफ ऊँचा कोट है। चारदीवारी के अंदर कन्फूशियस् का मन्दिर भी है। वह मन्दिर ही नाग का शीर्ष है। उस मंदिर

से आरम्भ होने वाला उत्तर दिशा को सीधा जाने वाला रास्ता नाग का दीर्घ शरीर कहलाता है। रास्ते के अन्त में बना एक बड़ा मन्दिर उस नाग के पुच्छ के गुच्छ का प्रतीक माना जाता है। मन्दिर के अग्रभाग में ऊँचे-ऊँचे Cader के वृक्ष लगे हुए हैं। उस मन्दिर में एक बड़ा कक्ष है जिसमें नगरनिवासी वसन्त और शरद पर्व पर पूजन करते हैं। पड़ोस की एक इमारत में पशुहनन होता है। दूसरे एक भवन में संगमरमर पर खुदी उस नगर की आकृति प्रदर्शित है। तीसरे भवन में पंचाग, ज्योतिषीय सामग्री आदि रखी गई है। चौथे भवन में प्रांतिक ग्रन्थालय है। आंगन के दोनों ओर जो कक्ष हैं उनमें पाँच सौ ऋषियों के नाम प्रस्तर पर अंकित हैं। मुख्य मन्दिर की चौड़ाई-लम्बाई ५० × ७० फुट है। उसमें कन्फूशियस् के नाम की एक शिला है और अनेक सुनहरे रंग के लकड़ी के फट्टों पर विविध सुभाषित अंकित हैं। अगले चबूतरे पर छत के नीचे पशुयज्ञों की व्यवस्था है। वहां पुरोहितों द्वारा यज्ञ होता है। उसके अग्र में जो प्रवेश द्वार है उस पर प्राचीन और वर्तमान नीतितत्वों का ज्ञाता ऐसी कन्फूशिअस् की प्रशस्ति लिखी हुई है।

ऊपर उल्लिखित पाँच सौ ऋषि और प्राचीनकाल से चले आए नीति-तत्त्व आदि का ब्यौरा दर्शाता है कि चीन में वैदिक सभ्यता ही थी।

चीनी लोगों में फूत्कार करने वाला एक बड़ा सर्प उनका सांस्कृतिक चिह्न माना गया है। जिस अनन्त शेष पर भगवान विष्णु लेटे हुए वैदिक संस्कृति में बताए जाते हैं, वही सर्प चीन का सांस्कृतिक चिह्न बन गया है। सर्प को देवतास्वरूप मानने की प्रथा विश्व के लगभग सभी देशों में है। इसका ब्यौरा इस ग्रन्थ में समय-समय पर दिया गया है।

नगर रचना और भवन-निर्माण शास्त्र

विविध चीनी नगरों का जो वर्णन मार्कोपोलो ने लिख रखा है उससे प्रतीत होता है कि वैदिक शास्त्रों के अनुसार ही चीनी नगर और इमारतें बनाई जाती थीं। यह तभी हो सकता है जब वहाँ वह वैदिक शास्त्र सिखाए भी जाते हों और उनके अनुसार ही नगर और इमारतें बनती हों।

मार्कोपोलो ने लिखा है (मार्कोपोलो का प्रवास, खण्ड २, पृष्ठ १८६-

८८) "किन्से नगर एक तरह से जलाशय के मध्य में ही बना है। उसके चारों ओर पानी है। इस नगर के दस्तावेजों में लिखा है कि नगर में १२ प्रकार के कारीगर रहते थे और प्रत्येक वर्ग के कारीगरों के १२ सहस्त्र मकान थे। प्रत्येक घर में लगभग १२ व्यक्ति होते थे। किन्तु कई घरों में २० या ४० तक भी व्यक्ति रहते थे। वहाँ के राजा की आज्ञा थी कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पिता का व्यवसाय चालू रखे (पिता के व्यवसाय को त्याग कर दूसरा कोई काम-धन्धा आरम्भ करना अयोग्य और दण्डनीय समझा जाता था) चाहे उसके पास एक लाख बेझंटस् (रुपयों) की पूंजी ही क्यों न हो। नगर के मध्य में एक सरोवर है जिसका घेरा ३० मील का है। उसके तट पर बड़े सुन्दर (और विशाल) प्रासाद, महल, हवेलियाँ आदि हैं जिनमें नगर के रईस लोग निवास करते हैं। सरोवर के किनारे पर अनेक देवमन्दिर और धार्मिक सभागृह आदि भी बने हैं। सरोवर के मध्य में दो द्वीप हैं। प्रत्येक द्वीप पर राजमहल कहलाने योग्य बड़े विशाल और मनोहारी भवन बने हैं। दिन में यदि राजनिरीक्षकों को कोई निर्धन या अपंग व्यक्ति दिखे, जो कोई काम करने में असमर्थ है, तो वह उसे सरकारी रुग्णालयों में या अन्य छत्रों में ले जाते जहाँ ऐसे व्यक्तियों की देखभाल के लिए प्राचीन समय से सम्राटों ने धनकोष की व्यवस्था कर रखी है।"

ऊपर वर्णित सारी व्यवस्था पूर्णतया वैदिक पद्धति की है। प्राचीन नगर, सरोवर या नदियों के किनारे ही बनाए जाते थे। लोहार, चमार, ब्राह्मण, क्षत्रिय, बढ़ई, सुवर्णकार आदि विविध व्यवसाय के लोगों के लिए नगरों के विशिष्ट विभाग निश्चित किए जाते थे। इस विभाजन में जात-पाँत या छूत-अछूत की भावना नहीं थी। बड़ी सोच समझ से वह व्यवस्था समाज के हित में की गई थी। कल्पना कीजिए कि यदि किसी को कुछ सोने के गहने खरीदने हैं या तैयार करवाने हैं तो उसे सारे स्वर्णकार एक ही विभाग में मिल जाते थे। सारे शहर में भटकना नहीं पड़ता था। सारे इकट्ठे एक विभाग में होने से वस्तु के भाव या दर पर भी नियंत्रण रहता था। कच्चा माल पहुँचाने वाले या तैयार माल ले जाने वालों को भी एक विशिष्ट विभाग में ही जाना पड़ता था। किसी बिरादरी में पर्व व्रत, उत्सव, धर्मकार्य या विवाह आदि हों तो जाति के सारे लोगों का सहाय्य भी प्राप्त होता रहता और

सभी सुविधापूर्वक उसमें सम्मिलित हो सकते थे। इससे समय भी बच जाता और वाहन खर्च नहीं पड़ता। एक जाति का माल लाने ले-जाने वाले वाहन से नगर के अन्य विभागों को असुविधा नहीं होती क्योंकि वे वाहन सीधे एक विशिष्ट विभाग में जाते और वहीं से लौट जाते। सारे नगर को उस यातायात से धूल उड़ना, कर्कश ध्वनि होना आदि असुविधाएं भुगतनी नहीं पड़तीं। किसी व्यवसाय का कोई नया व्यक्ति किसी नगर में आए तो उसे सारे जातिबांधव इकट्ठे एक विभाग में मिल जाते जिससे उसका भाषण सुनना, उसका मार्गदर्शन प्राप्त करना या उसे आवश्यक सहायता पहुँचाना आदि बातों की सुविधा होती। एक व्यवस्था के लोग एक विभाग में इकट्ठे होने से बेकार व्यक्ति को काम दिलवाना या उस जमात के प्रवीण लोगों से मार्गदर्शन प्राप्त करना सुलभ होता था।

एक-एक घर में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या १२, २०, ४० आदि होती थी जिससे अनुमान यह निकलता है कि प्राचीन समय में चीनी लोगों में भी वैदिक अविभक्त कुटुम्ब पद्धति होती थी जिसके अन्तर्गत भाई, भतीजे, भांजे आदि सभी इकट्ठे रहते थे।

प्रत्येक कुटुम्ब को निजी परम्परागत व्यवसाय ही करना पड़ता था। यह भी एक बड़ी दूरदर्शी योजना थी जिससे समाज में व्यावसायिक संतुलन बना रहता था। लोभी वृत्ति से निर्माण होने वाली आर्थिक होड़ या खींचा-तानी से समाज सुरक्षित रहता था क्योंकि एक ऐरे-गैरे या पराए व्यक्ति को एकाएक किसी दूसरे व्यवसाय में चंचु प्रवेश करने का अधिकार नहीं था।

निजी प्रवास वर्णन के दूसरे खण्ड के पृष्ठ २०३ पर मार्कोपोलो ने लिखा है कि "वैद्य लोग' ज्योतिषी आदि अन्य विभागों में रहते थे। शिक्षा देने का काम भी वही करते थे। प्रत्येक चौराहे पर आमने-सामने दो हवेलियाँ होती थीं जिनमें न्यायदान की व्यवस्था होती थी।"

फलज्योतिष

प्राचीनकाल में फलज्योतिष का विश्व में बड़ा प्रसार था। यद्यपि इस्लाम धर्म पुनर्जन्म, कर्मसिद्धान्त, विधिलिखित आदि को मान्यता नहीं देता तथापि तैमूरलंग, बाबर आदि अनेक इस्लामी आक्रामकों द्वारा

तवारीखों में अनुकूल ग्रहयोग देखकर ही हमला आदि करने के निर्णय लिए जाते थे ऐसे बार-बार विपुल उल्लेख उनकी तवारीख़ों में हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मुसलमान बने हुए लोग पूर्वकाल में वैदिक परम्परा के अनुयायी थे।

उसी प्रकार चीन के लोगों में निरन्तर फलज्योतिष का बड़ा प्रभाव रहा है। मार्कोपोलो ने खण्ड २, पृष्ठ १९१ पर लिखा है कि "इस (चीन) देश में किसी शिशु का जन्म होते ही उसका जन्मसमय, तारीख और राशि लिखी जाती है। प्रवास को निकलते समय भी ज्योतिषियों से योग्य मुहूर्त पूछा जाता था। यहां के ज्योतिषी बड़े प्रवीण हैं और उनकी कही बातें अधिकतर सच निकलती थीं।" सारे दैनन्दिन व्यवहार पंचांग देखकर ज्योतिषीय आधार पर करना वैदिक संस्कृति का एक प्रमुख लक्षण है।

दाह-संस्कार

चीनी लोग मृत व्यक्ति को भूमि में गाड़ते हैं ऐसी सामान्य लोगों की कल्पना है किन्तु मार्कोपोलो ने लिखा है (खण्ड २, पृष्ठ १९१) "कोई मृत होने पर चीनी लोग उसका दाह-संस्कार करते हैं। इष्ट मित्र आदि शोक मनाते हुए सादे (खद्दर आदि) वस्त्र पहनकर भजन गाते हुए और बाजा बजाते हुए शवयात्रा में सम्मिलित होते हैं। यह सारी वैदिक प्रथा है।

उसी खण्ड २ के पृष्ठ २०४-५ पर मार्कोपोलो ने लिखा है कि "इस नगर के निवासी बड़े शान्तिप्रिय हैं। उनके राजा की उन्हें शिक्षा भी वैसी ही है और स्वयं राजा का व्यवहार भी वैसा ही शान्तिप्रिय है। एक विभाग में रहने वाले स्त्री-पुरुषों का मेल-जोल देखकर किसी पराए को ऐसा लगता है कि जैसे वे सारे एक ही कुटुम्ब के सदस्य हों। स्त्रियों के प्रति संशय या असूया आदि भी दिखाई नहीं देती। स्त्रियों का सारे ही बड़ा सम्मान करते हैं। यदि कोई स्त्रियों से अश्लील बर्ताव करे तो उसे बड़ा अपराधी या समाजकंटक माना जाता है। विदेशियों का यह लोग बड़ा सत्कार करते हैं और उन्हें सारी सुविधाएँ प्रदान कर सब प्रकार का सहाय्य और मार्ग-दर्शन भी देते हैं।" यह भी प्राचीन चीन की वैदिक सभ्यता का बड़ा प्रमाण है।

खण्ड २ में पृष्ठ २१२ पर मार्कोपोलो के प्रवास वर्णन में एक पत्थर के स्तम्भ का चित्र दिया है। उस स्तम्भ के ऊपर कमल चिह्न खुदे हुए हैं जो वैदिक संस्कृति का प्रतीक होता है। उसे Chwang यानी छत्रस्तम्भ कहते हैं। इससे प्रतीत यह होता है कि संस्कृत "छत्र" शब्द का ही चीनी उच्चार "चवांग" है। इस उदाहरण से देखा जा सकता है कि चीनी शब्दों के उच्चारण में संस्कृत शब्द कैसे लुप्त-गुप्त हो गए हैं।

ब्रह्मा का मन्दिर

मार्कोपोलो के ग्रन्थ के खण्ड २ में पृष्ठ २१२ के सामने वाले पृष्ठ पर Hang Chau नगर का नक्शा है। शहर की सीमा के अन्दर ब्रह्मा का मन्दिर उस नक्शे में बताया गया है। इस्लामी हमलों में वह मन्दिर कभी का नष्ट हो चुका है किन्तु उस मन्दिर के स्मारक के रूप में वहाँ दो प्रस्तर स्तंम्भ खड़े किए गए हैं जिन पर कुछ बौद्ध शिलालेख हैं। वे स्तम्भ छठी शताब्दी के होने से चीन के प्राचीनतम अवशेषों में उनकी गणना होती है।

ब्रह्मा का मन्दिर चीन में बनाया जाना सिद्ध करता है कि चीनी लोग वैदिक सभ्यता के ही अनुयायी थे। विष्णु की नाभि से ब्रह्मा कमलासन पर प्रकट हुए इसी कारण नष्ट मन्दिर के स्थान पर जो स्मारक स्तम्भ है उस पर कमल के चिह्न ऊपर से नीचे तक अंकित किए गए हैं।

अष्ट का महत्त्व

खण्ड २ के पृष्ठ ३४७ पर मार्कोपोलो के प्रवासग्रन्थ में उल्लेख है कि "पीकिंग नगर में जो धवल मन्दिर है उसके चारों ओर १०८ दीप स्तम्भ हैं। गौतम बुद्ध के जन्म पर १०९ ब्राह्मणों को नवशिशु का भविष्य कथन करने के लिए निमन्त्रित किया गया था। परशुराम ने मलाबार में १०८ मन्दिर बनवाए। भारत में १०८ तीर्थस्थान हैं। उपनिषद् भी १०८ हैं। चीनी Traid समाज के नियमों के अनुसार कुछ अपराधों पर अपराधी को १०८ मुक्के मारने का दण्ड कहा गया है। अथीनियन लोगों के अनुसार पेनिलोप नाम की सुन्दरी से १०८ पुरुष विवाह करना चाहते थे।"

वैदिक संस्कृति में ही १०८, १००८ आदि आँकड़ों का महत्त्व है। अष्ट दिशा, अष्ट दिक्पाल, अष्टावधानी मनुष्य, अष्ट दिशा निदर्शक

स्वस्तिक चिह्न, अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव, आशीर्वाद, १०८ बार जप, स्वामी श्री १०८, सद्गुरु श्री श्री १००८, योग की आठ सिद्धियाँ, अष्ट-धातु का कलश, अष्टलोह, अष्टमंगल, मंगलाष्टक, साष्टांग नमस्कार, काव्य और नृत्य की अष्टपदी, अष्टांग आयुर्वेद, पाणिनी की अष्टाध्यायी इत्यादि। इसके अतिरिक्त वैदिक संस्कृति में ८ की दुगुनी, तिगुनी संख्या का भी बड़ा महत्व है। जैसे १६ शृंगार या सूर्य की किरण चित्र में २४ बतलाए गए हैं।

चीन में संस्कृत का शिलालेख

चीन में अनगिनत संस्कृत शिलालेख होंगे किन्तु उनकी बाबत बाहर के लोगों को कोई जानकारी नहीं है। समय-समय पर कई संस्कृत शिलालेख नष्ट भी होते रहे हैं। ऐसे ही चीन के एक संस्कृत शिलालेख का उल्लेख मार्कोपोलो के ग्रन्थ के खण्ड १ में पृष्ठ २३ पर एक टिप्पणी में आया है। टिप्पणी कहती है कि, "पीकिंग नगर के उत्तर में ४० मील दूरी पर Kenyung Kwan ग्राम है। जिला Chin ii तहसील Chang Ping है। पीकिंग से Kalgan के मार्ग पर वह ग्राम है। वहाँ Nankau की गली के पार एक कमानी नगरद्वार बना हुआ है। उसका चित्र इस खण्ड के अन्त में उद्धृत है। उस पर सन् १३४५ के दो बड़े शिलालेख छह भाषाओं में अंकित हैं। वे भाषाएं हैं—संस्कृत, तिब्बती, मंगोली, बाष्पहा, उधूर, चीनी और एक अज्ञात भाषा। Wylie ने उन शिलालेखों को प्रकाशित किया था, किन्तु Prince Roland Bonaparte के Recueil des Documents de L'epoque Mongol नाम के ग्रन्थ में दिए उन शिलालेखों के उद्धरण अधिक स्पष्ट हैं।

मंगोल शासकों के पश्चात् चीन में मिंग राजकुल का शासन आरम्भ हुआ। उस राजकुल के इतिहास में सन् १४०७ के उल्लेख के अनुसार विदेशों से व्यवहार करने के लिए शासन ने जो विभाग स्थापन किया उसमें जो भाषाएं सिखाने का प्रबन्ध था उनमें Ninche, मंगोल, तिब्बती, संस्कृत, बोखारन्, उलूघर, ब्राह्मी और सयामि भाषाओं का अन्तर्भाव था। (खण्ड १ पृष्ठ २९ पर की टिप्पणी में उपरोक्त जानकारी दी है।—)

उन उल्लेखों से पता चलता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी में भी संस्कृत अन्तरराष्ट्रीय व्यवहार की एक भाषा थी। उससे पीछे के समय में अन्तरराष्ट्रीय व्यवहार में संस्कृत का अधिकाधिक प्रयोग होता रहा और महाभारत से पूर्व तो संस्कृत विश्व की एकमेव भाषा थी। महाभारतीय युद्ध के पश्चात् संस्कृत का अन्तरराष्ट्रीय व्यवहार शनैः शनैः कम होता गया।

अतीत में चीन सर्वदा ही भारत से सामाजिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक, शासकीय, धार्मिक, साहित्यिक आदि मार्गदर्शन प्राप्त करता रहा। उस समय भारत की विद्वद् भाषा संस्कृत ही थी। अतः अतीत में चीनी विद्वान बड़ी संख्या में संस्कृत पढ़ते ही होंगे। क्योंकि भारत के सारे ग्रन्थ और सारी पढ़ाई, सारे शास्त्र आदि संस्कृत में ही होते थे। ऐसे-ऐसे महत्त्वपूर्ण तर्क और प्रमाणों के प्रति आज तक के इतिहासकारों ने ध्यान नहीं दिया, यह प्रचलित संशोधन-पद्धति का एक भारी दोष है। चीन ने अपने आपको दूसरे देशों से आधुनिक काल में अलग-सा रखा है और विशिष्ट उच्चार-पद्धति से उसकी भाषा भी अलग-सी लगती है, अतः आजकल के विद्वान कल्पना कर बैठते हैं कि विश्व के आरम्भ से चीन ऐसा सबसे पूर्णतया भिन्न और पृथक् ही रहा होगा।

यह भी जानना आवश्यक है कि चीन का बौद्धपंथी होना भी उसके प्राचीन हिन्दुत्व का उर्फ वैदिक संस्कृति का एक ठोस प्रमाण है। जहाँ-जहाँ हिन्दू मठ थे वहीं शाक्यमुनि गौतमबुद्ध की प्रशस्ति सुनाई दी। सिद्धार्थ गौतम बुद्ध उसके युग का एक बड़ा ख्यातनाम हिन्दु था। अतः विश्व भर में जहाँ-जहाँ भी हिन्दु आर्य, सनातन, वैदिक धर्मपीठ थे वहाँ बुद्ध के नाम से ही वैदिक धर्म के नीतिनियम् आदि प्रवचन में सुनाए जाने लगे। वैदिक धर्म के सारे तत्त्व "बुद्ध उवाच" ऐसा कहकर दोहराए जाने लगे। जहाँ-तहाँ अधिकारी व्यक्ति के रूप में बुद्ध का उल्लेख होने लगा। इसके कारण भारत के बाहर लोगों की ऐसी धारणा बन गई कि जैसे बुद्ध ने अपनी तपस्या से कुछ नए तत्त्व ही ढूंढकर एक नया धर्म चलाया। यह सार्वजनिक व्यापक भूल है। आजकल के अध्यापक, धर्मप्रचारक आदि भी बुद्ध को एक नये धर्म के प्रवर्तक के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो सर्वथा असत्य और निरा-

धार है। लोगों को वास्तव में यह समझना चाहिए कि बुद्ध एक सर्वसंग-परित्यागी हिन्दु तपस्वी था।

वसंतोत्सव

भारत में वसन्त पंचमी का बड़ा महत्त्व है। पतंग उड़ाना, पीले कपड़े पहनना, बड़े-बड़े वृक्षों पर झूला लटकाकर झूला-झूलना, रास-क्रीड़ा करना आदि वसन्त पंचमी पर आनन्द-ही-आनन्द मनाने की प्रथा चीनी लोगों की भी है। सन् १९८७ की ३० जनवरी को चीन में वसन्त पंचमी मनाई गई जबकि भारतीय पंचाग के अनुसार वह तीन दिन पश्चात् यानी २ फरवरी को मनाई गई। वसन्त पंचमी के पर्व पर चीनी लोग सगे-सम्बन्धी, आप्त-इष्ट आदि को मिलने जाते हैं तो रेल आदि वाहनों में बड़ी भीड़ होती है। अतः अधिकारीवर्ग को उस पर्व पर वाहनों का विशेष प्रबन्ध करना पड़ता है। यह वसन्तोत्सव चीन में वैदिक परम्परा का एक ठोस प्रमाण है।

चीनी ज्ञानकोश सम्पादक का वक्तव्य

चीन का ज्ञानकोश सम्पादन करने वाले प्राध्यापक Huang Xin Chuang का कहना है कि "चीन के राजकुलों की वेदों पर बड़ी श्रद्धा थी। लगभग सारे ही राजघराने वेदों का चीनी भाषा में अनुवाद करा लेते थे। योग और आयुर्वेद के संस्कृत ग्रन्थों का भी चीनी भाषा में अनुवाद हुआ है। उन अनुवादों में पतंजलि का योगशास्त्र तथा चरक और सुश्रुत की आयुर्वेदिक संहिताओं का भी अन्तर्भाव था। लगभग ऐसे पाँच सहस्त्र प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद चीनी भाषा में उपलब्ध हैं। भारत में उपलब्ध हस्तलिखितों से भी कई चीनी अनुवाद अधिक प्राचीन हैं।

चीन में वैदिक देवताओं की प्रतिमाएँ

दक्षिण चीन में सागरतट पर क्वानझाऊ (Quanzhou) नाम का नगर है। वहाँ उत्खनन में शिव, विष्णु आदि वैदिक देवताओं की मूर्तियाँ तथा दीवारों पर खुदे अनेक चित्र पाए गए हैं। उस स्थान में स्थित एक प्राचीन खण्डहर में कृष्ण, हनुमान, लक्ष्मी, गरुड़ आदि की मूर्तियाँ या दीवार पर बनी चित्रकारी प्राप्त हुई है। यह सारी सामग्री स्थानीय Museum of

Overseas Communications में प्रदर्शित है।

यह पुरातत्वीय उत्खनन सन् १९३४ में उस समय प्रारम्भ हुआ जब किसी को लगभग चार फुट ऊँची एक विष्णुमूर्ति जनजिआँचोअंग (Janjiachoang) नाम के स्थान पर दबी हुई अचानक दिखाई पड़ी। वह मूर्ति उसी शैली की थी जैसी भारत में होती हैं।

नरसिंह अवतार की तो वहाँ विविध प्रकार की ७१ मूर्तियाँ प्राप्त हुईं। गजेन्द्रमोक्ष आदि विष्णु पुराण की कथाएँ भी वहाँ चित्रित हैं। कैलाश पर्वत पर त्रिशूलधारी, योगमुद्रा में बैठे शिव और पार्वती भी वहाँ दिग्दर्शित हैं। उनके आगे नदी, हाथी और कुछ अन्य प्राणी नतमस्तक बताए गए हैं। वे मूर्तियाँ युवान् (Yuan) राजघराने के शासनकाल में बनीं, ऐसा अनुमान है। उस राजकुल का अन्त होने पर जो गृहयुद्ध छिड़ा उसमें वह देवस्थान भग्न हुआ।

वहाँ के वस्तुसंग्रहालय (museum) के अधिकारी Dr. Yang Qin-Zhang के अनुसार वहाँ का एक मन्दिर भारत-स्थित मदुराई के मीनाक्षी मन्दिर की शैली का बना हुआ है।

क्वानझौ (Quanzhow) में दीवारों पर उत्कीर्ण चित्र में कुबेर के दो पुत्र, सात कन्याओं के साथ जलक्रीड़ा करते समय कालिया नाग द्वारा सताए गए तब भगवान कृष्ण उन्हें कालिया नाग से बचाकर यमुना में कालिया का दमन करते हैं, यह दृश्य दिखाया गया है। वैसे ही दूसरे एक चित्र में कृष्ण और गरुड़ का युद्ध भी दिग्दर्शित है।

उन्हीं खण्डहरों में प्रस्तर के बने एक द्वार पर हनुमान की आकृति बनी है। अतः हो सकता है कि वह प्राचीन, स्थानीय राम मन्दिर का ही द्वार हो।

सुनहरे गरुड़ की वहाँ बहुत सारी आकृतियाँ बनी हुई हैं। उनमें से एक में गरुड़ पर आरूढ़ विष्णु गजेन्द्र को बचाने निकल पड़े हैं, ऐसा बताया गया है।

२३

कोरिया और मंचूरिया का वैदिक अतीत

अन्य देशों की तरह कोरिया भी निजी नाम का संस्कृत उद्गम भूल गया है क्योंकि संस्कृत स्रोत से कोरिया देश दीर्घ अवधि से बिछड़ा रहा है। सुरीय यानी Syria जैसा ही कोरीय (उर्फ कोरिया) का अन्त्यपद "ईय" संस्कृत है।

गौरीय देश

कोरिया की बाबत दूसरी एक बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि उस प्रदेश में संस्कृत "ग" का उच्चार "क" हो गया है। जैसे संस्कृत "गौ" के बजाय अँग्रेज "क" कहते हैं, उसी प्रकार "गौरीय" नाम का उच्चार कौरीय उर्फ कोरिया रूढ़ हुआ।

गौरी एक वैदिक देवी हैं। वह शिवजी की पत्नी हैं। उस गौरी को जगत्माता के रूप में सारे विश्व में पूजा जाता था। कोरिया प्रदेश की वह देवी होने से गौरी को पूजने वाला वह देश "गौरीय" उर्फ कोरिया प्रदेश कहलाया।

मंजुश्रीय

इसी प्रकार मंचूरिया देश का नाम भी दूसरी एक वैदिक देवी मंजुश्री के नाम से मंजुश्रीय पड़ा। "मंजुश्रीय" शब्द का ही आधुनिक अपभ्रंश मंचुश्रीय उर्फ मंचूरिया हुआ।

छेद चिकित्सा

अँक्युपंक्चर द्वारा रोगों का इलाज आजकल कई स्थानों पर किया

जाता है। इसमें विशिष्ट नाड़ियों के समीप त्वचा में बारीक छिद्र कर उनमें लम्बी सुइयाँ कुछ समय तक खड़ी कर दी जाती हैं। इस चिकित्सा पद्धति को वर्तमान बोलचाल में चीनी ॲक्युपंक्चर यानी चीनी छेद चिकित्सा-पद्धति कहते हैं। किसी भारतीय को भारत सरकार ने सरकारी खर्च पर उस चिकित्सा-पद्धति का प्रशिक्षण लेने के लिए कोरिया भेजा तो प्रशिक्षण के प्रथम दिन ही कोरियन् शिक्षकों ने उससे कहा कि वह विद्या मूलत: भारत की देन है। अब देखिए इतिहास में कैसी उलट-पुलट होती है। जो विद्या भारत ने सारे विश्व को सिखलाई उसी को सीखने भारतीयों को विदेश जाना पड़ रहा है। दूसरी विडम्बना यह है कि उस चिकित्सा-पद्धति को चीनी चिकित्सा-पद्धति कहा जा रहा है, जबकि वह भारतीय है।

छेद चिकित्सा-पद्धति भारत की ही है इसका एक ठोस प्रमाण यह है कि बालक का जन्म होते ही १२वें दिन सुनार को बुलाकर नव शिशु के कान छेदे जाते हैं। कान में दो-चार स्थानों पर छेद करके सोने की तार डाल दी जाती है। कन्या का जन्म हुआ हो तो उसकी नाक भी छेदी जाती है। कर्मठ स्त्रियाँ तथा पेशवा आदि धनी अधिकारी व्यक्ति छेद हुए कानों में सोने और मोतियों के भारी जेवर पहनते थे। कई विधवा या अन्य बुजुर्ग स्त्रियों के कानों के छिद्र गहनों के भार से लम्बे और बड़े हो जाते हैं। ऐसी स्त्रियाँ वृद्धावस्था में भी घर का सारा काम दिन-भर बड़े उत्साह और मेहनत से करती दिखाई देती हैं। कहते हैं कि उन्हें वह शक्ति उस छिद्र चिकित्सा और सुवर्ण के संसर्ग से प्राप्त होती है। कान छेदने से हार्निया रोग से भी कुछ बचाव होता है ऐसा सुनने में आया है। गर्भ में बालक जैसा हाथ-पैर सिमटकर अर्द्धगोलाकार बना दीखता है वैसा ही कानों का आकार होता है। अत: मानव शरीर के कई मर्मस्थान कानों में पाए गए हैं। छिद्र चिकित्सा द्वारा उन पर नियन्त्रण करने से व्यक्ति स्वस्थ एवं कार्यक्षम रहने में सहाय्य होता है। अत: भारतीय वैद्यों द्वारा उस लुप्त-गुप्त छिद्र चिकित्सा-पद्धति का आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में सन्दर्भ ढूंढकर आधुनिक विश्व को उस पद्धति का पूरा ब्योरा उपलब्ध कराना आवश्यक है।

इतिहास से ऐसी कई बातें सीखी जा सकती हैं। किसी देश के गौरव

की लुप्त बातें इतिहास से ही जानी जाती हैं। जैसे भारत का स्थापत्य शास्त्र (यानी नगर और भवन-निर्माण कला), भारत का आयुर्वेद, छेद चिकित्सापद्धति, योग, प्राणायाम आदि कई बेजोड़ बातें हैं। किन्तु इस्लामी हमलों के छह सौ वर्षों के आतंक ने और दो सौ वर्षों के आंग्ल शासन ने भारतीय लोगों का आत्मविश्वास और आत्मगौरव ही नष्ट कर दिया। भारतीय हिन्दु लोग अपने-आपको हर प्रकार नगण्य, हीन और निकम्मे मानने लगे। अतः सही इतिहास की सही शिक्षा से वह आत्म-विश्वास जागृत कराकर भारतीयों को उनके प्राचीन और परम्परागत ज्ञान भण्डार टटोलने को प्रवृत्त कराना आवश्यक है।

प्रभाव

विश्व के विविध प्रदेशों में पाया जाने वाला संस्कृत और वैदिक संस्कृति का जो ब्यौरा हम दे रहे हैं उस प्रकार के प्रमाणों को इतिहासज्ञ और अन्य विद्वान केवल यह कहकर टाल देते रहे हैं कि किसी तरह भारत का कुछ प्रभाव दूसरे देशों पर पड़ा होगा। वह प्रभाव क्यों, कब, कैसे और कितनी मात्रा में पड़ा इसका संशोधन करने के झंझट में वे कभी पड़ते ही नहीं।

वे कभी इस बात का विचार नहीं करते कि आज भी भारत और अन्य प्रदेश ज्यों-के-त्यों बने हुए हैं ही तो फिर आज भारत का अन्य देशों पर 'प्रभाव" क्यों नहीं पड़ता?

वे यह भी समझते हैं कि एक देश का "प्रभाव" दूसरे देश पर तभी पड़ता है जब उन प्रदेशों के शासन की बागडोर किसी अन्य देश के हाथ में होती है। भारत में जब इस्लामी राज्य था तो भारत पर इस्लाम का प्रभाव यानि दबाव पड़ा। इसी प्रकार भारत पर जब अंग्रेजों का राज्य कायम हुआ तब भारत पर अंग्रेजी रहन-सहन और विचार-प्रणाली का प्रभाव उर्फ दबाव पड़ा। इन उदाहरणों से हमें यह जानना चाहिए कि वैदिक संस्कृति का शासन अतीत में सारे विश्व पर होने के कारण ही सर्वत्र वैदिक-संस्कृति के सर्वांगीण प्रमाण दिखाई देते हैं। भेद केवल इतना ही है कि मुसलमान आक्रामक या अंग्रेज आदि पाश्चात्य देश, इन्होंने जैसे सैनिक

शक्ति से निजी शासन दूसरे देशों पर थोपा वैसा वैदिक संस्कृति को कभी करना नहीं पड़ा। क्योंकि आरम्भ से ही वैदिक संस्कृति मानवजाति को दैवी विरासत में प्राप्त हुई। वह सारे विश्व की आद्यतम और सार्वजनिक संस्कृति महाभारतीय युद्ध तक अखण्ड और अभंग रही। तत्पश्चात् धीरे-धीरे अन्य प्रदेशों में क्रुस्ती और इस्लामी आक्रमणों से वह नष्टप्राय:-सी हो गई। किन्तु भारत में वह संस्कृति टिकी रही। अत: भारत के प्रवास से वैदिक संस्कृति का विश्व में प्रसार हुआ यह निष्कर्ष ठीक नहीं। उससे ठीक उल्टा निष्कर्ष सही होगा कि विश्व के आरम्भ से विश्व-भर में छायी हुई वैदिक संस्कृति भारत में अभी तक विद्यमान है जबकि वह अन्य प्रदेशों से गुम हो गई है।

कोरिया के सूर्यवंशी राजा

पहली शताब्दी के एक कोरियाई राजा का नाम किम सुरो (Kim Suro) था। 'सुरो' यह सूर्य शब्द है। किम् यह सिंह का अपभ्रंश है। राजाओं को सूर्यवंशी कहना या समझना वैदिक प्रथा है।

भारतीय राजकुल से विवाह-सम्बन्ध

उस समय अयोध्या में जो सूर्यवंशी हिन्दु राजा राज्य करता था उसकी कन्या से किम् सुरो का विवाह हुआ था। इससे सिद्ध होता है कि कोरिया का राजकुल भी वैदिकधर्मी, आर्य, सनातनी हिन्दु था। कोरिया के इतिहास में लिखा है कि "ई० स० ४९ में अयोध्या की राज्यकन्या ईश्वरीय आज्ञा के अनुसार नौका से सागर पार कर कोरिया में दाखिल हुई। जिस वैदिक क्षत्रीय कोरियाई राजा से उस भारतीय राजकुमारी का विवाह हुआ वह राजा नौ फुट लम्बा था।"

कोरिया की राजधानी गया

उस समय 'गया' नगर कोरिया की राजधानी थी। उसका उच्चार कोरियन् लोग 'कया' करते थे क्योंकि संस्कृत 'ग' का उच्चार कई अन्य भाषाओं में 'क' किया जाता है।

भारत में गया नगर एक प्रसिद्ध और पवित्र तीर्थ-क्षेत्र है। विष्णु के

तीन पवित्र चरणों में से एक वहाँ प्रस्थापित है। इससे अनुमान यह निकलता है कि कोरिया की राजधानी गया उर्फ कया इस कारण कही गई कि वहाँ भी भगवान विष्णु का प्रसिद्ध देवालय अवश्य रहा होगा। वैदिक-प्रथा के अनुसार प्रत्येक राजा विष्णु का ही प्रतिनिधि माना जाता है।

कोरिया पर अधिकार रखने वाला सूर्यवंशी किम् (सिंह) राजकुल बड़ा प्रभावी था। सातवीं शताब्दी के जापानी दरबार में कोरिया के कई सेनानी और दरबारी अधिकारी पदों पर नियुक्त थे। यह एक प्रमाण है कि जापानी दरबार की प्रथा भी वैदिक ही थी।

वैदिक क्षत्रियों के राजकुल आपस में बेटी-व्यवहार रखते थे। उस प्रथा के अनुसार अनादिकाल से देश-विदेश के अनेक राजकुल आपस में विवाह-सम्बन्ध से बँधे थे। भारत-कोरिया-जापान के आपस में ऐसे ही सम्बन्ध थे।

बौद्ध-पंथ

ई० स० ३७२ में कोरिया ने बौद्ध-पंथी होने की घोषणा की ऐसा कहा जाता है। इससे कई विद्वान ऐसी कल्पना कर बैठते हैं कि भारत कोरिया के सांस्कृतिक और धार्मिक सम्बन्ध तभी से आरम्भ हुए होंगे। अतः तत्पूर्व भारत और कोरिया के राजकुलों के विवाह सम्बन्धों की या "गया" नाम की बात जब वे विद्वान सुनते हैं तो उन्हें अचम्भा-सा लगता है। इस गुत्थी को वह सुलझा नहीं सकते। किन्तु इस समस्या का उत्तर बड़ा सरल है। बौद्ध पंथ कोई अलग प्रणाली थोड़े ही थी। वह तो हिन्दु वैदिक संस्कृति का ही एक नया आविष्कार या संस्करण था। विश्व में सर्वत्र प्रथम वैदिक हिन्दू प्रणाली ही थी। कालान्तर में कुछ लोग अपने-आपको बौद्ध, ईसाई या इस्लामी मानकर वैदिक प्रणाली से अलग मानने लगे। वे सारे पंथ वैदिक धर्म की ही शाखाएँ हैं।

चेरपु

कोरिया में चेरपु नाम का एक प्राचीन नगर है जिसमें वैदिक देवी भगवती का मन्दिर था। सारे विश्व में ही इस मातृ-देवी के मन्दिर होते

थे। अतः सारे प्राचीन देशों के इतिहास विश्वव्यापी वैदिक संस्कृति के इतिहास के भाग ही माने जाने चाहिएँ।

पॅगोडा

फ्रेंच, अंग्रेजी आदि यूरोपीय भाषाओं में मन्दिर को पगोडा (Pagoda) कहते हैं। एक सिक्के को भी पगोडी (Pagodi) कहा जाता था। वह भगवती का अपभ्रंश पगवदी उर्फ पगोडी बना। भगवद् का ही विकृत उच्चार 'पगवद्' होकर उससे पगोडा शब्द बना। अतः भगवान और भगवती से हुए पगोडा और पगोडी शब्द भी इस बात के प्रमाण हैं कि प्राचीनकाल में सारे प्रदेशों में वैदिक संस्कृति होने से भगवान और भगवती के मन्दिर सर्वत्र होते थे।

दिशाओं के पालक देवता

वैदिक संस्कृति में आठ दिशाएँ कही गई हैं। उनके नाम हैं—उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, ईशान्य, आग्नेय, नैऋत्य और वायव्य। इन दिशाओं के पालक हैं कुबेर, इन्द्र, यम, वरुण, इशानू, अग्नि, राक्षस और वायु। कोरिया में वैदिक संस्कृति होने के कारण उस देश में उन आठों देवताओं के चित्र, मूर्तियाँ इत्यादि बनती थीं और लोग उन्हें प्रणाम करते थे। उनमें से कुछ देवता लंदन नगर के ब्रिटिश म्यूजियम में प्रदर्शित हैं। उन्हें वैदिक परम्परा में अष्टदिक्पाल यानी आठों दिशाओं के पालक कहा जाता है। उनमें एक मूर्ति का कोरियन नाम है Wen जो वैश्रवण शब्द का संक्षिप्त रूप है। कुबेर का एक नाम वैश्रवण भी है। वह उत्तर दिशा का लोकपाल है। वह प्रतिमा सन् १५३६ की बनी होने का अनुमान है।

दूसरी प्रतिमा का कोरियाई नाम चीनी तरह के उच्चारण के कारण Tseng Chang कहा जाता है। किन्तु उसका मूल संस्कृत नाम विरुद्धक भी दिया हुआ है। वह यम का नाम है जो दक्षिण दिशा का स्वामी है। विरुद्धक और Tseng Chang में कितना अन्तर है। भाषा शास्त्रज्ञों को पता लगाना चाहिए कि विरुद्धक नाम Tseng Chang में कैसे बदला। ब्रिटिश म्यूजियम में प्रदर्शित वह प्रतिमा भी सन् १५३६ की बताई जाती

है। इससे यह साबित होता है कि सन् १५३६ तक तो कोरियाई प्रदेश में वैदिक देवताओं के प्रति पूज्यभाव टिका हुआ था।

उच्चारों की तोड़-मरोड़

ऊपर कहे उदाहरण से इतिहासज्ञ और अन्य विद्वान देख सकते हैं कि चीनी लोग, कृस्ती लोग, यहूदी लोग, अरबी मुसलमान आदि ने किस तरह वैदिक संस्कृति की तोड़-मरोड़ और खींचातानी कर उसे विश्व के इतिहास से जानबूझकर या नासमझी से नामशेष करने का यत्न किया।

२४

पश्चिम एशिया का वैदिक अतीत

अफगानिस्तान से सऊदी अरब स्थान तक के लगभग सारे ही देश हाल में इस्लामी बना दिए गए हैं और उनकी प्राचीन वैदिक संस्कृति नामशेष कर दी गई है। तब भी उस संस्कृति के अवशेषरूपी प्रमाण ढूंढकर सम्मिलित रूप में उन्हें आगामी पीढ़ियों के ज्ञान हेतु प्रस्तुत करने में इतिहासकार का शोध-कौशल्य परखा जाता है। जैसे किसी का वध करके उस अपराध के सारे चिह्न मिटा देने की अपराधी द्वारा पराकाष्ठा करने पर भी चाणाक्ष-व्यक्ति या पुलिस अधिकारी खूनी का पता लगा ही लेते हैं, सच्चे इतिहासकार का कर्त्तव्य वैसा ही होता है।

इतिहासकार का दायित्व थोड़ा जटिल और कठिन होता है। क्योंकि उथल-पुथल, लूट-पाट, युद्ध, कालप्रवाह से अपने-आप विस्मृति में लीन होने वाला इतिहास और क्रुस्ती, इस्लामी आदि विरोधी जमातियों द्वारा जान-बूझकर नष्ट या विकृत किया जाने वाला इतिहास, ऐसे कई संकटों से अतीत की लुप्त बातों का इतिहास[illegible]को पता लगाना पड़ता है। अतः इतिहासकारों का अष्टावधानी होना आवश्यक है। इस दृष्टि से हमें इस्लामी बनाए गए पश्चिम एशियाई देशों की वैदिक संस्कृति का पता लगाना है।

अफगानिस्थान, बिलोचिस्थान, धरुचिस्थान, काबुलिस्थान, काफिरस्थान, कझाकस्थान, उझबेकिस्थान, अर्बस्थान, तुर्कस्थान (यानि तुरगस्थान) आदि नाम देखें। सिन्धुस्थान, हिन्दुस्थान आदि जैसे ही वे नाम होने के कारण वे सारे अतीत के वैदिक संस्कृति के दिए हुए नाम हैं यह ज्ञात हो जाना चाहिए।

इंग्लैण्ड का साम्राज्य जब अमेरिका से आस्ट्रेलिया तक फैला था तब उसके शैली के आइसलैण्ड, ग्रीनलैण्ड, बासुटोलैण्ड, बुकानालैण्ड, थाइलैण्ड, नागालैण्ड आदि नामों की प्रथा पड़ी। उसी प्रकार जब वैदिक क्षत्रियों का शासन रहा तब 'स्थान-स्थान' आदि नाम दिए गए। इस सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि स्थान शब्द का ही आगे चलकर 'लैण्ड' अपभ्रंश हुआ।

अब इराक और ईरान नाम देखें। दोनों संस्कृत 'इर' धातु के शब्द हैं। इरावती, प्रेरणा आदि शब्द उसी 'इर' धातु से बने हैं। इरण का अर्थ है जलहीन वीरान प्रदेश। रण उसे कहते हैं जहाँ थोड़ा पानी हो जैसे कच्छ का रण।

इरान-इराक की सीमा पर Mosul प्रदेश है जो नाम संस्कृत 'मूसल' शब्द से पड़ा। मूसल से ही यूरोपीय विस्फोट अस्त्र को "मिसाइल" (Missile) कहते हैं। महाभारतीय युद्ध के पश्चात् ऐसे जो मूसल, विस्फोट हुए बगैर इधर-उधर पड़े थे उनसे यादव युवकों द्वारा छेड़छाड़ करते ही बड़ा विस्फोट हुआ। उससे बड़ा आतंक मचा और यादवों को द्वारिका छोड़नी पड़ी। वे जाकर ईरान-इराक की सीमा पर बसे। वहाँ बस जाने के कारण मूसल से हताहत लोगों की उस बस्ती का "मूसल" ही नाम पड़ा। महाभारत के मौसलपर्व में इस घटना का वर्णन है।

मुसलमान शब्द की व्युत्पत्ति

मूसल से हताहत और निष्काषित होकर जो शरणार्थी इराक-ईरान प्रदेश में जा बसे वे मूसलमानव कहलाए। आगे चलकर इन्हीं लोगों को छल-बल से महंमदपन्थी बनाया गया। अतः मुसलमान शब्द महंमदपन्थी का द्योतक बन गया। किन्तु हमारे संशोधन के अनुसार मूलतः मुसलमान शब्द महंमदपन्थियों पर लागू नहीं था। मुसलमान शब्द तो मूसल से हताहत होकर शरणार्थी बने हुए लोगों का द्योतक था।

मन्दिरों की कब्रें, मस्जिदें बनीं

ईरान-इराक आदि पश्चिम एशियाई देशों में जो-जो प्राचीन बड़ी और प्रेक्षणीय इमारतें हैं वे लगभग सारी मस्जिदें और कब्रें कही जाने के कारण इस्लामी समझी जाती हैं। यह इतिहास की भारी भूल है। वे सारी

इमारतें मन्दिर या महल थीं। इस्लामी हमलावरों ने उन पर कब्जा कर उन इमारतों को मस्जिद या मकबरा घोषित किया। काफिरों से जीता हुआ सारा माल इस्लाम में हलाल समझा जाने की प्रथा के कारण वैदिक क्षत्रियों के महल, मन्दिर आदि जीतकर उन्हें इस्लाम की मस्जिदें और मकबरे कहा गया। किसी मुसलमान सुल्तान या बादशाह के नाम वे इमारतें बनाए जाने की धौंसें भी कुछ पीढ़ियों के बाद मुसलमान लेखकों ने तवारीखों में लिखना आरम्भ किया।

इसी प्रकार मुसलमानों ने अन्य जमातों की स्त्रियों का अपहरण कर उनसे इस्लामी सन्तति निर्माण करी।

बगदाद भगवद्नगर है

दमस्कस, बगदाद, बुखारा, समरकन्द, इस्तम्बूल आदि नगर इस्लाम निर्मित समझना इतिहासकारों की भूल है। गत ७०० या १००० वर्षों में जिस परिस्थिति या पंथ से जनसाधारण परिचित होते हैं वह परिस्थिति या पथ विश्व के आरम्भ से ही अस्तित्व में हैं ऐसी कल्पना सामान्यजन कर लेते हैं। इतिहासकार कहलाने वाले भी उसी सामान्य प्रवृत्ति के शिकार होते हैं।

बगदाद यह भगवद् शब्द का अपभ्रंश है। Syria यानि सुर प्रदेश, जेरूसलेम यानि यदुईशालयम् वगैरह जो विवरण हमने इस ग्रन्थ में कई बार प्रस्तुत किया है उससे जाना जा सकता है कि भगवान श्रीकृष्ण की मान्यता सारे विश्व में रही है। उन्होंने अर्जुन को जो उपदेश किया उसे भगवद्गीता कहते हैं। उसी प्रकार बगदाद भी भगवद्नगर कहलाता था। उसी भगवद्नगर का वर्तमान संक्षिप्त रूप बगदाद हुआ है। बगदाद जिस इराक देश की राजधानी है उस इराक देश ने भगवान कृष्ण के चित्र प्रदर्शित करने वाले डाक टिकट मोसल प्रदेश के वसन्तोत्सव पर प्रकाशित किए थे। उनका फोटो हमने इसी ग्रंथ में अन्यत्र दिया है। अतः भगवान कृष्ण इराक के देवता रहे हैं, इसी कारण उसकी राजधानी बगदाद यानि भगवद्नगर कहलाती है।

इराक का वैदिक राजकुल

इराक के अन्तिम राजकुल का नाम बर्मक था। अल्बरूनी की तवारीख

का आंग्ल अनुवाद करने वाले Edward D. Sachau ने उस ग्रन्थ की प्रस्तावना में लिखा है कि इराक में नवबहार नाम का नगर है। वह नव-बिहार का अपभ्रंश है। वहां एक धर्मपीठ था। इस पीठाधीश के पद को परमक (यानि परमाचार्य या परमगुरु) कहते थे। वह बौद्ध उर्फ वैदिक परम्परा का ही धर्मपीठ था। अरब-इस्लामी आक्रामकों ने जब से इराक को छल-बल से मुसलमान बनाया तब से परमक उर्फ बरमक की वैदिक धर्मसत्ता समाप्त होकर वही राजा बनकर सर्वसत्ताधारी बन गया क्योंकि धर्मगुरु के नाते उसी पर लोगों की श्रद्धा थी और उसी की आज्ञा सब मानते थे। इससे पाठक जान सकते हैं कि इस्लामपूर्व सभ्यता वैदिक थी। उसे छल-बल से समाप्त कर ईराक पर इस्लामी धर्म जबरदस्ती थोपा गया। तथापि आजकल के इतिहासज्ञ इतने डरपोक बन गए हैं कि इस्लामी और कृस्ती देशों की सभ्यता १४०० या १६०० वर्ष पूर्व कुछ और थी यह कहने की कोई हिम्मत ही नहीं करता। यदि अतीत का सही इतिहास पता करने से, घोषित करने से या प्रकाशित करने से इतिहासज्ञ ही डरने लगे तो अतीत की बाबत सत्यकथन करने की या ढूंढने की आशा ही छोड़ देनी चाहिए। किन्तु लगभग सारे ही इतिहासज्ञ और पुरातत्वविद् लज्जा, झिझक या भय के मारे अतीत के सत्य को छिपाए रखने में ही इतिकर्त्तव्यता मानते हैं। यह हमारा बड़ा दुःखद और कटु अनुभव रहा है। उदाहरणार्थ ताजमहल आदि ऐतिहासिक कब्रें और मस्जिदें प्राचीन हिन्दू मन्दिर और महल हैं, यह हमारा शोध हमने घोषित किए हुए पच्चीस वर्ष बीत जाने पर भी मान्यवर इतिहासकार इस सम्बन्ध में धूर्तता से मौन रखे हुए हैं। ना ही वह उस शोध पर जाँच समिति द्वारा किसी अन्तिम निर्णय पर पहुँचेंगे और न ही उस शोध को मान्यता प्रदान करेंगे। किन्तु वे अपने प्रदीर्घ मौन से ऐसा आभास निर्माण करते रहे हैं कि वह शोध उन्होंने या तो कभी सुना ही नहीं या वह ध्यान देने योग्य ही नहीं है।

ईरानी राजाओं के नाम

प्राचीन ईरानी राजाओं को ग्रीक इतिहासकारों ने डेरिअस (Darius), सीरियस (Cyrius) आदि नाम दे रखे हैं। विश्व के सारे इतिहासकार

आँखें मूँद कर चुपचाप वही नाम दोहराते रहे हैं। वे कभी यह नहीं सोचते कि वे नाम धैर्येश, सुरेश आदि वैदिक प्रणाली के संस्कृत नाम थे।

ईरान में प्रजा-राज्य स्थापित होने से पूर्व जो अन्तिम राजकुल था वह पहलवी घराना था। पहलवी यह वंश नाम वैदिक परम्परा का है। पुराणों में उसका उल्लेख है। वशिष्ठ की कामधेनु जब विश्वामित्र छीनकर ले जाने लगे तो उस कामधेनु का रक्षण करने के लिए जो क्षत्रिय कुल दौड़ते आए उनमें पहलवी नाम अन्तर्भूत है।

ईरानी उपाधियाँ

ईरान के राजा की जो उपाधियाँ होती थीं उनमें उसे 'आर्यमिहिर' कहा जाता था। 'आर्य' यह वैदिक जीवन-पद्धति का नाम है और 'मिहर' सूर्य का नाम है। अत: 'आर्यमिहिर' का अर्थ है वैदिक प्रणाली में सूर्य जैसा चमकने वाला। यह वाक्प्रचार भी पूरा वैदिक ही है। ईरान के पहलवी वंश को उस आर्यमिहिर उपाधि से यह विचार सूझना चाहिए था कि उसकी प्राचीन पदवी तो आर्यमिहिर यानि वैदिक सूर्य की थी, किन्तु उसकी वर्तमान अवस्था तो इस्लामी चाँद की थी। दिन को रात में बदल देने जैसा बड़ा परिवर्तन आने पर भी वह ईरानी आर्यमिहिर राजा उस पवित्र सिंहासन पर चैन से कैसे बैठ सकता था। क्या उस आर्यमिहिर पदवी से ईरान में पुन: वैदिक धर्म प्रस्थापित करने का कर्त्तव्य उसके मन में जाग नहीं उठता था? दरबारी, हलकारे द्वारा उस प्राचीन वैदिक आर्य-मिहिर उपाधि की ललकार लगाने पर भी यदि कोई व्यक्ति उस उपाधि के मर्म के प्रति जागृत नहीं होता तो इतने अचेतन, गतप्राण मन की लानत समझनी चाहिए।

सामान्यजन इससे बेदरकार ही देखने में आते हैं। नित्य दिखने वाली क्रिया-प्रक्रिया या सुनाई देने वाले शब्दों से उनके मन के, विचारों में कोई तरंग ही नहीं उठती। कई लोग संस्कृत या हिन्दी की बड़ी-बड़ी साहित्यिक पदवियाँ प्राप्त करने पर भी निजी नाम अनाड़ी, देहाती ढंग का बसेसर या बिशम्भर ही रहने देंगे। उसे शुद्ध प्रकार से विश्वेश्वर या विश्वम्भर ऐसा नहीं लिखते। एक प्रकार से उन्हें सत्य से डर और असत्य से प्रीति हो

जाती है। लगभग सारे लोगों का यही हाल होता है। क्या किया जाए? विद्या ग्रहण करने पर भी यदि यही हाल हो तो विद्या पाने का लाभ ही क्या?

ईरान का राजचिह्न

ईरान के राजचिह्न में एक सिंह अपने दाहिने पैर से खड्ग धारण किया हुआ और अगले बाएँ पैर से पृथ्वी गोल को दबाया हुआ बताया गया है। यह 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का प्रतीक है। इसमें यह दर्शाया गया है कि सारी पृथ्वी पर राज्यसत्ता का तभी ठीक नियन्त्रण रह सकता है जब हाथ में खड्ग हो और हृदय सिंह जैसा पराक्रमी हो।

ईरानी मुसलमानों की विष्णुभक्ति

अरबों द्वारा छल-बल से ईरानियों को मुसलमान बना लेने पर भी ईरान में वैदिक संस्कृति अपंग अवस्था में विभिन्न रूपों में लंगड़ाती लड़खड़ाती रही। किन्तु उसके वे अवशेष भी धर्मांध इस्लामी जानबूझकर विश्व की जनता से छिपाते रहे। अधिकतर अन्य धर्मों के लोगों ने ही ईरान की प्राचीन वैदिक संस्कृति के अवशेषों का उल्लेख किया है। अतः और भी कई ऐसे अवशेष होंगे जो अभी तक छिपे रहे हों और किसी को पता न लगे हों।

हंगरी देश के निवासी Arminius Vambery ने उक्त प्रकार के कुछ उल्लेख किए हैं। उसने कई मुस्लिम देशों में प्रवास किया था। उसके प्रवास वर्णन के ग्रन्थ का शीर्षक है Arminius Vambery—His life and Adventures, written by himself, प्रकाशक हैं T., Fisher Unwin, 26 Paternoster Square, London, 1894।

ईरान के शिराझनगर के समीप एक गाँव है सादी। ईरानी कवि सादी के उस गाँव में दफनाए जाने से उसी कवि के नाम से वह गाँव जाना जाता है। यद्यपि सादी जन्म से मुसलमान था तथापि वह वैदिक देवता विष्णु का भक्त था। ईरान की सारी जनता मुसलमान हो जाने पर भी सादी कवि विष्णुभक्त था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि ईरान में कुछ जमातों में, गाँवों में या कुटुम्बों में, प्राचीन वैदिक परम्पराएँ जतन की जा

रही हैं। सादी की बाबत पृष्ठ १२८ पर व्हंबेरी ने लिखा है कि "Saadi even assumed the religion of the worshippers of Vishnu in order to extend and increase his knowledge of things." यानि "सादी ने विष्णु को भजने वाले लोगों का धर्म इसलिए अपनाया ताकि उससे सादी को सब प्रकार का ज्ञान और अनुभव हो।"

अतः सादी के काव्य का अध्ययन करने वाले विद्वानों को सादी के जीवन का बारीकी से निरीक्षण कर पता लगाना चाहिए कि सादी ने वैदिक धर्म की दीक्षा कब और किससे ली ? क्या अन्त तक वह हिन्दु ही रहा ? उसके इष्ट-परिवार में से भी कोई हिन्दु हुआ था क्या ? हिन्दु बनने के पश्चात् वह अपने कुटुम्ब में ही रहता था या अलग ? क्या उसने कुछ देवालय बनवाए ? उसके काव्य का कितना हिस्सा वैदिक धर्म की बाबत है ?

ईरान में शिव-पूजा भी

मुसलमान होते हुए भी ईरानी लोगों ने सुन्नीपंथी अरबों से अपने-आपको शियापन्थी कहलाकर भिन्न रखा है। इसका रहस्य क्या है ? इसका रहस्य यह है कि अरब वैष्णवपंथी थे और ईरानी शैवपंथी थे। शिया, शैव का ही अपभ्रंश है।

सामान्यतया यह समझा जाता है कि खलीफा पद के सम्बन्ध में मतभेद होने से अरबों और ईरानियों में पंथ-भेद निर्माण हुआ। इस सामान्य कल्पना का विवरण व्हंबेरी के प्रवास वर्णन में पृष्ठ ६८-६९ पर दिया गया है। वह लिखते हैं, 'महंमद की मृत्यु के उपरान्त उसके द्वारा किसी को उत्तराधिकारी न बनाने के कारण मुसलमानों में फूट पड़ गई। बहुसंख्यक मुसलमानों ने अबूबकर को खलीफा यानी धर्मप्रमुख माना क्योंकि महंमद के अनुयाईयों में वह सबसे वरिष्ठ था। किन्तु दूसरा (अल्पसंख्यक) पक्ष चाहता था कि महंमद का जामाता अली ही खलीफा माना जाए। इस संघर्ष में अली की हार हुई। अबूबकर पहला खलीफा बना। उसकी मृत्यु होने पर उस्मान खलीफा हुआ। उस्मान के पश्चात् उमर खलीफा बना। किन्तु अली के पक्ष ने खलीफापद के लिए संघर्ष चालू रखा और उमर की मृत्यु होने पर अली खलीफा बना भी किन्तु उसका अधिकार अल्पकाल

टिका। उसके विरोधियों का नेतृत्व स्वयं महंमद की विधवा अयेषा ही कर रही थी। इस संघर्ष में अली का वध हुआ। अली की नौ पत्नियां थीं तथापि महंमद की लाड़ली कन्या फातिमा के अतिरिक्त अली की अन्य पत्नियाँ नगण्य मानी जाती थीं। फातिमा से अली को दो पुत्र हुए—हसन और हुसैन। हुसैन ने खलीफा होना चाहा। एक बार हुसैन मक्का से कुफ्फा नगर को जा रहा था (उसे कुफ्फा नगर के लोगों ने निमन्त्रण दिया था।) किन्तु मरुस्थल में टिग्रिस नदी के किनारे याभीद के भेजे लोगों ने हुसैन के गुट के ऊपर एकाएक धावा बोलकर उन सबको बड़ी क्रूरता से मार डाला। इसी दुःखद घटना का शोक ताजिया निकालते हुए रो-पीटकर ईरान में मनाया जाता है।"

ईरानी शिया मुसलमानों द्वारा मुहर्रम मनाते हुए ताजियों का जुलूस हुसैन की मृत्यु की स्मृति में निकाला जाता है, ऐसा कहा जाता है। किन्तु जैसे इतिहास में अन्य अनेक भ्रामक धारणाएँ प्रचलित हैं, वैसी ही यह भी प्रतीत होती है। परिस्थिति का विश्लेषण करने पर यह पारम्परिक बात निराधार सिद्ध होती है। इस ग्रन्थ में विश्व इतिहास की ऐसी कई बातें बतलाई गई हैं जो निराधार होते हुए भी उन पर सारे लोग दृढ़ विश्वास करते हैं। पहली बात तो यह है कि खिलाफत के लिए संघर्ष करने वाले दोनों पक्ष अरब थे और उनका संघर्ष भी अरबी प्रदेश में ही चल रहा था। ईरानियों को हुसैन का वध किए जाने पर विशेष शोक मनाने का कोई कारण ही नहीं था। मूल कारण कोई और ही था!

इस्लाम कोई धर्म नहीं है। वह तो सत्ता और अधिकार प्राप्त कर अरबों का साम्राज्य बढ़ाने के लिए निर्माण किया गया एक भ्रामक नारा था। इसके अन्तर्गत अरबों ने ईरान पर चढ़ाई करके ईरानियों को रौंदा। इससे अपमानित होकर दबे हुए ईरानियों को अरबों के विरुद्ध खड़ा होने के लिए कुछ बहाना चाहिए था। अत: जब खिलाफत के लिए संघर्ष आरम्भ हुआ तब अबूबकर को अरबों का समर्थन प्राप्त हुआ। अत: उसके विरोधियों का पक्ष ईरानियों ने लिया। यदि अरब लोग अली का पक्ष लेते तो ईरानी लोग अबूबकर की सराहना करते। अरबों ने ईरानियों को गुलाम बनाकर, उनकी बची-खुची वैदिक संस्कृति को कुचलकर, उनके ऊपर जो नया

अरबी, महंमदी पंथ थोप दिया था उसके प्रति निजी क्रोध प्रकट करने के लिए ईरानियों ने हुसैन के वध का बदला चाहनें का बहाना बनाकर शोक सभाएँ, जुलूस आदि आयोजित करने आरम्भ कर दिए।

मुहर्रम पर ईरानी लोग उनके मन्दिर गिराने, लूटने और जलाने के लिए अरबों के विरुद्ध निजी क्रोध और तिरस्कार प्रकट करते हैं। इस बात का प्रमाण व्हंबेरी के प्रवासवर्णन में पाया जाता है। अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ६६-७० पर वह लिखते हैं, 'ताजिए निकलने के कुछ समय पूर्व एक दुबला-पतला (ईरानी) दरवेश मंच पर चढ़ा और ऊँची आवाज में भाषण देने लगा—या मुमीनीन(यानी धर्मानुयायियों)!' उसके ऐसा उच्चस्वर में कहते ही सारे लोग बिल्कुल चुप हो गए। फिर उसने एक लम्बी प्रार्थना की जिसमें शियापन्थियों की वीरता की प्रशंसा की गई। तत्पश्चात् उसने कुछ अग्रगण्य सुन्नी व्यक्तियों के नाम लेकर क्रोध से पागल हुए व्यक्ति की तरह चिल्लाकर प्रश्न किया कि 'भाइयों क्या ऐसे व्यक्तियों को हमने शाप नहीं देना चाहिए? क्या ऐसे व्यक्तियों का सत्यानाश हो ऐसी इच्छा हमने नहीं करनी चाहिए (मैं तो कहता हूँ कि वे तीन कुत्ते जहन्नुम् में जाएँ—अबु बकर, उमर और उस्मान जिन्होंने खिलाफत हड़प ली थी।" ऐसा कहकर वह वक्ता थोड़ा रुक गया। उसे यह आजमाना था कि उसके वक्तव्य का श्रोताओं पर क्या प्रभाव हुआ। सारे समुदाय ने, वक्ता की क्रोध-भरी गालियों और शापों का पूरा समर्थन करते हुए ऊँची आवाज में कहा, 'बिशवद्-बिशवद्' यानी 'हाँ-हाँ इससे भी बढ़कर, इससे भी बढ़कर'। इस तरह वह दरवेश गालियों और शापों से भरा निजी भाषण आगे चलाता हुआ महंमद की विधवा अयेषा, मुवैया, याभ्रेद आदि सारे अरब नेताओं के एक-एक करके नाम लेता रहा। एक-एक का नाम लेकर वह जैसे-जैसे रुकता वैसे-वैसे उसके सारे श्रोतागण एक साथ 'बिशवद्···बिशवद्' कहकर उसका समर्थन करते।

त्रिशूल का कलश

ईरान के शिया कहलाने वाले लोग वास्तव में शिवपंथी हैं इसका प्रमाण यह है कि आज भी ईरान में मस्जिद कहलाने वाली कुछ इमारतों

पर त्रिशूली कलश लगा हुआ है क्योंकि वे कब्जा किए हुए मन्दिर हैं। इस सम्बन्ध में पुणे नगर से प्रकाशित होने वाले मराठी साप्ताहिक 'माणूस' (सितम्बर-अक्तूबर १९८०) में विजय परुलेकर द्वारा लिखित ईरान यात्रा के संस्मरणों की जो लेखमाला प्रकाशित हुई थी उसमें एक तथाकथित मस्जिद का फोटो प्रकाशित हुआ था जिस पर त्रिशूल का कलश है।

सोमनाथ शिवलिंग

व्हेंबेरी ने यह भी लिखा है कि ईरान के इस्पहान नगर के पास अहमदाबाद नाम के गाँव में महंमद गजनवी द्वारा ले जाया गया सोमनाथ का प्रसिद्ध शिवलिंग रखा है, वह भी देखा। इस उल्लेख की पुष्टि हमें एक ईरानी ग्रन्थ में मिली। उस ग्रन्थ का नाम है हिस्टोरिकल मान्यूमेंट्स आफ इरफाहान (Historical Monuments of Irfahan)। लेखक होनारफट, निदेशक इतिहास विभाग, तेहरान विश्वविद्यालय, सातवां संस्करण (Honarfat, Director of History, Tehran University, 7th edition)। उसमें लिखा है, "काजी निजामुलमुल्क स्कूल के प्रवेश द्वार के नीचे एक प्रमुख स्थान पर महंमद गजनवी द्वारा लूट कर लाई एक शिला महंमद सेलगंग से रखवाई। कहा जाता है कि वह शिला सुमराट (यानी सोमनाथ) के हिन्दू मन्दिर से (उखाड़कर) महंमद गजनवी ले आया था। आज भी वह अजीब छिली हुई शिला, जो तीन मीटर लम्बी है इमाजादे अहमद नाम की प्राचीन इमारत के बाहर इस्पहान नगर में विद्यमान है। उस शिला पर अरबी लिपि में 'Amen, O God of the two Worlds' यह शब्द खुदे हैं और एक तारीख अंकित है जो सन् ११६७-६८ की है। उस हिन्दु शिला को ईरानियों ने तिरस्कार से लोहे की शृंखला से जकड़ दिया था। उस शृंखला के बल उस शिला पर अभी पड़े हुए देखे जा सकते हैं।"

भारतीय राजदूतों का कर्त्तव्य

सोमनाथ का महंमद गजनवी द्वारा अपहरण किया हुआ शिवलिंग अफगानिस्तान के गजनी नगर में किसी मस्जिद के बाहर तिरस्कार से मुसलमानों के जूतों का कीचड़ या धूल खरोंचने के लिए रखा गया है,

ऐसा किसी इस्लामी तवारीख में हमने उल्लेख पढ़ा था। किन्तु ऊपर उद्धृत किए उद्धरण के अनुसार वह शिवलिंग इस्पहान नगर के पास किसी इमारत के बाहर रखा हुआ है। उस शिला को प्रवेशद्वार के नीचे रखने का प्रयोजन यही था कि मुसलमान उस शिवलिंग पर निजी जूतों की धूल या कीचड़ खरोंचकर मूर्तिपूजा को पैरों तले रौंदने का समाधान प्राप्त करें। शिवलिंग के अपमान की बात, जो किसी अन्य तवारीख में हमने पढ़ी थी, सही है। अन्तर इतना ही है कि वह सोमनाथ का पवित्र शिवलिंग इस्पहान नगर के पास ईरान में है न कि अफगानिस्तान के गजनी नगर में।

प्रश्न यह उठता है कि १९४७ में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार के ईरान में जो राजदूत नियुक्त होते रहे क्या उन्होंने कभी उस शिवलिंग को देखा? वह शिवलिंग ईरान में है इसका कभी उन्हें ज्ञान भी था या नहीं? उस शिवलिंग को सम्मान से पुनः भारत लाने का उन्होंने कभी प्रयास किया? क्या भारत के विदेश मन्त्रालय को यह सूझबूझ है कि भारत से लूटी गई इस प्रकार की पवित्र, बहुमूल्य सामग्री या वस्तुएँ भारत वापस ले आना हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

भारत के इतिहासज्ञों का भी कर्त्तव्य होता है कि वे भारत के प्रधानमन्त्री और विदेशमन्त्री आदि को ऐसे लूटी गई भारतीय सामग्री की बाबत समय-समय पर जानकारी देते रहें। किन्तु वह कर्त्तव्य न तो शासन स्वयं निभा रहा है और न ही भारत के इतिहासज्ञ।

शिवलिंग पर खुदा अरबी लेख

शिवलिंग पर खुदे अरबी लेख की बाबत ऊपर जो ब्यौरा दिया गया है वह विश्वास योग्य नहीं है। क्योंकि जिन आक्रामकों ने शिवलिंग हड़प किया वह उसे 'ॐ दो विश्वों के देवता' ऐसा क्यों कहेंगे? जबकि उन्होंने तिरस्कारपूर्वक उसे लोहे की शृङ्खला से जकड़ रखा था और पैर पोंछने का साधन बनाया था? दूसरी आशंका यह है कि शिवलिंग पर जो तारीख खुदी है वह सन् ११६७-६८ के समय की क्यों है? उस समय तो महंमद गजनवी द्वारा उस शिवलिंग के अपहरण को १५० वर्ष बीत चुके थे। तो क्या उस शिलालेख में लिखी तारीख सही है? यदि सही है तो उस

तारीख का प्रयोजन क्या है? वह तारीख शिवलिंग पर क्यों अंकित की गई है?

मोहर्रम क्यों?

ईरान के शिया मुसलमान निषेधात्मक अन्त्येष्टि संस्कार को महर्रम क्यों कहते हैं? उस दिन वे ७ या १० मंजिले ताजिले कन्धों पर उठाकर क्यों रोते-पीटते जुलूस निकालते हैं? जुलूस में कई लोग अपने-आपको हंटर मारते रहते हैं या अन्य प्रकार से निजी शरीर को पीड़ा पहुँचाते हैं। हिन्दुओं में भी शिव और शक्ति की पूजा करने वाले कई लोग इसी प्रकार निजी शरीर को जर्जर करने में ही त्याग या निजी स्वास्थ्य की बलि चढ़ाने में इतिकर्त्तव्यता मानते हैं। तो एक प्रकार से मोहर्रम में निजी शरीर को कष्ट देने की वह प्रणाली इस्लामपूर्व हिन्दू समय की चली आ रही है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अरबों ने स्वयं इस्लामपंथी बनकर ईरान पर हमला किया तो ईरानी लोगों को हथियारों से और हंटरों से मारते-पीटते-चीखते, जर्जर और घायल करते हुए उन्हीं के द्वारा ७ से १० मंजिलों वाले ईरानी शिवमन्दिर अरबों ने भ्रष्ट और भग्न करवाकर उन मन्दिरों का मलबा टोकरियाँ भर-भर कर ईरानियों के सिर पर लाद कर नगर के बाहर मैदानों में फिकवाया। भीषण और भयंकर अरबी अत्याचारों के स्मरण में ईरानी जनता प्रतिवर्ष मोहर्रम मनाती है ऐसा हमारा निष्कर्ष है। वे जो ताबूत कन्धों पर धारण किए हुए करबला में दफनाते हैं, वे उनके भग्न किए हुए शिवमन्दिरों के ढाँचे होते हैं। यदि वह हुसैन की प्रेतयात्रा होती, तो उसमें आठ-दस मंजिल वाली इमारतों की प्रतिमाएँ बनाने का कोई कारण ही नहीं था। ताजिए तो रंग-बिरंगे और सोना-चाँदी जैसे चमकीले बनाए जाते हैं जैसे वैदिक मन्दिर बनते हैं। यदि वह इस्लामी अन्त्येष्टि होती तो उसमें विशाल भवनों जैसे ताजियों का कोई स्थान नहीं होना चाहिए था।

और एक मुद्दा यह है कि शिवजी के तेजोलिंग से उन्हें तेजाजी भी कहा जाता है। इसी कारण ताजमहल यह तेजोमहालय (शिवमन्दिर) का अपभ्रंश है, तो ताजिए तेजाजी शिव के मन्दिर की प्रतिमाएँ हैं। इन्हें

ताबूत भी कहते हैं। मुसलमान लोग मूर्ति को बुत् कहते हैं। ताजिये मूर्ति वाले मन्दिरों की प्रतिमाएँ होने के कारण भी उन्हें ताबूत कहा जाता है।

अब मोहर्रम शब्द का विवरण देखें। उससे भी पता चलेगा कि अबूबकर विरुद्ध अली के खिलाफत पद के लिए संघर्ष का उसमें कोई सम्बन्ध ही नहीं है। इस्लामी ज्ञानकोश (Encyclopaedia Islamia) (खण्ड ३, पृष्ठ ६९८) में लिखा है कि 'मोहर्रम इस्लामी वर्ष का पहला महीना होता है। मूलतः वह विशेष नाम न होकर विशेषण है।"

पाठक देखें कि इस्लाम के प्रथम मास का वह नाम होने से मोहर्रम का ईरान से, हुसैन से या खिलाफत के झगड़े से कोई सम्बन्ध नहीं है। 'मुहुः रम' इस संस्कृत शब्द का अर्थ है 'अल्पकाल मग्न हो जाना'। वर्ष के आरम्भ में ईश्वर के ध्यान में मग्न हो जाना यह उसकी विशेषता होने के कारण इस्लामी ज्ञानकोश ने ठीक ही लिखा है कि The name is originally not a proper name but an adjective. इससे पाठक जान सकते हैं कि इस्लामी प्रथाएँ और वाक्प्रचारों का मूल किस प्रकार वैदिक संस्कृत भाषा से जाना जा सकता है। क्योंकि इस्लाम की आयु केवल १४०० वर्ष ही तो है। उसके पूर्व उन प्रदेशों में सारी वैदिक सभ्यता ही तो थी।

पूरे मास का वह नाम ताजियों के जुलूस को भी लगाना बड़ा अटपटा-सा लगता है। और यदि सुन्नी लोग भी उस पूरे मास को मोहर्रम् कहते हैं तो शिया लोग वही नाम उनके ताजियों के जुलूस को क्यों लगाते हैं, जबकि उनका वह जुलूस का दिन किसी एक विशिष्ट ऋतु में नहीं पड़ता। भिन्न वर्षों में वह भिन्न ऋतुओं में पड़ता है।

हम अब एक अन्य प्रमाण उद्धृत करते हैं। A Dictionary of Islam by Thomas Patrick Hughes, (Oriental Publishers, 1488 Pataudi House, Delhi) के पृष्ठ ४०७ पर मोहर्रम् का अर्थ लिखा है, "Literally that which is forbinadden. Anything Sacred, the first month of the Mohammedan year, the first ten days of the month observed in commemoration of the martyrdom of al-Husain. These days of lamentation are only observed

by the Shia Muslims but the 10th day of Muharram is cherished by the Sunnis. The ceremonies of the Muharram differ much in different countries". यानि इस्लामी शब्दकोश में दिए मोहर्रम् के अर्थ इस प्रकार हैं : "शब्दश: इसका अर्थ है कि जिसे करने से रोका गया हो, प्रतिबन्ध लगा दिया गया हो (कुछ भी पवित्र बात)। इस्लाम का प्रथम मास। उस महीने के आरम्भ के १० दिन जो हुसेन की मृत्यु के शोक उर्फ सूतक के समझे जाते हैं। वह शोक और सूतक केवल शियापन्थी लोग ही मानते हैं। किन्तु मोहर्रम् का दसवाँ दिन सुन्नी भी मनाते हैं। मोहर्रम् मनाने के प्रकार विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न होते हैं।"

ऊपर दिया अर्थ बड़ा महत्त्वपूर्ण है तथापि अधिकतर लोग उस पर विचार नहीं करते। प्रतिबन्धित आचार यह उसका पहला अर्थ है। हमने भी यही कहा है कि ईरानी लोग जो शिवपूजन करते थे उस पर अरब आक्रामकों ने प्रतिबन्ध लगाया। उसी के स्मरण में ईरानी लोग रोते-पीटते हैं। दूसरा अर्थ है "कोई भी पवित्र आचार"। शिवपूजन पर लगाए प्रतिबन्ध का संस्मरण पवित्र आचार है ही। तीसरा अर्थ है उस मास के आरम्भ के दस दिन। वह भी ठीक ही है क्योंकि वैदिक संस्कृति में सूतक सामान्यतया दस दिनों का होता है। अन्तिम भाग में उल्लेख है कि मोहर्रम् मनाने के प्रकार प्रदेशानुसार भिन्न होते हैं। वह इसलिए कि विविध प्रदेशों में शिवपूजन में थोड़ा-थोड़ा अन्तर हुआ करता था।

इस विवरण से पता चलेगा कि आम लोग मोहर्रम् का मूल अर्थ और सन्दर्भ आदि जाने बगैर ही कही-सुनी बातों के अनुसार अपनी कल्पना बना लेते हैं। इससे सबक् सीखकर ईरान की अनेक प्राचीन इमारतों का पुनर्अध्ययन और पुनर्निरीक्षण करना आवश्यक है। ऐसा करने पर पता लगेगा कि वे शिवमन्दिर थे जो अरबी-इस्लामी आक्रामकों ने छल-बल से मस्जिदें कहलवाए। अत: मोहर्रम् एक प्रकार से इस्लामी बनाए गए ईरानियों का छीनी गई वैदिक संस्कृति का शोकपूर्ण संस्मरण है।

गंगा-पूजन

भारतीय परम्परानुसार गंगा पर जनता की बड़ी श्रद्धा है। भारतीय

लोग मानते हैं कि भगीरथ की तपस्या द्वारा स्वर्ग में बहनेवाली गंगा पृथ्वी पर लाई गई। इसके अध:पतन में वह कहीं पृथ्वी में छेदकर पाताल में न निकल जाए इसलिए शिवजी ने गंगा का वेगवान प्रवाह निजी जटाधारी मस्तक पर झेला। उससे गंगा और भी पवित्र तो हुई किन्तु गंगा का सारा गर्व हरण होकर वह शिवजी की जटाओं में जल की छोटी धारा जैसी ऐसी लुप्त हो गई कि पृथ्वी पर वहने के लिए उसे मार्ग ही नहीं मिलता था।

वही दन्तकथा इस्लाम-पूर्व ईरान में भी प्रचलित थी यद्यपि उसमें विशिष्ट व्यक्तियों के नाम बदले गए हैं। हेरोडोटस (Herodotus) द्वारा लिखे इतिहासग्रन्थ में दी टिप्पणी में उस दन्तकथा का उल्लेख मिलता है। (पृष्ठ 131, HERODOTUS, Rawlinson's translation, revised and annotated by A. W. Lawrence, the Nonesuch Press, Great James Street, Bloomsbury, England), टिप्पणी इस प्रकार है, "The Persian cult of Aphrodite...The native goddess may have started personification of a single river(or conceivably of the Milky Way), In the Avesta she is entitled Ardvi, Shura, Analhita (i. e. the high, powerful, undefiled) and is the heavenly spring...her source being on the top of a mythical mountain in the region of the stars. She came down to earth on the command of Abura Mazda."

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है : "अफ्रोडाइट की ईरानी परम्परा। वह वहाँ की देवी थी जो नदी रूप थी या आकाश गंगा ही हो। अवेस्ता ग्रन्थ में उसे आर्दवी, शूरा, अनलहिता (यानि उच्च, शक्तिमान और शुद्ध) और स्वर्ग का झरना कहा है। किसी पौराणिक गिरिशिखर के ऊपर उसका उद्गम बताया जाता है। वह पर्वत शिखर आकाश से भिड़ा हुआ है। अहूर माझ्दा की आज्ञा से वह पृथ्वी पर आई।"

भारतीय हिन्दु पाठक इस ईरानी पौराणिक कथा को एकदम पहचान जाएँगे। क्योंकि वह हमारी गंगावतरण की ही तो कथा है। वह देवता है। वह नदी रूप है। उसके अनेक नाम हैं। वह उच्च, शक्तिमान और शुद्ध मानी गई थी। उसे स्वर्गगामिनी कहते थे। आकाशगंगा नाम भी उसी का

द्योतक है। कैलाशपर्वत पर खड़े भगवान शिव के माथे पर गंगा उतर आई और वह वहाँ से पृथ्वी पर उतरी। अतः गिरी शिखर ही उसका उद्गम स्थान है। कैलाश शिखर आकाश से ही भिड़ा माना जाता है। क्योंकि वह शिवजी का निवास-स्थान है। भगीरथ की बजाय अहुर माझदा का नाम ईरानी कथा में दिया गया है जबकि भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरने की भगीरथ की विनती गंगा ने मान ली थी।

इससे एक बात और यह पता लगती है कि पारसी लोग हिन्दू थे। अतः ईरान पर अरबी मुसलमानों का आक्रमण होते ही पारसी लोगों ने भारत में शरण ली। दूसरी बात यह पता लगती है कि पारसी झेंदअवस्था ग्रन्थ, वैदिक ग्रन्थों का ही ईरानी संस्करण है। इसलिए उसमें गंगावतरण की कथा है। उस कथा में और भारतीय पुराणों की कथा में जो नाम आदि बदल गए हैं उसका कारण यह है कि महाभारतीय युद्ध के पश्चात् गुरुकुल शिक्षण-पद्धति टूट जाने से भिन्न-भिन्न प्रदेशों में वही कथाएँ अपने-अपने प्रादेशिक ढंग से कहते-कहते कालान्तर से उनमें भिन्नता आ गई।

संगीत

विश्व में सर्वत्र वैदिक संगीत ही होता था। अतः इस्लामपूर्व ईरान में वही संगीत था। इसके सम्बन्ध में Fodor's Guide to Iran(Richard Moor द्वारा सम्पादित, प्रकाशक Hodder and Stoughton, London, 1979) के पृष्ठ ५२ पर लिखा है कि ईरान का नरेश बेहराम पंचम (सन् ४१२-३८) केवल उतने ही से समाधान न मानकर भारत से संगीतज्ञों को भी लाया। अतः भारतीय और ईरानी संगीत में समानता होना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

ऊपर दिए उद्धरण के भावार्थ से हम सन्तुष्ट नहीं हैं। आज तक के इतिहासकारों ने टूटी-फूटी कल्पनाओं से विश्व इतिहास का जो आधा-अधूरा, टेढ़ा-मेढ़ा ढाँचा खड़ा किया है, उसमें ऐसे कई असंगत कथन अन्तर्भूत हैं।

ऊपर दिए उद्धरण का ही उदाहरण लें। उसमें ईरान के राजा का नाम बेहराम लिखा है। वह पट्टाभिराम, सीताराम जैसा राम पर आधारित

नाम है। उस उद्धरण से पाठक की यह कल्पना बनती है कि योगायोग से बेहराम पाँचवीं शताब्दी में कुछ भारतीय संगीतज्ञों को ईरान में लाया, इसलिए उस समय से ईरानी संगीत में भारतीय संगीत की कुछ छटा आई। यह निष्कर्ष असंगत होगा।

पाठक इस बात पर ध्यान दें कि बेहराम ने भारतीय संगीतज्ञों को ईरान बुलाया ही इसलिए था कि ईरानी संगीत पूर्णतया वैदिक संगीत पर आधारित था और उस शास्त्र के प्रवीण जानकार उस समय भारत में ही थे। जैसे किसी का सितार टूट जाए तो उसे ठीक कराने सितार का मालिक सितार बनाने वाले कारीगर को ही बुलाएगा न कि ताला-चाबी वाले को।

सारे विश्व में सृष्टि के आरम्भ से सर्वत्र वैदिक संगीत ही था। किन्तु बेहराम के समय में ईरान में वैदिक संगीत परम्परा कुछ ढीली पड़ गई थी। अतः उस प्रथा का पुनरुज्जीवन करने के लिए भारत से संगीतज्ञ बुलवाने पड़े।

चातुर्वर्ण्य धर्माश्रमी समाज

मानवी समाज के वैदिक संस्कृति ने चार भाग बनाए हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। प्रत्येक विभाग के व्यक्ति को जीवन भी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—ऐसी चार अवस्थाओं में बिताने की प्रथा थी। ईरान-इराक आदि प्रदेशों में लगातार १३०० वर्ष इस्लाम के आतंक और अत्याचार मचाने पर भी अभी तक उस प्राचीन वैदिक समाज पद्धति के अवशेष पाए जाते हैं। वह इसलिए कि इस्लाम के लाखों वर्ष पूर्व से वहाँ वैदिक संस्कृति की जड़ें गड़ी हुई हैं। इस सम्बन्ध में ९ दिसम्बर, १९८२ के आंग्ल दैनिक Times of India के अहमदाबाद संस्करण में प्रकाशित हुआ समाचार हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं।

YAZIDIS IN IRAN FACE EXTERMINATION

An ancient people who have escaped countless attempts at their extermination for 14 centuries are now threatened by the Iran-Iraq conflict. The Yazidis, a confederation of tribes, have a religion based on Zoroastrianism in the heart

of the Muslim Middle East. They consider the war to be caused by Islamic fanaticism from which they themselves have suffered in the past. The Yazidis are referred to as Satan worshippers in the region, but Muaawiah says this is just a lable. 'We do not worship Satan, he explained, 'We just admire him for being the first to oppose arbitrary authority and the whimsical decisions of the Almighty. He said that several major Kurdish, Turkish and Arab tribes are followers of the same. TheYazidis do much that is abhorrant to Muslims; they drink wine, eat pork, take only one wife and base their society on an ancient caste system with four basic groups—princes, priests, warriors and workers. They believe in the transmigration of souls and revere fire.

इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है, "एक प्राचीन जमात जो १४०० वर्ष (इस्लामी हमलों से) अपने आपको बचाती रही है, उसका अस्तित्व इरान-ईराक युद्ध छिड़ जाने से संकट में पड़ गया है। उस जमात का नाम है याभिदी। यह अनेक टोलियों का संगठन है। उस मध्यपूर्व एशिया प्रदेश में वह पारसी तरह का धर्म है। वे कहते हैं कि जिस इस्लामी धर्मांधता का उन्हें सामना करना पड़ा है उसी धर्मांधता के कारण ईरान-इराक युद्ध चल पड़ा है। उस प्रदेश के मुसलमान, याभिदियों को शैतानपूजक कहते हैं। किन्तु याभिदी लोग कहते हैं कि वे शैतान को पूज्य नहीं मानते। किन्तु भगवान के भी मनमानी का विरोध करने वाले शैतान के प्रति उन्हें आदर अवश्य है। उनका कहना है कि कुर्दी, तुर्क और अरब लोगों में कई जमातें याभिदियों जैसी ही हैं (इस्लाम से भिन्न)। याभिदियों की कई प्रथाएँ मुसलमानों को पसन्द नहीं आतीं, जैसे मदिरापान और सूकर के मांस का भक्षण। उनमें मुसलमानों जैसा बहुपत्नीत्व का रिवाज नहीं है। उनमें चार प्रमुख सामाजिक विभाग हैं—राजपुत्र, पुरोहित, योद्धा और कर्मचारी। पुनर्जन्म में उनका विश्वास है और वे अग्नि को पूज्य मानते हैं।"

ऊपर दिए उद्धरण से स्पष्ट है कि अफगानिस्तान से अल्जीरिया, मोरक्को तक जितने देश हैं उनमें ऊपर से मुसलमान दिखने वाली जनता में कई जमातें ऐसी हैं जो गुप्तता से अपनी प्राचीन वैदिक मान्यताएँ, रीति-रिवाज, रहन-सहन आदि बड़ी निष्ठा से टिकाए हुए हैं। उन पर से इस्लामी दबाव यदि किसी प्रकार हटा दिया जाए तो वे अपने आपको वैदिक धर्मी घोषित कर देंगी।

झुठलाया इतिहास

जब से ईरान पर इस्लाम थोपा गया तब से अन्य मुसलमान देशों का अनुकरण करते हुए ईरान ने भी निजी इतिहास झुठला दिया।

Sir W. Drummond नाम के अंग्रेज लेखक इस्लाम की इस हेराफेरी के सम्बन्ध में लिखते हैं (Tavernier 1. 2. Neibuhr Volume 2. Howel's Travels etc.) कि यहूदियों के नेता जोना की कब्र दुष्टता से उसके ऊपर मस्जिद बनाकर (यहूदियों से) छुपाई गई है। मोसल नगर की बाबत ड्रमण्ड लिखते हैं कि "ईरानी लोग ऐसा ढोंग करते हैं कि मोसल नगर का निर्माता Tehmureth उर्फ Tahamartha था।" स्पष्टतया वह वैदिक नाम त्रिमूर्ति है।

Origines or Remarks on the origin of several Empires, States and cities by the Rt. Hon'ble Sir W. Drummond, (Printed by A. J. Valpy, Red Lion Courts, Fleet Street, London, Sold by Baldwin & Co. 1826) ग्रन्थ के खण्ड १ पृ० १६५ पर ड्रमण्ड लिखते हैं, "ईरानी लोग निजी राजकुल को प्राचीनतम और सबसे शक्तिमान मानते हैं। हिन्दुओं के जितनी ही वे ईरानी सभ्यता की प्राचीनता का दावा करते हैं। ईरानी इतिहासकार समझते हैं कि भारत को छोड़ सारे एशिया खण्ड पर ईरान का राज्य था। उन्होंने ईरान के साम्राज्य की सीमाएँ अनाप-शनाप बता रखी हैं।"

अरब-लेखकों के निजी बड़प्पन के अन्धाधुन्ध दावे यूरोपीय लेखक आँखें मूंदकर ज्यों-के-त्यों दोहराते रहते हैं ऐसा ड्रमण्ड साहब का आक्षेप है। निजी ग्रन्थ के पृष्ठ २०२ पर ड्रमण्ड साहब लिखते हैं, "अरबों के दावे

यूरोपीय लेखक और ईरानी लेखक भी दोहराते रहते हैं। उन दावों के अनुसार समरकन्द, कन्दहार और अन्य बहुत से नगर सिकन्दर महान (Alexander The Great) ने बसाए और वे नाम इस्कन्दर नाम के अपभ्रंश हैं। यदि वे दावे सही माने जाएँ तो सिकन्दर के पूर्व अनेक राजकुलों ने जितने नगर बसाए होंगे, उनसे कहीं अधिक सिकन्दर ने अकेले बसाए होने चाहिएँ। सिकन्दर ने तो पुराने नगरों पर ही निजी नाम थोप दिया होगा। ग्रीक लोगों ने कई नगरों को अलेक्जेंड्रिया नाम दे दिया होगा यद्यपि उन नगरों के नागरिक निजी नगर का उल्लेख किसी और नाम से करते होंगे।"

हमें तो यह भी आशंका है कि सिकन्दर नाम का कोई विजेता यूनानी आक्रामक था भी या नहीं क्योंकि भारत के इतिहास में उसका कोई उल्लेख नहीं और यूनानी उल्लेख भी सारे कहे-सुने हैं। मेगस्थनीज, अॅरिअन आदि जो सिकन्दर की सेनाओं के साथ थे और उन्होंने आँखों-देखा हाल लिखा ऐसा कहा जाता है, उनके लिखे वर्णन उपलब्ध नहीं हैं। साथ ही यूनानी लेखकों में धौंसबाजी बड़ी चलती थी।

अलेक्जेण्ड्रिया आदि नगरों के नाम सिकन्दर के नाम पर आधारित हैं यह धारणा सही नहीं है। वह अलक्ष्येन्द्र मूल संस्कृत नाम है जिसका अर्थ है अदृश्य देवता।

अश्वमेध यज्ञ

हेरोडोट्स और Xenophon आदि इतिहासकारों ने लिखा है कि ईरानी लोग अश्वमेध यज्ञ करते थे। इससे स्पष्ट है कि वे वैदिकधर्मी थे।

ईरानी लोगों की धारणा है कि उनकी संस्कृति सबसे प्राचीन है और सृष्टि उत्पत्ति के समय से है। ईरानियों ने और अन्य सभी लोगों ने, सही अर्थ में समझना आवश्यक है। महाभारतीय युद्ध तक ईरान, भारत आदि सारे प्रदेश एक ही विश्वव्यापी वैदिक संस्कृति के अंग थे। जब किसी प्रदेश में किसी कारण विद्रोह होता था तो उसके विरुद्ध वैदिक सम्राट् सैनिक कार्यवाही करते थे। कालिदास के रघुवंश में ईरान में प्रकट हुए एक विद्रोह को किस प्रकार रघु राजा ने दबाया उसका वर्णन है। लिखा है कि रण में

दाढ़ीवाले ईरानी विद्रोहियों के शवों के मुख ऐसे दीखते थे जैसे मधुमक्खियों के छत्ते हों।

प्राचीनकाल में ईरान नाम का कोई भिन्न राष्ट्र न होने से ईरान की अधिसत्ता अन्य देशों पर रही है इस तरह की आधुनिक ईरानी मुसलमान जनता की कल्पना निराधार है। जो ईरानी लोग मुट्ठी-भर अरबों के आक्रमण से भयग्रस्त होकर अपनी प्राचीन वैदिक सभ्यता को छोड़ मुसलमान बन गए, उन्हें निजी बहादुरी की कल्पना करना शोभा नहीं देता।

समरकन्द और मार्कण्डेय

निजी ग्रन्थ के पृष्ठ ३२२ पर ड्रमण्ड साहब लिखते हैं कि "ग्रीक इतिहासकार ओरियन के अनुसार मारकण्डा यह सागदियाना की राजधानी थी। मारकण्डा शायद वही नगर है जिसे ईरानी लोग आजकल समरकन्द कहते हैं।"

यह बड़ी महत्त्वपूर्ण सूचना है। मार्कण्डेय प्रसिद्ध पौराणिक ऋषियों में से एक हैं। रशिया यह ऋषीय देश है। इसी कारण उसमें विविध वैदिक ऋषियों के नाम पाए जाते हैं। जैसे काश्यप नाम से कास्पियन सागर है। वाल्मीकि नाम के अपभ्रंश से काल्मीक प्रदेश है और मार्कण्डेय नगर अब समरकन्द कहलाता है। सागदियाना राजकुल भी प्राचीन शुद्धोदन नाम है। उसी कुल के राजमहल को तैमूरलंग की कब्र कहा जा रहा है।

इस्लामपूर्व जो ईरान का ऐतिहासिक कर्तव्य था उसे मुसलमान बनने पर ईरानियों ने किस तरह विकृत किया उसका उदाहरण देते हुए ड्रमण्ड ने लिखा है कि "ईरान की इस्लामपूर्व लिपि में जो नाम या विवरण था उसे इस्लामी अरबी लिपि में लिखते-लिखते उनका अर्थ, उच्चार आदि सारा बदल दिया गया। (ड्रमण्ड के ग्रन्थ के पृष्ठ ३२१ पर यह उल्लेख है)। इस्लाम-पूर्व ईरानी लोगों की लिपि झेंद या पहलवी थी।

वैदिक विश्वसाम्राज्य

अनादिकाल से महाभारतीय युद्ध तक विश्वव्यापी वैदिक साम्राज्य था, यह जो हमारा सिद्धान्त है उसकी पुष्टि ड्रमण्ड साहब के ग्रन्थ के पृष्ठ ३६१ पर दिए ब्यौरे से होती है। वे लिखते हैं कि "विश्व के आरम्भ के

युगों में ईरान और भारत के नीति-नियम, कायदे-कानून आदि समान थे। वे सारे एक ही राजसत्ता के प्रजाजन थे। ईरानियों की प्राचीन भाषा झेंद, संस्कृत की ही एक शाखा थी। हिन्दुओं में प्राचीन परम्परा के अनुसार ईरानी और चीनी दोनों भारतीय अधिसत्ता के आधीन थे। मनुस्मृति में स्पष्ट उल्लेख है की पहलवी, चीनी आदि कई क्षत्रिय जातियों ने वैदिक नीति-नियमों का उल्लंघन किया।" आगे चलकर पृष्ठ ३८० पर ड्रमण्ड साहब कहते हैं कि "इतना प्रमाण होते हुए भी निजी अभिमानी वृत्ति के कारण ईरानी लोग कबूल नहीं करते कि वे कभी परतंत्र थे।"

ड्रमण्ड साहब का आरोप ठीक ही है क्योंकि ईरानी लोग कई बार परतंत्र हुए हैं। रघु ने उनका पराभव किया था, यूनानियों ने किया, अरबों ने किया। हम तो यहाँ तक कहेंगे कि जब तक ईरान इस्लामी बना रहेगा तब तक वह अरबों का गुलाम ही माना जाना चाहिए। जिस देश को निजी प्राचीन लिपि, भाषा, धर्म और संस्कृति अरबों के आक्रमण के कारण छोड़नी पड़ी वह देश स्वतंत्र कहलाने का अधिकारी नहीं है।

ड्रमण्ड के ग्रन्थ के खण्ड २ के पृष्ठ १३० पर दिया ब्यौरा भी हमारे वैदिक विश्वसाम्राज्य के सिद्धान्त की पुष्टि करता है। वे लिखते हैं कि, "अनेक प्रमाणों से प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीय, ईरानी, तार्तर और चीनी लोगों की न्याय-व्यवस्था, धर्म और विद्या समान थे। तुराण (यानी तार्तर और चीन) के लोग ईरानियों जैसे ही सूर्यपूजक थे। अश्वमेध यज्ञ करते और सूर्य को रथ अर्पण करते। चीनी लोग भी सूर्यभक्त थे और वे ग्रहपूजन भी करते थे"।

मनुस्मृति का प्रमाण

पहलवी उर्फ ईरानी, चीनी आदि लोग एक ही वैदिकसमाज के सदस्य होते हुए भी कर्त्तव्यच्युति और ब्राह्मणों का मार्गदर्शन खोने के कारण कुछ समय पश्चात् विभक्त हो गए। इस सम्बन्ध में मनुस्मृति के वचन इस प्रकार हैं—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमा क्षत्रिय जातयः।
वृषहत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन वा॥

पौड्रकाश्चौव्र द्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
पाददाः पहलवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥

वैदिक सूर्य शार्दूल भारत का राजचिह्न

ड्रमण्ड ने उल्लेख किया है कि "A lion surmounted by the solar orb, was the device of the ancient monarchs of India यानी "सिंह पर सवार सूर्यगोल प्राचीन भारतीय शासकों का राजचिह्न होता था।"

संस्कृत में "शार्दूल" शब्द सिंह, बाघ और चीता जाति के पशुओं के लिए प्रयोग किया जाता है। सूर्य, क्षत्रिय राजकुलों का जनक माना गया है। सिंह (या बाघ, चीता आदि) पराक्रम, धैर्य, शौर्य आदि का जीता-जागता प्रतीक माना गया था। अतः भारतीय हिन्दू आर्य वैदिक राजचिह्न सूर्य ज़िस वस्तु या वास्तु (यानी इमारत) पर हो वह सनातन आर्य, हिंदु वैदिक धर्म की मानी जानी चाहिए और ठीक वही चिह्न रशिया देश के समरकन्द में उस विशाल महल के प्रवेशद्वार के दोनों ऊपरले कोनों पर अंकित है जिस इमारत को तैमूरलंग की कब्र कहा जाता है। कोई यह विचार नहीं करता कि यदि तैमूरलंग के प्रेत के आसरे के लिए इतना बड़ा महल बनाया गया तो जीवित तैमूरलंग के उससे कई गुना विशाल और सुन्दर पचासों महल होंगे। वे कहाँ हैं ?

ऐसा विचार करने पर यह ध्यान में आता है कि फरगान (यानी प्रकण्व) प्रदेश के मार्कण्डेय (समरकन्द) नगर में जो विशाल महल तैमूर की कब्र कहा जाता है वह वहाँ के प्राचीन राजाओं का महल है। क्योंकि उसके प्रवेशद्वार के दोनों कोनों में जो राजचिह्न खुदा है उसे अभी भी वहाँ की स्त्री स्थलदर्शिका (Guides) "सूरसाडूल" कहती हुई यह कबूल करती हैं कि "सूरसाडूल" का अर्थ उन्हें ज्ञात नहीं। वह स्पष्टतया "सूर्यसार्दूल" शब्द है। यह संस्कृत शब्द और वैदिक राजचिह्न इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि वह उस प्रदेश के प्राचीन संस्कृत भाषी हिन्दू राजकुल का महल है। रूस मे शाह-इ-झिंद (यानी जीवित राजा) नाम का एक अन्य भी प्राचीन हिन्दू राजमहल है।

भारत की बीकानेर रियासत में राजा और दरबारियों का जो क्लब यानी क्रीड़ामण्डल था उसका भी नाम 'साडूल क्लब' था। साडूल यह शार्दूल का अपभ्रंश है। उस मंडल के सदस्य सारे जगतसिंह, मानसिंह आदि सिंह ही हुआ करते थे। अतः उस मंडल का सिंह मण्डल उर्फ शार्दूल मंडल यानी 'साडूल क्लब' नाम पड़ा। इससे पाठक देख सकते हैं कि भारत का साडूल शब्द रूस के समरकन्द नगर में इसलिए अस्तित्व में है कि वहाँ भी वैदिक क्षत्रियों का साम्राज्य था। अमेरिका में जो Lions Club होते हैं उनका स्रोत ऊपर कहा हुआ वैदिक ही है।

अतः तैमूरलंग उसी इमारत में रहता था। उसके मरने के पश्चात् उस महल में तैमूरलंग के नाम से असली या नकली कब्र बना दी गई है। हो सकता है कि उस इमारत में स्थान-स्थान पर वैदिक देव मूर्तियाँ ही दबी हों। ऐसी कब्रें बना देने का उद्देश्य यह था कि बगैर कोई चौकीदार रखे उस इमारत की मिलकियत इस्लामी ही रहे। क्योंकि दुःखी, पवित्र इमारत समझकर अन्य कोई जमात उस इमारत पर कब्जा करने को न ललचाए।

शैव-पंथ

शिव, वैदिक त्रिमूर्ति के एक प्रमुख देवता हैं। शैव और वैष्णव ऐसा कोई विरोध या वैमनस्य वैदिक संस्कृति में नहीं है। वैदिक परम्परा में अनगिनत देवता रूप हैं। किन्तु रूप या आकार कोई भी हो वह पूरे देवत्व का प्रतीक होता है। वैदिक संस्कृति में आस्तिक से नास्तिक तक सबका अन्तर्भाव है। आस्तिक वालों में भी पूजा-पाठ, जाप और गुरु करने वाले कर्मकाण्डी व्यक्ति से किसी भी प्रकार का कोई कर्मकाण्ड न करने वाले और किसी भी गुरु को न मानने वालों का भी अन्तर्भाव होता है। वैदिक संस्कृति की प्रत्येक सदस्य से इतनी ही माँग है कि वह निस्वार्थ बुद्धि से और सेवाभाव से जीवन बिताए। तथापि विश्व में जहाँ-जहाँ शिव, राम, कृष्ण, गणेश आदि की मूर्तियाँ मिली हैं वहाँ कर्मठ वैदिक धर्म का पालन होता था यह निष्कर्ष अनिवार्य है।

इस संदर्भ में निजी ग्रंथ के दूसरे खण्ड के पृष्ठ ४०७-३५ में ड्रमण्ड साहब लिखते हैं, "प्राचीनकाल में अरब लोग शैवपंथी थे। महंमद…रब…

मोभेस···मैमोनी आदि से पूर्व अनेक युग तक अरबों में शिवभक्ति ही प्रचलित थी। सारे मानव उसी धर्म के अनुयायी थे···विश्व के लगभग सारे ही प्रगत लोगों का वही धर्म था···। विविध प्रकार के पत्थर—कोई गोल, कोई स्तम्भ के आकार का, कोई पिरॉमिड के आकार का, प्राचीन समय से पूजे जाते थे।"

वैदिक परम्परा में ऐसे प्रस्तरों को बाण, शालिग्राम, हनुमान, गणेश आदि के प्रतीक मानकर लोग पूजते ही थे।

हिंदु साम्राज्य का इराक प्रदेश

Lt. General Charles Vallancey का एक ग्रंथ है जिसका शीर्षक है Collectania De Rebus Hibernicus (मुद्रक थे Craisberry and Campbell, 10 Backlane, Dublin सन् १६०४) उसमें पृष्ठ ४६५ पर उन्होंने प्राच्यविद्या के विद्वान Sir William Jones का वक्तव्य उद्धृत किया है। Sir William Jones कहते हैं कि स्पष्ट प्रमाणों से और तर्क द्वारा यह बात सिद्ध हो चुकी है कि असीरीय और पिशदादी शासनों से पूर्व ईरान में एक बड़ा प्रबल राज्य प्रस्थापित था और वह वास्तव में हिन्दू राज्य था। वह सैकड़ों वर्ष रहा। अयोध्या और इंद्रप्रस्थ के हिन्दू राजकुलों से उसका इतिहास जुड़ा हुआ है।"

बेबीलोनिया-असीरिया

India in Greece ग्रंथ के लेखक एडवर्ड पोकॉक ने पृष्ठ १७८ पर लिखा है कि "बेबीलोनियन और असीरियन साम्राज्यों में सर्वत्र हिन्दू धर्म ही था। प्राचीन धर्मग्रंथों में पाए जाने वाले विपुल प्रमाणों से यह प्रतीत होता है कि उनके देव सूर्य होते थे। वे उसे बालनाथ कहते थे। उसका स्तम्भरूपी प्रतीक प्रत्येक पहाड़ी पर प्रत्येक कुंज में प्रतिष्ठित था। उसका एक दूसरा रूप था बछड़े का, जिसका पर्व हर पूर्णिमा को होता था।"

पोकॉक आगे लिखते हैं, "सीरिया राज्य का नाम सूर्य से पड़ा है। सारा प्रदेश भी सूर्य से ही सीरिया कहलाया। यह सूर्य योद्धा लोग बड़ी संख्या में पैलेस्टीन में बसे।" (पृष्ठ १८२)

सुमेरू पर्वत

वैदिक सभ्यता के पुराण-ग्रंथों में सुमेरू पर्वत का उल्लेख आता है। किशन नदी के किनारे से थोड़ी ही दूरी पर समारिया (Samaria) की पवित्र पहाड़ी है जो वैदिक परम्परा का सुमेरू पर्वत ही तो है।

बेबीलोनिया यह बाहुबलिनीय का अपभ्रंश है। वैदिक परम्परा में बाहुबली नाम के बड़े प्रख्यात सम्राट का उल्लेख आता है। वह इसी कारण कि उसका एक महान साम्राज्य था। उसी का नाम बाहुबलिनीय उर्फ बॅबिलोनिया इतिहास में प्रख्यात है।

पॅलेस्टाइन् प्रदेश भी पुलस्तिन् ऋषि का प्रदेश है।

२५

ईजिप्त उर्फ मिस्र का वैदिक अतीत

कई विख्यात यूरोपीय लेखकों का निष्कर्ष है कि भारतीय वैदिक संस्कृति ही मिस्र उर्फ ईजिप्त की सभ्यता का स्रोत है। ऐसे एक ग्रंथ लेखक हैं थॉमस मॉरिस (Thomas Maurice)। ईजिप्त की प्राचीन सभ्यता की बाबत उन्होंने एक निजी ग्रंथ में विपुल जानकारी दी है। इस ग्रंथ का लंबा-चौड़ा नाम इस प्रकार है—The History of Hindustan, its arts and its sciences as connected with the history of the other great empires. (Republished by Navrang, New Delhi 110012, India in 1974)। हिन्दी में उस ग्रन्थ का नाम है—"अन्य प्राचीन विशाल साम्राज्यों से सम्बन्धित हिन्दुस्तान और उसके शास्त्र तथा कलाओं का इतिहास।" (नवरंग प्रकाशन, नई दिल्ली-११००१२ ने सन् १९७४ में उस ग्रंथ को पुन: प्रकाशित किया।)

मॉरिस साहब लिखते हैं (पृष्ठ २६) "निमरोद नाम का ईजिप्त का एक प्राचीन सम्राट था। विलफोर्ड साहब का कहना है कि प्राचीन संस्कृत साहित्य में उसका मूल नाम निर्मर्याद अंकित है। वह बड़ा क्रूर, दुराचारी, अत्याचारी था। उसने बेशुमार पशुहत्या और नरहत्या की। उसने ऐसा एक उत्तुंग भवन बनवाया जो आकाश से टकराने वाला और पंचमहाभूतों से भी बलवान प्रतीत हो। मुख से ज्वाला निकालने वाले कराल नरसिंह अवतार की जो कथा है उससे बॅबेल नगर पर आ पड़ी आपत्ति का स्मरण होता है। परमात्मा ने कहा "चलो हम पृथ्वी पर अवतार लेते हैं।" ऐसा कहकर भगवान, नरसिंह अवतार में बॅबेल नगरी में उतरे। कृस्ति धर्मग्रंथ

बायबल के Genesis यानी "जन्म" या "आरंभ" XI-7 नाम के भाग में उल्लेख है।"

पृष्ठ २६ से ३० पर मॉरिस साहब के ग्रंथ में उल्लेख है कि "इसमें कोई संदेह नहीं कि जब मानवजाति तितर-बितर हुई तब जो लोग ईजिप्त में गए वे उस भयंकर (नरसिंह अवतार की) इतिहास की स्मृतियां साथ ले गए। उनका वही (नरसिंह अवतार) नाम था जो भारतीय परम्परा में है। और ईजिप्त में आधा नर और आधा सिंह ऐसी जो (Sphinx) नाम की अद्भुत प्रतिमा बनी है उसका स्रोत नरसिंह अवतार ही तो है। मैं यह पूर्ण आत्मविश्वास से कह रहा हूँ कि ईजिप्त के शिलालेखों में तथा इतिहास में नरसिंह के पूर्व के तीन (वैदिक) ईश्वरावतार मत्स्य, वराह, वामन आदि पाए गए हैं। उधर भारत में जगन्नाथपुरी के मन्दिर में कर्नल पीयर्स साहब ने ईजिप्त की Sphinx जैसी मूर्ति देखी जिसके स्त्रियों जैसे बड़े स्तन और सिंह का बड़ा मस्तिष्क तथा नख हैं। Plutarch, de Iside et Osirida कबूल करते हैं कि ईजिप्त के लोगों को स्वयं Sphinx की प्रतिमा एक बड़ा अनाकलनीय रहस्य था। किन्तु अब हम जानते हैं कि उसका उद्गम भारत है। प्रह्लाद के व्यक्तित्व और अब्राहम में बड़ी समानता है।

बाहुबलि उर्फ आर्मस्ट्रांग (Armstrong)

मॉरिस साहब का दिया हुआ ब्योरा बड़ा महत्त्वपूर्ण है। किन्तु हम उसमें कुछ संशोधन सुझाना चाहेंगे। प्रथम तो बॅबिलोनिया नाम का ही विचार करें। वह मूल शब्द नहीं है। बाहुबलिनीय यानी बाहुबली का राज्य अथवा बाहुबली का प्रदेश ऐसा उसका नाम है। बाहुबलि एक प्रख्यात वैदिक सम्राट था।

कोई प्रश्न उठा सकते हैं कि बॅबिलोनिया यह बाहुबलि का अपभ्रंश कैसे हो सकता है ? पश्चिमी देशों में बाहुबलि नाम ज्ञात था इसका क्या प्रमाण है ? तो इन प्रश्नों को हमारा उत्तर यह है कि पश्चिमी यूरोपीय लोगों में Armstrong नाम होता है। उनके व्याकरण की दृष्टि से Armstrong नाम अशुद्ध और गलत है। आंग्ल भाषा में विशेषण पहले होता है और नाम बाद में जैसे "काला कव्वा"। वे "कव्वा काला" कभी

नहीं कहेंगे। किन्तु Armstrong नाम में तो उल्टा क्रम है। नाम Arm (बाहु) पहले आता है और उसका विशेषण Strong (यानी 'सशक्त') बाद में। यह इसलिए हुआ कि Arm (यानी 'बाहु') और Strong (यानी बलि) यह बाहुबलि इस वैदिक नाम का ज्यों-का-त्यों रूपान्तर है। अत: यूरोपीय लोगों में पड़ा Armstrong नाम इस बात का प्रमाण है कि यूरोप में वैदिक साम्राज्य के अन्तर्गत बाहुबलि की भी अधिसत्ता थी, तभी तो वह नाम प्रचलित हुआ।

जगन्नाथपुरी के मंदिर में भी Sphinx की प्रतिमा बनी हुई है ऐसा मॉरिस साहब का कथन यह सिद्ध करता है कि Sphinx भी वैदिक देवता ही हैं। किन्तु जब से ईजिप्त के लोग मुसलमान बना दिए गए वे धीरे-धीरे Sphinx का दैवी महत्त्व भूल गए।

बॅबिलोनिया में नरसिंह अवतार हुआ था और कृस्ति धर्मग्रंथ बायबल में उसका उल्लेख है, यह मॉरिस साहब द्वारा उपलब्ध कराई जानकारी बड़ी महत्त्वपूर्ण है। अत: बायबल में वैदिक संस्कृति के अन्य भी उल्लेख ढूंढ निकालना आवश्यक है। इस नए दृष्टिकोण से बायबल का बारीकी से अध्ययन किया जाए तो प्राचीन विश्वव्यापी वैदिक संस्कृति के बहुत उल्लेख मिलेंगे। बायबल में दी गई अनेक कथाएँ वैदिक संस्कृति की कथाओं के ही विकृत रूप होंगे।

मॉरिस साहब के कथन में हम एक संशोधन करना चाहेंगे कि ईजिप्त में पाई जाने वाली Sphinx रामसिंह की प्रतिमा है न कि नरसिंह अवतार की। नरसिंह अवतार में मुख सिंह का और शरीर मानव का था, Sphinx में चेहरा राम का और शरीर सिंह का है। पाश्चात्य देशों में राम को "शेरदिल" यानी "सिंह के हृदय वाला" कहते थे। इसका प्रमाण यह है कि यूरोप के लगभग सारे ही देशों में Richard (रामचन्द्र का अपभ्रंश) The lion-hearted (सिंह हृदय वाला) की दंतकथाएँ प्रचलित हैं। उन दंतकथाओं में रामायण के ही अनेक प्रसंगों के वर्णन पाए जाते हैं। यह हम अध्याय ११ में बता ही चुके हैं। Sphinx रामसिंह की प्रतिमा है इसका और एक विवरण हम यहाँ देना चाहेंगे। गर्दन के कुछ नीचे बाईं तरफ शरीर में हृदय का स्थान होता है। अत: गले तक का शरीर सिंह का और ऊपर चेहरा

राम भगवान का यह Sphinx प्रतिमा में दिग्दर्शित है।

दूसरा एक प्रमाण यह है कि पूर्वकाल से यूरोपीय लोग तथा ग्रीक इतिहासकार आदि ईजिप्त का नाम AEgypt लिखा करते हैं। Egypt तो आजकल के लोग लिखते हैं। प्राचीन AEgypt नाम सही है। वह संस्कृत वैदिक "अजपति" शब्द है। रामचन्द्र जी को उनके पूर्वज रघु से राघव या रघुपति कहते हैं। उसी प्रकार राम के दादा (यानी दशरथ के पिता) "अज" होने से राम "अजपति" भी कहलाते हैं। अतः ईजिप्त यह देश अजपति राम का नाम धारण करता है। राम ही उस देश के राष्ट्रदेवता हैं। इसी कारण पिरामिडों के आगे रामसिंह की विशालकाय प्रतिमा उस प्रदेश के रक्षक-देवता के रूप में प्रतिष्ठित है।

राम के ही नाम से बसे उस प्रदेश में वहाँ के राजाओं के नाम भी सयामी राजकुल के समान राम पर ही आधारित रामेशस् प्रथम, रामेशस् द्वितीय आदि होते थे। रामेशस् यानी राम + ईशस् यानी राम ही परमात्मा स्वरूप हैं। ईजिप्त के प्राचीन राजाओं को फॅरोहा कहते हैं।

पाकिस्तान के चित्रल प्रदेश के राजा-प्रजा को मुसलमान बने लगभग एक सहस्र वर्ष हो गए हैं फिर भी उन लोगों की बोलचाल में भारत जैसा ही राम नाम प्रयोग होता है।

आंग्ल Conch शब्द मूल संस्कृत शंख ही है। लोहित सागर उर्फ (Red Sea) में बड़े-बड़े और सुन्दर-सुन्दर शंख पाए जाते हैं। पूरे अफ्रीका खण्ड का आकार भी शंख जैसा है। प्राचीन ईजिप्त में एक "रूपवती" नगरी थी। ग्रीक इतिहासकारों ने उसे रापता लिखना आरम्भ किया।

"अफ्रीका खण्ड के एक विस्तीर्ण प्रदेश को शर्मस्थान कहते थे। उसी का अपभ्रंश शर्म या शेम् हुआ। बबेल नगर में एक बड़ी ऊँची कमल के आकार की विशाल गोल इमारत थी। बायबल में उसका उल्लेख Tower of Babel नाम से हुआ है। वह इमारत कुमुद्वती नदी के किनारे थी। उसका ही आगे चलकर यूफ्रेट्स (Euphartes) नाम पड़ा। मॉरिस के ग्रंथ के पृष्ठ ४४-४६ में यह जानकारी दी गई है।

मॉरिस के ग्रन्थ के पृष्ठ ३२२ पर उल्लेख है कि Apocryphal Gospel नाम का कृस्ती धर्मग्रन्थ है। उसमें कृष्ण का कालिया नाग से जो

युद्ध हुआ उसका उल्लेख पृष्ठ १३३ पर है। वह उल्लेख इस प्रकार है, 'एक नाग द्वारा एक खिलाड़ी को दंश करने के कारण एक अवतारी बालक उस नाग से झपट पड़ा। उस खिलाड़ी के व्रण से विष वापस चूस लेने को बाल भगवान ने नाग को बाध्य किया। तत्पश्चात् बाल भगवान द्वारा उस नाग को शाप देने पर तड़फड़ाकर वह नाग मर गया। इस प्रकार भारतीय दंत-कथा तथा कुराण जिसे हम अरबी दन्तकथा कह सकते हैं और ईसाई Apocryphal Gospels का निकट सम्बन्ध है।"

ऊपर दिए उद्धरण में कालिया की कथा भारत की वैदिक परम्परा, ईसाई ग्रन्थ और इस्लामी कुराण इन सब में है, ऐसा कहा गया है। तीनों में वैदिक परम्परा ही सर्वाधिक प्राचीन है। अतः वही अन्य दोनों का स्रोत है। इसी से सिद्ध होता है कि विश्व में सर्वत्र वैदिक धर्म ही था।

Count Biornstierna नामक लेखक का ग्रन्थ है 'The Theogony of Hindus'। उस ग्रन्थ के पृष्ठ ४३ से ४६ पर उन्होंने लिखा है—"भारतीय पुराणों के कई नाम ईजिप्त की दन्तकथाओं में पहचाने जा सकते हैं। उदाहरणार्थ ईजिप्तीय हय-गोप (Haye-Gopatians) लोगों के परमेश्वर Ammon कहलाते थे। वह हिन्दुओं का ॐ ही है। ब्राह्मणों के शिव देवता ईजिप्त के जिस मन्दिर में हैं उसके दर्शनार्थ सिकन्दर ने जिस नगर की यात्रा की थी उस नगर से अभी भी उसका नाम जुड़ा हुआ है। वह नगर है Alexandria"। इस कथन से स्पष्ट है कि Alexandria नगर एक प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय शिवतीर्थ था।

प्राचीन ईजिप्त में वैदिक नाम पाए जाते हैं, यह उपरोक्त लेखक का निष्कर्ष योग्य है। हम उसका एक उदाहरण दे सकते हैं। प्राचीन ईजिप्त की एक प्रसिद्ध रानी का नाम क्लिओपात्रा था। महाराष्ट्र के एक स्त्री सन्त का नाम कान्होपात्रा था। भारत के उड़ीसा प्रान्त में "महापात्रा" नाम तो लाखों व्यक्तियों का है। पत्र, पात्र, पात्रा आदि के कई अर्थ हैं। वे सभी शब्द भारतीय वैदिक परम्परा के हैं।

कौंट बिओर्नस्टिअर्ना जैसे यूरोपीय लेखक वैदिक आर्य, सनातन हिन्दू धर्म को ब्राह्मण धर्म कहने के बड़े आदी हो गए हैं। वह नाम इसलिए अयोग्य है क्योंकि ब्राह्मण वैदिक समाज का केवल एक-चौथाई वर्ग था। जिस

समाज में चार वर्ग हों उसे एक ही नाम से पुकारना ठीक नहीं।

ऊपर उल्लिखित लेखक के ग्रन्थ में ईजिप्त की वैदिक परम्परा की बाबत पृष्ठ ४० से ४६ पर और भी कई बातें कहीं गई हैं जो इस प्रकार हैं—"Neibuhr, Valentia, Champollion तथा Waddington। इन विद्वानों के अनुसार ईजिप्त के उत्तर प्रान्तीय देवस्थान दक्षिण प्रान्तीय देवस्थानों से अधिक प्राचीन हैं। उन देवस्थानों से पता चलता है कि भारत ही ईजिप्त की सभ्यता का स्रोत है।

"Abydos और Sais के मन्दिरों में पाए गए इतिहासों का उल्लेख Josephus, Julius, Africanus और Eusebius ने किया है। वे सभी कहते हैं कि ईजिप्त की धर्मप्रथा भारत वाली ही है।

"Manetho' कहते हैं कि ईजिप्त के राजकुलों के इतिहास से (पुराणों में वर्णित युगों-युगों के इतिहास के अतिरिक्त) हिन्दू राजपरम्परा अधिक प्राचीन है।

"आप (उर्फ आब या अबु) का संस्कृत अर्थ है "जल" और सिन्ध उर्फ सिन्धु नदी है। अत: अबुसिन्धु उर्फ Abyssinia नाम का अफ्रीका खण्ड का जो प्रदेश है उसके नाम से प्रतीत होता है कि सिन्धु के किनारे से आए भारतीय लोग अबीसीनिया में बसे थे।"

ऊपर उद्धृत प्रमाणों से Biornstierna इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि 'धर्म तथा संस्कृति में ईजिप्त से भी बढ़कर विश्व की प्राचीनतम परम्परा भारतीय ही है।"

ईजिप्त के वैदिक चिह्न

बिओर्नस्टिअर्ना (Biornstierna) लिखते हैं कि "भारत और ईजिप्त की धर्मप्रथाओं की तुलना करने पर उनमें बड़ी समानता प्रतीत होती है। दोनों में परमात्मा एक ही कहा गया है। फिर भी अनेक देवताओं की पूजा दोनों में होती है। त्रिमूर्ति की कल्पना, आत्मा का अस्तित्व, पुनर्जन्म, समाज के चार वर्ग—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह दोनों पद्धतियों के मुख्य लक्षण हैं। गंगा और नील (उर्फ नाइल) नदी के किनारे दोनों के प्रतीक भी वहीं हैं। गंगा-तट पर के मन्दिरों में जैसा शिवलिंग है वैसा

ईजिप्त के Ammon मन्दिर में भी है। ईजिप्त के अन्य देवताओं के मस्तिष्क पर भी वही (शिवलिंग) चिह्न दिखाई देता है। सूर्य का प्रतीक कमल भारत में जैसा माना जाता है वैसा ही ईजिप्त में भी माना जाता है। आत्मा के अमरत्व का प्रतीक भी दोनों देश में है। बाँझ स्त्रियों को मातृत्व प्रदान करने की शिवशक्ति भारत में जैसे मानी जाती है ईजिप्त के लोग Ammon में वही शक्ति मानते हैं। अरबी स्त्रियाँ मुसलमान बनने पर भी मातृत्व पाने की इच्छा से अम्मन के मन्दिर की परिक्रमा करती हैं।

फॅलस (Phallus) शब्द का गलत अर्थ

युरोपीय लोग शिवलिंग को फॅलस् कहते हैं और उसे पुरुष की जननेन्द्रिय के आकार का प्रतीक या चिह्न मानते हैं। यूरोपीय शब्दकोषों में शिवलिंग का आकार और नर की जननेन्द्रिय का आकार समान समझ कर दोनों को Phallus कहा जाता है। यह भारी भूल है। संस्कृत में "फलेश" का अर्थ है फल देने वाला ईश्वर। बाँझ स्त्रियाँ शिवजी की भक्ति कर "फल" यानी सन्तान माँगती रहती हैं। अन्य भक्त या आस्तिक-जन निजी कामना के अनुसार शिवजी की कृपा की याचना करते रहते हैं। सब फल की आशा करते हैं। भगवद्गीता में (मा कर्मफलहेतुर्भू:) भी इच्छा-पूर्ति को "फल" ही कहा है। अत: वह देने वाले शंकर भगवान का संस्कृत का "फलेश" नाम प्राचीन यूरोप में भी प्रचलित था क्योंकि वहाँ भी वैदिक सभ्यता और संस्कृत का प्रसार था। आगे चलकर जब कुछ लोगों ने शिव-लिंग और नर की जननेन्द्रिय में आकार की कुछ समानता देखी तो फलेश उर्फ फॅलस शब्द को नर के जननेन्द्रिय का अर्थ भी जोड़ दिया।

Eusebius नाम के ग्रीक इतिहासकार ने India as seen and known by Foreigners पुस्तक में लिखा है (पृष्ठ २०), "सिन्धु नदी के किनारे रहने वाले लोग ईजिप्त के समीप इथिओपिया प्रदेश में आकर बसे। मॅक्समूलर ने कहा है कि 'ईजिप्त तथा ग्रीक और असीरीय लोगों की दन्तकथाएँ हिन्दू पुराणों पर आधारित थीं। Theosophical Society नाम की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के भूतपूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय Col. Ol cott ने

लिखा है कि आजकल जिसे ईजिप्त कहते हैं वहाँ भारत के प्रगत लोग बसे और उन्होंने निजी कलाओं का प्रसार किया।

Bengsch Bey नाम के ईजिप्त के एक विद्वान ने उल्लेख किया है कि अति प्राचीनकाल में भारत से लोग आकर ईजिप्त में नाईल (नील) नदी के किनारे बसे। स्वयं ईजिप्त के लोगों में यह भावना व्याप्त है कि वे किसी अन्य अद्भुत देश से ईजिप्त में आ बसे। वह देश हिन्द महासागर के किनारे का पवित्र पन्त देश था। वह उन लोगों के देवताओं का मूल देश था। वह पंत देश भारत के अतिरिक्त अन्य कोई हो ही नहीं सकता।" यह उद्धरण मार्च, १८८१ के The Theosophist मासिक के पृष्ठ १२३ पर से लिया है।

राम का उच्चार अफ्रीका खण्ड में 'र्हाम' किया जाता था। कुछ समय पश्चात् 'र्हाम' शब्द से 'र' निकलकर केवल 'हाम' नाम रह गया। अफ्रीकी पाठ्य-पुस्तकों में लिखा होता है कि अफ्रीकी लोग कुशाइट्स् (Cushites) यानी कुश के प्रजाजन थे और कुश के पिता 'हाम' थे।

उधर अन्य प्रदेशों में राम नाम के और भी उच्चार होते रहे। जैसे तमिल में रामन्, आन्ध्र में "रामुलु", इटली में 'रोमन', 'रेमसे' और 'रेम्युलस्' और मुसलमानों में 'रामन्' या 'रोमन्' के बजाय 'रहमान'।

कुश का जुड़वाँ भाई लव था। लबीय उर्फ लीबिया यह अफ्रीकी प्रदेश उसी लव के नाम से है।

कौरव नगर

रामावतार के पश्चात् कालान्तर से कृष्णावतार हुआ। उस समय कौरव तथा पांडव अन्तिम विश्व सम्राट् थे। Cairo उर्फ काहिरा नगर उन्हीं कौरवों का नाम धारण करता है। मिश्र-देश की राजधानी कौरव उर्फ काहिरा कहलाती है। उस देश को मिश्र इसलिए कहा गया है कि उस प्रदेश में अफ्रीकी-यूरोपीय-अरब-भारतीय आदि अनेक जमातों का मिश्रण हुआ। मिश्र ब्राह्मण वहीं के हैं।

ईश्वर विश्वविद्यालय

कायरो उर्फ कौरव नगर (जिसे मुसलमान "काहिरा" नगर कहते हैं) में अल्अझर विश्वविद्यालय है। अझर यह ईश्वर का अपभ्रंश है। ईश्वर

शब्द के इफर, अफर, फर, फार आदि उच्चार विविध प्रदेशों में होते रहे हैं।

ईजिप्त की चित्रलिपि से ज्ञात होता है कि ईजिप्त को "कामित" देश कहते थे। संस्कृत में "का" या "कु" धातु का अर्थ बनता है "काला"। मृत् मिट्टी को कहते हैं। अत: कामृत: का हुआ अर्थ काली मिट्टी का देश। कामृत का ही उच्चार कामित प्रचलित हुआ।

ईजिप्त के लोग भारत को पंत उर्फ पंत्त कहकर उसे पण्डितों की दैवी भूमि मानते हैं।

ईजिप्त का प्राचीन इतिहास शिलाओं पर लिखा पाया गया है। उसमें Pharoah Sankarrah यानि राजा शंकर और रानी Hapsheput उर्फ Hatsheput ने कई प्रजाजनों को नौकाओं में बैठाकर सागर पार पंत(उर्फ भारत) देश की यात्रा पर भेजा था ऐसा उल्लेख है। वह लोग Ophir तट पर उतरे। Ophir यह सौवीर का अपभ्रंश है। सिंध प्रान्त का महाभारत के समय में सिन्धु-सौवीर नाम था। वे लोग ढाई वर्ष के पश्चात् वापस लौटे। किन्तु उस समय तक Pharoha Shankar-rah यानी शंकर राजा का देहान्त हो चुका था। यह ईसा-पूर्व लगभग १८०० वर्ष की घटना है।

प्राचीन समय में बुजुर्ग या श्रेष्ठ व्यक्तियों को श्रद्धा और धार्मिक भाव से "फ्रा" उपाधि लगाई जाती थी। सयाम आदि देशों में श्रेष्ठ धर्मगुरु आदि के नाम के पूर्व "फ्रा-बुद्धभक्त" या "फ्रा-बोधिसत्व" ऐसी "फ्रा" संज्ञा लगाई जाती है। ईसाई लोगों में केवल "फ्रा" न कहते हुए फ्रायर यानी प्रवर कहते हैं। प्रवर यानी ऋषि। ईजिप्त के प्राचीन राजाओं को भी "प्रवर" अर्थ से ही "फ्रा" यह संज्ञा लगती थी। क्योंकि वैदिक सभ्यता में राजा यह ईश्वर का पुरोहित या प्रतिनिधि कहलाता था। उस श्रद्धाभाव से उसे "फ्रा" कहा जाता है। फ्रा शब्द का ही कुछ समय पश्चात् "फरोह" या फॅरोहा रूप बना क्योंकि ईजिप्त के लोगों की चित्र या चिह्न लिपि होने के कारण मूल उच्चार विकृत हो जाया करते।

भारत को गए ईजिप्त के उन लोगों की सागर-यात्रा का वर्णन रानी के द्वारा लिखा गया है। उसमें कहा गया है कि उस बेड़े में कई नौकाएँ थीं। वे लोग देवताओं के उस देश (भारत) में कुछ समय रहे। राजा

पुरुहु ("पुरुषु" हो सकता है।) से उनकी भेंट हुई। लौटते समय वे भारत से बड़ी मूल्यवान सामग्री ले आए जिसमें सोना, चांदी, मोर, विविध प्रकार के रंग और चीतों की खाल थी।

वैदिक देवगण

ईजिप्त का देवता Isis वैदिक उषस् है। ईजिप्त का देव पिता (Ptah) यह संस्कृत (परम) पिता (परमेश्वर) है। ईजिप्त का देव Seb भारत का शिव है। ईजिप्त का देव "हर" तो शिव का नाम है ही। शिवजी की पत्नी को वे Hathor उर्फ Seket कहते हैं जो शक्ति का अपभ्रंश है। ईजिप्त का देव Bes, यह विष्णु उर्फ विष्णु था। ईजिप्त की देवता Aton संस्कृत का आत्मन् नाम है। Dr. Budge नाम के ईजिप्त के प्राचीन इतिहास के विद्वान हैं। वे लिखते हैं कि ईजिप्त के लोग एक परमेश्वर को मानते थे। उसे वह स्वयंभू, स्वयंनिर्मित, सर्वशक्तिमान, सनातन, विश्व का निर्माता कहते थे। उसे Nethr यानी "नाम रहित" कहा जाता था। "नेत्र" शब्द इस अर्थ से भी ईजिप्त के लोग ईश्वर को लगाते होंगे कि ईश्वर सारे प्राणियों के व्यवहार पर निगरानी रखता है या "नेति नेति" इस संस्कृत शब्द का भी वह अपभ्रंश हो सकता है। वेदान्त में ईश्वर का विश्लेषण करते हुए नेति यानी न + इति (ऐसा नहीं) यह वचन बार-बार आता है। जैसे कोई पूछे कि क्या ईश्वर काला है या गोरा? ऊँचा है या ठिगना? तो ऐसे सारे प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है "न + इति" यानी ईश्वर निर्गुण-निराकार होने से उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

पृथ्वी को शेष के माथे का सहारा

ईजिप्त के लोग पृथ्वी को गौ रूप भी मानते थे और वैदिक परम्परा के अनुसार शेष के माथे के आधार पर स्थित भी मानते थे।

वैदिक परम्परा में मूलतः शेष का 'गणिती' अर्थ है। जैसे १० फलों में से पाँच ले लिए तो शेष रहते हैं पाँच। इसी प्रकार सारे ब्रह्माण्ड में से पृथ्वी को निकाल लिया तो जो शेष (ब्रह्माण्ड) रह जाता है उसके आधार पर पृथ्वी टिकी हुई है। यही कल्पना वैदिक चित्रकारों ने उस गणितः शे

को प्राणी का रूप देकर "शेषनाग" पर पृथ्वी आधारित है ऐसा चित्र (Cartoon) खींचा।



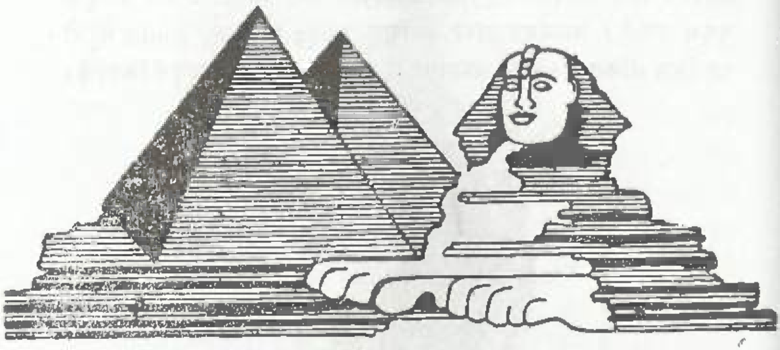
ईजिप्त में पिरॅमिड नाम के विशाल भवन हैं। उनका आकार उल्टे रखे हुए यज्ञ-पात्र जैसा होता है यानी तले में चौकोर और ऊपरली दिशा में नोकदार तिकोना। उस आकार में विशेषता यह देखी गई है कि उसके

अन्दर रखे शवों को कीड़े नहीं लगते। वह शरीर सैंकड़ों वर्ष तक मृत अवस्था में टिका रहता है। पिरॅमिड का नकशा बनाने वाले एक प्रवीण द्रविड़ ब्राह्मण स्थपति का चित्र ऊपर उद्धृत है। उसके शरीर पर भस्म तथा चन्दन के अष्टनामम् उर्फ अष्टचिह्न उसी प्रकार हैं जैसे सन्त तुलसीदास के चित्र में हम देखते हैं। अतः पिरॅमिड की रूपरेखा प्राचीन संस्कृत स्थापत्य ग्रन्थों के अनुसार बनी है। स्थपति का नाम देवेसर उर्फ देवेश्वर था। यह चित्र Egyptian Myth and Legend ग्रन्थ के पृष्ठ ३६८ पर है। आय्यंगर द्वारा लिखित Long Missing Links में भी यह चित्र अंकित है। हमने आय्यंगर के ग्रन्थ से यह चित्र उद्धृत किया है।



मेंफिस् यानी उत्तरी ईजिप्त के एक फॅरोहा राजा का यह चित्र है

काहिरा और अन्य नगरों के वस्तु संग्रहालयों (Museums) में ऐसे चित्र प्रदर्शित हैं। यह चित्र Long Missing Links नाम के ग्रन्थ से हमने उतारा है। उसके लेखक को यह चित्र Bible Dictionary नाम के ग्रंथ में पृष्ठ ५६ पर दिखाई दिया। American Review Committee द्वारा संकलित और प्रकाशित Bible ग्रन्थ से वह Bible Dictionary जोड़ी गई है।



विशाल पिरॅमिड और उनसे जुड़ी महाकाय स्फिंक्स् (Sphinx) की यह प्रतिमा आधुनिक विद्वानों के लिए एक बड़ी समस्या बनी हुई थी। AEgypt अजपति प्रदेश है। अतः ईश्वरावतार राम उसके रक्षक देवता हैं। उनके अतुल पराक्रम के कारण राम भगवान का रामसिंह नाम पड़ा। यानी वे सिंह जैसे वीर हृदय वाले थे। हृदय शरीर में गले से थोड़ा नीचे होता है, अतः ईजिप्त में सिंह के शरीर पर राम का मुख दर्शाने की प्रथा पड़ी।

Sphinx यह संस्कृत शब्द "सिंहस्" है। आंग्लभाषा में p अक्षर कई शब्दों में बेकार पड़ा होता है। उनमें p अक्षर का उच्चारण नहीं होता। जैसे pneumonia, pneumatic, psychology आदि शब्दों में। उसी आधार पर Sphinx शब्द में भी p अक्षर निकम्मा समझकर उसका उच्चारण न करने से शेष शब्द Shinx संस्कृत "सिंह" शब्द ही प्रतीत होगा।

अफ्रीका खण्ड के राजाओं को सिंह कहने की प्रथा उसी कारण पड़ी जैसे अबीसीनिया उर्फ इथियोपिया के सम्राट् को Lion of Judah यानी जूडा (साम्राज्य) का सिंह कहा जाता था। सारे फॅरोहा सम्राट् रामेशस् प्रथम, रामेशस् द्वितीय इस तरह राम ईशस् यानी राम भगवान ही कहे जाते थे।

पिरॅमिड शब्द में भी आरम्भ का p अक्षर बेकार समझकर उसका उच्चारण न किया जाए तो जो शेष "रॅमिड" या "रॅमिद्" बनता है। वह संस्कृत "राम-द" यानी "राम ने दिया हुआ" इस अर्थ का है।

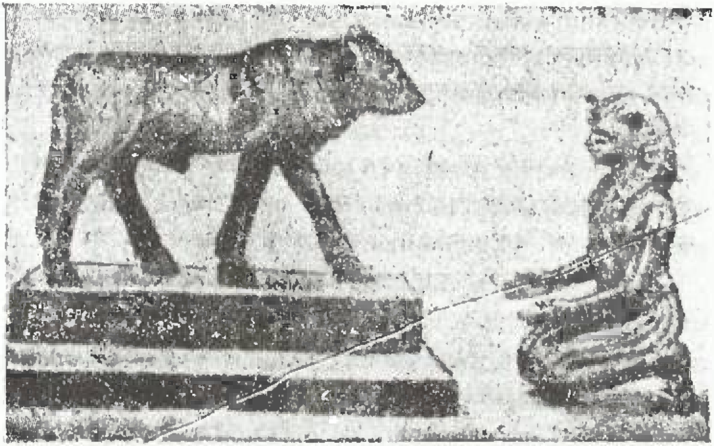
यद्यपि कुछ फॅरोहा सम्राटों के शव पिरॅमिड में पाए गए हैं वे विशाल भवन किसी को दफनाने के लिए बनाए गए इस कल्पना से हम सहमत नहीं। आज तक के अधिकांश यूरोपीय विद्वान यही कहते रहे हैं कि ईजिप्त के राजाओं को दफनाने के पश्चात् उनके शवों पर विशाल पिरॅमिड बनाए गए।

हम उस कल्पना से इसलिए सहमत नहीं हैं कि जिस सम्राट् का अपना कोई महल अस्तित्व में नहीं है और पिरॅमिड बनवाने वाले सम्राट् का भी कोई महल नहीं है तो मृत सम्राट् के अचेतन शव के आसरे के लिए कोई पिरॅमिड जैसी विशाल और खर्चीली इमारत बनवाएगा यह जंचता नहीं। यही नियम उन इमारतों पर भी लागू है जिन्हें लोग इस्लामी कब्रें समझते हैं।

हमारी राय में पिरॅमिड मरुस्थल के प्रासाद और दुर्ग के रूप में बनवाए गए। फॅरोहा सम्राट् उसी में रहते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् कुछ सम्राटों के शव पिरॅमिड में दफनाए गए।

मरुस्थल में तेज हवा से रेत इधर-उधर उड़कर ढेर के ढेर बन जाते हैं। रेत के ढेर पिरॅमिड को ढक न दें इस कारण उनका ऊपर का ढाँचा तिकोना और नोकीला बनाया जाता है। इस तरह पिरॅमिड की अनेक विशेषताओं के रहस्य हमने यहाँ सुलझा दिए हैं।

प्राचीन ईजिप्त में धार्मिक विधि की ऐसी प्रतिमाएँ या उनके चित्र काहिरा और अन्य नगरों के वस्तुसंग्रहालयों (Museums) में प्रदर्शित हैं और विविध ग्रन्थों में भी उद्धृत हैं। उनसे यह प्रतीत होता है कि भारत



के अनेक मन्दिरों में जिस प्रकार नन्दी बैल की प्रतिमाएँ होती हैं और उनकी लोग पूजा करते हैं वैसी ईजिप्त में भी होती थीं। ऐसी प्रतिमाओं के लगभग सारे ही मन्दिर इस्लामी आक्रामकों ने नष्ट-भ्रष्ट कर डाले।

वैदिक संस्कृति में नन्दी-पूजा से मानव को यह सबक सिखाया जाता था कि मानव एकाकी सब कुछ नहीं है। पशुओं का भी जीवसृष्टि में महत्त्वपूर्ण स्थान है। खेती आदि के काम में आने वाले बैल और दूध देने वाली गौएँ इनका मानवी जीवन में महत्त्वपूर्ण योगदान है। अतः बैल और गौओं को पूज्य मानना चाहिए। यूरोप के देशों में भी कृस्ती धर्म फैलने से पूर्व शिव और नन्दी की पूजा की जाती थी।

ऊपर उद्धृत चित्र जिन अन्य दो ग्रन्थों में पाया जाता है उनके नाम हैं—Egyptian Myth and Legends (पृष्ठ ७०) तथा अयंगर द्वारा लिखित Long Missing Links (पृष्ठ २८३)।

प्राचीन ईजिप्त में वैदिक-पूजा विधि

भारत में जिस प्रकार देव-पूजा विधि में छत्र, चामर प्रयोग किए जाते हैं वैसे ईजिप्त में भी होते थे। देवताओं के आगे धूप, अगरबत्ती, कपूर

आदि सुगन्धित द्रव्य भी जलाए जाते थे। होरस् उर्फ सूर्य देव का जुलूस भी निकाला जाता था।

भारत की तरह ही प्राचीन ईजिप्त में भी नदियों का जल पवित्र माना जाता था। वैदिक प्रथा के अनुसार ईजिप्त के राजा अपने आपको भगवान का प्रतिनिधि समझा करते थे। ग्रीक इतिहासकार Herodotus का कहना है ईजिप्त के राजा या तो ब्राह्मण होते थे या क्षत्रिय। युद्धमान अवस्था में भी नियमबद्ध धर्मयुद्ध करने की शिस्त भी ईजिप्त के राजा लोग पालते थे। शरण आने वालों या निःशस्त्र व्यक्ति के साथ छल करना या उसे ताड़न करना या अन्य प्रकार की हानि पहुँचाना, ईजिप्त की राजप्रथा में अयोग्य माना जाता था।

Heeren नाम के शास्त्रज्ञ ने 'ईजिप्त के लोगों के शीर्ष के नाप, आकार इत्यादि भारतीय लोगों के शीर्ष से मेल खाते हैं', ऐसा कहा है।

भारत में जिस प्रकार वरिष्ठों के सामने झुककर उनके पादस्पर्श से अभिवादन किया जाता है उसी प्रकार प्राचीन ईजिप्त में भी किया जाता था।

ईजिप्त के लोग फलज्योतिष का अध्ययन करते थे। मुसलमान बनाए जाने पर भी ईरानी और अरब लोगों का इतना गहरा सम्बन्ध रहा कि उनके लिखे कई प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थ इस्लामी प्रदेशों के ग्रन्थालयों में हैं। उनमें ग्रहों के देवतास्वरूप चित्र भी प्रदर्शित हैं।

भारत में जैसे प्रदोष, अमावस्या, एकादशी, संक्रान्ति, महाशिवरात्रि, चतुर्थी आदि प्रत्येक दिन का एक विशिष्ट ज्योतिषीय महत्त्व होता है जिसे ध्यान में रखकर विशिष्ट व्रत वैकल्यों का पालन किया जाता है, ठीक वैसी ही प्रथा प्राचीन ईजिप्त में भी थी।

ईजिप्त में पुरोहित दिन में तीन बार स्नान करते। तीर्थ, प्रासाद, पूजा-जल आदि के लिए वे सोने चांदी के पात्रों का प्रयोग किया करते थे।

प्राचीन इजिप्त में स्त्रियों का सम्मान किया जाता था।

क्षत्रियों को इजिप्त में खत्ती या खेता कहा जाता था। हिब्रू भाषा में उसी को "हित्ताइत" लिखते थे।

मित्तानी प्रदेश के एक राजा का नाम दशरथ था। कोई उसका उच्चार

तशरथ करते। उसकी भगिनी नेफेरतीत उर्फ नेफेरेटाइट ईजिप्त के नरेश Akhenaton की पत्नी थी। वह नाम अक्षय्यनाथन् था। नेफेरतीत और क्लिओपात्रा यह दो रानियाँ बड़ी रूपवान थीं, ऐसा इजिप्त के इतिहास में उल्लेख है।

हित्ताइत और मित्तानी राज्यों की सेनाओं में युद्ध होने के पश्चात् जो सन्धि हुई उसमें वरुण आदि वैदिक देवताओं को साक्षी कहकर सन्धि की शर्ते लिखी गई हैं। प्राचीनकाल में सर्वत्र वैदिक संस्कृति थी इसका यह कितना ठोस प्रमाण है।

हाथी, घोड़े, बैल आदि विविध पशुओं की देखभाल में प्राचीनकाल से भारतीय अत्यन्त प्रवीण थे। ऐसे ही एक तज्ञ भारतीय का नाम था किकूली। उसने मित्तानी राजकुल के लिए घोड़ों की उत्पत्ति, संवर्धन, प्रशिक्षण आदि के बारे में एक ग्रन्थ लिखा था। उस लेखक के कुल में वैदिक कोकिल यज्ञ करने की प्रथा थी, अतः उसका नाम किकूली पड़ा।

२६

सीरिया तथा असीरिया का वैदिक अतीत

वर्तमान इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में सीरिया, असीरिया, बॅबिलोनिया, मेसोपोटेमिया आदि को प्राचीनतम राष्ट्र कहकर उन्हीं से इतिहास आरम्भ किया जाता है। वह राष्ट्र तो केवल चार या पाँच सहस्र वर्ष प्राचीन हैं जबकि यह विश्व करोड़ों वर्ष प्राचीन है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इतिहास का कितना विशाल हिस्सा मानव को अज्ञात रह गया है। हम जो इतिहास पढ़ते हैं वह तो एक छोटा-सा अन्तिम भाग ही है और उसमें भी हमें यह नहीं बताया जाता कि सीरिया, असीरिया, आदि नाम पड़े कैसे? उनका अर्थ क्या है?

संघर्ष

वर्तमान समय में हम रूस और अमेरिका जैसे दो प्रबल राष्ट्रों का एक-दूसरे से विरोध और संघर्ष देखते हैं। यद्यपि दोनों का धर्म और रहन-सहन समान है। दोनों देश एक-दूसरे से दूर हैं। तथापि दोनों में पूंजीवाद और समाजवाद को लेकर बड़ा संशय है। दोनों को एक-दूसरे से भय है। उस भय के कारण दोनों राष्ट्र अनेक महासंहारी अस्त्र अधिकाधिक संख्या में सज्ज करते हुए एक-दूसरे को धमका रहे हैं। दोनों को शंका है कि कहीं स्वयं असावधानी या आश्वस्त अवस्था में रहते हुए विरोधी अचानक हमला न कर दें।

शायद इस तरह का संघर्ष और विरोध दो पक्षों में विश्व के आरम्भ से ही चलता आ रहा है। पुराणों में कृत, त्रेता, द्वापर आदि युगों में देव

और दानव, दानव और मानव आदि में वह संघर्ष वर्णित है यद्यपि दोनों विरोधियों की संस्कृति, रहन-सहन, बोलचाल आदि सारी वैदिक-पद्धति की थी और संस्कृत ही दोनों की भाषा थी। द्वापर के अन्त में तो कौरवों-पांडवों में जो भीषण युद्ध हुआ वह तो एक ही कुल के भाइयों में था। इससे यह प्रतीत होता है कि मानव जीवन में संघर्ष और विरोध अटल है।

वैसा ही संघर्ष सुर और असुरों में होता था। यह पुराणों में वर्णित है। अतः कौरवों-पांडवों के भीषण युद्ध के पश्चात जब वैदिक समाज और शासन टूट-फूट गए और सैकड़ों वर्षों की अशान्ति और अराजकता के पश्चात् दुबारा स्थिरता और सुव्यवस्था प्रस्थापित होने लगी तब सीरिया, असीरिया आदि खण्ड-राज्यों का निर्माण हुआ। वैदिक साम्राज्य के टुकड़े होने के कारण उनके नाम भी वही पड़े जो वैदिक संस्कृति में विरोधी पक्षों के नाम सुर, असुर थे। यह विघटन वैसे ही हुआ जैसे द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् ब्रिटिश साम्राज्य टूटकर आस्ट्रेलिया, कनाडा, भारत, श्रीलंका, पाकिस्तान आदि खण्ड-राज्य निर्माण हुए। बाहुबलिनीयम् यानी बाहुबली के साम्राज्य का अभ्रंपश बॅबिलोनिया हुआ। मेसोपोटेमिया यह मधीपट्टनीयम् का अपभ्रंश है।

सीरिया की वर्तमान सीमाएँ महाभारतीय युद्ध के समय से ही रही होंगी ऐसा नहीं है। हो सकता है कि प्राचीनकाल में सीरिया जो अभी है उससे भी विस्तृत प्रदेश रहा हो।

पामीरा (Palmyra)

P.V.N. Myers द्वारा लिखित एक ग्रंथ है "लुप्त साम्राज्यों के अवशेष" (Remains of Lost Empires), प्रकाशक हैं Harper and Bros. Newyork, 1875। उस ग्रंथ के पृष्ठ २१ से २४ पर सीरिया उर्फ सुर देश के प्राचीननगर पामीरा का वर्णन है। लिखा है कि "पामीरा नगरी रोमन साम्राज्य में पूर्ववर्ती प्रदेशों की रानी कहलाती थी। ऐसे विख्यात नगर की ऐतिहासिक जानकारी अब बड़ी सीमित-सी रह गई है। जबसे तैमूरलंग और उसकी विध्वंसक मुगल सेना ने उस प्रदेश पर धावा बोला तबसे उस नगर का ठिकाना भी मिट-सा गया। अरब लोग उस नगर का

स्थान जानते थे। दमस्कस और अलेप्पो नगरों में आने वाले यूरोपीय व्यापारियों को अरब लोग उस लुप्त नगर की तरह-तरह की अनोखी बातें सुनाया करते कि उसमें सुन्दर मन्दिरों के खण्डहर हैं, लम्बी सड़कें और उनके दोनों तरफ सुन्दर स्तम्भ मरुस्थल में दूर तक दिखाई देते हैं।

उन वर्णनों को सुनकर उन खण्डहरों को ढूंढने और देखने की योजना बनाई गई। किन्तु १७वीं शताब्दी के अन्त में ही कुछ संशोधक वहाँ पहुँच पाए। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में Wood और Darwin नाम के दो पर्यटक वहाँ पहुँचे और उन्होंने वहाँ के खण्डहरों के कई चित्र बनाए जिन्हें देखकर यूरोप की जनता दंग रह गई।"

उसी ग्रन्थ के पृष्ठ ३४ पर उल्लेख है कि "स्तम्भों से रेखांकित पामीरा नगर के रास्तों पर चलना कितना सुहावना लगता है।" पृष्ठ ३८ पर लिखा है कि "मन्दिर के अन्दर दुर्भाग्यवश तोड़-फोड़ दीखती है। धर्मान्ध मूर्ति-भंजक मुसलमानों को सुन्दर कलाकृतिओं को छिन्न-भिन्न करने में ऐसा असुरी आनन्द होता था कि मानो वे अल्लाह की बड़ी सेवा कर रहे हैं। वहाँ का मन्दिर मस्जिद के रूप में प्रयोग किए जाने से उसकी और भी दुर्दशा हो गई थी। वहाँ की नक्काशी, मूर्ति आदि पर कीचड़ का लेप चढ़ा दिया गया है। वहाँ के विशाल केन्द्रीय दालान में टहनियों, घास-फूस आदि से एक छत बना दी गई है और उसके नीचे पशु बाँध दिए जाते हैं।"

जहाँ-जहाँ इस्लाम का आक्रमण हुआ वहाँ इसी तरह सर्वनाश होता रहा। हरे-भरे प्रदेश सुनसान बन गए, प्राचीन वैदिक संस्कृति के नामोनिशान मिटते रहे। शिव, कृष्ण, गणेश आदि देव-प्रतिमाएँ तथा संस्कृत शिलालेख मिटाकर उन खण्डहरों को मस्जिद या कब्र घोषित कर दिया जाता रहा।

असीरीय पहनावा

Indian Antiquary ग्रन्थमाला के सन् १८७८ के खण्ड १, में पृष्ठ १८१ पर उल्लेख है कि "अभी-अभी Rawlinson द्वारा लिखित प्राचीन विश्व के पांच महाराजा (Five Great Monarchs of the Ancient World) ग्रन्थ पढ़ते-पढ़ते उसके खण्ड १, पृष्ठ ४३० पर असुरीय धनुर्धारी-पदातियों की पोशाक का वर्णन पाया। लिखा था कि वे केवल एक छोटी-

सी चड्ढी पहनते थे। वह कमर से आरम्भ होकर घुटनों से ऊपर आधे अन्तर तक ही शरीर ढकती थीं। एक चौड़े पट्टे से वह चड्ढी कमर पर कसी जाती। स्कॉटलैंड के लोग जिस प्रकार कमर से नीचे मध्य में Phili-



beg लटकाते हैं उसी प्रकार उसके कमरबन्ध से भी मध्य में एक पदम-सा लटका करता। भारत का कोई भी व्यक्ति उस चित्र को देखते ही कहेगा कि "अरे भाई यह हमारी धोती ही तो है।"

वैदिक नवग्रहों में से एक देवता का चित्र (उसका आसन षट्कोना है), आसन के प्रवेश मार्ग के दो स्तम्भ और षटकोना आकार के छह स्तम्भ इस प्रकार आठ स्तम्भ चित्र में दीखते हैं। यह आठ का आंकड़ा भी एक वैदिक विशिष्टता है। महंमद-अलतुसी नाम के ईरानी लेखक ने ब्रह्माण्ड और उसका गणितीय अध्ययन शीर्षक का जो ग्रन्थ लिखा है वह हाल में मिस्र देश के राष्ट्रीय ग्रन्थालय, काहिरा नगर में प्राप्य है। उसमें विविध ग्रह देवताओं के जो चित्र दिए गए हैं उसमें एक ग्रह देवता का यह चित्र है। इस्लामी पन्थ पुनर्जन्म, कर्मसिद्धान्त या फलज्योतिष विद्या में विश्वास नहीं रखता है। इस्लाम में किसी जीव का चित्र आँकना या उसे ईश्वर कहना, इस पर कड़ा प्रतिबन्ध है तथापि सोलहवीं शताब्दी के मुसलमान द्वारा लिखी वह पुस्तक सिद्ध करती है कि इस्लाम का स्थापन हुए एक सहस्र वर्ष बीत जाने पर भी मुसलमानों पर वैदिक संस्कृति का इतना जोरदार प्रभाव रहा है कि ऊपर उल्लिखित लेखक ने इस्लाम के सारे निर्बंध को लांघकर वैदिक प्रथा के फलज्योतिष की वह पुस्तक लिखी।

इस्लाम के प्रभाव के कारण वैदिक देवता का चेहरा भी मुल्ला-मौलवी या अल्लाह की पद्धति का ही चित्रकार ने बनाया है। किन्तु देवता के हाथों में परशु, डमरू (डफ), अगरबत्तियाँ, कमल की कली और चूहा बताए गए हैं। यह सारे वैदिक प्रथा के प्रतीक हैं। छाती से लगे हाथ में वेद की पोथी हो सकती है। देवता अर्धपद्मासन में बैठा है। बाहु ८ के बजाय सात क्यों हैं? क्या आठवां बाहु बनाने से अनवधानी से रह गया या सप्ताह के सात ग्रहों के वह सात बाहु हैं? इस समस्या का विवरण प्राय: वह ग्रन्थ पढ़कर मिलेगा। विविध इस्लामी ग्रन्थों में उनके प्रदेश की प्राचीन वैदिक संस्कृति का ब्यौरा देने वाले ऐसे हजारों ग्रन्थ हैं किन्तु धर्मांधता के कारण मुसलमान विद्वान उन्हें हाथ भी नहीं लगाते। अत: विश्व की वैदिक अतीत की वह विशाल सामग्री निकम्मी पड़ी है, न कोई उसे देखता है न पढ़ता है।

अबंस्थान का वैदिक अतीत

विश्व के अन्य देशों के नामों की भाँति अरबस्थान भी संस्कृत शब्द है। अर्वा यानी घोड़ा उर्फ अश्व। अर्वस्थान यानी घोड़ों का देश। अर्व-स्थान का ही अपभ्रंश अर्बस्थान बना। महाभारतीय समय से वैदिक तज्ञ उत्तम घोड़ों की उत्पत्ति उस प्रदेश में किया करते थे। इसी कारण अरबी घोड़ों की ख्याति फैली। उस समय अर्व-स्थान हरा-भरा प्रदेश था। तबसे वह वीरान मरुस्थल क्यों बन गया यह इतिहास की एक गहरी समस्या है। क्या उत्तरी अफ्रीका और अरबी प्रदेश में महाभारतीय समय के अण्वास्त्र के विस्फोटों से सारी हरियाली नष्ट हो गई ?

श्याम और स्मृतिग्रन्थ के अनुयायी लोग

अरब और यहूदी लोगों के रहन-सहन, भाषा आदि को सेमेटिक (Semetic) कहा जाता है। उस शब्द का ठीक विवरण किसी को ज्ञात नहीं है। यदि यहूदी और अरबी मुसलमान एक-दूसरे के कट्टर शत्रु हैं तो दोनों की संस्कृति सेमेटिक क्यों ? इसका उत्तर वैदिक संस्कृति में पाया जाता है। अरब लोग मुसलमान बनने से पहले क्रूर या अनपढ़ नहीं थे। वे सभ्य, शिक्षित और दयालु होते थे। जरूसलेम यह कृष्णनगर होने के कारण अरब और यहूदी दोनों के भगवान श्रीकृष्ण ही हुआ करते थे। श्रीकृष्ण का एक नाम श्यामसुन्दर है। उस श्याम भगवान के भक्तों का नाम सेमेटिक (Semetic) पड़ा।

दूसरा एक उद्गम यह स्मृति ग्रन्थों का है। महाभारतीय युद्ध के

पश्चात् विश्व के विविध प्रदेशों में खण्डित वैदिक समाज के विभिन्न पंथ चल पड़े। भारत में जैसे बौद्ध, जैन आदि पंथ निर्माण हुए वैसे यूरोप, अरब प्रदेश और अफ्रीका आदि में अनेक देवी-देवताओं और स्मृति-ग्रन्थों को महत्त्व देने वाले पंथ निर्माण हुए। उनमें स्मृति ग्रन्थों (Samaritan) के अनुयायी थे। हो सकता है ये Samaritans ही आगे चलकर Semetics कहलाने लगे या Samaritans की एक शाखा Semetic बन गई। मनु-स्मृति उनका प्रमुख पंथ ग्रन्थ रहा होगा। अत: स्मृतिक (Smritic) का अपभ्रंश सेमेटिक (Semetic) हुआ होगा।

उत्तरपथ

भारत के उत्तर में हिमालय के पार उत्तरपथ नाम का एक राजमार्ग विश्व के पाश्चात्य और पूर्ववर्ती प्रदेशों को जोड़ा करता था। उस समय वे प्रदेश सारे वैदिक विश्व साम्राज्य के हिस्से थे। राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ आदि के समय राजाओं के अश्व, सेना आदि उसी मार्ग से जाया करती। उस भूमि मार्ग से और सागर नौकाओं द्वारा भी भारत का सम्पर्क विश्व के विभिन्न प्रदेशों से बना रहता था। विश्व के कोने-कोने में वैदिक जीवन बसर करने के लिए लगने वाली विविध प्रकार की सामग्री और पण्डित; न्यायाधीश, राजदूत, निरीक्षक, अधीक्षक, प्रवचनकार, पुरोहित वर्ग, वैद्य लोग, स्थपति, शास्त्री, यात्री, शिक्षक, मन्त्री आदि भारत से निकलकर विश्व भर के मानव समाज के शासन तथा मार्गदर्शन के लिए आते-जाते रहते थे।

प्राचीन सम्पर्क के साधन

कई लोगों के मन में प्रश्न उठता है कि प्राचीनकाल में रेडियो, टेलिफोन, विमान आदि प्रवास, सम्पर्क या यातायात के द्रुतगामी साधन न होने पर वैदिक क्षत्रियों का विश्व साम्राज्य कैसे हो सकता है? उसका उत्तर यह है कि प्राचीनकाल में ऐसे साधन नहीं थे ऐसी कल्पना कर लेना ही गलत है। रामायण, महाभारत, पुराण, ग्रन्थ, शनिस्तोत्र, हनुमानस्तोत्र आदि प्राचीन साहित्य में वैसे ही द्रुतगति यातायात के साधनों का उल्लेख है जैसे आधुनिक युग में हमें ज्ञात हैं।

इसके अतिरिक्त यह भी देखें कि भारत की पश्चिमी और उत्तरी सीमा से निकलकर भारतीय सेना भूमि के रास्ते पूरे यूरोप में, अरब प्रदेशों में और अफ्रीका खण्ड में पहुंच सकती थी। केवल अमेरिका खण्ड और आस्ट्रेलिया खण्ड सागर पार रह जाते थे। तो वहाँ भी भारतीय नौकाएँ बराबर पहुँचती रहती थीं क्योंकि इण्डोनेशिया आदि सागरपार कई प्रदेशों में भारतीयों का साम्राज्य फैला हुआ था ही। ठीक आस्ट्रेलिया के किनारे के पास भी भारतीय नौकाओं के प्राचीन अवशेष पाए गए हैं। और जब चंगेजखान, नेपोलियन आदि विजेता दूर-दूर के प्रदेशों को जीत सकते थे तो वैदिक क्षत्रिय शासक क्या उन्हीं साधनों से दूर-दूर के प्रदेशों का शासन नहीं कर सकते थे।

वैदिक शासन की विशेषता

आधुनिक काल में ईसाई और इस्लामी पंथों का प्रसार होने पर विजेताओं को सैनिक बल पर विविध प्रदेशों को काबू में रखना पड़ता था। वैदिक शासन की बात उससे पूर्णतया भिन्न थी। ऋषि-मुनियों के मार्ग-दर्शन में वैदिक समाज शान्ति, समाधान, कर्त्तव्यपरायणता आदि में जीवन बिताता था। चातुर्वर्ण्यधर्माश्रम पद्धति से चलने वाला वैदिक समाज स्वयं शासित होता था। पुरोहित वर्ग, न्यायाधीश, शास्त्री, पण्डित, ऋषि-मुनि आदि की निगरानी में समाज के विविध वर्ग अपने-अपने निहित धर्म-कर्म में रत रहते थे। अतः समाज के अन्तर्गत व्यवहार में पुलिस या सेना द्वारा हस्तक्षेप की कभी आवश्यकता ही नहीं रहती थी। इससे आधुनिक शासक एक अच्छा सबक यह सीख सकते हैं कि सामाजिक जीवन सुचारू रूप से चलाने के लिए बचपन से प्रत्येक नागरिक में धर्माचरण, कर्त्तव्य-पालन आदि की निष्ठा दृढ़मूल कराना आवश्यक है। ऐसी व्यवस्था हो जाने पर दंगा-फसाद की कोई घटना होती ही नहीं।

अर्बस्थान से भारत का यातायात भूमि मार्ग से और सागर मार्ग से भी होता था। उस समय दोनों में वैदिक जीवन ही प्रचलित था। ईराक प्रदेश के बसरा नगर से अरब और भारत में लोगों तथा माल का आना-जाना लगा रहता था। रेशमी वस्त्र, इत्र और अन्य सुगन्धित वस्तुएँ, कपूर,

चन्दन, सूती कपड़ा, तलवार, खन्जर, भाले, चाकू, छुरियाँ, हस्तिदन्त, सोने-चांदी के गहने, मोती, बेत, सागवान, बांस, ऊँट, कपास, मखमल, कस्तूरी, सोंठ, ताड़ी, आयुर्वेदिक ओषधि, जूते और मलमल। यह माल गुजरात के सागर तट के खंबायत नगर से भेजा जाता था।

सागवन के साथ नौका बनाने वाले कारीगर भी भारत से अरबों की नौकाएँ बनाने के लिए भेजे जाते थे। उस समय अर्बस्थान और भारत एक ही सभ्यता से जुड़े होने के कारण उनमें भिन्नता या अलगाव नहीं था। हिब्रू की तरह अरबी भाषा भी इसी कारण संस्कृत-प्रचुर है कि प्राचीनकाल में अर्बस्थान के लोग भी संस्कृत ही बोलते थे। अर्बस्थान यह नाम उसी कारण से संस्कृत है। उदाहरणार्थ अरबी शब्द 'खुश्क' देखें। संस्कृत 'शुष्क' शब्द का वह अपभ्रंश है।

संस्कृतोद्भव अरबी भाषा

जब से अरबी लोग मुसलमान बन गए तब से वे विश्व के अन्य लोगों से दुष्टता और क्रूरता से बर्ताव करने लगे। अन्यथा जब तक वे वैदिक संस्कृति में पले तब तक यूरोप के लोगों को भी शिक्षा दिया करते थे। किन्तु अरबों पर इस्लामी धर्म थोपा जाने के पश्चात् वे असभ्य, अशिक्षित, अत्याचारी, लूटमार और कत्ल करने वाले बन गए।

महाभारतीय युद्ध के पश्चात् अरब लोग वैदिक संस्कृति से बिछड़ते गए। देवनागरी और ब्राह्मी लिखना भी भूल गए। अधिकतर लोग अनपढ़ रह गए। अतः उन्हें दूसरी शताब्दी में वर्तमान अरबी लिपि (जो दाएँ से बाएँ लिखी जाती थी) चालू करनी पड़ी। तथापि भारत से सम्बन्ध टूट जाने से उनका शिक्षा-स्तर गिरता ही गया। जो अरब लोग वैदिक संस्कृति के अन्तर्गत यूरोप के शिक्षक माने जाते थे वे इस्लामी बनाए जाने के पश्चात् लूटमार करने वाले निरक्षर से बन गए। वैदिक सभ्यता और इस्लाम में स्वर्ग और पाताल जैसा महदन्तर है। अतः सारे धर्म एक हैं—कहना या मानना तर्कसंगत नहीं है। वह कथन साधु मुख से निकला उनके भक्तगण अनन्य भाव से ज्यों-का-त्यों मान लेते हैं। क्योंकि वहाँ केवल श्रद्धा और भावुकता होती है। किन्तु विद्वानों की सभा में जहाँ एक-दूसरे से तर्क के

आधार पर चर्चा करनी होती है वहाँ वह वचन टिक नहीं सकता। आधुनिक काल में किसी भी गणमान्य विद्वान ने यह तथ्य या तो समझा ही नहीं या कहने की हिम्मत ही नहीं की। सारे लोग, सारे देश, सारे धर्म, सारी सभ्यताएँ एक जैसी ही होती हैं—ऐसी गोलमाल शिक्षा से प्रभावित रहकर अधिकतर विद्वान इतिहास के अनेक तथ्यों से अपरिचित और वंचित रह गए हैं।

अतः अरबी के संस्कृत स्रोत को जानना आवश्यक है। सागवान यह भारत का शब्द देखें। इसी का अरबी अपभ्रंश 'साज' (Saj) है।

संस्कृत शब्द विष (यानी जहर) अरबी में "वेष" बन गया।

महंमद पैगम्बर को जब मक्का से भागकर मदीना जाना पड़ा तो उनके साथ जो चन्द साथी गए उन्हें अन्सारी कहा गया क्योंकि वे अनुसरण करने वाले अनुसरी थे।

इस्लामी शब्द 'शेख' संस्कृत 'शिष्य' शब्द का अपभ्रंश है। शेख यानी शिक्षा ग्रहण करने वाला शिष्य। भारत में जिस प्रकार शिष्य शब्द का अपभ्रंश शिख बना उसी प्रकार अर्बस्थान में शिष्य का उच्चार शेख रूढ़ हुआ। इससे वहाँ की प्राचीन गुरुकुल प्रथा का पता चलता है।

मुल्ला यह शब्द मल्ल इस संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है। रत्नमल्ल, बहारमल्ल आदि नाम अरबों में भी प्रचलित थे। उनका अन्तिम भाग मल्ल के बजाय मुल्ला अर्बस्थान में रूढ़ हो गया।

"अल्ला की इच्छा हो तो ?" इस अर्थ से मुसलमान लोग संभाषण में "इन्शा अल्ला" कहते रहते हैं, जो "इच्छा अल्ला" का अपभ्रंश है।

इन्तकाल और अन्तकाल की समानता देखें।

कफन यह इस्लामी शब्द मूलतः संस्कृत "कौपीन" है। उसी प्रकार 'मौत' यह मृत्यु का ही विकृत उच्चार है।

"प्र-ग-अम्बर" यानी "आकाश से भेजा गया" इस अर्थ का पैगम्बर शब्द भी संस्कृत ही है।

अरबी में "मलीन" के अर्थ से "मालीन" कहते हैं। "आफत" यह शब्द आपत्ति का विकृत उच्चार है।

भारतीय माल की अर्बस्थान में बड़ी माँग होने के कारण भारतीय

व्यापारियों का अर्बस्थान में बड़ा सम्मान होता था। आधुनिककाल में पाश्चात्यों द्वारा बनाए गए यंत्र रेडियो, टेलिवीजन, टेलीफोन, मोटरगाड़ियाँ आदि घर-घर में होती हैं, उसी प्रकार अतीत में लम्बे समय तक हवन-सामग्री, आयुर्वेदिक ओषधि, लकड़ी यथा लोहे की वस्तुएँ, आभूषण, वस्त्र; शृंगार सामग्री, शस्त्रास्त्र, नौकाएँ आदि सारी भारत द्वारा ही विश्व के सारे प्रदेशों को दी जाती थीं। भारत के खड्ग, खंजर आदि का हिन्दुवानी, हिन्दी, सैफ-अल-हिन्द, मुहन्निद आदि नामों से उल्लेख होता है।

"India's Contribution to World Thought and Culture" नाम का ग्रन्थ विवेकानन्द शिला स्मृति समिति (Rock Memorial Committee) ने १९७० में प्रकाशित किया। इसमें डब्ल्यू० एच० सिद्दीकी द्वारा लिखा एक लेख है। वे लिखते हैं, "भारत की सम्पत्ति के आधार से अरबी सभ्यता की गहराई और प्रसार बढ़ता गया। भटकते रहने वाली अरबी टोलियों के जीवन में घर-बार बसाने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी। कहीं-कहीं लोग कोट बनाकर उसके अन्दर सुरक्षित नगरों में रहने लगे। खेती करना आरम्भ हुआ। व्यापार बढ़ा। लकड़ी और पत्थर पर लिखाई करने की प्रथा चल पड़ी। पाप करने पर ईश्वर दण्ड देगा इस भावना से लोगों का बर्ताव सुधरा और वे राजाओं का मान-सम्मान करने लगे।" सिद्दीकी के उद्धरण में हमारे निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि अरबों की सारी इस्लामपूर्व विद्याप्रवीणता, कार्यकुशलता, धन-दौलत, सभ्यता, नम्रता आदि भारत की अगवाही के कारण थी। उस सभ्यता को इस्लाम धर्म ने खग्रास ग्रहण लगा दिया।

हिन्दु नाम सम्मानित था

भारत में कई लोग ऐसी धारणा कर बैठे हैं कि मुसलमान लोगों ने तिरस्कार भाव से "हिन्दु" शब्द प्रचलित किया। अतः भारत के लोगों को अपने-आपको हिन्दू कहलाने में गर्व न मानते हुए उस शब्द का त्याग करना चाहिए। उन दोनों मुद्दों से हम सहमत नहीं हैं। हिन्दू शब्द मुसलमानों का बनाया नहीं है। अनादिकाल से "स" तथा "ह" दोनों की अदल-बदल होती रही है। समजा—हमजा, साडासात, हाडाहाथ, Semisphere—Hemis-

phere, सप्ताह—हफ्ताह, Hardiogram—Cardiogram (सार्दिओ-ग्राम) आदि शब्दों के दोनों प्रकार के उच्चार सर्वत्र रूढ़ रहे हैं। उसी प्रकार सिन्ध—हिन्द, सिन्धु—हिन्दु आदि दोनों उच्चार अति प्राचीनकाल से रूढ़ हैं।

दूसरा मुद्दा यह है कि प्राचीनकाल से अरबों में हिन्दु नाम का बड़ा प्रभाव तथा सम्मान रहा है। इसके कुछ उदाहरण ऊपर दिए ही हैं। निजी सुन्दर या लाड़ली कन्याओं को अरबी लोग "हिन्दा" या "सैफी हिन्दी" कहकर पुकारा करते। संख्या के अंकों को तथा गणित को अरब लोग भारत की विद्या जानते हुए "हिन्दीसा" कहते थे। भारतीयों के प्रति अरब लोग बड़ी श्रद्धा और आदर रखते थे।

जाटों का विदेश संचार

दिग्विजय करने वाले क्षत्रियों में प्राचीनकाल में जाटों का अन्तर्भाव था। सैनिकी या शासकीय कार्यों पर जाट लोग विभिन्न प्रदेशों में जाया-आया करते। चौथे जबाल के संग्राम से पूर्व चौथे खलीफा अली का खजांची एक जाट हिन्दू था। महंमद की पत्नी अयेषा के रुग्ण होने पर उसकी चिकित्सा एक जाट वैद्य से कराई गई थी।

कुछ ईरानी शब्दकोषों में हिन्दु शब्द का अर्थ चोर, डाकू, बदमाश, हरामजादा आदि लिखा हुआ है तो सही तथापि उससे घबराकर हिन्दु नाम छोड़ देना योग्य नहीं होगा। जबसे ईरानी आक्रामकों ने भारत पर हमला आरम्भ किया तब से निजी सैनिकों में भारतीयों के प्रति तिरस्कार भड़काने के लिए उन्होंने हिन्दु शब्द को चोर, डाकू, हरामजादा आदि गालीतुल्य बना छोड़ा। किन्तु यह देखने लायक बात है कि इस्लामी तवारीखों में हिन्दु शब्द कहीं नहीं लिखा है। भारतीयों को हिन्दू कहने की बजाय वे चोर, डाकू, कुत्ते, हरामजादे, कम्बख्त इत्यादि कहते रहे। पाठक अब यही देखें कि ऊपर उद्धृत सारे शब्द मूल अर्थ में कितने भिन्न हैं। कहाँ डाकू और कहाँ डाकुओं का पीछा करने वाला कुत्ता। तथापि ऊपर उल्लिखित सारी गालियों में हिन्दुओं के प्रति ईरानी मुसलमानों का तिरस्कार कूट-कूटकर भरा है।

अतः ईरानी शब्दकोष तैयार करने वालों की ही सरासर बदमाशी है कि उन्होंने चोर, डाकू, कुत्ते, हरामजादे, कम्बख्त आदि के साथ "हिन्दु" शब्द भी लिख डाला। आखिर ईरानी शब्दकोष तैयार करने वाले भी तो खूंखार, धर्मान्ध, हिन्दुओं का तीव्र तिरस्कार करने वाले कट्टर मुसलमान ही थे। शब्दकोष तैयार करने के दिमागी कार्य में जाते-आते हिन्दुओं को एक साहित्यिक लात मारने का निजी इस्लामी कर्त्तव्य भला क्यों छोड़ने लगे? अतः हिन्दुओं की बहादुरी इसमें होगी कि वे ईरानियों को उनके शब्दकोष में से हिन्दु शब्द का वह गाली-भरा अर्थ मिटाने को बाध्य करें। उनके उस प्रदूषण से भागकर या घबराकर सिन्धु या इन्दु अर्थ का स्व-जातीय हिन्दु नाम त्याग देने में कहाँ की बहादुरी है?

यदि हिन्दु नाम त्यागकर हम कोई और नाम ले लें और उस नए नाम का किसी अन्य भाषा के शब्दकोष में बुरा अर्थ दिख पड़े तो क्या हम वह नाम भी छोड़ देंगे? अतः यह जान लेना आवश्यक है कि किसी शब्द का अर्थ उस जाति के शौर्य, धैर्य और कर्तृत्व पर निर्भर करता है। यह भूलकर यदि हम ऐसा शब्द ढूंढते रहें जिसका किसी भी भाषा में बुरा अर्थ नहीं निकलेगा, तो ऐसा शब्द कभी मिलने का नहीं।

इस सम्बन्ध में एक लाक्षणिक कथा है। एक बच्चे का नाम उसके माता-पिता ने ठनठनपाल रखा। युवा हो जाने पर उसके नाम को लेकर उसके साथी उसको चिढ़ाने लगे। उससे तंग आकर वह एक अच्छा-खासा नाम ढूंढने चल पड़ा। रास्ते में उसे एक शव-यात्रा दिखी। उसने पूछा, "कौन मरा?" तो उत्तर मिला, "अमरनाथ चल बसे।" बड़े अचम्भे में पड़कर वह आगे बढ़ा तो एक दरिद्र स्त्री दुःखी होकर गोबर के कण्डे बेच रही थी। नाम पूछने पर पता चला कि उसका नाम "लक्ष्मी" है। और आगे चलने पर उसने कुछ दुष्ट लोग एक भयभीत युवक का पीछा करते देखे। भागने वाले का नाम पूछने पर पता चला कि वह रघुवीर था। इस प्रकार एक के बाद एक नाम और काम सारे विपरीत ही दिखाई दिए। अतः वह जब घर लौटा तो उसके मुंह से उद्गार निकला—

अमरनाथ तो मर गए।
लक्ष्मी लगाए कण्डों की पाल।

रघुवीर भी यदि भाग गए।
बुरा क्या है नाम ठनठनपाल।।

हिन्दुओं के शौर्य और कर्तृत्व से हिन्दु नाम की शान और दहशत बढ़ाने में ही बहादुरी है न कि उस नाम को छोड़कर पलायन करने में।

और यह भी तो बात है कि जो मुसलमान हिन्दु शब्द को इतना घृणित समझते हैं उन्हें क्यों न बार-बार स्मरण दिलाया जाए कि वे भी हिन्दुओं की सन्तान ही तो हैं। चौदह सौ वर्ष पूर्व कोई मुसलमान था ही नहीं। अतः हिन्दुओं को गाली देने में वे अपने आप पर थूक रहे हैं।

इस्लाम और क्रुस्ती पन्थों का अन्त

महाभारतीय युद्ध के पश्चात् वैदिक संस्कृति का जो विघटन हुआ उसमें मक्का में शिवव्रज उर्फ शिवभज पंथ चल पड़ा। सन् १९७९ के नवम्बर १९ को इस्लाम को १४००वर्ष पूर्ण होते ही जिन २००-३००अरबी व्यक्तियों ने काबा मन्दिर पर हमला किया वे महदवी पन्थ (Mahdwi Sect) के कहलाते थे। स्पष्टतया वह नाम 'महादेवी' यानि महादेव शंकर भगवान के अनुयायियों का द्योतक है। यह वैदिक धर्म का कैसा दैवी योगा-योग है कि इस्लामी परम्परा में ही उसके निजी नाश की भविष्यवाणी रूढ़ है। उस किंवदन्ति के अनुसार—

आएगी सदी बीसा, तो रहेगा न ईसा न मूसा।

जिसका अर्थ है कि बीसवीं शताब्दी में जब इस्लाम को १४०० वर्ष पूर्ण होंगे, इस्लाम और ईसाई पन्थों का अन्त होगा। फ्रेंच अवलिया नॉस्ट्रडमस ने चार सौ वर्ष पूर्व वैसी ही भविष्यवाणी की है।

वैसे तो सन् ६२२ ईसवीं में प्रस्थापित हुए इस्लाम को सन् २०२२ में १४०० वर्ष पूर्ण होते हैं, किन्तु इस्लाम की वर्ष गणना में प्रतिवर्ष ११ दिन कम गिने जाते हैं। अतः उनकी गिनती के अनुसार यद्यपि १९७९ में वह विनाश की अवधि पूरी हो गई है, सही गणना के अनुसार भविष्यवाणी वाला इस्लाम का सर्वनाश सन् २०२२ तक पूरा हो जाना चाहिए। तथापि उस भविष्यवाणी की सत्यता की पहली झलक प्रत्यक्ष काबा पर हुए हमले में पाई गई। यद्यपि सऊदी अरब कट्टर इस्लामी देश है। उस देश में स्थित

काबा के ३५ मील के घेरे में किसी इस्लामेतर व्यक्ति का चंचु प्रवेश भी नहीं होने दिया जाता। फिर भी महदवी कहलाने वाले अरबी मुसलमानों ने ही काबा पर जो हमला १९ नवम्बर, १९७९ को किया वह वैदिक देवता शंकर भगवान का एक चमत्कार ही समझा जाना चाहिए।

शिया-सुन्नी पन्थों का उद्गम

इस्लामी शिया पन्थ शिवभज उर्फ शिवा का अपभ्रंश शिया कहलाया। सुन्नी लोग वे मुसलमान हैं जो वैष्णवपन्थी थे। काबा मन्दिर के मध्य में शेषशायी विष्णु की मूर्ति थी और उस परिसर में अन्य ३६० मूर्तियाँ थीं। वे सारी मूर्तियाँ छिन्न-भिन्न कराकर उसी परिसर में पैरों तले कुचले जाने के लिए सुरंगों में दबा दी गईं। काबा में दीवार में आधा गड़ा हुआ एक शिवलिंग ही दृश्य अवस्था में आज विद्यमान है। मुसलमान लोग उसी की परिक्रमा करते हैं। तथापि अतिप्राचीन काल से टूटे-फूटे वैदिक संस्कृति के अर्बस्थान में जो वैष्णव और शैव पन्थ थे वे आगे चलकर इस्लाम में सुन्नी और शिया कहलाए। वैष्णवी का अपभ्रंश सुन्नी हुआ और शिव का शिया बना। यह भेद आरम्भ से ही था। आगे चलकर खलीफा पद के विवाद में इन दोनों पक्षों में विरोध दृढ़तर हुआ। विद्यमान धारणा यह है कि महंमद के पोते हुसैन को खलीफा पद का अधिकारी मानने वाले शिया कहलाए। किन्तु इस विवरण से शिया शब्द की व्युत्पत्ति का रहस्य खुलता नहीं है।

वैदिक संन्यासी

"तवारीख ई तबारी अस् अहमारा उर्रै हंतारा" जैसे अरबी ग्रन्थों में गेरुए वस्त्र पहनने वाले वैदिक संन्यासियों का उल्लेख है। प्रथम खलीफा अबूबकर के समय में वैदिक-प्रथा अर्बस्थान से जब पूरी तरह नष्ट नहीं हुई थी तब नारंगी वस्त्र पहनने वाले वैदिक संन्यासियों का प्रवचन अर्बस्थान के नगरों में होता रहता था।

महंमद का गेरुआ ध्वज

दिल्ली से प्रकाशित आंग्ल साप्ताहिक Organiser में एक अरबी विद्वान् लेखमाला लिखा करते थे। उन्होंने लिखा था कि महंमद पैगम्बर

का ध्वज मूलतः हिन्दू केसरिया ध्वज ही था, किन्तु जब काबा मन्दिर पर कब्जा करने के लिए महंमद ने निजी सगे-सम्बन्धियों से ही संघर्ष करना आरम्भ किया तो दोनों विरोधी पक्षों के झण्डे एक समान वैदिकधर्मी गेरुए रंग के ही होने के कारण घोटाला होने लगा। अपना-पराया पहचानना कठिन होता रहा। अतः महंमद ने सुविधा हेतु निजी ध्वज हरे रंग का बना लिया। अतः इस्लाम का हरा रंग किसी धार्मिकता या पवित्रता के कारण न होकर लड़ाई-झगड़े से सम्बन्धित है। इसी कारण जहाँ भी हरा झण्डा रहेगा वहाँ कभी शान्ति नहीं होगी।

काबा मन्दिर को उड़ने वाली रेत से बचाने के लिए वैदिककाल में उसे लम्बे-चौड़े गेरुए रंग के खोल से ढक दिया जाता। उस खोल को अरबी में गिलाफ कहते हैं। महंमद का उस मन्दिर पर कब्जा हो जाने पर प्राचीन वैदिक प्रथा को तोड़ने के हेतु गेरुए रंग के गिलाफ के बजाय उस मन्दिर पर काले रंग की खोल चढ़ाई जाती रही है।

हिन्दू लोगों पर अधिक विश्वास

तुर्कस्थान या खोरासन के मुसलमानों पर अरब लोग कभी भरोसा नहीं करते थे यद्यपि वे सारे मुसलमान बन गए थे। किन्तु सिन्धु के हिन्दु लोगों पर अरबों का बड़ा विश्वास होता था। अरबों के खजांची और हिसाब-किताब रखने वाले सिन्धी हिन्दु ही हुआ करते थे।

सन् ८९७ ईसवी के याकूबी नाम के एक अरब इतिहासकार लिखते हैं कि "भारतीय लोग बड़े शास्त्री पण्डित होते हैं। उनके शास्त्रीय ज्ञान की और कोई बराबरी नहीं कर सकता। वे बड़े विचारी होते हैं। आयुर्विज्ञान में वे बड़े अग्रसर हैं। अनेक शास्त्रों के उनके बड़े-बड़े ग्रन्थ हैं।"

वैदिक विद्याग्रन्थ

प्राचीन विश्व के अन्य लोगों की भाँति खगोल ज्योतिष, गणित आदि सारी जटिल विद्याओं का ज्ञान अरब लोग भी भारत से ही प्राप्त करते थे। उदाहरणार्थ ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त नामक खगोल ज्योतिष का जो संस्कृत ग्रन्थ है उसके अरबी अनुवाद का नाम "सिन्ध हिन्द" रखा गया है।

खण्ड-खाडक्य नाम के एक अन्य संस्कृत ग्रन्थ के अरबी अनुवाद का शीर्षक है अरकन्द्र।

सिद्दीकी लिखते हैं, "ऊपर लिखित ग्रंथ बगदाद में सन् ७७१ में पहुँचे। अल् फजारी और याकूब बिन तारीक नाम के दो लेखकों ने भारतीय पण्डितों के सहाय्य से उन ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद किया। कहा जाता है कि सन् ७३३ में एक भारतीय शास्त्री के कहने पर खलीफा मंसूर ने खगोल ज्योतिष के भारतीय ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ किया और उस पठन का खलीफा पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसी प्रकार सुल्तान हारून-अल-रशीद के बरबक मन्त्रियों के प्रभाव से भी हिन्दू विद्याग्रन्थों का अरबों में प्रसार हुआ। अल् फजारी के "किताब उभ् भिज्" नामक ग्रन्थ में हिन्दू ज्ञान का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बनाया गया वह पंचांग है। क्रमर्स नाम के यूरोपीय लेखक कहते हैं कि मध्य-भारत में जो उज्जयिनी नगर है उसे केन्द्र मानकर वह जो पंचांग सिद्ध किया गया है उसका अरबी अपभ्रंश अरिन (Arin) किया गया है।"

प्राचीनकाल में "बैतूल हिकमत" नाम का एक अरबी संस्थान प्रस्थापित किया गया। उसके द्वारा विविध वैदिक शास्त्रीय ग्रन्थों का अनुवाद किया जाने लगा। अनुवादकारों में माणिक और धन उर्फ दोहन नाम के दो भारतीय विद्वानों के नाम ज्ञात हैं। धन का नाम इब्न-इ-दाहन लिखा गया है। ऐसे और भी सैकड़ों भारतीय हिन्दू विद्वानों के नाम अरबी ग्रन्थों में होंगे। किन्तु अरबी मुसलमानों की भारतीय हिन्दू नामों को अरबी—इस्लामी रूप देकर तोड़-मरोड़ देने की जो बुरी आदत रही है उससे अच्छे-भले भारतीय नाम अरबी-इस्लामी तवारीखों में जानबूझकर डुबोकर लुप्त करा दिए गए हैं।

सावधानी की सूचना

सही इतिहास का संशोधन या अध्ययन करना चाहने वालों के लिए हम यहाँ एक गम्भीर सूचना देना चाहते हैं। इस्लाम के अन्धे समर्थकों ने इतिहास में यह ढिंढोरा पीट रखा है कि इस्लाम के गठन के पूर्व अरबों में अशान्ति, दंगा-फसाद, मार-पीट और सब प्रकार की अराजकता थी तथा

स्त्रियों की बड़ी दयनीय अवस्था थी। उस सामाजिक अवस्था को सुधारने के लिए इस्लाम की स्थापना हुई और इस्लाम के गठन के कारण सर्वत्र सुख-शान्ति, समता और समृद्धि छा गई। इतिहास की इस्लामी तोड़-मरोड़ यहीं से आरम्भ होती है।

इस दावे में पहली झूठी बात तो यह है कि इस्लाम शब्द का अर्थ 'शान्ति' या 'शरणागति' है। वह सरासर असत्य है। 'इस्लाम' वह ईशालयम् ऐसा संस्कृत शब्द है। दूसरा दावा कि 'इस्लाम के पूर्व लोग पिछड़े हुए या दबाई हुई अवस्था में थे' भी असत्य है। स्त्रियों को स्वतन्त्रता नहीं थी और समाज में अव्यवस्था तथा अशान्ति थी! यह भी बनावटी बात है।

इस्लाम कोई धर्म नहीं है। कुछ चन्द दहशतवादियों ने सारी सत्ता और धन पर काबू करने के लिए अनपढ़ अरबी लोगों को गुमराह करके उनके द्वारा आतंक फैलाकर लूटमार मचाने के लिए इस्लाम के नारे का षड्यन्त्र रचा। लोगों को पकड़-पकड़कर दहशत देकर मुसलमान कहलवाने को बाध्य किया गया। आरम्भ से आज तक इस्लाम के प्रसार की एकमात्र गतिविधि छलबल और कपट की ही रही है। महंमद बिन कासिम, गजनवी, गौरी, बल्बन, अलाउद्दीन आदि से लेकर प्रत्येक सुल्तान, बादशाह अन्य आक्रामक और दरबारी से लेकर फकीर तक सारे छोटे-मोटे मुसलमान हर प्रकार से हर क्षण जुल्म जबरदस्ती से भयभीत किए गए लोगों को मुसलमान बनने पर मजबूर करते रहे।

शिक्षा तथा सभ्यता का अन्त हो गया। प्रतिदिन लूटमार होने लगी। स्त्रियों को काले पर्दे की नाक तक की अन्धेरी कोठरी में बन्द करवा दिया गया। कुराण पढ़ना या रटना ही शिक्षा की परिसीमा बन गई। इस तरह इस्लाम के अत्याचारों का एक गम्भीर नया संकट विश्व के लोगों को सताने लगा, जैसे पौराणिककाल के राक्षसों का इस्लामी आक्रामकों के रूप में पुनर्जन्म हुआ हो। सातवीं शताब्दी से आरम्भ हुआ यह संकट अर्बस्थान से लेकर मलयेशिया और इण्डोनेशिया तक की वैदिक संस्कृति को लगातार राहू-केतु जैसा निगल-निगल कर आतंक और हाहाकार मचाता रहा।

सन् ३१२ ईसवी से सात सौ वर्ष तक ईसाई धर्म भी इसी प्रकार अत्याचार, छल-कपट, लूटपाट और मारपीट द्वारा सारे यूरोप में फैलाया गया। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ ईसाई लोग अब सभ्य और शिक्षित बन गए हैं, मुसलमान हर प्रकार से सातवी शताब्दी की क्रूर, बर्बर मन:-स्थिति में ही अभी तक अपने-आपको जकड़े हुए हैं।

कला और विद्या के पुनरुत्थान का झूठा दावा

इस्लाम की स्थापना से लूटमार ही मुसलमानों का एकमेव धन्धा बन जाने से इस्लाम व्याप्त प्रदेशों में कला और विद्याओं में काला अन्धेरा छाकर खग्रास ग्रहण जैसा लग गया। अत: अरबों की शिक्षा और कला का जो ढोल पीटा जाता है वह इतिहास की एक बड़ी हेरा-फेरी है। अरबों की विद्या, कला आदि का जो बोलबाला है वह इस्लामपूर्व अरबों का है। इस्लामी साहित्यकारों से उस इस्लाम पूर्व ख्याति को उखाड़कर इस्लामी काल जो जोड़ दिया है। उन दिनों सारी लिखाई हाथ से ही होती थी। अत: अतिप्राचीन ग्रन्थ भी प्रत्येक पीढ़ी में पुन: हाथ से नए ताड़पत्र या कागज पर उतारे जाते थे। उन ग्रन्थों को दुबारा निजी हस्ताक्षर में उतार लेने-वाले ने लिखवाई की तारीख अंकित करने का प्रश्न ही नहीं था। अत: उन प्राचीन ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रति इस्लामीकाल की कह देना आसान था।

अरबी लिपि इस्लामपूर्व की है

यदि कोई कहे कि दाईं से बाईं तरफ लिखी जाने वाली अरबी (इस्लामी) लिपि में वह दस्तावेज या पोथियाँ होने से वह इस्लामीकाल की ही होनी चाहिएँ तो वह दावा भी गलत होगा, क्योंकि यद्यपि प्रचलित अरबी (फारसी, उर्दू आदि) लिपि दीर्घसंगति के कारण अनवधानी से इस्लामी समझी जाती है तथापि वह लिपि-इस्लाम की स्थापना से पाँच सौ वर्ष पूर्व प्रचलित की गई।

हारुन-अल्-रशीद का बड़प्पन काल्पनिक तो नहीं है

हारुन-अल्-रशीद के बारे में इस्लामी लेखकों ने बड़ा शोर मचा रखा है कि वह बड़ा दयालु, दानी, उदार, विद्वानों का आश्रयदाता आदि था। लेकिन

इतिहास के अभ्यासकों को हम चेतावनी देना चाहते हैं कि इस्लामी फकीरों के बारे में भी यही ढोल पीटा गया कि वे बड़े दयालु, धर्मात्मा और सन्त-महात्मा थे। ऐसे इस्लामी प्रचार से धोखा नहीं खाना चाहिए। प्रत्येक फकीर का सही चरित्र यदि निर्भयता से और सच्चाई से पढ़ा जाए और बारीकी से खोजा जाए तो वे लगभग सारे ही फकीर क्रूर, अत्याचारी, रंगीले, धोखाधड़ी करने वाले दिखाई देंगे। अत: निष्पक्ष सूक्ष्मता से और शोधक बुद्धि से हारुन-अल्-रशीद के सही चरित्र का भी पुन:आंकन हम आवश्यक समझते हैं। आज तक का इतिहास-लेखन, अध्ययन, संशोधन इस्लामी गुणगान के भंग के नशे में होता रहा है। ऐसा किए जाने का एक और बहुत बड़ा कारण था कि इस्लाम के पक्ष में इतिहास की जितनी अधिक तोड़-मरोड़ करी जाए उतना अधिक मानसम्मान उस व्यक्ति को गांधी-नेहरू युग से दिया जाने लगा। मान-सम्मान, सरकारी मान्यता, पदवियाँ, अधिकार, सम्पत्ति आदि के लालच में फँसते-फँसते इस्लामी खुशामद हेतु इतिहास विकृति की कोई सीमा ही नहीं रही। इस प्रकार इस्लामी पक्ष में ही इतिहास लिखा जाए तो वह सही है, अन्यथा वह अनुचित है ऐसी सार्वजनिक धारणा बन गई है। उस मिथ्या मार्ग से इतिहास-लेखन को मोड़कर उसे निर्भीक सत्यता के मार्ग पर ले आना हमारा मुख्य ध्येय है।

इस्लामी विचारधारा का ढाँचा ही कुछ ऐसा है कि उसमें ढोंग, दुराचार, क्रूरता और असत्य का ही पुरस्कार होता रहता है। अत: उसमें हारुन-अल्-रशीद नाम का कोई सद्गुणों का पुतला निर्माण हुआ हो, यह हाथी के सींग जैसी असम्भव बात लगती है। यदि अनाचारी होते हुए भी हारुन-अल्-रशीद को इस्लामी परम्परा का कीर्तिमान माना गया हो तो वह केवल इसलिए कि इस्लामी परम्परा में अदब के नाम पर बेशुमार खुशामद की बुवाई होती रहती है। इस्लामी मुशायरों में इसका नमूना देखने को मिलता है। बुरे-से-बुरे शायर के शेरों पर 'वाह-वाह' की खुशामदी बौछार करते-करते लोग उधर दूसरी तरफ मुंह छिपाकर कानाफूसी में शायर की निन्दा भी करते रहते हैं।

हिन्दू कारीगरी की अरबों में ख्याति

सन् ८६८ ईसवी में जिसकी मृत्यु हुई ऐसा एक अरबी लेखक अबु उमर जाहिभ, बसरा नगर निवासी था। उसके ग्रन्थ का नाम है 'रियासत इ-फखरुस्सौदन अल्-अल् बेदन'। उसमें उसने लिखा है कि भारतीय विद्वान फलज्योतिष और गणित में बड़े प्रवीण हैं। आयुर्वेद में भी वे बड़े कुशल हैं और वे जटिल रोगों की अच्छी चिकित्सा करते हैं। वे कुशल मूर्तिकार होते हैं। इमारतों के प्रवेशद्वार के कमानों पर वे रंग-बिरंगी चित्रकारी करते हैं। सर्वोत्तम बौद्धिक खेल 'शतरंज' के निर्माता भारतीय लोग ही हैं। भारतीयों की तलवारें बड़ी धारदार होती हैं और वे तलवार बड़ी सफाई से चलाते हैं। मन्त्रों से विष उतारने का कौशल्य भारतीयों में है।"

सिद्दीकी के लेख में उल्लेख है कि अंकगणित, दशमलव-पद्धति, बीजगणित, त्रिगुणमिति, भूमिति आदि गणित की विविध शाखाएँ अरब लोग भारतीयों से ही सीखे।

कई लोग यह समझ बैठे हैं कि "अल्-जिबर" यह अरबी नाम होने से Algebra उर्फ बीजगणित पद्धति अरबों ने ढूंढ़ निकाली होगी। किन्तु स्वयं अरब लोग मानते हैं कि वह शाखा वे भारत से सीखे। इससे संशोधक ने इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रचलित नामों पर सर्वदा निर्भर रहना योग्य नहीं होता।

भवनों के प्रवेश द्वारों के कमानो को रंगों से चित्रित करने की भारतीय प्रथा का उल्लेख अबु उमर जाहिभ ने किया है। उसे पाठक विशेष ध्यान दें। भारत स्थित ताजमहल उर्फ तेजोमहालय और समरकन्दनगर में जिस विशाल महल को तैमूरलंग की कब्र कहा जाता है दोनों के कमानी प्रवेश द्वार पर भी रंगीन चित्रकारी है। अतः वे सारे हिन्दू भवन सिद्ध होते हैं। शाहजहाँ ने अंशतः उस हिन्दू चित्रकारी को मिटाने के लिए उसे निकालकर उन्हीं खांचों में कुराण की आयतों वाले पत्थर के टुकड़े जड़वा दिए। इसीलिए ताजमहल पर कहीं आड़ी पंक्ति में, तो कहीं सिकुड़ी खड़ी जगह में ऊटपटांग पद्धति से कुराण जड़ दिया गया है। ऐसे कितने ही छोटे-मोटे मुद्दों से इतिहास-संशोधन में उचित और महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

कुराण में संस्कृत शब्द

दूसरे एक इस्लामी-लेखक सुलेमान नदवी बताते हैं कि चार हिन्दी या संस्कृत शब्द कुरान में बार-बार उल्लिखित हैं। वे हैं अम्बर, कस्तूरी, झंझाबिल (सोंठ या अदरख) और कपूर। बुद्ध का भी उल्लेख कुरान में फिल-किफे (यानी कपिलवस्तु नगर का निवासी) नाम से हुआ है।

अरबी साहित्य में बार-बार प्रयोग होने वाले अन्य भारतीय शब्द हैं—चन्दन, ताम्बूल, कर्णफूल, निलोफर, बेल, जयफल, त्रिफला, बलीला, हलीला, कैफस यानि कपास, छिट् (यानि चिट), नर्जित यानि नारियल, अम्बुज और फुलफुल यानि पिपली।

वैदिक धर्म प्रमुख शंकराचार्य

इस्लामपूर्वकाल में इराक के बगदाद उर्फ भगवद्नगर में एक वैदिक धर्मपीठ था। उसके पीठाधीश को परमक कहा जाता था। उसके पीठ का नाम था नवविहार। उसका बिगड़कर नवबहार ऐसा अरबी उच्चार बन गया। किन्तु उससे पता चलता है कि उससे भी एक और प्राचीन वैदिक विहार था। अल् उमारी द्वारा लिखे "मसालिकुल-अवसर-फी-मामलीकुल-अमसर" ग्रन्थ में उल्लेख है कि वह एक वैदिक हिन्दू सम्राट ने प्रस्थापित किया था। उस धर्मप्रमुख को केवल प्रमुख—परमुक कहते-कहते उसका अरबी इस्लामी अपभ्रंश बरमुक, बरमक (बर्मक) बन गया। अन्तिम हिन्दु प्रमुख की धर्मशिक्षा कश्मीर के पण्डितों द्वारा हुई थी। अरबों पर जब इस्लामी धर्म थोपा गया तब उस मारकाट में उस नवविहार धर्मपीठ के वैदिक धर्मगुरु को मारकर वह धर्मपीठ समाप्त कर दिया गया। तथापि उस परमक घराने के प्रति जनता का परम्परागत आदर होने के कारण इस्लामी इराक प्रदेश का शासन परमक उर्फ बर्मक कुल के हाथ आकर वही इराक के मुसलमान शासक बनने। इराक का शासन आधुनिक युग में प्रजातन्त्रवादी बनने से पूर्व इराक का राजवंश बर्मक ही कहलाता था।

भगवद्नगर बगदाद

सिद्दीकी के लेख में उल्लेख है कि बगदाद नगर (जो हिन्दू वैदिक संस्कृति और वेदविद्या का केन्द्र था) स्वयं संस्कृत नाम है। भग (उर्फ

बग यानि "ईश्वर") और "दाद" (यह दत्त यानि दिया हुआ इस अर्थ का संस्कृत शब्द है, यानि ईश्वर का दिया हुआ—भगवद्दत्त नगर। तथापि खलीफा अल् मंसूर ने ७६२-६३ में बगदाद नगर का निर्माण किया ऐसी धौंस इस्लामी इतिहास में रूढ़ है। यह भी कहा जाता है कि भारतीय स्थपति और नगर-निर्माताओं के शास्त्रीय सहाय्य द्वारा खलीफा मंसूर ने योजनानुसार बगदाद का निर्माण करवाया। वह गोलाकार नगर इस्लाम का पहला नगर कहा जाता है।

ऐसी इस्लामी धौंसों की पोल खोलने का तन्त्र सीखना आवश्यक है। नगर क्या एक वर्ष में बन जाता है और बसाया भी जाता है? यदि नगर-निर्माण ही नहीं हुआ था तो खलीफा मंसूर आरम्भ में बगदाद में किस प्रकार रहता था? यदि वह नगर इस्लाम का बनाया प्रथम नगर होता तो उसका नाम इस्लामाबाद होना चाहिए था। यदि वह नगर मुसलमानों ने बनाया होता तो उसका नाम संस्कृत क्यों होता? उसे केवल इस अर्थ से पहला इस्लामीनगर कहा जा सकता है कि इस्लाम ने कब्जा किया हुआ वह पहला नगर था। वैसे भी वह नगर हिन्दू कारीगर और हिन्दू शास्त्रों से बना था। खलीफा मंसूर को उस नगर-निर्माण का श्रेय देना इस्लामी हेरा-फेरी का एक बड़ा उदाहरण है। जो बगदाद नगर अति प्राचीनकाल में बना था उसे सन् ७६२-६३ में बना हुआ कहना ऐतिहासिक अपराध है। कालक्रम की ऐसी विशाल हेरा-फेरी इस्लामी इतिहास का एक बड़ा दोष है। इस्लामपूर्व वैदिक हिन्दू काल का अरब लोगों का गौरव उखाड़कर उसे इस्लामी काल में रोपित करने के इस्लामी लेखकों की चाल से आज-तक के अधिकांश यूरोपीय ईसाई लेखक धोखा खाकर इस्लाम की चित्र-कला, वास्तुकला, नगरनिर्माण, विद्याविकास, गणित और ज्योतिष में प्रवीणता इत्यादि मुसलमानों की अनाप-शनाप स्तुति करते आ रहे हैं। उनके वे सारे ग्रन्थ निकम्मे और निराधार माने जाने चाहिए। हमारे निष्कर्ष पर मनन, चिन्तन करना उनके लिए लाभदायक होगा। यह हमारा निष्कर्ष है कि Construction is all Hindu, Destruction all Muslim" यानि निर्माण हिन्दू करते हैं, मुसलमान केवल विनाश करते रहे हैं।

कुराण का इतिहास

N. J. Dawood नाम के एक मुसलमान लेखक हैं। उन्होंने कुराण का आंग्ल अनुवाद प्रकाशित किया है। उसकी प्रस्तावना में वे लिखते हैं—"कुराण का प्रत्येक शब्द स्वर्ग में रखे हुए शिलालेख से अल्लाह ने देवदूत गेब्रियल द्वारा महंमद को जैसा सुनाया वैसा लिखा गया है।

"आरम्भ की थोड़ी पंक्तियों और बीच-बीच में कहीं-कहीं, स्वयं महंमद या देवदूत गेब्रियल कुछ कहते हुए बताए गए हैं; अन्यथा अन्यत्र कुराण में स्वयं अल्लाह के शब्द ही अंकित हैं।

"मक्का के लोग काबा में सेमेटिक जाति के परमदेवता अल्लाह के अतिरिक्त कई देवियों की भी भक्ति करते थे। वे देवियाँ अल्लाह की कन्याएँ कही जाती थीं।

"इस्लामी परम्परा के अनुसार रामध्यान (रमजान उर्फ रामादान) के मास में एक रात सन् ६१० के लगभग महंमद जब निद्रा में था या समाधिस्थ था तब देवदूत गेब्रियल ने प्रकट होकर महंमद से आज्ञा की—"बोलो"। तब महंमद ने पूछा "क्या बोलूं?" गेब्रियल ने कहा "मैं जो कुछ सुनाऊँगा उसे तुम दोहराते जाओ"। यह सूचना गेब्रियल ने तीन बार दी। कुराण का अर्थ है दोहराना या मुख से जाप करना—प्रार्थना करना, बोलना। "उस अल्लाह का नाम जपो जिसने रुधिर (लहू) से मानव का निर्माण किया। कुराण में अल्लाह अपने-आपको प्रथम पुरुषी बहुवचन में "हम" कहकर बोलता है। कई बार प्रथमपुरुषी एकवचन में अल्लाह स्वयं को "मैं" कहकर बोलता है। कभी-कभी त्रयस्थ की भूमिका में अल्लाह का निर्देश "वह" शब्द से भी हुआ है। कई बार एक ही वाक्य में अल्लाह का निर्देश "हम", "मैं" और "वह" ऐसे तीनों प्रकार से हुआ है।

"बोलो तुम्हारा अल्लाह बड़ा सुन्दर है। उसने निजी कलम से मानव को ज्ञान दिया"।

"उस समाधिस्थ अवस्था से जब महंमद सामान्य स्थिति में आया तो समाधि में सुने वे दैवी शब्द महंमद के हृदय पर पक्के अंकित हो चुके थे।

"प्राचीन ग्रन्थों का अधिकार मानवों को पुनः विदित कराने के लिए

भेजा हुआ मैं अल्लाह का दूत हूँ"। यह महंमद की दृढ़ भावना थी। किन्तु कोई ईश्वरी चमत्कार कर बतलाने की मुझे कोई सिद्धि प्राप्त नहीं है ऐसा महंमद का कथन था।

प्राचीन धर्मग्रन्थों को विकृत करने का आरोप यहूदियों पर कुराण ने लगाया है। ईसाइयों पर भी ईसा को देवपुत्र मानकर उसकी वृथा भक्ति करने का आरोप कुराण में अंकित है।

"समय-समय पर कुराण की आयतें महंमद को मानसिक संदेशों द्वारा प्रकट कराई गईं। आरम्भ में महंमद के अनुयायी आयतें रट लेने लगे।

महंमद के जीवनकाल में आयतें ताड़पत्र, पत्थर, ईंट, कवेलु, दीवार आदि पर जैसी-तैसी लिख रखी गईं। द्वितीय खलीफा उमर के समय में बिखरी हुई सारी आयतें इकट्ठी की गईं। खलीफा उस्मान (६४४-६५६) के समय कुराण का प्रथम प्रामाणिक संकलन बनाया गया। आयतों के विविध प्रकरण बनाए गए और लम्बाई के अनुसार दीर्घतम प्रकरण प्रथम, सबसे छोटा प्रकरण अन्त में इस प्रकार क्रम लगाकर जो कुराण सिद्ध किया गया वही अब सर्वत्र प्रचलित हो गया है।

"कुराण में ऐसे कई वचन हैं जो या तो किसी को समझ ही नहीं आते या उनके अनेक अर्थ लगाए जाते हैं। कई प्रकरणों के आरम्भ में 'अ', 'ल' "म" आदि कुछ अक्षर अंकित हैं, उनके प्रयोजन अथवा अर्थ का भी कोई पता नहीं लगता। कई टीकाकारों ने उन शब्दों का प्रयोजन बतलाने का यत्न किया है किन्तु वह सफल या सर्वमान्य नहीं हुआ है। कई टीकाकारों ने तो कहा है कि "उन अक्षरों का अर्थ या प्रयोजन अल्ला ही जाने, भला हम क्या कह सकते हैं।"

इस प्रकार कुराण का पाठकों से परिचय करा देने के पश्चात् हम ऊपर कहे विविध मुद्दों का कुछ विश्लेषण प्रस्तुत करना चाहेंगे—

१. अल्लाह द्वारा मानव के मार्गदर्शन के लिए दिए गए ग्रन्थ कुराण की यह व्याख्या उचित नहीं क्योंकि कुराण में ऐसे कई फालतू अक्षर सम्मिलित हैं जिनका कोई प्रयोजन ही नहीं जान पड़ता। कई आयतों का भी अर्थ नहीं लगता। कई आयतों के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाए जाते हैं।

२. क्योंकि कुराण अरबी भाषा में कहा गया, इसलिए वह केवल

अरबों के मार्गदर्शन के लिए ही हो सकता है। समस्त मानवों के लिए जो ग्रन्थ हो वह उस भाषा में होना चाहिए जिसे सारे मानव जानते हों। जैसे कृतयुग के आरम्भ में जो वेद दिए गए वे इसलिए संस्कृत में दिए गए कि उस समय सारे मानवों की भाषा केवल संस्कृत ही थी।

३. महंमद पूर्णतः निरक्षर था। वह न तो लिखना जानता था न पढ़ना। ऐसी अवस्था में जब महंमद अंधेरी गुफा में एकाकी ध्यानमग्न अवस्था में हो तो महंमद के मन में प्रकट होने वाली कुराण की लम्बी-चौड़ी आयतें किस प्रकार ध्यान में रह सकती थीं और उन आयतों को कौन कैसे लिख सकता था ? आरम्भ में तो महंमद के कोई अनुयायी भी नहीं थे जिन्हें आयतें सुनाकर लिखी जा सकें और उस समय अर्बस्थान में लगभग सारे ही लोग जब अनपढ़ थे तो कुराण की आयतें लिखीं किसने ?

४. ईंट, पत्थर, दीवार आदि पर आयतें यदि कोयला, पत्थर, ईंट आदि से लिखी भी जाएँ तो उन पर लिखी सामग्री २—४ दिन में मिट जाएगी या अस्पष्ट हो जाएगी या ईंट-पत्थर आदि पर जो प्राकृतिक छटाएँ-रेखाएँ आदि हों उनसे घुल-मिलकर या तो पढ़ी नहीं जाएगी या उसका कोई और ही अर्थ हो जाएगा। उतने भिन्न आकार, प्रकार, भार आदि वाली लेख-सामग्री इकट्ठी रखना और पच्चीस-तीस वर्षों के पश्चात् पढ़ी जाना बड़ी अटपटी, अविश्वसनीय बात प्रतीत होती है। अतः हुआ यह होगा कि महंमद की मृत्यु के पश्चात् जिन चन्द व्यक्तियों के हाथों में सत्ता आ गई उन्होंने डण्डे के जोर से जो चाहे आयतें लिखवा दीं और कह दिया कि महंमद ने गुफा के एकांतवास में वही आयतें सुनीं।

और हुआ भी ठीक ऐसा ही। इस्लाम के इतिहासकार बतलाते हैं कि महंमद की मृत्यु के पश्चात् उसके अनुयायी विविध प्रदेशों में भिन्न-भिन्न आयतें रटा करते थे। इससे अनेक गुट बनकर इस्लामी पंथ के टुकड़े हो जाएँगे ऐसी शक्यता जब दिखाई देने लगी तब खलीफा के सलाहकारों ने कुराण का एक मनमाना संस्करण बनाकर डण्डे के जोर पर विविध प्रदेशों के इस्लामी अनुयायियों पर थोप दिया और अन्य भिन्न कुराण सब नष्ट करवा दिए। ऐसा करने में महंमद ने सुनी हुई मूल आयतें कुछ हद तक अवश्य लुप्त-गुप्त होकर अन्य कपोलकल्पित सामग्री कुराण में सम्मिलित

हो जाना स्वाभाविक था।

५. 'स्वर्ग में जो कुराण शिलापट्टी पर जैसा लिखा है वैसा ही समाधिस्थ अवस्था में महंमद को सुनाया गया और वही अब मुद्रित पुस्तकों के रूप में उपलब्ध है', यह दावा भी इसलिए उचित नहीं लगता कि महंमद को जब लिखना-पढ़ना कुछ आता ही नहीं या तो सर्वज्ञानी अल्लाह ने अनपढ़ महंमद को एक लम्बे-चौड़े कुराण रूप संदेश का माध्यम क्यों बनाया? अन्य किसी लेखन-प्रवीण व्यक्ति को कुराण क्यों नहीं लिखवाया? क्या ऐसे व्यक्तियों की विश्व में कमी थी? और यदि महंमद को ही सुनाना था तो अल्लाह ने निजी चमत्कार द्वारा रातोंरात सर्वप्रथम महंमद को ही लिखा-पढ़ाकर विद्वान बनाकर उसके पश्चात् कुराण क्यों नहीं सुनाया?

६. वैसे भी स्वर्ग में लिखे मूल शिलापट्टों के अनुसार ही पृथ्वी पर उपलब्ध कुराण है यह दावा भी इसलिए गलत है कि कुराण को विविध प्रकरणों में बाँटकर लम्बे प्रकरण सर्वप्रथम और छोटे प्रकरण तत्पश्चात् यह क्रम पृथ्वी पर लगाया गया।

७. आयतें लिखी हुई ईंटें, पत्थर आदि सामग्री २५—५० वर्ष तक किस स्थान पर सुरक्षित रखी गईं? यदि कोई ऐसा स्थान होता तो इस्लामी परम्परा में उस स्थान को महान तीर्थ की पवित्रता प्राप्त हो जाती। अतः इस्लामी परम्परा का वह दावा निराधार-सा लगता है। वह पवित्र लेख-सामग्री अब उपलब्ध क्यों नहीं है? उसे किसने नष्ट किया यह भी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है?

८. कुराण की आयतें जिस क्रम में स्वर्ग से उतरीं उस क्रम से जब रखी नहीं गई हैं और उस क्रम में वह पढ़ी भी नहीं जातीं तो इससे निष्कर्ष निकलता है कि कुराण चाहे उल्टी-सीधी, ऊपर-नीचे, आगे-पीछे जैसी भी पढ़ो, उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। क्या ऐसा ग्रंथ ईश्वरीय ग्रंथ कहा जा सकता है? स्वर्गीय कुराण में आरम्भ से अन्त तक क्या कोई तर्क-क्रम नहीं है? यदि वैसा क्रम हो तो क्या उसकी आयतें आगे-पीछे करने में वह क्रम बिगाड़ा नहीं गया?

महंमद द्वारा वेदों का पुरस्कार

विधर्मियों के प्रति पूर्ण घृणा तथा तिरस्कार दर्शाने का जो प्रशिक्षण घरों से मसजिदों तक प्रत्येक मुसलमान को बचपन से पग-पग पर दिया जाता है उससे इस्लाम को राक्षसी अवस्था प्राप्त हो गई है। इसके बजाय, यदि अन्य-धर्मियों से सद्भाव से रहने का सबक मुसलमानों को दिए जाने की व्यवस्था हुई तो विश्व की पचास प्रतिशत अशांति मिट जाएगी।

ऐसी सीख का एक उदाहरण मैं नीचे दे रहा हूँ। आज तक मुल्ला मौलवी इमाम आदि कुराण पर भाष्य लिखने की चेष्टा करने वाले इस्लामी विद्वान गत १४०० वर्षों में हजारों हुए होंगे तथापि विधर्मियों को तिरस्कृत दृष्टि से देखने के उनके रवैये के कारण वे कुराण में अन्तर्भूत कुछ मौलिक बातें ग्रहण नहीं कर पाए हैं। वे महत्त्वपूर्ण मुद्दे उनकी दूषित धर्मान्ध दृष्टि से ओझल रह गए।

उदाहरण महंमद का वेदों के प्रति आदर और महंमद द्वारा वेदों का पुरस्कार। N. J. Dawood के ग्रन्थ की प्रस्तावना का हमने ऊपर उल्लेख किया है। उसमें लिखा है—Mohammed...Firmly Believed that he was the messenger of God sent forth to confirm previous scriptures. The Koran accuses the Jews of corrupting the scriptures and Christians of worshipping Jesus as the son of God.

उसका अनुवाद इस प्रकार होगा "महंमद का यह पूरा विश्वास था कि अल्लाह ने उसे प्राचीन धर्मग्रन्थों का पुनः पुरस्कार करने के लिए भेजा है। यहूदियों ने प्राचीन ग्रंथों को विकृत किया है ऐसा दोष उन पर कुराण में लगाया गया है। और देवपुत्र कहकर ईसा की पूजा करने वाले ईसाइयों की निन्दा की गई है।"

यहूदियों से भी प्राचीन धर्मग्रन्थ विश्व में वेदों के अतिरिक्त अन्य कोई है ही नहीं। अतः महंमद की वेदों पर श्रद्धा थी और वेदों का पुरस्कार करना वह निजी अवतारी कार्य समझता था, यह बात स्पष्ट हो जाती है। यह ध्यान में लेकर यदि मुसलमान लोग भी वेदों का पठन-पाठन आरम्भ कर दें तो विश्व में सुख-शान्ति और एकता प्रस्थापित हो जाएगी?

महाभारतीय युद्ध के पश्चात् अरब लोग वैदिक सभ्यता से बिछड़ जाने के कारण वेदों का पुरस्कार करने के लिए भेजे जाने का महंमद का विश्वास उचित था। और एक प्रमाण यह है कि अरब लोगों को कुशाई और श्यामई (Cushites और Semites) कहा जाता है। 'कुश' राम का पुत्र था और 'श्याम' कृष्ण का नाम है। इस्लाम-पूर्व काल में अरब लोग राम और कृष्ण के अनुयायी थे।

अर्बस्थान पर कुश का अधिकार

Sir William Drummond द्वारा लिखित एक ग्रन्थ का नाम है Origines। प्रकाशक हैं A. G. Valpy, Red Lion Court, Fleet Street, London) उसके खण्ड ३ व ४ के पृष्ठ २६४ पर उल्लेख है कि "कुश के कुल वाले नाम के कई वंशज निःसन्देह अनादिकाल से अर्बस्थान में बसे हुए थे। कुश राम का पुत्र था। अफ्रीका और अर्बस्थान का कुश के साम्राज्य में अन्तर्भाव था"।

विश्व सम्राट होने से राम का अधिकार अफ्रीका और अर्बस्थान पर भी था। राम के उत्तराधिकारी के नाते कुश का अर्बस्थान तथा अफ्रीका खण्डों पर शासन रहा।

कृष्ण

महाभारतकाल से विश्व में कृष्ण की प्रतिष्ठा बढ़ी। उसे मुरलीधर, बालकृष्ण, मुरारी, गिरधर, श्याम, कान्हा ऐसे अनेक नामों से जाना जाता है। अतः राम और कुश के वैदिक साम्राज्यांतर्गत अफ्रीका और अरब प्रदेशों पर महाभारतकाल में Cham उर्फ श्याम का अधिकार हो गया। यहूदी और अरबी भाषा तथा जीवन प्रथा को Sematic कहा जाता है। वह कृष्ण के श्याम नाम के कारण है। इसके अन्य प्रमाण भी इसी ग्रन्थ में अन्य सन्दर्भों में हमने दिए हैं।

Sir William Drummond के ऊपर उल्लिखित ग्रंथ के पृष्ठ ३६४ पर अर्बस्थान की एक नदी का नाम 'राम' बताया गया है।

शिवांश

पृष्ठ ३६८ पर उल्लेख है कि Amru—Chief of one of the

most ancient tribes...compelled to cede Meeca to the Ishmelites, threw the black stone and two Golden antislopes into the nearby well, Zamzam । यानी "जब एक अतिप्राचीन टोली के मुखिया अमरू को, ईशमाइलियों को मक्का शहर सौंप देना पड़ा, तब उसने शिवलिंग और बारहसिंगों की दो स्वर्णमूर्तियाँ झमझम कुएँ में फेंक दीं।"

मक्का नगर स्थित काबा मंदिर के शिवलिंग का यह एक प्राचीन उल्लेख है। शिव को पशुपति कहे जाने के कारण काबा मंदिर में बारहसिंगा जैसे पशुओं की भी मूर्तियाँ थीं। वाराणसी पर हुए मुसलमानों के हमलों के समय जिस प्रकार वहाँ के उपाध्यायों ने शिवलिंग को ज्ञानवापी में झोंक दिया उसी प्रकार का संकट काबा वाले शिवलिंग पर भी आया था, यह बात ऊपर दिए उद्धरण से स्पष्ट है। एक दूसरे से अति दूर स्थित उन दोनों प्राचीन शिवलिंगों पर समान आपत्ति आ पड़ना एक दैवी योगायोग ही प्रतीत होता है।

इस्माइल और इस्माइली शब्द आजकल मुसलमानों के निदशक समझे जाते हैं। वास्तव में वह ईशालयम् इस संस्कृत शब्द के विकृत रूप हैं। ईशालयम् यानी देवमंदिर। अत: उस मन्दिर के भक्तगण ईशालयमी कहलाते थे। उस शब्द का विकृत उच्चार "इस्माइली" हुआ है। इस प्रकार इस्माइली और अन्य इस्लामी पंथों को उनकी मूल प्राचीन वैदिक, हिन्दू, सनातनी, आर्य प्रथा का ज्ञान कराना आवश्यक है।

अबस्थान की वैदिक परम्परा

Sir William Drummond के ग्रन्थ के पृष्ठ ४११ पर उल्लेख है कि "प्राचीनकाल में Tsabaism ही अरबों का धर्म था। वही Tsabaism समस्त मानवों का धर्म था…। उस धर्म के तत्त्व उस समय के सारे ही सुबुद्धजन मानते थे।" इस ग्रन्थ में प्रस्तुत हमारे सिद्धान्त को पूरी पुष्टि ड्रमण्ड के वचन से होती है कि प्राचीनकाल में सारे मानवों की एक समान सभ्यता थी। वह वैदिक संस्कृति ही थी।

काबा मन्दिर स्थित देवमूर्तियाँ

पृष्ठ ४३६ से आगे ड्रमण्ड के ग्रंथ में काबा के मंदिर में जो ३६० मूर्तियाँ थीं उनमें से कुछ उद्धृत हैं। महंमद द्वारा उस मंदिर पर क़ब्ज़ा कर सारी मूर्तियाँ नष्ट कर देने के कारण, नष्ट मूर्तियों का सुना सुनाया, आधा-अधूरा जो ब्यौरा मिलता है, वह इस प्रकार है—

एक मूर्ति किसी पक्षी की थी। हो सकता है वह गरुड़ की हो। क्योंकि प्राचीन अरबी अवशेषों में गरुड़ की मूर्तियाँ तथा चित्र प्राप्त हुए हैं। दूसरी मूर्ति का नाम Al Debaran उल्लिखित है। वह देव वरुण का अपभ्रंश है। Al Dsaizan यह शैतान Saturn उर्फ शनि का अरबी अपभ्रंश है। Allat देवी की मूर्ति का उल्लेख कुराण में आया है। इस्लाम में भगवान के लिए प्रचलित अल्लाह् नाम उसी देवी का है। संस्कृत में अल्ला यह नाम माता और जगन्माता के लिए आता है। भारत में अल्लागिरि स्वामि नाम प्रचलित है। अल्लागिरि यानी देवी के मंदिर वाला गिरि या पहाड़। अल्लादि नाम का गाँव भी दक्षिणी हिन्दुस्तान में है। उधर अरब प्रदेश में जॉर्डन नदी के पश्चिमी किनारे पर रामल्ला नाम का नगर है।

Al Ozi उर्फ ओझ्झा नाम की एक देवी थी। वह संस्कृत ऊर्जा शब्द है जिसका अर्थ है दैवीशक्ति उर्फ माया। अल शरक् यानी शुक्र देवता की एक मूर्ति थी तथा औद यानी उद्धव नाम की एक मूर्ति थी।

एक देवता का नाम "अव्वल" कहा जाता है। अव्वल यानी प्रथम। उसकी अग्रपूजा होती थी। अतः वह गणेश की मूर्ति थी।

बग नाम की एक मूर्ति थी जो भगवान शब्द का संक्षिप्त उच्चार था। बगदाद शब्द में भी वैसा ही "बग" शब्द है। काबा के मंदिर को विश्व की नाभि कहा जाता था। इससे हमारा अनुमान है कि जिस विष्णु भगवान की नाभि से ब्रह्मा प्रकट हुए और ब्रह्मा द्वारा सृष्टि-निर्माण हुई उन शेषशायी भगवान विष्णु की विशालकाय मूर्ति काबा के देवस्थान में बीचों-बीच थी और इर्दगिर्द के अन्य मन्दिरों में अन्य सैकड़ों मूर्तियाँ थीं।

वजर नाम का एक अन्य देवता कहा जाता है। वास्तव में वह इन्द्र का वज्र था। वह कोई स्वतंत्र देवता नहीं था। छिन्न-भिन्न किए गए काबा के इतिहास में ऐसे कई घोटाले हैं।

कबर नाम का एक और देवता था जो वास्तव में कुबेर नाम है। देवों की खजांची कुबेर था। उत्तर दिशा का पालक वही है।

Duar एक नाम कहा जाता है जो वास्तव में इन्द्र था। Dsu al chalasat नाम देवी काली का विकृत उच्चार है। Dua Shara नाम देवेश्वर शब्द का अरबी उच्चार है। Haba यह बाहुबलि का विकृत उच्चार था। Gaeber यह "ग्रह" यानी नवग्रह देवताओं का प्रतीक था। मदन यह काम देवता की मूर्ति थी। मनफ यह मनुः संस्कृत नाम था। अतः मनु महाराज की मूर्ति भी काबा मंदिर में होती थी।

मनाथ नाम का देवता वास्तव में सोमनाथ था। अलनस्र नाम की गरुड़ मूर्ति थी। ओबेदेस नाम का देवता "भूदेवस्" यानी भूदेव था। अम्रु पुत्र "असुफ" और नयला (जो सहल की पुत्री थी) दो अन्य देवी-देवता थे। नयला वस्तुतः इजिप्त की नदी नील सरस्वती देवी हो सकती है।

रुभिया नाम राजेश नाम के देवता का अपभ्रंश था। रेडसा एक देवता का नाम था। संस्कृत में ऋद्धि-सिद्धि देवताओं में से रेडसा यह ऋद्धि का अपभ्रंश था।

यह सारे नाम बड़े विकृत से हो गए हैं क्योंकि महाभारतीय युद्ध के पश्चात् अरब प्रदेशों में संस्कृत शिक्षा पूर्णरूपेण बन्द हो गई थी। बड़ी अवधि के पश्चात् इस्लाम का प्रसार होने से तो जो लंगड़ी-लुटी वैदिक संस्कृति अरब प्रदेशों में बची-खुची थी उस पर भी पानी फेरा गया। अतः हम तक अतीत के उन वैदिक देवताओं के जो नाम आ पहुँचे हैं वे बड़े विकृत से हुए पड़े हैं। मुसलमान अभ्यासकों के मुख से होने वाले उनके उच्चार या इस्लामी ज्ञानकोष आदि में दिए गये वे नाम बड़े विकृत हैं।

साद नाम की भाग्यदेवी थी। यह संस्कृत 'सिद्धि' का अपभ्रंश है।

सेर यह 'श्री' यानी लक्ष्मी देवी थी। इटली देश में भी 'श्री' का अपभ्रंश 'सेर' हुआ है। उदाहरणार्थ मार्कोपोलो के ग्रन्थ पर उसका नाम "सेर मार्कोपोलो" इस प्रकार अंकित है।

शाकिया देवता संस्कृत शक्रः नाम का अपभ्रंश था। शवारा नाम शिवेश्वर का अपभ्रंश था। शम्स् यह सूर्यस् यानी सूर्य देवता का नाम था।

वध यह बुध का उच्चार था। आंग्ल भाषा में भी बुध के बजाय वध

उच्चार हो जाने से "बुधन्-ईशस्-दिन" के बजाय Wed-Nes-Day ऐसा अपभ्रंश रूढ़ हुआ।

यगुत्र नाम के देवता का आधा शरीर सिंह का था जो नरसिंह या Sphinx था। नरसिंह में शरीर भगवान विष्णु का और मुख सिंह का होता है। यह प्रह्लाद की रक्षा के लिए विष्णु ने लिया हुआ अवतार था, किन्तु ईजिप्त में जो Sphinx की मूर्ति है वह रामसिंह की प्रतीक है। उसमें गले तक का निचला शरीर सिंह का है और चेहरा राम का। रामसिंह के रूप में Sphinx ईजिप्त का रक्षक देवता है।

याऊक देवता यक्ष का विकृत उच्चार था

भुर्रत यह शुक्र देवता का नाम था।

H. Stj. B. Philby का लिखा The Background of Islam नाम का ग्रन्थ है। प्रकाशक हैं Messrs Whiteshead Morris, Alexandria, Egypt १९४७। उसके पृष्ठ ८८ पर उल्लेख है कि हुज्जा नगर और आस-पास पाए गए शिलालेखों में एक अभिषेक पात्र का उल्लेख है जो रामस और सोमीय नाम की दो टोलियों के लोगों ने स्थानीय मन्दिर को अर्पण किया था। रामस् और सोमीय दोनों वैदिक परम्परा के सूर्यवंश और चन्द्रवंश के द्योतक हैं।

अर्बस्थान के हाथी

ऊपर उल्लिखित ग्रन्थ के पृष्ठ ११७ पर उल्लेख है कि "अरबी परम्परा में हाथियों की स्मृति कायम है।" कुराण की प्राचीन प्रतिलिपियों में कई पृष्ठों के किनारों पर हाथियों की रंगीन चित्रकारी अंकित है। धार्मिक पुस्तकों के पृष्ठों पर ऐसी रंगीन चित्रकारी करना वैदिक प्रथा है। उसमें भी हाथी जैसे प्राणी के चित्र खींचना एक विशेष महत्त्व रखता है। क्योंकि वैदिक परम्परा में हाथी को बल, समृद्धि और बुद्धि का प्रतीक माना गया है। आधुनिक अर्बस्थान में तो हाथियों का पूर्ण अभाव है। क्योंकि हाथियों के लिए विपुल पानी और घना जंगल आवश्यक होता है। आधुनिक अरब प्रदेश तो मरुस्थल है जहाँ हाथी पल नहीं सकते। अतः प्राचीन अरबी कुराणों में हाथियों की चित्रकारी उस प्रदेश की प्राचीन वैदिक संस्कृति का

एक मोटा प्रमाण है। बड़े आश्चर्य की बात है कि किसी सजीव प्राणी का चित्र खींचना, कुराण निषिद्ध मानता है लेकिन उसी कुराण की प्राचीन प्रतियों पर पृष्ठों के किनारे हाथी के चित्रों से सुशोभित किए गए हैं। Emil Esin द्वारा लिखे Mecca The Sacred And Medina The Radiant ग्रन्थ में कुराण के उस चित्रकारी के नमूने उद्धृत हैं।

प्राचीन वैदिक ग्रन्थों के पृष्ठ जिस प्रकार सुशोभित किए जाते थे उसी प्रकार कुराण की प्रतियाँ सजाना भी इस बात का सबूत है कि अरब प्रदेशों में प्राचीनकाल में वैदिक संस्कृत पोथियाँ पढ़ी जाती थीं।

फिल्बी के ऊपर उल्लिखित ग्रन्थ में पृष्ठ ११७ से १२३ तक अर्बस्थान की प्राचीन हाथी परम्परा के बाबत लिखा है कि "हाथियों के काफिलों की चिरंतन स्मृति अरबी परम्परा में जागृत है—मक्का से मदीना जाने वाला एक हाथी मार्ग ज्ञात है। महंमद का जन्म जिस वर्ष में हुआ था उसका अरबी पंचांग में हाथी वर्ष नाम था।"

इस सारे इतिहास को इस्लाम के नशे में अरबों ने इतनी बुरी तरह से नष्ट किया कि फिल्बी लिखते हैं, "अरब प्रदेश के प्राचीन राज्यों की बाबत अरबी लेखकों के ग्रन्थों में जरा भी जानकारी नहीं मिलती। कुछ टोलियों के दादा-परदादाओं के नाम हैं और उनकी कुछ दन्तकथाएँ यही शेष हैं। कुख्यात धु हुवास और उखदूद का मामला, इन्हीं से अरबी इतिहास आरम्भ होता है। उसके पूर्व का दो सौ वर्ष का इतिहास कुछ ऊटपटांग गपशप और काल्पनिक बातों से इस प्रकार भर दिया गया है जैसे भूमि के गड्ढे मलबे से भर दिए जाते हैं। इस्लाम के आरम्भ के दिन और शीबा रानी का काल, इस बीच के दो सौ वर्षों का मूल इतिहास मुसलमानों ने नष्ट कर उसके स्थान पर कुछ नगण्य कपोलकल्पित बातें जड़ दीं। इस्लाम का बड़प्पन प्रतीत हो इस हेतु उसके पूर्व की स्थिति की हर प्रकार की भर्त्सना, पक्षपाती अरबी मुसलमानों ने उनके कपोलकल्पित वर्णनों में गढ़ दी है।

अरब प्रदेश की शीबा रानी प्राचीन यहूदी इतिहास में प्रख्यात है। संस्कृत पुराणों में शिवि राजा की कथा है। इससे पाठक देख सकते हैं कि शिवि राजा और रानी के वे उल्लेख उस अतीत के हैं जब सारे विश्व में

वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा ही थी।

Alfred Guillame की Islam नाम की पुस्तक है। उसमें वे कहते हैं कि प्राचीन अर्बस्थान में प्रत्येक वृक्ष में भगवान का अस्तित्व पहचानकर वृक्ष की पूजा की जाती थी। भक्तगण उन वृक्षों पर निजी वस्त्र के फटे या फाड़े हुए टुकड़े लटका देते। भारतीय लोग भी तो ऐसा ही करते हैं। प्राचीन अर्बस्थान की वैदिक संस्कृति का यह एक प्रमाण है।

काबा मन्दिर की दीवारों पर कृष्ण के चित्र

ऊपर उल्लिखित लेखक गिलौम लिखते हैं (पृष्ठ १३, प्रकाशक— Penguine Books Ltd, Hammondsworth, Middlesex, U. K. १९५४) Islam, "विश्वसनीय सूत्रों से पता चलता है कि सन् ६३० में विजेता बनकर जब महंमद ने काबा में प्रवेश किया तब काबा के अन्दर दीवारों पर ईसा और उसकी कुमारी माता मेरी के चित्र और अन्य कुछ चित्र बने हुए थे। महंमद की आज्ञा से ईसा और मेरी के चित्रों को छोड़ अन्य सारे चित्र मिटा दिए गए। सन् ६८३ में काबा में आग लग जाने के कारण उसका बड़ा हिस्सा नष्ट होने पर जब दुबारा बनवाया गया तब लोगों ने बताया कि अन्दर ईसा और उस की माता के चित्र थे"।

इस्लामपूर्व काबा के मन्दिर की ऐसी कितनी ही बातें अन्य लोगों से किस तरह छिपाई गई हैं इसका ऊपर दिए गए वर्णन से पता लगता है। काबा परिसर की बाबत मुसलमानों ने कड़ी गुप्तता इसलिए रखी है कि उन्होंने जिनके उस वैदिक परिसर पर जबरन कब्जा किया वे कहीं उत्तेजित होकर दुबारा उस वैदिक मन्दिर को जीत न लें। अतः काबा की हज यात्रा पर जाने वाले हर मुसलमान को सौगन्ध दिलाई जाती है कि हज यात्रा में देखी बातों का वह किसी से उल्लेख नहीं करेगा।

वैसे तो अधिकांश यात्रियों को शिवलिंग सहित सारे काबा मन्दिर की उत्तुंग चारदीवारी की ही परिक्रमा करनी पड़ती है। यदि किसी कारण से कुछ गिने-चुने मुसलमानों को मन्दिर के अन्दर प्रवेश मिल भी गया तो उन्हें शपथ दिलाई जाती है कि वे अन्दर जो कुछ देखेंगे उसकी अन्य लोगों को जरा भी जानकारी नहीं देंगे।

काबा का अंतरंग

काबा के अन्दर की दीवारों पर जो आधे-अधूरे मिटे हुए अस्पष्ट से चित्र ईसामसीह और उसकी माता मेरी के क्रुस्ती लोग समझते हैं, वे वस्तुत: कृष्ण और यशोदा के थे। क्योंकि अरब प्रदेशों में कृष्णभक्ति की प्राचीन परम्परा रही है और अरबों में कभी ईसाई पंथ का प्रचार हुआ ही नहीं था।

अरब लोग एक दूसरे का अभिवादन करते हुए "सलाम वालेकुम्" कहते हैं, जो वास्तव में "ईशालयम् बालकम्" (नमस्कृत्य या स्मृत्वा) यानी "मन्दिर में प्रतिष्ठित बाल(कृष्ण) का" स्मरण या नमन करके इस अर्थ का संस्कृत, वैदिक अभिवादन है।

मन्दिर के अन्दर के चित्र ईसा के इस कारण भी नहीं थे क्योंकि इस्लामपूर्व काल में काबा का कब्जा महंमद के घराने के हाथ में था। वे ईसाई नहीं अपितु वैदिकधर्मी थे। काबा में अभी भी वैदिक शिवलिंग ही अधिष्ठित है। उस मन्दिर की परिक्रमा भी की जाती है। उस प्रांगण को हिरम् उर्फ हरीयम्(यानी हरिमन्दिर)कहते हैं। उसमें अन्य सैकड़ों वैदिक मूर्तियाँ थीं। कहा जाता है कि काबा के अन्दरूनी दीवारों पर संस्कृत शिलालेख भी हैं। अमेरिका के Smithsonian Institute के अरबी विभाग से मैंने १०-१२ वर्ष पूर्व पत्र द्वारा पूछा था कि क्या उन्होंने काबा मन्दिर के अन्दरूनी शिलालेखों को पढ़ा है ? तो उनका उत्तर आया कि अरब लोग उस मन्दिर की बाबत इतनी गुप्तता बरतते हैं कि अन्दर के शिलालेख पढ़ने का प्रशिक्षण किसी अरब को दिलाकर उसे अन्दर भेजना पन्द्रह-बीस वर्षों में शायद सम्भव हो पाएगा।

गोरखपुर के किसी पीर के एक मुसलमान रखवाले ज्ञानदेव नाम लेकर आर्यसमाजी प्रचारक बन गए थे। ईरान के शाह के साथ वे चार-पाँच बार हज कर आए थे। उनके कथन के अनुसार काबा के प्रवेश द्वार में एक Chandelier यानी काँच का भव्य दीपसमूह लगा है जिसके ऊपर भगवद्गीता के श्लोक अंकित हैं।

उस मन्दिर के अन्दर घी का एक पवित्र दीप भी जलता रहता है ऐसा औरलोगों का कहना है। वैदिक प्रथा में उसे नन्दादीप कहते हैं जो ईश्वरीय

तेज, ज्ञान और प्रकाश के प्रतीक के रूप में सर्वदा प्रज्वलित ही रखा जाता है।

प्राचीन अरबों की वैदिक विवाह पद्धति

वैदिक विवाह मन्त्रों में "तदेव लग्नं सुदिनं तदेव, तारावलं चन्द्रबलं तदेव" ऐसा मन्त्र कहा जाता है। यानी विवाह के लिए चन्द्रबल देखा जाता है। मुसलमानों में भी वह देखा जाता है। इसका प्रमाण यह है कि वृश्चिक राशि में चन्द्रमा हो या चन्द्रमा को ग्रहण लगा हो तो उस समय इस्लामी विवाह नहीं किए जाते। यह वैदिक प्रथा है। विवाह को मुसलमानों में "निका" कहा जाता है जो संस्कृत "निकट" शब्द है।

इतिहास झुठलाने की इस्लामी प्रथा

इस्लामपूर्व इतिहास नष्ट करना और अन्य घटनाओं को इस्लाम की सुविधानुसार तोड़ना-मरोड़ना, यह अरबों का रवैया आगे चलकर ईरान, तुर्कस्थान, अफगानिस्तान आदि प्रदेशों के मुसलमानों ने अपनाया। क्रुस्ती लोगों ने भी स्वेच्छा से क्रुस्तपूर्व इतिहास नष्ट करने की और अगला इतिहास आवश्यकतानुसार विकृत करने की प्रथा चलाई। इसी प्रकार ईसाई और इस्लामी दोनों पंथ छल, कपट, अनाचार, अत्याचार और प्रलोभन से ही फैलाए गए। अतः ईसाइयों की या मुसलमानों की लिखी ऐतिहासिक सामग्री बड़ी सावधानी से पढ़ने की आवश्यकता है। जब तक अन्य प्रमाणों की पुष्टि प्राप्त न हो मुसलमानों के या ईसाईयों के दावे स्वीकृत नहीं करने चाहिएं।

शिव और गंगा

वैदिक प्रथा के अनुसार जहाँ भी शिवजी होते हैं वहाँ गंगा माई भी होती हैं। काबा में शिवजी हैं तो वहाँ गंगा मैया भी हैं। क्योंकि काबा मन्दिर के साथ ही एक कुंआ है जिसे झमझम् कहते हैं। वह गंगाजलम् का अपभ्रंश है। मुसलमान यात्री उस कुएं का पानी निकालकर भक्ति-भाव से पीते हैं यद्यपि वह खारा और अरुचिकर-सा लगता है।

काबा एक प्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक तीर्थस्थल था जहाँ स...

के लोग शेषशायी विष्णु और अन्य देवताओं के दर्शन करने आते थे कई। जत्थे अपने साथ निजी साधु-सन्त और देवमूर्तियों की पालकियां भी ले आते। महंमद ने जबसे उन अन्तर्राष्ट्रीय यात्रियों पर हमला कर मन्दिर पर कब्जा कर लिया तबसे महंमद के अनुयायियों के अतिरिक्त दूसरों का प्रवेश वहाँ बन्द कर दिया गया है। अतः हज की यात्रा एक तरह की प्राचीन अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक यात्रा ही चालू रखी गई है।

काबा के पैंतीस मील के घेरे में अन्य धर्मावलम्बियों को प्रवेश नहीं दिया जाता। मुसलमान यात्री भी मुण्डन यानी क्षौरकर्म कराकर, एक चादर की लुंगी बांधे और दूसरी चादर शरीर पर ओढ़े मन्त्र जाप करते हुए काबा मन्दिर की सात प्रदक्षिणा (सप्तपदी) करते हैं। मुख से यात्री जो मन्त्र बोलते हैं वे वेदोच्चारण ध्वनि जैसे ही लगते हैं। चादर ओढ़े हुए मुसलमान यात्री ब्राह्मण पुरोहितों जैसे ही लगते हैं। भारत स्थित रामेश्वर मन्दिर में दर्शनार्थियों को वैसे ही बिना सिलाई की धवल चादर ओढ़कर प्रवेश करना पड़ता है।

अरबों की प्राचीन अग्निपूजा

संस्कृत में 'मखः' यज्ञ को कहते हैं। मक्का शब्द उसी का अपभ्रंश है। वहाँ से २२ मील दूर मदीना नगर है। मदीना यह मेदिनी यानी "पृथ्वी" अर्थ का शब्द है। इस प्रकार मख-मेदिनी यानी मक्का-मदीना यज्ञभूमि थी। इसी कारण इस्लामी प्रथा में बलि चढ़ाने की बात चलती है। मदीना में जिस इमारत में महंमद की कब्र है वहाँ पहले वैदिक मन्दिर होता था। इस्लाम ने सारे वैदिक मन्दिरों को कब्रिस्तान ही बना छोड़ा।

गेरुए रंग का अरबी नगर

गेरुआ वैदिक सभ्यता का पवित्र रंग है। उत्तरी हिन्दुस्तान में लालकिला, कुतुब आदि लगभग सारे ही भवन गेरुआ रंग के पत्थर से बने हैं तथापि दीर्घ अवधि के इस्लामी कब्जे के कारण वे गल्ती से इस्लामी निर्माण समझे जाते हैं। इसी प्रकार की लाल पत्थर की गुफाएँ आदि अर्बस्थान और आस-पास के प्रदेशों में बिखरी हुई हैं। उन्हें इस्लाम निर्मित समझना सरासर गलत है। विश्व-भर के इतिहासकारों की यह बड़ी भारी भूल रही

है। उसी गलत धारणा पर बना इस्लामी वास्तुकला सिद्धान्त भी निराधार जानकर त्याग देना आवश्यक है।

Lowell Thomas नाम के अंग्रेज लेखक ने With Lawrence of Arabia नाम की पुस्तक लिखी है। उसमें पृष्ठ १६४ से १७४ तक उसने प्राचीन गेरुए रंग के पहाड़ों में खुदे अरबी गुफा नगर का वर्णन किया है।

जॉर्डन प्रदेश में वह सुनसान नगर है जहाँ अब कोई बस्ती नहीं है। एडोम (Edom) पहाड़ियों में खुदी गुफाओं की बनी वह केसरी रंग की नगरी बड़ी लुभावनी है। मरुस्थल के वीरान निर्जन हरपर्वत से कुछ ही दूरी पर वह नगरी स्थित है। आस-पास दूर-दूर तक कोई मानव बस्ती नहीं है। पहाड़ों की ऊँची लाल चट्टानों में खुदा वहाँ एक नाजुक, सुन्दर मन्दिर था। एथेन्स नगर के थीसियस के मन्दिर से और रोम नगर के Forkm से भी वह अधिक दर्शनीय था। निर्जन मरुस्थल में लगभग १०० मील भटकते-भटकते अचानक जब वह सुनसान किन्तु लाल गुलजार नगरी एकाएक सामने आती है तो अचम्भा-सा लगता है। यह वह अज्ञात भूला-बिसरा ऐतिहासिक पेत्रा नगर था जो १४०० वर्षों से निर्जन रहा है। इस नगर के स्तम्भ, चबूतरे, दीवारों आदि पर खुदी चित्रकारी बड़ी मनोहारी है। किन्तु उसे (इस्लामी हमलावरों ने) छिन्न-भिन्न किया हुआ है। पहाड़ों की चट्टानों को काटकर वह मन्दिर २००० वर्ष पूर्व खुदवाया गया था। उसके कुछ ही दूरी पर इसी प्रकार लोगों के रहने के लिए पहाड़ काटकर उसमें गृह, कमरे, कक्ष आदि बने थे। लाखों जन कभी वहाँ रहे होंगे इतना उसका विस्तार था। उसके छोटे-मोटे दालानों के कुछ नमूनों को छोड़कर अन्य छिन्न-भिन्न पड़े हुए थे। इस शहर के ऊपरले हिस्से में किले, बाड़े, महल, समाधिस्थल और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थान सारे चट्टानों को काट-काटकर बनाए गए थे। निम्न स्थलों में सार्वजनिक जल-क्रीड़ा के स्थल बने हुए थे। पेत्रा देखने वाले सारे ही लोग उस पहाड़ी प्रस्तर की मनोहारी लाली देखकर दंग रह जाते हैं। समय-समय पर दिखने वाले उसके विविध रंगों की शोभा शब्दातीत है। उदयमान सूर्य की किरणों में उन चट्टानों से इन्द्रधनुष के रंगों की किरणें वातावरण में बिखरती हैं

उनमें शुभ्र, लाल, केसरी, नारंगी, गुलाबी आदि छटाएँ होती हैं। सूर्यास्त के समय उन चट्टानों से एक विचित्र रंगीन प्रकाश फैल जाता है। चट्टानों में ऐसे जीने बने हैं जिनमें कहीं-कहीं एक मील से भी अधिक लम्बी पहाड़ी पर चढ़ने हेतु एक के ऊपर एक पीढ़ियाँ बनी हुई हैं। उनसे वहाँ से लगभग सभी शिखरों पर चढ़ा जा सकता है।"

थॉमस लिखते हैं "हम एक जीने से उस नगर से एक सहस्र फुट ऊँचे शिखर पर पहुँच गए। वहाँ एक मन्दिर था जिसे अरब लोग El Deir (देवल) कहते हैं। उसकी ऊँचाई १५० फुट थी। उसके शिखर पर एक कुम्भ था। कुम्भ पर सर्पधारी (शिवजी की) मूर्तियों की चित्रकारी बनी थी।

यज्ञवेदी का शिखर तो और भी ऊँचाई पर बना हुआ है। उस पर भी चढ़ने के लिए जीना बना हुआ है। शिखर पर स्तम्भ और दो वेदियाँ बनी हुई हैं। वेदियों के पास लगभग २४ फुट ऊँचे दो पत्थरी लिंग हैं जो चट्टानें काटकर शिवपूजन के लिए बनाए गए हैं।

इस पुस्तक के पृष्ठ १७० के सामने वाले पृष्ठ पर उन गुफामन्दिरों के चित्रों की बाबत लिखा है, "हम कई दिन चलते गए फिर भी उन चट्टानों में बने मन्दिर, दालान आदि का अन्त ही नहीं था।"

पुलस्ति ऋषि का गुरुकुल

ऊपर दिए वर्णन में ध्यान देने योग्य बातें इस प्रकार हैं—उस पर्वत श्रेणी को 'हर पहाड़ी' कहते हैं। वह स्पष्टतया शिवजी का नाम है। ठीक उसी से मेल खाने वाला प्रमाण शिवलिंगों का और कुम्भ पर बने शिवजी की प्रतिमाओं का है। पहाड़ी का केसरिया रंग वैदिक संस्कृति का ही है। नगरी का पेत्रा नाम संस्कृत "प्रस्तर" का अपभ्रंश है। चट्टाने काटकर बनी वह नगरी २०००वर्ष प्राचीन यानी इस्लाम से भी पुरानी है। चट्टानों में खुदे ऐसे गुफास्थलों में ऋषि-मुनियों के गुरुकुल हुआ करते थे। जॉर्डन प्रदेश, जनार्दन शब्द का अपभ्रंश है। उसी के समीप पॅलेस्टीन प्रदेश है जो पुलस्तिन् ऋषि का प्रदेश होता था। अत: हो सकता है कि पेत्रा के गुफा नगर में पुलस्ति ऋषि का वेदविद्या का एक गुरुकुल रहा हो।

मुसलमानों को कुटिल हेतु से अज्ञानी रखा जाता है

अरब लोग छल-बल से मुसलमान बनाए जाने से पूर्व वे सभी वैदिक-धर्मी थे। उस समय वे काबा की यात्रा कर उस ३६० देवमूर्तियों के मन्दिर में पूजा-पाठ करते रहते। तथापि उस इतिहास से मुसलमानों को वंचित रखा जाता है। अतः यद्यपि आधुनिककाल में अनेक मुल्ला, मौलवी, इमाम, आगा खां, सय्यदेना, मुजावर आदि के बेशुमार धर्मपीठ बने हुए हैं, उनमें से किसी को भी इस्लाम का आगा-पीछा ज्ञात नहीं है। क्योंकि इस्लाम में अन्धश्रद्धा, अन्धभक्ति और अज्ञान का ही पुरस्कार किया जाता है। मुसलमानों को इस्लामपूर्व इतिहास से प्रदीर्घ यत्न से अनभिज्ञ रखा जाता है, क्योंकि अज्ञान ही इस्लाम की नींव है। मुल्ला-मौलवी जैसे धर्म के ठेकेदारों को भय है कि ज्यों-ही मुसलमान लोग इस्लाम के आरम्भ का सही ज्ञान कर लेंगे वे इस्लाम से घृणा कर उसे त्याग देंगे।

इस्लाम का सही अर्थ

धर्ममार्तंड कहे जाने वाले इस्लामी विद्वान "इस्लाम" शब्द का रटा-रटाया अर्थ "शान्ति" या "शरणागति" बतलाते हैं। वे भूल जाते हैं कि किसी शब्द के गोलमाल, अन्दाज के अर्थ से काम नहीं चलता। मूल धातु का विवरण या प्रमाण देना आवश्यक होता है।

इस्लाम का अर्थ "शान्ति" या "शरणागति" कहने वाले उस अर्थ के समर्थन में कहते हैं कि "देखो पड़ोस के यहूदी भाषा में शालोम (Shalom) यानी "शान्ति"। अतः अरबी में वही शब्द इस्लाम बनकर रह गया है।"

यहूदियों को भी "शालोम" शब्द का "शान्ति" अर्थ कहने से हम कहाँ छोड़ने वाले हैं। उन्हें भी तो हम पूछेंगे कि मूल धातु क्या है? केवल गोलमाल अर्थ देने से काम नहीं चलेगा।

इस प्रकार यहूदियों का प्रश्न हो या मुसलमानों का? अरबी का प्रश्न हो या हिब्रू भाषा का? सबकी जननी संस्कृत है। संस्कृत में "ईश" यानी ईश्वर और "आलयम्" यानी निवास स्थान, अतः "ईशालय" यानी देवालय। मुहम्मद के समय मक्का नगर स्थित काबा अरबों का ईशालयम् यानी देवालय था।

ईश्वर के मन्दिर में दाखिल होने पर मनुष्य ईश्वर की शरण जाता है और सारे झंझट, चिन्ताएँ आदि ईश्वर के हवाले कर मन:शान्ति पाता है। इस दृष्टि से ईशालयम् में प्रवेश करने के परिणामस्वरूप शरणागति या शान्ति भले ही अनुभव हो, किन्तु स्वयं ईशालयम् शब्द का वह अर्थ नहीं है।

उसी प्रकार यहूदियों को भी यह समझना होगा कि "शालोम्" शब्द भी "इशालयम्" यानी देवमन्दिर का द्योतक है। मन्दिर में ईश्वरमूर्ति के समक्ष शरणागत होती है। अत: शालोम् का अर्थ भले ही वैसा समझा जाता हो किन्तु मूलत: शालोम् शब्द "ईशालयम्" शब्द का ही टोटा-सा रह गया है।

नबी

महंमद को अरबी भाषा में "नबी" कहा जाता है। संस्कृत में नभ: यानी आकाश। अत: नभी उर्फ नबी यानी आकाश उर्फ स्वर्ग का निवासी अर्थात् स्वर्ग से ईश्वर ने भेजा हुआ प्रतिनिधि उर्फ नुमाइन्दा।

पैगम्बर भी "प्र-गत-अम्बर" यानी 'आकाश से चल पड़ा व्यक्ति', इस शब्द से पैगम्बर अपभ्रंश बना।

आंग्ल भाषा में उसी अर्थ का Prophet शब्द है। वह भी "प्र-पत" इस संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है। उसका अर्थ भी "पृथ्वी के प्रति (आकाश से) गिरा हुआ" या भेजा गया या चल पड़ा व्यक्ति है। इस तरह दोनों शब्दों की संस्कृत व्युत्पत्ति से निष्कर्ष यह निकलता है कि प्राचीनकाल में विश्व के सारे लोगों की परम्परा वैदिक, संस्कृत होने के कारण वे ही विविध पन्थ और भाषाओं के स्रोत हैं।

इस्लामी कहलाने वाले त्योहार

मुसलमानों में हर त्योहार को ईद (ईड) कहते हैं। क्यों? इसलिए कि संस्कृत में "ईड" यानी पूजा। "अग्निम् ईडे पुरोहितम्" ऐसा संस्कृत वचन है। उसका अर्थ है अग्नि को पूजा (ईडे) में अग्रस्थान दिया है। संस्कृत का यह ईड शब्द प्राचीन ईसापूर्व विश्व में प्रचलित होने के कारण मुसलमानों में "ईद" के नाम से सुरक्षित है और यूरोप के रोमन साम्राज्य में भी वर्षारम्भ की अन्नपूर्णा की पूजा को Ides of March यानी मार्च

की पूजाविधि ईड कहकर जाना जाता था।

वैदिक प्रथा में प्रत्येक त्योहार किसी देवता की पूजा का दिन होता है। इस दृष्टि से इस्लामपूर्व अरब लोगों में जो वैदिक देवताओं के पूजा के विविध उत्सव होते थे उनका ईड उर्फ ईद यह संस्कृत नाम था।

बकर ईद गोपूजा का दिन था

अरबी में गाय को 'बकर' कहते हैं। कुराण के एक प्रकरण का शीर्षक "बकर" यानि गौ है। अतः बकर ईद यानी गोपूजा का उत्सव। इस मूल अर्थ को भूलकर भारत के मुसलमान बकर को बकरा समझकर बकरा काटकर उसका मांस-भक्षण करके बकर ईद की पूर्ति का समाधान मानते हैं। कुछ अन्य मुसलमान हिन्दुओं की भावना को जानबूझकर अपमानित करने हेतु गाय का वध कर बकर ईद के दिन गोमांस-भक्षण करने में नितान्त समाधान मानते हैं। होना यह चाहिए कि बकर ईद को सच्चे वैदिक मुसलमानों द्वारा गौओं का सम्मान और पूजन किया जाए।

मानव की शारीरिक और मानसिक कार्यक्षमता के लिए दिन-भर गाय का दूध आवश्यक होता है। गोमूत्र के औषधि उपयोग होते हैं। गोबर का खाद होता है, औषध भी होता है और ईंधन भी। बैल हल चलाने के काम आते हैं। ऐसे अनेक कारणों से गाय तथा बैलों को वैदिक संस्कृति में अवध्य माना जाता है। माँ के दूध पर तो शिशु लगभग दो वर्ष ही पलता है जबकि मानव को सारा जीवन गाय के दूध पर निर्भर रहना पड़ता है। अतः वैदिक समाज व्यवस्था में गौ को माँ का स्थान दिया गया है। इसी कारण इस्लामपूर्व काल में बकर ईद के दिन गौ की पूजा की जाती थी यह "बकर ईद" शब्द के अर्थ से ही स्पष्ट है।

स्वर्गस्थ देवों की पूजा

'ईद मिलाद उल् नबी' त्योहार मुसलमान वर्तमान समय केवल महंमद को नभी उर्फ नबी समझकर उसकी स्मृति में मनाते हैं। किन्तु वास्तव में नभी (उर्फ नबी) संस्कृत शब्द का अर्थ होता है—देव-देवता, देवदूत आदि स्वर्ग के सारे निवासी। अतः इस्लामपूर्व काल में ईद मिलाद उल् नबी का दिन सारे देवी-देवताओं के स्मरण तथा पूजन का दिन था।

पितरों की पूजा

मुसलमान ईद उल् फितर मनाते हैं। फितर यह संस्कृत शब्द "पितर" का अपभ्रंश है। संस्कृत "पितर" शब्द का यूरोप में जैसा फादर उच्चार होता है वैसे ही अरबों में "पितर" शब्द का उच्चार "फितर" रूढ़ हुआ। समाज-जीवन में पितरों ने त्याग और सेवा से वंशजों का पालन किया होता है। अत: कृतज्ञभाव से वंशज पितरों का श्राद्ध मनाते हैं। पिता, पितामह और प्रपितामहों की मृत्यु तिथि पर उनके व्यक्तिगत श्राद्ध (श्रद्धाभाव व्यक्त करना) किए जाते हैं। किन्तु अन्य सारे ज्ञात-अज्ञात पूर्वजों के लिए नवरात्र पूजा आरम्भ होने के पूर्व जो कृष्ण पखवाड़ा होता है उसे पितृपक्ष कहकर उसमें उन अनेक अज्ञात पूर्वजों की स्मृति में श्रद्धा व्यक्त करने वाला श्राद्ध मनाया जाता है। अरब भी वैदिक समाज के अंग होने के नाते उनमें भी उस प्रकार का श्राद्ध दिन होता था। उसे वे ईद उल् फितर यानी पितरों की पूजा का दिन कहते हैं। यह रसम भी इस्लामपूर्व होते हुए भी इसे मुसलमान अनवधानी से इस्लामी रसम् मानने लगे हैं।

चन्द्र दर्शन

चन्द्रमा को आकाश में प्रत्यक्ष देखकर ही ईद का दिन निश्चित करने की इस्लामी प्रथा भी इस्लामपूर्व वैदिक परम्परा ही है। वैदिक जीवन पद्धति में संकष्टी चतुर्थी के दिन उपवास रखा जाता है और चन्द्रोदय देखने के पश्चात् रात का भोजन किया जाता है।

एकादशी

वैदिक समाज में प्रत्येक पखवाड़े के ग्यारहवें दिन को संस्कृत में एकादशी कहकर उस दिन उपवास रखा जाता है। भावुक लोग उस दिन या तो पूर्ण उपवास करते हैं या केवल दुग्ध-फलाहार लेते हैं या प्रतिदिन से कुछ भिन्न प्रकार के अन्न-धान्य का आहार लेते हैं। इस्लामपूर्व अरब लोग भी एकादशी का पालन किया करते थे। अत: सारे मुसलमानों में वही प्रथा या कम-से-कम उसकी स्मृति कायम है। उस दिन को वे ग्यारहवीं शरीफ (पवित्र ग्याहवां दिन) कहते हैं।

हादिथ नाम के इस्लामी ग्रन्थ में महंमद के उद्गार या महंमद की

जीवनी के विविध प्रसंग वर्णित हैं। उनमें लिखा है कि एक बार प्रवास से लौटने के बाद किसी पड़ोसी ने महंमद को भोजन ला दिया। तब उन पदार्थों में लहसुन और प्याज होने के कारण महंमद ने वह भोजन नहीं लिया। इससे अनुमान लगाया जाता है कि महंमद प्याज और लहसुन या तो कभी खाते नहीं होंगे या उस विशिष्ट दिन एकादशी आदि किसी विशेष व्रत के कारण महंमद ने लहसुन और प्याज वर्जित माना।

अरबों की पवित्र भूमि भारत

इस्लामी परम्परा के अनुसार मानव का आद्यतम पूर्वज और पैगम्बर आदम (Adam) स्वर्ग से भारत में ही उतरा। भारत में उतरते ही आदम को परमात्मा का प्रथम दिव्य सन्देश भारत में ही पहुँचा। आदम संस्कृत "आदिम" शब्द है। आदिम यानी सर्वप्रथम। वैदिक परम्परा के अनुसार ब्रह्मा आद्यमानव यानि पहला मनुष्य था जो शेषशायी विष्णु की नाभि से प्रकट हुआ। मुसलमानों की धारणा है कि आदम का ज्येष्ठ पुत्र "शिथ" अयोध्या में दफनाया हुआ है। सिजदा यानि प्रणिपात या साष्टांग नमस्कार, अहरम यानी हज की यात्रा में सिलाई रहित शरीर ढकने के धवल वस्त्र और तवायफ यानि मन्दिर की प्रादक्षिणा, यह सभी प्रथाएँ जो मुसलमानों में रूढ़ हैं, वे इस्लामपूर्व वैदिक समाज-जीवन की प्रथाएँ हैं। महंमद के जीवनकाल का एक उद्गार था कि "भारत से ईश्वरीय सुगन्ध की वायु आती है।"

मुसलमान साधुजन नाजम, अहमद, फदल अल्-हुदैबी और अमीर-बिन-वक्र अल्-जाहिज समाधिस्थ अवस्था में परमात्मा समागम में परमानन्द प्राप्ति का अनुभव करा करते थे। सूफी मंसूर की "अनल् हक्" (मैं ही सत्य हूँ) घोषणा उपनिषदों का "सो अहम् अस्मि" वाक्य ही है। सूफी मंसूर ने भारत का दौरा कर भारत से "हुलूल" यानी मानवी आत्मा परमात्मा का अंश है, यह तथ्य सीखा। रबिया मंसूरी नाम की एक अरब स्त्री सन्त भी इसी तथ्य का प्रचार करा करती। एक हिन्दु साधु ने एक अरब बयाभिद् बिस्तानि को "फाना" यानी मोक्ष उर्फ निर्वाण का सिद्धान्त सिखाया।

इस प्रकार सारे ही पवित्र वैदिक दार्शनिक सिद्धान्त अरबों में इस्लाम

की सर्वविनाशी प्रवृत्ति का सामना करते हुए भी टिके हुए हैं। उदाहरणार्थ वैदिक एकात्मता के सिद्धान्त को अरबी में 'वहदत उल् वजूद' कहते हैं। आध्यात्मिक पन्थ या मार्ग को "सुलूक" कहा जाता है। चार अवस्थाओं में से किसी भी अवस्था में परम सत्य का ज्ञान किया जा सकता है, ऐसी वैदिक धारणा है। वे अवस्थाएँ हैं–जागृत, स्वप्न, सुप्त और तुरीय। अरबी में इन अवस्थाओं के नाम हैं—नासूत, जाबूत, मलकत् और लूहुत (यानी ध्यान)। योग का अरबी शब्द है 'जिक्र' यानी शारीरिक नियमन। प्राणायाम को कहते हैं—हब्त-इ-दम्। आजकल जिन्हें सूफी कहा जाता है—वह इस्लामपूर्व अरबी साधुओं का पन्थ है। इस्लामपूर्व काल में वे ऊपर कही सारी वैदिक-आध्यात्मिक परम्पराओं का पालन करते थे।

कल्याण

पूर्ण समाधान की अवस्था को संस्कृत में कल्याण कहते हैं। बुखारा शहर के पास इस नाम का एक गाँव है। बुखारा नगर के केन्द्रीय स्तम्भ को भी कल्याण कहते हैं। वह दोनों इस्लामपूर्व वैदिक सभ्यता के स्मारक चिह्न हैं।

नील नदी तट की दुर्गा

आँग्लभाषा के भारतीय दैनिक Times of India के २० जून, १९७८ के अंक में के० के० खुल्लर द्वारा लिखा एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें लिखा था कि इराक देश के नव-विहार का इस्लाम-पूर्व प्राचीन जो हिन्दु पुरोहित वंश था उस कुल का एक वंशज ईजिप्त की राजधानी काहिरा में आ बसा था। इस्लाम ने जब सर्वत्र मारपीट, लूटमार, अनाचार, अत्याचार आदि का आतंक मचाया तब कई लोग उससे बचने के लिए जहाँ तक बन पाया दूसरे प्रदेशों में भाग गए। काहिरा नगर में उसने अपना प्राचीन पौरोहित्य व्यवसाय आरम्भ कर दिया। नंगी तलवार हाथ में पकड़ी दुर्गा की एक मूर्ति रखकर आगे बैठ जाता। उसके पास लोग आते और निजी दुःख, पीड़ा, संकट आदि कहते, भविष्य भी पूछते। देवी के सम्मुख वे हाथ जोड़कर बैठ जाते। इस प्रकार उसने काहिरा नगर में एक वैदिक धर्मस्थान ही स्थापित कर रखा था।

दुर्गा, क्षत्रियों की रणचंडी थी। कृस्तपूर्वकाल में विश्व में सर्वत्र वैदिक शासन था तब दुर्गा-पूजा सर्वत्र होती थी इसका यह एक बड़ा प्रमाण है।

प्राचीन विश्व की हिन्दु जनता

R. G. Wallace द्वारा लिखित एक पुस्तक है जिसका शीर्षक है Memoirs of India यानी भारत सम्बन्धी संस्मरण। वह सन् १८२४ में प्रकाशित हुई। उसमें लिखा है "अफगानिस्तान में हिन्दु बड़ी संख्या में हैं। अर्बस्थान तक के प्रदेशों में और उत्तरी ईरान में भी हिन्दु बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। ये लोग वहीं के प्राचीन निवासियों के वंशज हैं। वे किन्हीं अन्य देशों से आकर यहाँ नहीं बसे। जब हजारों की संख्या में स्थानीय जन मुसलमान बनाए जाने लगे तो उनमें जिन्होंने किसी भी दबाव व प्रलोभन में फँसकर इस्लामधर्म स्वीकार नहीं किया, वे यह लोग हैं।"

दूसरे एक ग्रन्थ का नाम है Letters on India। इसकी लेखिका हैं Marie Grahams(प्रकाशक Orient Longmans, London सन् १८१४) उसने लिखा है कि प्राचीनकाल से भारत और समरकन्द (रूस का एक नगर) में लोगों का आना-जाना बड़े प्रमाण में बराबर होता रहा है। बलख और अन्य उत्तरी नगरों में अनादिकाल से हिन्दुओं की बस्तियाँ हैं। हिन्दुओं का यहाँ एक प्राचीन तीर्थस्थल भी है जिसका नाम ज्वालामुखी है। वह काश्यपीय (कैस्पियन) सागर तट पर स्थित है।"

अफगानिस्तान के गजनी नगर में समय-समय पर उत्खनन में अनेक हिन्दु अवशेष प्राप्त हुए हैं। वहाँ के वस्तु संग्रहालय (Museum) में वे देखे जा सकते हैं। अफगानिस्तान के गजनी नगर में प्राचीन हिन्दू शासन में बड़ी संख्या में गज उर्फ हाथी पाले-पोसे जाते थे। तभी से उसका नाम गजनी पड़ा। वहाँ कुछ प्राचीन संगमरमर की जालियाँ पाई गई हैं, उनमें गदाधारी रक्षकों की प्रतिमाएं खुदी हैं। उनके शिरोभाग पर कमाने दीखती हैं। कमानों के ऊपर दो-दो मुख वाले गरुड़, नर्तिकाएँ, अश्वसवार, सिंह, एक महावत और एक वैदिक देवता की संगमरमरी प्रतिमा और उसके रक्षक देवगण आदि बताए गए हैं। इस्लामी आक्रामकों ने उस देवमूर्ति को भंग किया है।

तीन देवियाँ

ईरान की राजधानी बगदाद के वस्तुसंग्रहालय (Museum) में एक प्राचीन मूर्ति है। उसमें सिंह पर आरूढ़ तीन देवियाँ हैं। स्पष्टतया वे लक्ष्मी, दुर्गा तथा सरस्वती हैं।

रामझान

राम, कृष्ण आदि केवल हिन्दुओं के और भारत के देवता नहीं हैं। इस्लाम-ईसापूर्व काल में सारे विश्व में राम और कृष्ण के चरित्र पढ़े जाते थे और उनकी भक्ति की जाती थी। कृस्ती परम्परा में अनजाने कृष्णमास (यानि कृसमास) की परम्परा बनी हुई है और मुसलमानों में रामझान महीने के रूप में रामनाम का मास मनाने की आज भी परम्परा कायम है।

रामझान उर्फ रामादान (यानी रामध्यान) का मास इस्लामी वर्ष का नौवा मास होता है जबकि रामनवमी वैदिक परम्परा में चैत्र मास का नौवा दिन होता है। इस्लामी परम्परा में रामझान को रामादान भी लिखा जाता है। दोनों रामध्यान शब्द के ही अपभ्रंश हैं। संस्कृत में "ध" का विदेशों में "झ" उच्चार रहा। जैसे ध्यान बौद्ध पन्थ को चीन और जापान में झेन पन्थ कहा जाता है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि अरबी रामझान मास वास्तव में "रामध्यान" का ही अपभ्रंश है। दूसरा उच्चार रामदान तो स्पष्टतया रामध्यान शब्द है ही।

महंमद का रामध्यान

अरबी नौवें मास का नाम रामझान इस्लामपूर्व परम्परा का है। क्योंकि कहा यह जाता है कि सन् ६१० ईसवी के लगभग रामझान के मास में गुफा के एकान्त में जब महंमद ध्यानमग्न था तब उसे दृष्टांत होकर कुराण की आरम्भ की आयतें सुनवाई गईं। इससे पाठक जान सकते हैं कि इस्लाम पन्थ के निर्माण के पूर्व ही रामध्यान मास अरब लोग मनाते थे। उसी प्रथा के अनुसार महंमद गुफा में एकाकी राम के ध्यान में मग्न होता था और वैसी तल्लीन अवस्था में राम का ध्यान करते हुए महंमद को कुराण सुनाई दिया। और तो और रामनवमी के दिन रामजन्म के लिए

उपवास रखने की जैसी हिन्दुओं की प्रथा है वैसे रामध्यान का पूरा मास उपवास या व्रत रखने की प्रथा रामायणकाल से अरब चला रहे थे।

प्राचीन हिन्दू महल और बाड़े

जिस प्रकार हिन्दू लोगों की प्राचीन बस्तियां सारे विश्व में हैं किन्तु उनका हिन्दुत्व लुप्त-गुप्त-सा हो गया है, उसी प्रकार हिन्दु महल, बाड़े आदि विदेशों में जो प्राचीनकाल से हैं उन्हें कब्रें और मसजिदें कहा जा रहा है। कुर्द, ड्रूझ, आर्मेनियम आदि कहलाने वाली कई जमातें ईरान, इराक, तुर्कस्थान आदि देशों में हैं जो अभी तक इस्लाम से अपना भिन्न अस्तित्व बनाए हुए हैं। वे कट्टर मुसलमानों से घिरे होने के कारण निजी भिन्नत्व प्रकट करने में स्वतन्त्र नहीं हैं। किन्तु यदि उन्हें कुछ आधार दिया जाए तो इस्लाम का अत्याचारी दवाव उखाड़ फेंकने के लिए वे आतुर हैं।

अफगानिस्तान में काबुल नगर के मध्य भाग से लगभग दस किलोमीटर दूर एक प्राचीन हिन्दु महल है। महंमद गजनवी के समय से उस पर मुसलमानों का कब्जा हो जाने के कारण उसे मुसलमान 'कसरे चहल सतून' यानी "चालीस स्तम्भों का महल" कहते आ रहे हैं। स्तम्भों की संख्या से महल, मंडप, मंदिर आदि का उल्लेख करने की हिन्दु परम्परा ही अफगानिस्तान में चली आ रही है। भारत में अलाउद्दीन खिलजी ने जीता हुआ दिल्ली का एक प्राचीन महल इस्लामी तवारीखों में सहस्र स्तम्भों के महल के नाम से विख्यात है। रामेश्वरम का मन्दिर और मदुराई नगर का मीनाक्षी मंदिर दोनों एक-एक हजार स्तम्भों के मंदिर कहे जाते हैं। इसलिए इस्लामी परंपरा में जहाँ भी स्तम्भों की संख्या से महल उल्लिखित हैं वहाँ वे हिन्दु महल पहचाने जाने चाहिएँ। इस्लामी इमारतों में खम्भे नहीं बनते क्योंकि स्तम्भों से कतारों की भीड़ में आँखें बन्द करके आगे झुकने वाले नमाजियों का सिर फट जाएगा।

अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक तीर्थस्थल काबा

John Lewis Burckhardt नाम के लेखक ने Travels in Arabia नाम का दो भागों में ग्रंथ लिखा है(प्रकाशक Henry Colburn, London सन् १८२९ ईसवी)इसके प्रथम भाग के पृष्ठ १६३ पर उल्लेख है कि मक्का

की देवमूर्तियों के दर्शनार्थ प्राचीन (इस्लामपूर्व) काल में जब अरब लोग यात्रा करते थे तो वह यात्रा वर्ष की विशिष्ट ऋतु में ही होती थी। शायद वह यात्रा शरद् ऋतु में (यानी दशहरा-दीपावली के दिनों) की जाती थी। प्राचीन अरबी पचाँग (वैदिक पचांग के अनुसार) हर तीन वर्षों में एक अधिक मास गिना जाता था। अत: सारे त्योहार नियमित ऋतुओं में ही आया करते। किन्तु जब से अरब मुसलमान बन गए, कुराण ने अधिक मास पर रोक लगा दी। अत: इस्लामी त्योहार, व्रत पर्व आदि निश्चित ऋतु में बँधे न रहकर ग्रीष्म से शिशिर तक की सारी ऋतुओं में बिखरे चले जाते हैं।"

इसमें इस्लाम का अनाड़ीपन और गंवारपन साफ दिखाई देता है। वैदिक संस्कृति को ठुकराकर मिटा देने के कारण अरबी मुसलमान गणित की बारीकियों से हाथ धो बैठे। तथापि चाटुकारों ने अरबों को गणित, खगोल ज्योतिष, संगीत आदि न जाने क्या-क्या विद्या और कलाओं का माहिर समझ रखा है। यहाँ तक कि दारू और भंग, चरस, गाँजा आदि के नशे में हजारों स्त्रियों के जनानखानों में दिन-रात पड़े रहने वाले सुल्तान, बादशाह, फकीर, दरबारी आदि अरबी फारसी लोगों को इतिहासकारों ने सकल कलानिधान, उच्चकोटि के विज्ञान में निपुण, महापंडित और विख्यात शास्त्री आदि शब्दों में बखान किया है। ऐसी निर्लज्ज खुशामद की इस्लामीकाल के इतिहास में भरमार है। हिन्दु अध्यापक-प्राध्यापकों ने भी अंधेपन से नौकरी और अधिकार पद के लालच में बगैर सोचे-समझे या बगैर कोई स्वतन्त्र संशोधन किए उस खुशामदी गंगा में निजी वाहवाह की तेज धारा भी बखूबी बहा दी।

काबा मंदिर में जो सैकड़ों वैदिक देवमूर्तियां थीं उन्हें तोड़फोड़ कर केवल एक शिवलिंग को महंमद द्वारा बचा लिया गया। शिवलिंग क्यों बचाया गया? हो सकता है महंमद के कुटुम्ब के देव शिव थे अत: उनका प्रतीक बचाया गया। हो सकता है महंमद शिवभक्त हो। वह शिवलिंग भी पूरा साबुत नहीं है। उसके सात टुकड़े हो गए हैं। अत: उन टुकड़ों को चाँदी के पत्तर से कसकर बाँधा गया है। चांदी से बंधा वह शिवलिंग काबा मंदिर की दीवार में बाहर की तरफ अग्नेय (दक्षिण-पूर्व) कोने में चिन

दिया गया है। अतः उस शिवलिंग का आधा गोल भाग दीवार में दबा है और आधा दीवार के बाहर उभरा दीखता है। उसी अवस्था में मुसलमान यात्री उसका दर्शन करते हैं और उस शिवलिंग की परिक्रमा करने के लिए उन्हें पूरे मंदिर के ऊँचे गर्भगृह की परिक्रमा करनी पड़ती है।

किन्तु दैव गति इतनी विचित्र है कि शिवजी वैदिक देवता होने पर भी वैदिक प्रणाली के विरोधक मुसलमानों ने मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य किसी को उस शिवलिंग का दर्शन करना असम्भव कर डाला है। यदि मुसलमान लोग उस शिवलिंग को "संग अस्वद" (यानी काला पत्थर) कहकर अल्लाह(ईश्वर)का प्रतीक मानते हैं तो वे अन्य शिवभक्त विधर्मियों को भी उसका दर्शन क्यों नहीं करने देते? जिन शिवजी को इस्लाम में कोई स्थान नहीं, उनका दर्शन करने का अधिकार केवल मुसलमानों को रखवाकर शिवजी को मानने वाले अन्य धर्मियों को उस शिवलिंग के दर्शन से वंचित रखना कहाँ की बुद्धिमानी है या कहाँ तक उचित या न्याय है?

परिक्रमा

Henry Colburn के ग्रंथ के पृष्ठ १७२ पर उल्लेख है कि काबा के अग्र भाग में बाब-अस्-सलाम नाम की प्रवेश की कमान बनी हुई है। उसके नीचे से काबा के प्रांगण में प्रवेश करते हुए यात्री कुछ प्रार्थनाएँ कहते जाते हैं। तत्पश्चात् कुछ और प्रार्थनाएँ उससे धीमी आवाज में कही जाती हैं। अब यात्री शिवलिंग के सम्मुख खड़े होकर दो ऋचाएँ (Riktas) कहते हैं। तत्पश्चात् यात्री दाहिने हाथ से शिवलिंग को स्पर्श करता है या उसे चूमता है। उसके बाद यात्री सात बार उस मंदिर की तवायफ यानी परिक्रमा करते हैं। किन्तु जबकि वैदिक मंदिरों में बाएँ से दाएं (घड़ी के काँटे जिस दिशा में घूमते हैं) परिक्रमा की जाती है, काबा की इस्लामी परिक्रमा उल्टी दिशा में यानी (उनकी लिपि की तरह) दाहिने से बाँई तरफ की जाती है। प्रत्येक परिक्रमा के साथ-साथ धीमी आवाज में विशिष्ट प्रार्थनाएँ कही जाती हैं। उस मन्दिर के प्रांगण के विशिष्ट भागों में नियत प्रार्थनाएँ गुनगुनाते हुए प्रत्येक परिक्रमा पूरी करने में यात्री शिवलिंग को या तो हाथ से छूता है या होठों से चूमता है।

किसी भी इस्लामी मसजिद में परिक्रमा की प्रथा नहीं है केवल काबा में है। इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं। एक तो यह कि काबा एक प्राचीन वैदिक शिव मंदिर होने के कारण उसमें परिक्रमा की प्रथा इस्लामी कब्जे के पश्चात् भी चली आ रही है और दूसरी बात यह कि शिवलिंग में अवश्य कोई ऐसी शक्ति होनी चाहिए जो मुसलमानों जैसे विरोधियों को भी परिक्रमा करने पर बाध्य करती है।

John Lewis Burckhardt के Travels in Arabia ग्रन्थ में पृष्ठ १७७-७८ पर उल्लेख है कि "मुसलमानों की हज यात्रा एक इस्लामपूर्व परम्परा है। उसी प्रकार Suzafa और Merona भी इस्लामपूर्व काल से पवित्र स्थल माने जाते रहे हैं क्योंकि यहाँ Motem और Nebyk नाम के देवताओं की मूर्तियाँ होती थीं। आराफात की यात्रा कर लेने पर यात्री Motem और Nebyk का दर्शन किया करते हैं"।

उपरोक्त वर्णन से पता चलता है कि इस्लाम के नाम पर काबा में इस्लामपूर्व प्रथाएँ ही चलाई जा रही है। अन्तर केवल इतना ही है कि मुसलमान यात्री अब केवल उन रिक्त स्थानों का दर्शन करते हैं जहाँ प्राचीनकाल में वैदिक देवमूर्तियाँ होती थीं।

अष्टकोण और गुप्त शिलालेख

दो-तीन मंजिल ऊँची विशाल पेटी (बक्से) के आकार की इमारत काबा यह "गाभा" (यानी गर्भगृह) का अपभ्रंश है। जैसे "गौ" का आंग्ल उच्चार "कौ" हुआ उसी प्रकार "गाभा" का "काबा" नाम पड़ा है।

महंमद के आक्रमण के पूर्व काबा एक बड़ा विशाल और विस्तीर्ण प्राँगण था जिसमें अनेक मंदिर थे। उनके शिखर, गुम्वद, सभामंडप, स्तंभ आदि मूर्तिकला और वास्तुकला के प्रतीक थे। इस्लामी हमलों में वे सब नष्ट होकर अब वह एक रूखा-सूखा-सा प्रांगण रह गया है।



इस्लामपूर्व एक अरब स्त्री का यह चित्र देखें। उसके ललाट पर तिलक के आकार का कुंकुम लगा है। यह चित्र Bible Dictionary (Appended to the Holy Bible by the American Review Committee) ग्रन्थ में और आय्यंगर द्वारा लिखित Long Missing Links पुस्तक में सम्मिलित है। सिर से पैर तक अरबों के लम्बे वस्त्र, उड़ती रेत और ग्रीष्म ऋतु की उष्मा से संरक्षण दिलाते हैं।



इस्लामपूर्व अर्बस्थान में पाई यह शिला ब्रिटिश म्यूजियम, लण्दन में प्रदर्शित है। इसके ऊपरी भाग में सूर्य गोल और चन्द्रकोर खुदा है। निचले

भाग में शिलालेख है। इस प्रकार शिलालेखों के साथ सूर्य तथा चन्द्रमा की आकृति बताना वैदिक प्रथा है, जिससे यह भाव प्रकट किया जाता है कि शिलालेख लिखने वाले का अधिकार या वंश "यावच्चंद्र दिवाकरौ" यानी सूर्य और चन्द्र के अस्तितत्व तक यानी सदा बना रहे या किसी को कोई वस्तु या भूमि भेंट दी हो तो उसका लाभ उस व्यक्ति को चिरन्तन मिलता रहे।

इस्लामी ध्वजों पर लगाया जाने वाला चन्द्रमा और तारका का चिह्न ऊपर बताए प्राचीन वैदिक चिह्न का ही थोड़ा बदला हुआ रूप है। जगन्नाथपुरी के कृष्ण मंदिर के शिखर पर जो गेरुए रंग की पताका लहराती है उसके ऊपर ठीक ऐसी ही सूर्य और चन्द्र की आकृति होती है।

यह चिह्न अर्बस्थान में पाया जाना सिद्ध करता है कि अर्बस्थान में वैदिक, वैष्णव संस्कृति थी। मंदिरों पर यह चिह्न ऐसा दिग्दर्शित करता है कि सूर्य, चन्द्र आदि को तेज, प्रकाश, ऊष्मा आदि भगवान द्वारा ही प्राप्त होते हैं।

२८

इस्लाम का वैदिक उद्भव

मुसलमानों को, विशेषतया भारतीय मुसलमानों को, यह कल्पना करा दी गई है कि वैदिक संस्कृति उर्फ हिन्दु धर्म और इस्लाम में इतना विरोध है कि हिन्दुत्व की प्रत्येक बात का विरोध और तिरस्कार करना ही मुसलमानों का परम कर्त्तव्य है। वे तभी अच्छे मुसलमान कहे जा सकते हैं जब वे पग-पग पर हिन्दुओं का विरोध करें।

इसका एक उदाहरण दिया जा सकता है। सन् १९४७ में भारत का विभाजन होने से पूर्व पंजाब से एक इस्लामी मासिक छपता था। उसमें 'पाठकों के प्रश्न और सम्पादक के उत्तर' का विभाग था। एक बार किसी मुसलमान ने सम्पादक के नाम पत्र भेजकर पूछा कि 'घर में अगरबत्ती या धूप जलानी चाहिए या नहीं?" इसका सम्पादक ने उत्तर दिया कि "अगरबत्ती जलाने से सुगन्ध फैलती है और ताजगी भी अनुभव होती है तथापि हिन्दू अगरबत्ती जलाते हैं अतः मुसलमानों को अगरबत्ती या धूप कभी नहीं जलानी चाहिए।"

वास्तव में भारतीय मुसलमानों को यह जान लेना चाहिए कि वे स्वयं हिन्दुओं की सन्तान हैं। उनके पूर्वज चीखते-चिल्लाते बर्बरता से उनके घर-बार से बाहर खींच-खींचकर मुसलमान बनाए गए। दादा-परदादाओं पर और माता-बहनों पर हुए उन अत्याचारों का स्मरण करके दुबारा हिन्दू समाज में सम्मिलित हो जाना उनका कर्त्तव्य है। समय-समय पर भारत में आक्रमणकारियों के रूप में बीस-पचीस हजार की संख्या में जो पराए अरबी, तुर्की, ईरानी आदि आते रहे वे समय-समय पर मारे गए या वापस

चले गए या निपुत्रिक मर गए। अतः अब जो मुसलमान शेष हैं वे सारे हिन्दु पूर्वजों की सन्तान हैं। सच्चे इतिहासकार को यह तथ्य समझ लेना आवश्यक है। यह तो हुई मुसलमान कहलाने वालों की व्यक्तिगत बात। अब रही प्रत्यक्ष इस्लामी परम्परा की बात। तो वह परम्परा भी पूर्णतया हिन्दू या वैदिक है, यह बताना ही प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य है।

यह समझने के लिए हम पाठकों का ध्यान इस ओर खींचना चाहते हैं कि १४०० वर्ष पूर्व न महंमद था, न इस्लाम। इसी प्रकार १६०० वर्ष पूर्व न कोई ईसा था न ईसाई धर्म। अतः विश्व के आरम्भ से ईसाई और इस्लामी धर्म स्थापन होने तक सारे मानव वैदिकधर्मी ही होते थे।

इस्लामी ज्ञानकोष में भी इसका सबूत मिलता है। उसमें यह लिखा है कि महंमद के दादा काबा के वैदिक मंदिर के पुरोहित थे। मंदिर के प्रांगण के पास ही उनके घर में या आँगन में खटिया पर बैठा करते। उनके उस मंदिर में ३६० मूर्तियाँ हुआ करती थीं।

कुरु ईश शासक

महंमद के घराने का नाम कुरेशी था। लगभग ५८०० वर्ष पूर्व महाभारतीय युद्ध समाप्त होने के पश्चात् कौरव घराने के राजपुत्र आदि कुरु ईश यानी कुरुकुल प्रमुख कहलाते हुए स्थान-स्थान पर अधिकार पद पर थे। ऐसा ही एक कुरुईश कुल अर्वस्थानान्तर्गत काबा मन्दिर परिसर का स्वामी था। उसी कुल में महंमद का जन्म हुआ।

महंमद का संस्कृत नाम

अरबी परम्परा के अनुसार महंमद का मूल बचपन का घरेलू नाम क्या रहा था? कोई नहीं जानता। वह लुप्त हो गया है। महंमद यह किसी कारणवश रूढ़ हुई एक उपाधि है। अरबी भाषा में उसका कोई अर्थ बनता नहीं। किन्तु इतिहास की ऐसी सारी गुत्थियाँ संस्कृत से छुड़ायी जा सकती हैं। महंमद शब्द का विश्लेषण संस्कृत में "महान् मदः यस्य असौ महमदः" ऐसा बहुव्रीहि समास बनता है। इसके दो अर्थ निकलते हैं—एक अच्छा और दूसरा बुरा। अच्छा अर्थ है "प्रतिभाशाली व्यक्ति", बुरा अर्थ है "बड़ा घमण्डी व्यक्ति"। अतः अनुमान यह है कि महंमद ने जब निजी

साथी इकट्ठे कर काबा मन्दिर में प्रस्थापित परम्परा को भंग करना चाहा तो तत्कालीन प्रचलित संस्कृत मुहावरे के अनुसार अनुकूल लोग "प्रतिभाशाली" के अर्थ से निजी नेता को महंमद कहने लगे जबकि विरोधी लोग उसे विघटक और विध्वंसक समझकर घमण्डी के अर्थ में महंमद कहने लगे। अतः महंमद नाम पूर्णतया संस्कृत है। अरबी परम्परा में महंमद का न तो कोई अर्थ है और न ही महंमद-पूर्व समय में वह किसी का नाम रहा है।

क्या महंमद का मूल नाम महादेव था ?

महंमद का कुटुम्ब महादेव के मन्दिर का पुरोहित पद सँभाले हुए था। महादेव उनके कुलदेव थे और अन्य सारी मूर्तियां भंग करते समय महंमद ने शिवलिंग को केवल सुरक्षित ही नहीं रखा, बल्कि उसे इस्लाम का श्रद्धाकेन्द्र बनाया। इससे हो सकता है महंमद का मूल नाम महादेव रहा हो। इस पर खोज होनी आवश्यक है।

संगे अस्वद शालिग्राम भी हो सकता है

काबा के मन्दिर में अभी जो "संगे अस्वद" यानी "काला पत्थर" मुसलमानों का श्रद्धास्थान बना हुआ है उसे आजकल सारे ही लेखक, दर्शक आदि शिवलिंग समझते आ रहे हैं। किन्तु हो सकता है कि वह शिवस्वरूप "बाण" नाम का प्रस्तर न होकर शालिग्राम नाम का विष्णु का प्रतीक हो।

वैदिक देवमूर्तियों में दो प्रतीक गोल पत्थर वाले होते हैं। शिवलिंग प्रतीक बाण पत्थर की बैठक पर आरूढ़ रहता है। विष्णु के प्रतीक शालिग्राम की ऐसी कोई बैठक नहीं होती। काबा में जो देवतारूपी प्रस्तर है उसकी कोई बैठक नहीं है। अतः हो सकता है कि वह शालिग्राम यानी विष्णुरूप प्रस्तर ही हो। अतः यद्यपि आज तक के सारे इतिहासकार व अन्य लेखक उस प्रस्तर को शिव का प्रतीक मानते आ रहे हैं, हमें ऐसा लगता है कि वह विष्णु का प्रतीक है। यह भेद यहाँ केवल शाब्दिक, तात्त्विक, तार्किक, ऐतिहासिक विवेचन के रूप में ही हमने प्रस्तुत किया है। शैव-वैष्णव पक्षों में कोई विरोध है या वे दो भिन्न पक्ष हैं, यह हम नहीं मानते। विश्व का निर्माण और नियंत्रण करने वाली एक ही परमशक्ति है जिसे कोई शिव कहे या विष्णु या और कुछ नाम दे।

ब्रिटेन सम्बन्धी अध्याय में हमने इस ग्रन्थ में उल्लेख किया है कि वहाँ महादेव का अपभ्रंश महद्दी हुआ था तो हो सकता है कि अरबों में महादेव का अपभ्रंश महंमद हुआ हो।

नमाज

इस्लाम में दिन में पाँच बार नमाज पढ़ने की प्रथा इसलिए पड़ी कि इस्लाम-पूर्व वैदिक परम्परा में पंचमहायज्ञ किए जाते थे–पंचाग्नि, पंचांग, पंचगव्य, गाँव के पंच, पंचपात्र, पंचरत्न, इस प्रकार वैदिक परम्परा में पाँच का बड़ा महत्त्व है।

"नम" यानी आदर से झुकना और "यज्" यानी यज्ञ करना या पूजा भक्ति करना, अतः 'नमाज' यह शब्द नम+यज इन दो संस्कृत शब्दों का बना रूप है।

इस्लामी परम्परा में योग

योगध्यान, योगासन आदि वैदिक परम्परा के प्रमुख अंग रहे हैं। नमाज के समय मुसलमान लोग झुकना, मुड़ना आदि जो शारीरिक क्रियाएँ करते हैं वे उनके प्राचीन योगासनों की प्रथा दर्शाते हैं। ऐसा Ashraf A Nizami नाम के लेखक ने Namaz : The Yoga of Islam नाम की पुस्तक में लिखा है। (३१ पृष्ठों वाली यह पुस्तिका लेखक ने निजामी कम्पाउण्ड, प्रतापनगर रोड, बड़ोदा से प्रकाशित की है)।

उस पुस्तक की प्रस्तावना लिखनेवाले एफ० ए० फाजलभाई कहते हैं, "निष्पक्षता से विचार करने पर योगासन और नमाज में बड़ी समानता दिखती है। प्रतिदिन नमाज पढ़ने वाले लोग अनजाने योगासान ही करते हैं।"

पुस्तक के लेखक निजामी कहते हैं "अरबी में नमाज को सलाट कहते हैं। वसाला यानी मिलन। इससे क्रियापद बनता है "सिलास"। सिलास से "सलाट" शब्द बनता है। उसका वही अर्थ है जो योग का है—आत्मा को परमात्मा से जोड़ना।

ग्रन्थ के आरम्भ में लेखक कहते हैं कि "हठयोग के आसन और नमाज के आसन में बड़ी समानता है।"

काबा

सऊदी अरब देश के मक्का नगर में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का वैदिक काबा तीर्थक्षेत्र महंमद का कब्जा हो जाने पर केवल मुसलमानों का धर्म-स्थान घोषित कर दिया गया और अन्य धर्मियों पर वहाँ प्रवेश की रोक लगा दी गई।

हरिहरेश्वर माहात्म्य नाम की वैदिक पोथी है जिसमें हरि यानी 'विष्णु' और "हर" यानी "शिव" इनकी महत्ता वर्णन की गई है। उसके एक श्लोक में कहा है—

> एकं पदं गयायांतु मकायाम् तु द्वितीयकम्।
> तृतीयं स्थापितं दिव्यं मुक्त्यै शुक्लस्य सन्निधम्॥

यानी विष्णु के तीन चरणों में से एक "गया" नगर में प्रतिष्ठित है, दूसरा मक्का नगर में और तीसरा शुक्ल तीर्थ के पास। उस तृतीय पद के स्थान का पता लगाना आवश्यक है। इतिहास की उथल-पुथल में उस स्थान की स्मृति नष्ट हो गई-सी दिखती है।

शेषशायी विष्णु ब्रह्माण्ड का मूलाधार हैं। इसी कारण उनकी विशाल प्रतिमाएँ प्राचीन विश्व में विभिन्न प्रदेशों में थीं। वामनावतार में भगवान विष्णु ने बलिराज से त्रिपाद भूमि माँगी थी। उस समय बलि के कहने पर विष्णु का एक चरण गया में पड़ा, दूसरा मक्का में और तीसरा बलिराज के सिर पर। वहीं से बलि को पाताल में जाना पड़ा। वह घटना शुक्लतीर्थ के समीप घटी, ऐसा निष्कर्ष हरिहरेश्वर माहात्म्य पोथी से निकलता है।

मक्का में मुख्य, केन्द्रीय विशाल मूर्ति शेषशायी विष्णु की ही थी, इसका एक और प्रमाण यह है कि उस प्रांगण को इस्लामी परिभाषा में "हरम" कहते हैं जो स्पष्टतया हरियम् यानी विष्णु परिसर का द्योतक है।

पादुका

ईश्वर के चरणकमल उर्फ पादुकाओं की पूजा करना यह हिन्दु वैदिक प्रथा है। मुसलमान कहलाने वाले लोग उसी प्रथा के अनुसार वही प्राचीन वैदिक देवपादुकाएँ स्थान-स्थान में जतन कर उन्हें महंमद के कदम या आदम के कदम मानकर पूजते रहते हैं। वैसा एक पत्थर में खुदा हुआ कदम

दिल्ली की तथाकथित जामा मस्जिद में रखा है। दूसरा दिल्ली की ही और किसी "मस्जिद" में है। तीसरा कहीं कश्मीर में है। वास्तव में पत्थरों पर ऐसे कदम के छाप गढ़े जाने की प्रथा इस्लाम में नहीं है। कोई चमत्कार करने का दावा महंमद ने कभी किया ही नहीं था। तथापि मध्ययुग में जब इस्लामी आक्रामक विविध प्रदेश जीतकर इस्लामी सत्ता बढ़ाने में लगे थे तब सुल्तान और बादशाहों को ठग, फुसलाकर उनसे धन-दौलत, जागीर, खिताब, बख्शीश आदि पाने के लालच से कई फकीर, मुल्ला, मौलवी आदि ने झूठ-मूठ की मक्का की पवित्र रेत, मिट्टी, पत्थर, महंमद के बाल, महंमद के कदम आदि नकली वस्तुएँ बड़ी भावुकता से सुल्तान, बादशाहों को भेंट देकर उनकी कृपा प्राप्त की। उस समय से वे नकली कदम-ए-रसूल और हजरत बाल स्थान-स्थान पर जतन किए गए हैं। भावुक मुसलमान जनता अत्यन्त श्रद्धाभाव से उन वस्तुओं के दर्शन करते हुए वहाँ पैसे चढ़ाती है। वे वस्तुएँ जनता के दर्शनार्थ रखने वाले मुसलमान रक्षकों को उन वस्तुओं से अच्छी-खासी आमदनी होती रहती है। अतः महंमद के स्मृतिचिह्नों का वह ढोंग बराबर चलाया जा रहा है। हो सकता है किसी धूर्त मुल्ला, मौलवी व फकीर ने लुच्चाई से निजी दाढ़ी के ही कुछ बाल उतरवाकर बड़े समारोह, नोंक-झोंक और गाजे-बाजे के साथ सुलतान, बादशाहों के हवाले करते हुए अपने लिए धन-सम्पत्ति, जागीर या खिताब तथा शाही अधिकार पा लिया हो।

सुल्तान या बादशाहों को जब कभी कोई फकीर, मुल्ला, मौलवी या अवौलिया आदि महंमद का बाल या महंमद का कदम कहकर कोई नकली वस्तु भेंट करता तो उस वस्तु को नकली जानते हुए भी उसे नकली कहने की सुल्तान-बादशाहों को हिम्मत नहीं थी। क्योंकि यदि उस बाल को या पत्थर पर खुदे चरण को सुल्तान या बादशाह नकली घोषित कर देता तो वह ईरान-इराक आदि प्रदेशों से आया फकीर खुले दरबार में या नगर के चौराहों पर महंमद की वस्तुओं के अपमान के नाम पर मुसलमानों को भड़काकर बलवा खड़ा कर सकता था। अतः सुल्तान, बादशाह, वजीर, सरदार, दरबारी आदि झुकी गर्दन से चुपचाप वह नकली वस्तुएँ भी महंमद के नाम पर शाही भण्डार में जमा करवाकर उस मुसलमान फकीर व अन्य

यात्री को बख्शीश देकर भगा देते और मन-ही-मन में एक टली बला का समाधान मानते। अतः जहाँ-जहाँ भी महंमद के बाल या महंमद के कदम सुरक्षित रखने का दावा किया जाता है वहाँ सरासर विचार न कर सकने वाले भावुक, अनाड़ी लोग भले ही भीड़ और भगदड़ मचाते रहें, समझदार और विद्वान् व्यक्तियों ने उन वस्तुओं से धोखा नहीं खाना चाहिए। क्योंकि महंमद के चरित्र में ऐसी कोई घटना नहीं है कि जहाँ महंमद ने निजी स्मारक के रूप में अपने शरीर के बाल लुटाएँ हों या अपने कदम की रेखा-कृति किसी को कभी उपलब्ध कराई हो ? और जब महंमद का कोई चित्र ही कहीं उपलब्ध नहीं है तो उसके तथाकथित चिह्न ही कैसे उपलब्ध हो सकते हैं।

काबा मन्दिर के रहस्य

काबा मन्दिर के अन्दर चन्द स्थानीय अरबी मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य किसी को प्रवेश नहीं दिया जाता। कहते हैं वैदिक परम्परा के अनुसार अन्दर एक गाय के घी का पवित्र द्वीप (नन्दादीप) प्राचीनकाल से अखण्ड जलता रहा है।

सारा मन्दिर ऊपर से नीचे तक काले बुर्के जैसे गिलाफ से ढका होने से मन्दिर का पत्थर किस रंग का है उसका पता नहीं लगता। किन्तु उसी प्रांगण में जो इस्लाम-पूर्व अन्य अवशेष रहे हैं वे बादामी व केसरी रंग के होने से हमें लगता है कि वह मन्दिर वैदिक गेरुए रंग के पत्थर का बना है।

प्राचीन मन्दिर को मस्जिद समझने की भूल

अमेरिका के न्यूयार्क नगर की Academy of Sciences में मार्च ३० से १ अप्रैल, १९८१ में Tropical Ethnoastronomy और Archeo-Astronomy शास्त्रों पर एक चर्चासत्र आयोजित हुआ था। उसमें Hagop Kevorkian centre for near Eastern Studies, Newyork City के एक प्राध्यापक David A. King ने एक प्रबन्ध (Research paper) पढ़ा था। उसका शीर्षक था Astronomical Alignments in Mediaeval Islamic Religious-Architecture। उस प्रबन्ध में उनकी एक मूलगामी

चूक थी। वे यह मानकर चले थे कि वर्तमान समय में जो इमारतें, मस्जिदें कही जाती हैं वे मुसलमानों ने प्रार्थना गृहों के रूप में ही बनायीं। हम उनको और अन्य पाठकों को यह विदित करा देना चाहते हैं कि विश्व-भर में जो प्रेक्षणीय ऐतिहासिक इमारतें, दरगाहें या मस्जिदें कही जाती हैं वे सारी विधर्मियों की बनवाई, मुसलमानों द्वारा कब्जा की हुई इमारतें हैं। उनकी प्रार्थना का जो आला होता है उसका रुख मक्का की दिशा में होना चाहिए, वैसा नहीं है। हमारे एक अमेरिकी मित्र Marvin H. Mills ने जब David A. King से यह बात कही कि मस्जिद कही जाने वाली प्रत्येक इमारत का रुख मक्का की दिशा में होना अनिवार्य है तो David A. King ने यह बात मान ली कि विश्व-भर में ऐतिहासिक मस्जिद कहलाने वाली लगभग किसी भी इमारत का रुख मक्का की दिशा में नहीं है।

यह बात विदित हो जाने पर क्या उनका यह कर्त्तव्य नहीं बनता कि वे पता लगाएँ कि क्या वे इमारतें सचमुच ही मुसलमानों ने मस्जिदों के रूप में बनाई थीं ? तथापि सारे पुरातत्त्वविद् और इतिहासज्ञ उनका वह कर्तव्य निभाने से झिझक रहे हैं। इसलिए कि उन्होंने आज तक जो पढ़ा, जो ग्रन्थ लिखे, छात्रों को जो पढ़ाया, परिषदों में जो भाषण दिए, अधिकार-पदों से जो मत-प्रतिपादन किया, वह सारा निराधार सिद्ध होगा और उनके वरिष्ठ भी उनसे रुष्ट हो जाएँगे।

शेषशायी विष्णु की विशाल प्रतिमाएँ

सृष्टि के निर्माता और मूल आधार भगवान विष्णु की प्रतिमाएँ प्राचीन विश्व के कई प्रदेशों में उसी प्रकार बनी थीं जैसी प्रत्येक कुल में मूल पुरुष की प्रतिमा बड़े श्रद्धाभाव से प्रदर्शित होती हैं। विष्णु की विशाल प्रतिमाओं के वे स्थान थे—१. गया, २. मक्का में काबा, ३. इटली की राजधानी रोम में, ४. ब्रिटेन के Isle of Anglesey (यानी आंग्लेश द्वीप), और ५. दिल्ली में तथाकथित कुतुबमीनार के तले विष्णु की वे प्रतिमाएँ और वैदिक संस्कृति की अन्य देव प्रतिमाएँ मूर्तिभंजक ईसाई और इस्लामियों ने तोड़-फोड़कर वैदिक मन्दिरों को मस्जिदें, मकबरे और चर्च के रूप में प्रयोग करना आरम्भ कर दिया।

अमेरिका की Newyork University में David King को 'इस्लामी वास्तुकला का जानकार' के विद्वान का पद प्राप्त है। उनके ऊपर उल्लिखित परिषद में पढ़े प्रबन्ध का शीर्षक था Astronomical Alignments in Mediaeval Islamic Religious Architecture. यानि 'मध्ययुगीन धार्मिक इस्लामी इमारतों की ज्योतिषीय रचना'। यह शीर्षक ही भ्रमपूर्ण है। जो इस्लाम फलज्योतिष, पुनर्जन्म, कर्मसिद्धान्त आदि को नहीं मानता वह निजी इमारतें ज्योतिषीय आधार पर क्यों बनाएगा? ज्योतिषीय आधार पर बनी यह इमारतें इस्लामी हो ही नहीं सकतीं यह आजकल के विद्वान नहीं जानते। उस प्रबन्ध में David King ने लिखा है कि "From the 8th Century onwards Muslim Astronomers devoted much attention to the problem of determining the Qibla of any Locality from the Geographical Co-ordinates of Mecca and of that Locality. They derived Geometric and Trigonometric solutions of considerable sophistication and even compiled tables displaying the Qibla for each degree of latitude and longitude" यानि "आठवीं शताब्दी से आगे इस्लामी ज्योतिर्विदों ने बड़ी लगन से मक्का से प्रत्येक स्थान का कोण निश्चित किया। इसके लिए उन्होंने भूमिति, त्रिकोणमिति आदि के हिसाब से मक्का की दिशा में प्रत्येक स्थान के किब्ले के कोण के अक्षांश-रेखांश का अंशात्मक कोष्ठक भी तैयार किया।"

ऊपर उद्धृत David King का निष्कर्ष केवल कही-सुनी बातों पर आधारित है यह हम पाठकों को विदित कराना चाहते हैं।

प्रत्यक्ष में मस्जिद कही जानी वाली किसी भी इमारत का रुख मक्का की दिशा में नहीं है यह David King ने हमारे मित्र Marvin H. Mills से चर्चा करते समय कबूल किया। और उधर निजी प्रबन्ध में वे पूर्णतया विरोधी निष्कर्ष प्रकट करते हैं कि मुसलमानों ने अत्यन्त बारीकी से प्रत्येक स्थान से मक्का से कितना कोण बनता है इसका अंशात्मक कोष्ठक तैयार किया था। यदि ऐसा कोष्टक तैयार था तो उनकी तथाकथित मस्जिदों के किब्ला का रुख मक्का की दिशा में क्यों नहीं है? आज

तक के सारे विद्वानों ने इस्लामी शिल्पकला के बारे में ऐसे ही परस्पर विरोधी विचार प्रकट किए हैं।

इस्लाम-पूर्वकाल में अरब लोग वैदिक संस्कृति की गुरुकुल-पद्धति के अन्तर्गत बड़े विद्वान बन गए थे। किन्तु मुसलमान बन जाने पर विद्या ग्रहण बन्द होकर केवल लूटमार ही उनका धन्धा बन गया। उन्होंने निजी पंचांग से भी बारीकी के हिसाब हटाकर, और प्रति तीन वर्ष पश्चात् एक-एक अधिकमास पंचांग में पविष्ट करने की प्रथा हटाकर गँवार और अनाड़ी पद्धति से प्रतिवर्ष ग्यारह दिन घटाने का रवैया अपनाया। ऐसे लोग पृथ्वी के विभिन्न स्थानों में कब्रें तथा मस्जिदें बनाना क्या जानें और उनका रुख काबा की दिशा में करने की कुशलता कहाँ से प्राप्त करते?

इस्लाम ने इतिहास कैसे और क्यों झुठलाया?

इस्लाम ने अत्याचारों की भरमार करके चन्द वर्षों में सारे अरब-वासियों और ईरानियों को मुसलमान बनाया। एक-दो पीढ़ियों में सारे ही मुसलमान बन जाने पर उनके पूर्वजों पर किए गए अत्याचार जनता भूल गई। तत्पश्चात् इस्लामपूर्व वैदिक काल के अरबी ग्रन्थों को ही पुरस्कृत करके, अरब और ईरानियों के धूर्त नेताओं ने झूठ ही ऐसा प्रचार-ढोल पीटना शुरू किया कि मानो जैसे सारी विद्या और कलाओं का निर्माण और विकास इस्लाम के कारण ही हुआ, जबकि परिस्थिति पूर्णतया उल्टी ही थी, इस्लाम ने सारी विद्याओं का और कलाओं का गला घोंट दिया था।

डेविड किंग के तीन प्रश्नों का उत्तर

आश्चर्य की बात यह है कि मुसलमानों को विद्वान समझने वाले David King ने स्वयं ही अपने प्रबन्ध में तीन कसौटी के प्रश्न पूछे जिनसे मुसलमान बनने पर अरबों का बुद्धूपन ही प्रकट होता है। वे प्रश्न हैं—

१. जो मुसलमान भूगोल भी भली प्रकार नहीं जानते थे वे भूमिति, खगोल ज्योतिष आदि अधिक पेचीदा गणितशास्त्र कैसे जान सकते थे?
२. और यदि वे उन शास्त्रों में प्रवीण थे तो उनकी बनाई मस्जिदों का रुख मक्का की दिशा में क्यों नहीं है?
३. यदि मुसलमान बने अरब गणितशास्त्र में प्रवीण नहीं थे तो सूर्य,

तारका, वायु की दिशा के हिसाब-किताब के सूक्ष्म नियम आदि अरबों के साहित्य में कैसे पाए जाते हैं ?

उपरोक्त तीनों प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि अरबों के पास गणित, भूमिति, त्रिगुणमिति, भूगोल, खगोल, ज्योतिष-सम्बन्धी जो साहित्य उपलब्ध था वह सारा इस्लामपूर्व वैदिक संस्कृति का था। मुसलमान बने अरबों द्वारा लिखना-पढ़ना छोड़ देने के कारण उस विद्वत्तापूर्ण साहित्य का वे तनिक भी उपयोग नहीं कर सके, इतने वे बुद्धू बन गए।

भारत में भी तो कुछ हद तक वैसी ही स्थिति है। भारत में वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण, आयुर्वेद, काव्य, भौतिकशास्त्र, संगीतशास्त्र, विमान शास्त्र, स्थापत्य आदि के उच्चतम संस्कृत साहित्य की भरमार है। तथापि सामान्यजन उस साहित्य और विद्वत्ता भण्डार से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं। इसका कारण भी यही है कि इस्लाम और अंग्रेजों के दास बन जाने पर भारतीय लोग निजी वैदिक विद्याओं से वंचित रहते गए। किन्तु David King के प्रबन्ध से एक बात यह स्पष्ट होती है कि पाश्चात्य विद्वानों के मन में मुसलमानों को लेकर बड़ी उलझन-सी है। क्योंकि एक तरफ तो वे अरबों की विद्वत्ता की बड़ी प्रशंसा सुनते आ रहे हैं और दूसरी तरफ प्रत्यक्ष में अरबी मुसलमान हर प्रकार से बड़े बुद्धू और पिछड़े साबित होते हैं। वर्तमान युग में ही देखिए, किसी भी क्षेत्र में एक भी मुसलमान ने जागतिक ख्याति नहीं पाई है। और तो और अरबी सैनिक भी इतने निकम्मे हैं कि अरबी राजकुल का रक्षण पाकिस्तानी टुकड़ी पर सौंपा गया है।

काबा का वैदिक आकार

काबा की रूपरेखा की बाबत David King कहते हैं "इस्लामपूर्व अरबी कल्पना के अनुसार विश्व के आठ या बारह भाग बनते थे। उनके प्राचीन वायु ऋतुमान शास्त्र में वायु प्रचलन की उतनी दिशाएँ मानी गई हैं। काबा स्वयं ज्योतिषीय आधार पर इस प्रकार बना है कि उसकी चौड़ाई की मध्य रेखा की एक नोक ग्रीष्म ऋतु के सूर्योदय क्षितिज बिन्दु की सीध में है और दूसरी शरद ऋतु के सूर्यास्त बिंदु की सीध में है। David

King के प्रबन्ध के पृष्ठ ४ पर यह जानकारी दी गई है। वह सारा गणित स्थापत्य इस्लामपूर्व वैदिक पंचांग की कुशलता और विद्वत्ता का प्रमाण है।

पृष्ठ ५ पर David King लिखते हैं, "काबा, पहाड़ों के बीच एक दर्रे में बसा हुआ है। उसके निकट झमझम का पवित्र झरना है। उसमें एक उल्का प्रस्तर है जो अन्य देवतारूप प्रस्तरों में सबसे प्रमुख था। वह इमारत ज्योतिषीय नियमों पर बनी है। महंमद के समय तक उसमें ३६० मूर्तियां होती थीं। वह सूर्यपूजा का स्थान था। वायु के प्रचलन की आठ दिशाओं से उसके आठ कोने सम्बन्धित हैं। ग्रीस देश के एथेन्स नगर का एक स्तम्भ भवन उसी प्रकार वायु की अष्ट दिशाओं से सम्बन्धित था। एक अन्य विद्वान Price के अनुसार काबा का आकार सृष्टि के लगभग सभी तत्वों के सम्मिलित हिसाब के आधार पर बना है। अतः उसमें ब्रह्माण्डविद्या, रसायनविद्या, भौतिकशास्त्र, वायु ऋतुमानशास्त्र, आयुर्वेद आदि सभी का विचार अन्तर्भूत था। एक अन्य विद्वान् Berthold के अनुसार हिझाज की प्रारम्भिक मस्जिदों का रुख पूर्व दिशा में था क्योंकि इस्लामपूर्व मूर्तिभक्त अरबों को पूर्व दिशा का महत्व था। काबा में संगे अस्वद (शिवलिंग) एक कोने में (दीवार में) बैठाया (फँसाया) गया है। काबा मन्दिर की प्रत्येक दीवार या कोना विश्व की एक-एक विशिष्ट दिशा से सम्बन्धित था। एक अन्य विद्वान Chelhad का कहना है कि काबा इस तरह बनाया गया था कि वह सूक्ष्म रूप में सारे ब्रह्माण्ड का प्रतीक हो।

ऊपर दिए उद्धरण से पाठक देख सकते हैं कि इस्लाम की स्थापना से हजारों वर्ष पूर्व बने काबा का ढाँचा कितने विविध प्रकार के, प्रगाढ़ विद्वत्ता के शास्त्रीय आधार पर बना हुआ था। इस्लाम ने उसे तहस-नहस किया। अतः विद्या और कला को प्रोत्साहन देने का इस्लाम का दावा कभी नहीं मानना चाहिए। उल्टा विश्व की सारी अच्छाई इस्लाम के कारण ध्वंसित हो गई।

ऊपर दिए उद्धरण में यह कहा गया है कि इस्लामपूर्व अरबों में पूर्व दिशा का महत्त्व था, अतः इस्लाम की स्थापना होने के पश्चात् भी आरम्भ में मस्जिदों का रुख पूर्व दिशा में ही होता था, इस्लामपूर्व वैदिक प्रथा का यह एक पक्का सबूत है।

काबा का प्रांगण

"काबा के इर्द-गिर्द जो चौकोना आंगन है वह २५० कदम लम्बा और २०० कदम चौड़ा है। उस आंगन के पूर्वी बाजू पर एक बरामदा है जिसमें खम्भों की चार कतारें हैं। उसके सामने की बाजू में खम्भों की तीन कतारे हैं। चार-चार खम्भों के आधार पर एक-एक गुम्बद बना हुआ है। गुम्बदों के ऊपर सफेद प्लास्टर चढ़ा हुआ है। एक जानकार कुतुबुद्दीन के अनुसार गुम्बदों की संख्या १५० है। प्रत्येक स्तम्भ १२० फुट ऊँचा है। उनका घेरा १½ से १¾ फुट है। कुछ खम्भे संगमरमर पत्थर के हैं, किन्तु अधिकतर मक्का में पाये जाने वाले स्थानीय सादे पत्थरों के हैं। प्रति ३-४ स्तम्भों के बाद एक अष्टकोना खम्भा बना हुआ है जिसकी मोटाई ४ फुट है। कुल खम्भे ४५० हैं। यह खम्भा इतनी बार तोड़ा गया और बनाया गया कि उसके प्रारम्भिक ढाँचे के प्रायः कोई अवशेष प्राप्त नहीं हैं। जिस ऊँचे परकोटे के अन्दर ये खम्मे वाले बरामदे बने हुए हैं उस परकोटे की अन्दर की बाजू पर महंमद और उसके कुछ उत्तराधिकारियों के नाम खुदे हुए हैं। कई स्थानों पर "अल्लाह" ऐसा मोटे अक्षरों में लिखा है"। (यह वर्णन John Lewis Burckhardt के Travels in Arabia ग्रन्थ में पृष्ठ २४३ से २४६ तक में पाया जाता है। अष्टकोन का वैदिक महत्त्व हमने इस ग्रन्थ में अन्यत्र समय-समय पर स्पष्ट किया ही है।

काबा का गर्भगृह

"कावा, यह एक ऊँचा चौकोना ढाँचा है जिसकी लम्बाई १८ कदम और चौड़ाई १४ कदम है। ऊंचाई ३४ से ४० फुट है। वह इमारत भूरे रंग के स्थानीय पत्थरों की बनी है। प्रत्येक शिला भिन्न-भिन्न आकार की है। एक दूसरे से बड़ी ऊबड़-खाबड़ पद्धति से वे शिलाएँ जोड़ी गई हैं। उसका जो विद्यमान ढाँचा है वह सन् १६२७ का बना है। गर्भगृह की अग्नेय (दक्षिण-पूर्व) दिशा में दीवार के एक कोने में वह पत्थर बाहर की तरफ द्वार के निकट चिन दिया गया है। भूमि से लगभग ४ से ५ फुट की ऊँचाई पर वह संगे अस्वद(शिवलिंग)दीवार में पक्का बिठाया गया है लगभग सात इंच व्यास (Diameter) की वह शिला (शिवलिंग) है।।

विविध आकार के टुकड़े सीमेंट से जोड़कर उसका ऊपर का भाग समतल और चमकीला बनाया गया है। ऐसा लगता है कि उस पर कड़ा प्रहार किए जाने से उस शिला (शिवलिंग) के जो अनेक टुकड़े हुए उन्हें दुबारा जोड़ा गया है। उसका रंग लाल छटा का काला है। उसे चाँदी से मढ़ दिया गया है। चाँदी का पत्तर निचली तरफ अधिक चौड़ा है। निचली चाँदी की पट्टी में चाँदी की कीलें ठोकी गई हैं।

"काबा के उत्तर में द्वार के समीप दीवार के निकट भूमि में एक निम्न स्तरीय आला-सा बना हुआ है। उसकी दीवारें संगमरमर की बनी हुई हैं। तीन व्यक्ति एक साथ बैठ सकें इतना यह चौड़ा है। वहाँ प्रार्थना करना शुभ माना जाता है। उस स्थान को El Madjan कहा जाता है। उसी के ऊपर कुफिक लिपि का एक लेख है जो मैं पढ़ नहीं पाया।

प्राचीन ओकज कवि सम्मेलन

"मक्का में ओकथ उर्फ ओकज स्थान पर महंमद के समय तक एक कवि सम्मेलन हुआ करता था। उसमें श्रोताओं की बड़ी भीड़ होती थी। पुरस्कार-प्राप्त कविताएं काबा में दीवार पर प्रदर्शित की जाती थीं। तयफ के समीप Beni Nagzara विभाग में ओकथ अब एक ध्वंस, वीरान-सा स्थान दिखाई देता है।" ऊपर दिया उद्धरण John Levis Burckhardt के Travels in Arabia ग्रन्थ में पृष्ठ २४८ से ३१६ तक अन्तर्भूत है।

काल की महिमा देखें। एक समय जिस प्रदेश में विद्वानों की संस्कृत, अरबी आदि कविताएं सुनने लोगों की भीड़ लगती और चर्चा, चहल-पहल आदि होती वही अत्र एक रूखा-सूखा, ध्वंसित, निर्जन स्थान बनकर रह गया है।

शिवलिंग के जो टुकड़े हुए हैं, वह स्वयं महंमद के प्रहार से हुए या सीरियाई हमलावरों ने जब उस शिवलिंग का अपहरण कर उसे २२ वर्षों के पश्चात् सऊदी अरब को लौटाया उस काल में हुए, यह बात अभी स्पष्ट नहीं है। उसका लाल काला रंग शिवलिंग का ही लक्षण है। उसका नाम जो Madjan एक यूरोपीय लेखक ने लिखा है, हो सकता है वह "महादेवम्" शब्द हो।

इस्लाम ने वैदिक प्रथाओं को उल्टा किया

वैदिक परम्परा से निजी सम्बन्ध तोड़कर एक अलगाव बनाने के हेतु इस्लाम ने एक आसान उपाय ढूँढा। प्रचलित वैदिक रीति-रिवाजों का उल्टा रूप इस्लाम ने अपनाया। वैदिक परम्परा में सिर पर चोटी रखी जाती थी उसके बजाय इस्लाम ने दाढ़ी रखने की प्रथा चालू की। पूर्व के बजाय पश्चिम को महत्वपूर्ण माना। उल्टी परिक्रमा आरम्भ करी। सूर्योदय से सूर्योदय तक दिन गिनने के बजाय सूर्यास्त से सूर्यास्त का हिसाब चलाया। वैदिक जप में जपकर्ता माला के मणि नीचे की ओर ढकेलता है; अतः मुसलमान माला के मणि ऊपर फेरते हैं। अन्य लोग हाथ की उँगलियाँ नीचे करके पानी ऊपर से नीचे बहाकर हाथ धोते हैं, किन्तु मुसलमान तलहस्त को ऊपर कर पानी को उल्टी दिशा में बहाता है। इस्लामी परिक्रमा घड़ी के उल्टे क्रम से होती है। तवा चूल्हे पर मुसलमान उल्टा रखते हैं। टोपी की सिलाई या कपडों की इस्त्री मुसलमानों की इतरों से भिन्न दिशा में होती है। वैदिक उपवास में एक समय या दोनों समय पूरा अनशन् या दुग्ध-फलाहार होता है, किन्तु इस्लामी प्रथा में रामझान का उपवास केवल नाममात्र होता है। मुसलमान लोग रामझान में भी दोनों समय भरपेट रजकर मिष्ठान्न आहार लेते हैं, केवल भोजन के समय बदल दिए जाते हैं। इसे क्या उपवास कहा जा सकता है ? तथापि इस्लामी प्रथा में तर्क करने की गुंजाइश ही नहीं है। जाडय और अपचन होने तक के दो समय के भरपेट आहार को क्योंकि इस्लाम में उपवास कहा है अतः सभी उसे चुपचाप उपवास कहे जाते हैं। अन्य लोग रसोई के बरतनों को अन्दर कलई कराते हैं तो मुसलमान बाहर से कलई कराते हैं। इस्लाम का सीधा-साधा नियम यह है कि अन्यों से अपना अलग अस्तित्व, विरोध, चिढ़ और शत्रुता कायम रखने के लिए आम लोग जो करते हों उसका बिल्कुल उल्टा करना। इस सम्बन्ध में अगरबत्ती जलाने की बाबत एक इस्लामी सम्पादक का लाक्षणिक उत्तर हम उद्धृत कर ही चुके हैं। प्रचलित रिवाजों को उल्टा कर नई संघटना बनाए जाने का एक आधुनिक उदाहरण देखें। Scouts नाम की युवकों की संघटना जब बनी तो उसमें पुलिस और सैनिकों जैसी वर्दी पहनकर कवायद आदि होती थी। अतः कुछ

भिन्नता दर्शाने के लिए दाहिने हाथ की तीन उँगलियाँ ललाट के दाहिने कोने पर धरकर सलाम करने की प्रथा इसलिए चालू की गई कि पुलिस और सैनिक संघटनाओं का सलाम पाँचों उँगलियों से किया जाता है।

तुर्की लोग

तुरग शब्द का संस्कृत अर्थ है "अश्व" यानी घोड़ा। अतः तुरगस्थान उर्फ तुर्कस्थान यह वैदिक क्षत्रियों का दिया नाम है। किन्तु जब से वह देश इस्लाम के कब्जे में आ गया तब से तुर्की नेताओं ने तुर्कस्थान का इस्लाम-पूर्व लाखों वर्ष का इतिहास नष्ट कर दिया। इतिहास एक ऐसा विषय है जिसकी कड़ी कभी टूटनी नहीं चाहिए। तथापि ईसाई, इस्लामी और कम्युनिस्ट पन्थों की यह विशेषता रही है कि वे अपने अनुयायियों के दिलों में पूर्व इतिहास की बाबत घृणा उत्पन्न कर उस इतिहास को दबाकर भूल जाने को प्रवृत्त कराते हैं।

अलीगढ़ विश्वविद्यालय के प्राध्यापक महंमद हबीब ने Sultan Mahmud of Ghaznin नाम की पुस्तक लिखी है। उसके पृष्ठ १४ पर वे लिखते हैं कि—"ईसापूर्व काल में Scythean तुर्कों के Barhatigin ने प्रस्थापित किए तुर्की शाही (कुशाण) राजघराने ने दिग्विजय आरम्भ की। उसके प्रसिद्ध सम्राट् कनिष्क के अधिकार में उत्तर भारत का एक बड़ा भाग, अफगानिस्तान, तुर्कस्थान और Mawaram Nahar सम्मिलित हो गए। वे तुर्क भारतीय (वैदिक) संस्कृति में घुलमिल गए। अल्बरूनी के अनुसार उस घराने में साठ राजा हुए। अन्तिम राजा Legaturman को उसके ब्राह्मण मन्त्री कल्लूर ने पदच्युत किया। नगरकोट के किले में उस कुल के राजाओं के नाम एक रेशमी पट पर अंकित प्राप्य थे किन्तु अल् बरूनी देख न सका।

तुर्क लोग वैदिक परम्परा के ही थे। किसी और रहन-सहन को छोड़कर उन्होंने वैदिक परम्परा अपनाई यह कहना उचित नहीं।

"गिन" अन्त्यपद वाले नाम

उपरोक्त उद्धरण से यह जान लेना आवश्यक है कि Subuktagin, Alaptagin आदि इस्लामपूर्व तुर्की राजाओं के जो नाम थे वे सुभक्त गुण,

अलिप्तगुण आदि संस्कृत थे। गत एक सहस्त्र वर्षों से तुर्कस्थान इस्लामी देश बनने के कारण कई लोग अनजाने में तुर्कस्थान के इस्लामपूर्व नाम भी इस्लामी ही समझते हैं। मुसलमान बनने के पश्चात् तुर्की लोग अतिक्रूर, दुष्ट और अन्यायी बन गए। उन्होंने Armenian Kurd आदि जमातों के लोगों का उसी प्रकार नाश और छल किया जैसा हिटलर ने यहूदियों का। इससे पाठक देख सकते हैं कि वैदिक संस्कृति में और इस्लाम में आकाश-पाताल जैसा अन्तर है। अत: सारे धर्म एक जैसे समझना अनुचित है।

शाह

शाह या बादशाह आदि उपाधियों से वर्तमान युग में इस्लामी नरेश का आभास होता है। किन्तु संस्कृत में "शाहते" यानी "चमकता है।" राजा का अधिकार, उसके वस्त्र, आभूषण, आसन, नौकर-चाकर आदि से राजा सामान्यजनों से एकदम अलग-सा चमक उठता है। अत: उसे "शाह" उपाधि वैदिक परम्परा में ही लगती थी। नेपाल के हिन्दू नरेश को भी शाह उपाधि लगती है। गुजराती लोगों में शाह नाम के कुल होते हैं। अत: "शाह" वैदिक संस्कृति की पदवी है। इस्लामी बने सुल्तान, बादशाह अपने आपको शाह इसलिए कहलाते थे कि इस्लामपूर्व वैदिक परम्परा में नरेशों को शाह कहा जाता था।

इसी कारण ईरान के राजा भी इस्लामपूर्व काल से शाह कहलाते हैं। सीथियन और तुर्की राजाओं के ब्राह्मण मन्त्री होते थे इसी से जाना जा सकता है कि तुर्कस्थान के इस्लामपूर्व राजा लोग वैदिकधर्मी होते थे।

नगरकोट के किले में जो राजवंशावली थी उससे पता चलता है कि हिन्दु राजघरानों के इतिहास आदि लिखे जाते थे। किन्तु सात सौ वर्षों के इस्लामी आक्रमण में वे सब नष्ट कर दिए गए।

शाहमन राजघराना

ऊपर उल्लिखित प्राध्यापक हबीब के ग्रन्थ में Samanid राजाओं के शासनकाल इस प्रकार दिए हैं। अब्दुलमलिक बिन नुह (३४३-३५०) मंसूर बिन नुह (३५०-३६५) नुह बिन मंसूर (३६५-३८७) पश्चिम एशिया प्रदेश में Samanid घराने का विशाल साम्राज्य था। समनी यह

शाहमन (शाहमनी) शब्द है जिसका संस्कृत अर्थ है चमकदार मन (बुद्धि) वाला। महंमद बिन कासिम (७१२) द्वारा किए भारत पर आक्रमण सम्बन्धी जो अरबी तवारीखें हैं उनमें भारतीयों को तुर्क और समनी कहा गया है क्योंकि उस समय तुर्क और समनी यानी शाहमनी सारे वैदिकधर्मी थे। नूह "मनु" नाम का संक्षिप्त इस्लामी रूप होने से पता चलता है कि समनी राजकुल के व्यक्ति अपने आपको स्मृतिकार मनु के वंशज कहलाने में गर्व मानते थे। इस्लामपूर्व नाम भी मुसलमान लेखक किस प्रकार अरबी और इस्लामी बनाकर पाठकों को भ्रम में डाल देते हैं यह हबीब द्वारा किए गए उल्लेखों से स्पष्ट होता है।

लाट-मनाथ

काबा मन्दिर स्थित अनेक देवमूर्तियों में से दो के नाम Lat व Manat कहे जाते हैं। एक प्राचीन संस्कृत खगोलीय ज्योतिग्रन्थ के लेखक का नाम लाटदेव था और मनाट उर्फ मनाथ यह सोमनाथ नाम का टूटा रूप है। अत: वे नाम वैदिक देवताओं के हैं।

राम, कृष्ण, शिव, गणेश आदि वैदिक देवता प्राचीन विश्व में पूजे जाते थे इसके प्रमाण हमने इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर उद्धृत किए ही हैं।

अल्ला

अल्ला शब्द संस्कृत, वैदिक परम्परा में देवी का निर्देशक है। अल्ला-अक्का-अम्बा तीन समानअर्थी शब्द हैं। देवी या माता को वे तीन नाम लगते हैं। Gulf of Akkaba नाम इसीलिए पड़ा है कि वहाँ का सागर-तट वैदिक देवी के विशाल मन्दिरों का एक पवित्र तीर्थस्थान था। संस्कृत में अल्लेश्वरी देवी के स्तोत्र हैं। एक अल्लोपनिषद् भी है। चण्डी, भवानी, दुर्गा, अम्बा, पार्वती का नाम अल्ला होता है।

यद्यपि मुसलमानों में अल्ला को पुल्लिंग माना गया है वह मूल संस्कृत में स्त्रीवाचक शब्द है। इस्लामी प्रथा में भी इसका एक बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रमाण मिलता है। मुसलमान लोग "या अल्ला" कहते हैं जबकि पुल्लिंगी उद्गार "हे अल्ला" या "भो अल्ला" होना चाहिए था।

या कुन्देन्दु तुषार हार धवला।
या शुभ्र वस्त्रावृता ।।
या वीणा वर दण्ड मण्डित करा।
या श्वेत पद्मासना ।।

इस सरस्वती स्तवन से देखा जा सकता है कि संस्कृत में देवी के लिए जो "या" शब्द प्रयोग होता है वही इस्लामी परम्परा में अल्ला के स्मरण में "या अल्ला" कहा जाता है। इससे पता चलता है कि प्राचीन इस्लाम-पूर्व अरब लोग देवी को ही अल्ला कहते थे। इसका एक और भी कारण है। शिव की पत्नी पार्वती को अल्ला कहा जाता था। महंमद का घराना शिवपूजक होने से शिवजी की पत्नी पार्वती उर्फ गौरी उर्फ अल्ला महंमद के घराने की कुलस्वामिनी थीं। इसी कारण इस्लामी भगवान का निर्देश अल्ला शब्द से होता रहा।

यदि वह शंका उठाई जाए कि देवी का नाम अल्ला मुसलमानों ने पुल्लिग कैसे कर डाला तो उसके कई उत्तर हो सकते हैं। एक उत्तर यह कि संस्कृत में "आत्मा" शब्द "पुल्लिग" होते हुए भी हिन्दी में वह स्त्रीलिंग बना है। यानी भाषा बदलने से एक ही शब्द का दोनों भाषाओं में लिंग भिन्न हो सकता है। दूसरा उत्तर यह है कि अरब में वैदिक कीर्तन प्रवचन बन्द हुए हजारों वर्ष बीत जाने पर देवमूर्तियों की पूजा अनाड़ी, गँवार पद्धति से चलते-चलते लिंग भेद आदि मिटकर परमात्मा का निर्देश अल्ला नाम से होकर वह पुरुष ही माना जाने लगा।

सात परिक्रमा

मुस्लिम यात्री काबा मन्दिर की सात परिक्रमाएँ करते हैं। इसे संस्कृत में सप्तपदी कहते हैं। वैदिक विवाहों में वर-वधू होम-अग्नि की सप्तपदी करते हैं। अतः सात परिक्रमा की परम्परा भी काबा की इस्लामपूर्व वैदिक संस्कृति का प्रमाण है।

अर्बस्थान में विक्रमादित्य का राज्य

भारत के अवन्तिका उर्फ उज्जयिनी साम्राज्य के महाराजा विक्रमादित्य ने ईसवी सन् पूर्व ५६ वर्ष से निजी नाम का संवत् चलाया।

यूरोप में उनका समकालीन रोमन सम्राट् ज्यूलियस सीझर था।

सन् १९४६ के लगभग उज्जयिनी में विक्रम संवत् को २०००वर्ष पूरे हो जाने का उत्सव मनाया गया। उसका एक विशेष स्मृति अंक प्रकाशित हुआ था। उसमें एक हिन्दु तथा एक मुसलमान ऐसे दोनों का लिखा एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें प्राचीन अरबी कविता उद्धृत थी जिसमें विक्रमादित्य की प्रशंसा की गई थी। उस अरबी कविता के शब्द इस प्रकार थे—

इत्रशइफाई सन्तुल बिक्रमत्तुल फेहलमीन करिमुन।
यर्तफीहा वयोवस्सख विहिल्लहया समीमिनेला
मोतकब्बेनरन् बिहिल्लाहा यूबी कंद मिन् होवा
यफाकरू फजगल असरी नहान्स ओसिरिम् बेजेहोलीन
यहा सबदुन्या कनातेफ नतेफी बिजिहलीन
अतादरी बिलाला मसौरतीन फकेफ तसाबहु
कोन्नी एजा मजाकरलहदा वलहदा
अचमीमन, बुरूकन, कद तोलुहो वतस्तरू
बिहिल्लाहा याकाजिबैनाना बालैकुल्ले अमरेना
फहेया जोनबिल् अमरे बिक्रमतून

—सैर उल् ओकुल, पृष्ठ ३१५

इस कविता का अर्थ इस प्रकार है—

"भाग्यशाली हैं वे जो विक्रमादित्य के शासन में जन्मे (या जीवित रहे) वह सुशील, उदार, कर्त्तव्यपरायण शासक प्रजाहित दक्ष था। किन्तु उस समय हम अरब परमात्मा का अस्तित्व भूलकर वासनासक्त जीवन व्यतीत करते थे। हममें दूसरों को नीचे खींचने की और छल की प्रवृत्ति बनी हुई थी। अज्ञान का अँधेरा हमारे पूरे प्रदेश पर छा गया था। भेड़िये के पंजे में तड़फड़ाने वाली भेड़ की भाँति हम अज्ञान में फँसे थे। अमावस्या जैसा घना अन्धकार सारे (अरब) प्रदेश में फैल गया था। किन्तु उस अवस्था में वर्तमान सूर्योदय जैसे ज्ञान और विद्या का प्रकाश, यह उस दयालु विक्रम राजा की देन है जिसने हम पराए होते हुए भी हमसे कोई भेदभाव नहीं बरता। उसने निजी पवित्र (वैदिक) संस्कृति हममें फैलाई

और निजी देश (भारत) से यहाँ ऐसे विद्वान, पण्डित, पुरोहित आदि भेजे जिन्होंने निजी विद्वत्ता से हमारा देश चमकाया। यह विद्वान पण्डित और धर्मगुरु आदि, जिनकी कृपा से हमारी नास्तिकता नष्ट हुई, हमें पवित्र ज्ञान की प्राप्ति हुई और सत्य का मार्ग दिखा वे हमारे प्रदेश में विद्यादान और संस्कृति प्रसार के लिए पधारे थे।

महंमद के १६५ वर्ष पूर्व के अरबी कवि जिह्म् बिनतोई की वह अरबी कविता जो विक्रमादित्य की प्रशंसा में लिखी गई है, वह विक्रमादित्य, बिनतोई से लगभग ५०० वर्ष पूर्व राज्य करता था। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि विक्रमादित्य की श्रेष्ठता की ख्याति उसके जीवन के पश्चात् इस्लाम की स्थापना होने के ६०० वर्षों में अरब लोगों में भी ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी यानी विक्रमादित्य की पावन स्मृति केवल भारत में ही नहीं अपितु विश्व के अन्य अनेक देशों में भी फैली हुई थी। इससे विक्रमादित्य के अनेक गुणों का अनुमान लगाया जा सकता है।

सैर-उल्-ओकुल

तुर्कस्थान की राजधानी इस्तंबूल में मख्तब्-ए-सुलतानिया नाम का ग्रन्थालय था। उसमें पश्चिम एशिया के देशों के साहित्य का सबसे अधिक ग्रन्थ संग्रह था। उसके अरबी विभाग में प्राचीन अरबी काव्य-संग्रह की एक पुस्तक थी। सन् १७७२ में तुर्कस्थान के सुल्तान सलीम की आज्ञा से एक प्राचीन काव्यसंग्रह से १७४२ में चुनी कविताओं का संग्रह तैयार किया गया।

उस ग्रन्थ के पृष्ठ हरीर यानी कच्चे रेशम के थे। ऐसे कच्चे रेशम से लेखनयोग्य कागज बनाया जाता था। प्रत्येक पृष्ठ के किनारों को सुनहरा रंग दे दिया गया था। जावा, सुमात्रा आदि देशों में पाए गए प्राचीन वैदिक ग्रन्थों के पृष्ठों के किनारों का रंग सुनहरा है। अतः यह वैदिक प्रथा थी। इंग्लैण्ड में भी बायबल आदि धार्मिक ग्रन्थों के पृष्ठों के किनारे सुनहरे करने की प्रथा थी। उस काव्य-संग्रह का नाम है "सैर-उल्-ओकुल" यानी "साहित्य क्षेत्र का प्रवास उर्फ यात्रा।" उस संग्रह के तीन भाग हैं। एक में इस्लामपूर्व कवियों की रचनाएँ और प्रत्येक कवि की संक्षिप्त जीवनी

अन्तर्भूत थी। दूसरे भाग में मुहम्मद के तुरन्त पश्चात् के अरबी कवियों की बानी उमय्या घराने के राज्यकाल तक की रचनाएँ सम्मिलित थीं। तीसरे भाग में हरुन-अल्-रशीद के अन्त तक के अन्य कवियों के काव्य दिए गए थे। पाठक देखें कि बानी यह "वाणी" शब्द का अपभ्रंश है और उम्मय्या यह कृष्णय्या जैसा वैदिक नाम है।

हरुन-अल्-रशीद के दरबार का राजकवि अबु अमीर अब्दुल असमाई स्वयं एक प्रख्यात कवि था। उसने वह सैर उल् ओकुल काव्यसंग्रह संकलित और सम्पादित किया।

वैदिक विराटनगर

सैर-उल्-ओकुल का प्रथम आधुनिक संस्करण जर्मनी के बर्लिन नगर से सन् १८६४ में प्रकाशित हुआ। दूसरा संस्करण बेरूट नगर से सन् १८८२ में प्रकाशित हुआ। बेरूट नगर यह प्राचीन वैदिक "विराटनगरी" है। "व" का उच्चार "ब" होने से विराट को बिराट लिखते-लिखते बैरूट यह प्रचलित उच्चार रूढ़ हुआ। अरबी काव्य में उस संग्रह की बड़ी मान्यता है। अरबों की प्राचीन सभ्यता, सामाजिक जीवन, रहन-सहन आदि का उस काव्य-संग्रह से बड़ा ज्ञान होता है। उस ग्रन्थ में प्राचीन काबा का, मक्का नगर का और उसमें प्रतिवर्ष होने वाली ओकज यात्रा का भी वर्णन अंकित था।

ओकज यात्रा

किन्तु ओकज समारोह कोई सामान्य मेला जैसा नहीं था। उस यात्रा के निमित्त सारे विद्वानों को तत्कालीन अरबों की वैदिक, संस्कृति, सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक आदि समस्याओं की चर्चा करने का अवसर मिलता था।

सैर-उल्-ओकुल में लिखा है कि उस समागम में लिए गए सारे निर्णय अरब समाज में मान्यता पाते थे। यानी एक प्रकार से मक्का अरब समाज की वाराणसी थी। वाराणसी में जिस प्रकार एक प्रख्यात शिवक्षेत्र काशी विश्वनाथ है उसी प्रकार काबा मक्का का शिवक्षेत्र था। वाराणसी के

विद्वद्समागमों के निर्णयों की जो मान्यता होती थी वही काबा के वार्षिक ओकज सम्मेलन के निर्णयों की होती थी।

अरबों के वैदिक समाज का कविसम्मेलन

सैर उल् ओकुल के अनुसार उस वार्षिक कविसम्मेलन में तत्कालीन प्रख्यात अरबी कवि सम्मिलित होते थे। उत्तम समझे गए काव्य को पारितोषिक दिया जाता था। सर्वोत्तम कविता को सुवर्णथाल पर लिखकर काबा मन्दिर की दीवार पर अन्दर प्रदर्शित किया जाता। दूसरे क्रमांक के काव्य चाँदी के थाल पर लिखे जाते। तीसरी श्रेणी की कविता ऊष्ट्र के चर्म पर लिखकर मन्दिर के बाहर लटकाई जाती। इस प्रकार इस्लामपूर्व काल में हजारों वर्ष काबा का मन्दिर श्रेष्ठतम अरबी के काव्य का भण्डार स्थान बन गया था। वह प्रथा अनादि थी। किन्तु महंमद के अनुयायियों ने काबा पर जो हमले किए उनमें वे सोने-चाँदी के थाल आदि सब लूटपाट में तोड़े-फोड़े और चुराए गए।

उस समय हसन-बिन-साबिक नाम का एक कवि नया-नया मुसलमान बना हमलावरों में शामिल था। उसने वहाँ लटकी कविताएँ लूटीं और अपने घर में वह सारी लूट रख ली।

उसके तीन पीढ़ी पश्चात् उसके एक वंशज ने धन कमाने के उद्देश्य से हरून-अल्-रशीद के दरबार में वह प्राचीन लूट की सामग्री प्रदर्शित की। दरबार में उस समय अबु अमीर अब्दुल असमाई नाम का एक अरब विद्वान उपस्थित था। उसने काव्य लिखे हुए नौ सुवर्णथाल और १६ ऊँटों की खालें लाने वाले व्यक्ति को चन्द मोहरें देकर रवाना किया।

उन पाँच सुवर्ण थालों पर जो कविताएँ उत्कीर्ण थीं उनमें लबी बेने और अख्तब-बिन-तुर्फा नाम के इस्लामपूर्व दो प्राचीन अरबी कवियों की कविताएँ थीं। वह देखने पर हरुन-अल्-रशीद ने अबु अमीर को सुझाया कि वह प्राचीन अरबी कविताओं का संकलन करे। वह जो संकलन किया गया उसमें जिम्हम बिनतोई की एक कविता थी। जिम्हम बिनतोई प्रसिद्ध कवि था। लगातार तीन वर्ष उसकी कविताएँ सर्वोत्तम घोषित होकर काबा मन्दिर के अन्दर सुवर्णथाल पर प्रदर्शित थीं। उनमें एक कविता में

विक्रमादित्य का गुण गौरव था।

इतिहास की कई जटिल समस्याएँ विक्रमादित्य सम्बन्धी उस अरबी कविता से सुलझ जाती हैं। एक तो यह कि बिनतोई के अनुसार उस समय के अरबी विद्वान, पुरोहित वर्ग, समाज सेवक आदि यज्ञ किया करते, विद्यालय व रुग्णालय चलाते, आयुर्वेद की शिक्षा देते, कृषि और जल सिंचाई सम्बन्धी लोगों का मार्गदर्शन करते और समाज में शान्ति, सुव्यवस्था, न्याय, भाईचारा, दानधर्म आदि चलता रहे इसका प्रवन्ध करते।

यह इसलिए होता था कि उस काल में पहलवी, प्रमुख, कुरु आदि वैदिक क्षत्रिय राजकुलों की उन पश्चिम एशियाई प्रदेशों में अधिसत्ता थी। इसी कारण उस युग के पारसी अभी तक निजी अग्निहोत्र चलाए हुए हैं। इसी कारण कुर्दी और ईरानी भाषाएँ संस्कृत प्रचुर हैं। भारत से हजारों मील दूर बाकु और बगदाद जैसे नगरों में अग्नि मन्दिर और स्थान-स्थान पर इराक प्रदेश के नवबहार जैसे वैदिक मठ बने थे। रूस में कई वैदिक विहार यानी गुरुकुल उत्खनन में पाए गए हैं। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि रूस ऋषियों का ही तो देश है। वहाँ वैदिक गुरुओं के आश्रम, गुरुकुल आदि विपुल संख्या में नहीं मिलें तो और कहाँ मिलेंगे? मध्य एशिया में नारद स्मृति आदि कई प्राचीन पोथियाँ भी समय-समय पर मिलती रही हैं।

दुर्भाग्यवश विश्व वैदिक विरासत के ऐसे ओत-प्रोत स्मारक जनस्मृति से निकल ही गए हैं। अतः उनका पुनर्लेखन, पुनर्संकलन आदि होना आवश्यक है। उनकी जब जानकारी विद्वानों को हो जाएगी तो विश्व को एक अति मूल्यवान ज्ञानभण्डार की पुनर्प्राप्ति का आनन्द होगा। इस ग्रन्थ द्वारा वही महत्त्व का कार्य सम्पन्न किया जा रहा है।

कुराण में वैदिक ऋचाएँ

पारडी (गुजरात) के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी ने "पुरुषार्थ" मासिक के एक लेख में बताया था कि कम-से कम यजुर्वेद की एक ऋचा का अनुवाद ज्यों-का-त्यों कुराण में अन्तर्भूत है। चन्द्रमा, विविध नक्षत्र और विश्व निर्माण का वर्णन वेदों में जैसा है ठीक वैसा ही कुराण भाग १, अध्याय २, आयतें ११३ से ११५ और १५८,

१५८, अध्याय ९, आयत ३७, और अध्याय १०की आयतें ४ से ७ में उद्धृत हैं। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अरबों में महाभारतीय युद्ध तक तो पूर्णतया वेद-पठन होता रहा। तत्पश्चात् जो उथल-पुथल हुई उससे वेद-पठन परम्परा खण्डित, त्रुटित और विरल होती गई। हज के दिनों में केवल एक चादर ओढ़े मुसलमान धर्मगुरू जो अरबी मन्त्र बोलते हैं उनका स्वरनाद और पहनावा पूर्णतया वेद-पाठी ब्राह्मणों जैसा ही होता है। यह एक बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रमाण है। किन्तु आज तक इतिहास संशोधन-पद्धति में यह बड़ा दोष रहा है कि ऐसे विविध प्रकार के प्रमाण पूर्णतया दुर्लक्षित रह गए।

अरब लोग वैदिक पंचाग मानते थे

हिन्दुओं के ३३ देव होते हैं। उसी प्रकार इस्लामपूर्व Asia Minor प्रदेश में रहने वाले लोगों के भी ३३ देव होते थे।

इस्लामी महीना "सफर" अधिक मास का नाम है। इससे पता चलता है कि इस्लाम पूर्व अरब लोग वैदिक पंचाँग के अनुसार ही सारे क्रियाकर्म किया करते थे।

दूसरे एक इस्लामी मास का नाम है रबि जो संस्कृत "रवि" शब्द का अपभ्रंश है।

बारवफात

लगभग सितम्बर-अक्तूबर महीनों में आने वाले कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को घायाल चतुर्दशी कहते हैं। वैसे तो उस पूरे पखवाड़े को पितृ-पक्ष कहकर उस पखवाड़े में मृत पूर्वजों के सम्मान में श्राद्ध आदि किए जाते हैं। उसी पखवाड़े की चतुर्दशी युद्ध में शस्त्र आदि का प्रहार होकर मृत होने वालों के श्राद्ध का दिन निश्चित किया गया है। मुसलमानों में बारवफात ठीक वैसा ही श्राद्ध दिन होता है। संस्कृत में फिफौत यानी मृत्यु, उसी का अरबी अपभ्रंश "वफात" हुआ है। उसी प्रकार संस्कृत का जो "वार" शब्द है (जैसे "वार" लगने से घायल होना) उसी का अरबी में "वार" उर्फ "बार" ऐसा अपभ्रंश हुआ। अतः बारवफात यह अरबी शब्द संस्कृत वार फिफौत का अपभ्रंश है।

प्रतिदिन की संध्या (वैदिक विधिवत् प्रार्थना) में कर्मठ हिन्दू रात्रि को अनजाने किए गए पापों की क्षमायाचना "यद् रात्र्या पापम् अकार्षम् मनसा वाचा" इत्यादि शब्दों से ईश्वर से करते हैं। रात्रि के पापों की क्षमा-याचना प्रात: की संध्या में और दिन में किए गए पापों की क्षमा-याचना रात्रि की संध्या में की जाती है। इससे प्रत्येक व्यक्ति को दिन-रात निजी मानसिक और भाषिक पापों के प्रति जागृत रखने की व्यवस्था की गई थी। इस सम्बन्ध के संस्कृत वचन हैं "सायं दिवसा कृतं पापम् नाशयति", 'सायं प्रात: प्रयुञ्जानों अपापो भवति।"

ईसाई परम्परा में जो Sin उर्फ "पाप" का बार-बार उल्लेख आता है और पाप की बाबत चिन्ता व्यक्त की जाती है, वह यूरोप की प्राचीन वैदिक संस्कृति का स्मृति अवशेष है। पापोऽहम् पापसम्भव: इत्यादि वैदिक प्रार्थना मन्त्र प्राचीनकाल में सारे विश्व में बोले जाते थे।

पंच अवयव शुद्धि

प्रार्थना (नमाज़) आरम्भ करने से पूर्व मुसलमानों को पाँच शरीर अवयवों की शुद्धि कही है। इसका भी स्रोत वैदिक ही है। "शारीर शुद्धयर्थं पंचांग न्यास:" ऐसा वैदिक नियम है।

इस्लाम का चातुर्मास

वैदिक संस्कृति में वर्षा के चार मास चातुर्मास कहलाते हैं। इनमें खाने-पीने के पथ्य के विशेष नियम होते हैं। इस अवधि में तरह-तरह के व्रत आदि भी किए जाते हैं। मुसलमानों में भी इन चार महीनों में लूटपाट, युद्ध आदि न करने का कर्मठ बन्धन होता था। क्रूर, दुष्ट इस्लामी आक्रामक कहाँ ऐसे बन्धन का पालन करते हैं? किन्तु जब किसी मुसलमान आक्रामक को युद्ध की तैयारी हेतु कुछ समय की अवधि लगती थी या और किसी विवशता के कारण वह हिन्दुओं पर हमला करने में समर्थ नहीं होता था तो वह उस इस्लामी चातुर्मास के बन्धन या व्रतपालन का ढोंग या बहाना करता था। इस्लामी तवारीखों में ऐसे बहानों का उल्लेख आता है।

शबे बरात

इस्लामपूर्व वैदिक काल में शिवव्रत होता था। वह शिवव्रत काबा

मन्दिर में बड़ा धूमधाम से मनाया जाता था। उसी का अपभ्रंश इस्लाम में शबे बरात हुआ है।

अपने आप पर किए प्रहार

शियापंथी मुसलमान आठ-दस मंजिले ताजिए कन्धों पर धारण किए रोते-पीटते जुलूस निकालते हैं। कई अपनी ही छाती पीटते जाते हैं, अपने आपको चाबुक मार लेते हैं, अपने शरीर पर चाकू से वार करते रहते हैं। मुसलमानों को यह कहा गया है कि महंमद के पोते हुसेन की युद्ध में जो मृत्यु हुई उसके स्मरण में ताजियों के रूप में उसकी अर्थी निकाली जाती है और उसकी मृत्यु के शोक में रोना-पीटना होता है। यह सही नहीं है। ताजियों का आकार, रूप और चमक-दमक वैदिक मन्दिरों जैसी होती है। ईरान पर जब अरबों ने हमला कर ईरानियों को मार-मारकर उन्हीं के हाथों उनके वैदिक मन्दिर गिरवाए और मलबा सिर पर लाद शहर के बाहर फिकवाया तब अरबी आक्रामक ईरानियों पर साथ-साथ वार करते रहे, हण्टर मारते रहे और चाकू भोंकते रहे। मुहर्रम के ताजियों का जुलूस उन भीषण अत्याचारों की स्मृति में उसी प्रकार निकाला जाता है जैसे सिख-पन्थी लोग मुसलमानों के हाथ मारे गए अपने गुरु अर्जुन देव और तेगबहादुर के बलिदान दिनों पर शोक जुलूस निकालते हैं। इस सम्बन्ध में हमने इसी ग्रन्थ में मुहर्रम की और भी जानकारी अन्यत्र दी है।

हज्

विश्व-भर के मुसलमान काबा की यात्रा को "हज" कहते हैं। वह संस्कृत "व्रज" शब्द का अपभ्रंश है। व्रज शब्द का अर्थ है एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना।

महंमद की वैदिक परम्परा

ऊपर दिए ब्यौरे से पाठक देख सकते हैं कि जिस कुरूईश (कुरेशी) कुल में महंमद का जन्म हुआ वह वैदिक परम्परा मानने वाला कुल था। वह कुल काबा मन्दिर का पौरोहित कर्म करता था। इसी कुल की योग-ध्यान परम्परा में ही महंमद गुफा में ध्यानमग्न बैठा करता। ऐसा करते-

करते रामध्यान के मास में ध्यानमग्न अवस्था में ही महंमद के मन में कुराण का स्फुरण हुआ।

किन्तु महंमद ने अपना अलग-सा पक्ष बनाकर काबा मन्दिर के अन्दर की मूर्तियाँ तोड़ना, सम्पत्ति लूटना, काबा मन्दिर में आने वाले यात्रियों पर हमला करना जब आरम्भ किया तब महम्मद के चाचा इत्यादि जो उस कुल के वयोवृद्ध, कर्मठ सदस्य थे उन्हें क्रोध आना स्वाभाविक था। अत: महंमद के कुल में ही अन्त:कलह छिड़ा और उसमें महंमद की विजय होकर महम्मद का एक चाचा उमर-बिन-ए-हज्जाम्, जो सनातन शिव-भक्त था, वह मारा गया।

अर्बस्थान का मखमेदिनी (मक्का-मदीना) यानी "यज्ञभूमि" परिसर अनादिकाल से वेदपाठ के गम्भीर, पावन स्वर से गूंजता रहता था। आगे चलकर बुद्ध की ख्याति जैसे ही भारत में बढ़ी वैसे विश्व के सारे ही वैदिक धर्मपीठों में बुद्ध की वाह-वाह होने लगी। अत: जहाँ-जहाँ वैदिक वाटिकाएँ थीं वहाँ-वहाँ बुद्ध को नवाँ अवतार मानकर बुद्ध की विशालकाय मूर्तियाँ स्थापित होती गईं और बुद्ध का नौवाँ अवतार होने की बात चल पड़ी।

हमारी दृष्टि से बुद्ध को नौवाँ अवतार मानना अयोग्य है। प्रत्येक अवतार शस्त्रधारी योद्धा होना चाहिए। अहिंसावादी सन्त भले ही माने जाएँ किन्तु अवतार नहीं। जब अभी नौवाँ अवतार ही नहीं हुआ तो दसवें कल्कि अवतार की अपेक्षा करना उचित नहीं। एक त्यागी सन्त समझकर बुद्ध का आदर करना ठीक है किन्तु उससे आगे जाकर उसे सम्पूर्ण पर-मात्मा समझना अयोग्य है। तथापि वैदिक परम्परा की सर्वंकष उदार विचारधारा के अनुसार बुद्ध को एक त्यागी मान्यवर व्यक्ति अवश्य माना जाता। किसी भी क्षेत्र में श्रेष्ठ गुणों के व्यक्ति का महान् आदर करना यह वैदिक परम्परा है।

महंमद का चाचा उमर-बिन-ए-हज्जाम एक मान्यवर कवि था। शिव की स्तुति में लिखी उसकी एक कविता सैर-उल्-ओकुल ग्रन्थ में है। इस अध्याय में उल्लिखित दोनों अरबी कविताएँ दिल्ली में मन्दिर मार्ग पर बने विशाल लक्ष्मीनारायण मन्दिर की पिछली उद्यानवाटिका में यज्ञशाला की दीवारों पर उत्कीर्ण हैं। एक कविता (जो विक्रमादित्य की प्रशंसा में है

हम ऊपर दे ही चुके हैं, दूसरी कविता नीचे दे रहे हैं—

कफारोमल फिक्र मिन उलुमिन तब असयरू।
कलुवन अमातुल हवा वस तजखरू ॥१॥
वा ताजाखयरोबा उदन कलालवदे-ए लिबो आवा।
वलुकायने जतल्लो—हे यौमा तब असयरू॥२॥
वा अबा लोल्हा अजब् अमीमन महादेव ओ।
मनोजली इलामुद्दीन मिनहुम वा सयत्तरू ॥३॥
वा सहाबी के-यम् फीमा-कमील मिंदे यौवन।
वा याकुलुम ना लतावहन फोइन्नक तवज्जरू ॥४॥
मस्सयरे अखलाकन हसानन कुल्लहुम।
नजुमुम अजा-अत सुम्मा गबुल हिन्दु ॥५॥

ऊपर उद्धृत कविता का हिन्दी अनुवाद निम्न प्रकार होगा—

यदि कोई व्यक्ति पापी या अधर्मी बने।
यह काम और क्रोध में डूबा रहे।
किन्तु यदि पश्चाताप कर वह सद्गुणी बन जाए।
तो क्या उसे सद्गति प्राप्त हो सकती है?
हाँ अवश्य! यदि वह शुद्ध अन्तःकरण से
शिवभक्ति में तल्लीन हो जाए तो
उसकी आध्यात्मिक उन्नति होगी।
हे भगवान शिव मेरे सारे जीवन के बदले।
मुझे केवल एक दिन भारत में निवास का
अवसर दें जिससे मुझे मुक्ति प्राप्त हो।
भारत की एकमात्र यात्रा करने से
सबको पुण्य-प्राप्ति और संतसमागम का लाभ होता है।

ऊपर दी कविता में हिन्द शब्द का बड़ा आदरपूर्ण उल्लेख है। अतः जो हिन्दु व्यक्ति यह कल्पना कर बैठे हैं कि हिन्दु शब्द इस्लामी उल्लेखों में सर्वदा ही घृणित और तिरस्कृत रहा है, वे सही नहीं हैं।

दूसरी एक बात ऊपर दी जानकारी से यह स्पष्ट होती है कि सनातन धर्म विरोधी आक्रमण और सनातनियों से इस्लामपंथियों का युद्ध अर्बस्थान

में प्रथम छिड़ा। उस संघर्ष की स्मृति में काबा की यात्रा करने वाले यात्रेकरूं को उस मन्दिर के परिसर में तीन स्थानों पर कंकरों से प्रहार करने को कहा जाता है जहाँ सनातनियों पर महंमद के नेतृत्व में पत्थर फेंके गए थे।

तीसरी एक जानकारी यह मिलती है कि जहाँ इस्लामपूर्व अरबी लोग सनातनधर्म परम्परा में भारत के धार्मिक स्थानों की यात्रा करने आते थे वहाँ अब छलबल से मुसलमान बनाए गए हिन्दू काबा को अधिक पवित्र समझकर (भारत के तीर्थस्थलों की यात्रा छोड़)अर्बस्थान को जाकर काबा की यात्रा करते हैं।

और एक ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि सनातनधर्म के तीर्थ-स्थान प्राचीनकाल में सारे विश्व में बने थे। ईसाइयों और मुसलमानों ने वे छीनकर काबा, Dome on the Rock, अल्अक्सा, Notre Dame, St. Pauls आदि केवल निजी पन्थों के अलग धार्मिक स्थल मान लिए हैं। प्राचीनकाल में जब सारे जन सनातन वैदिक धर्म के अनुयायी थे तब भारत के रामेश्वर, जगन्नाथपुरी, वाराणसी, गया, बद्री-केदार, सोमनाथ आदि के साथ-साथ ऊपर उल्लिखित काबा, अल् अक्सा आदि मस्जिदें और कृस्तियों के गिरजाघर भी शिव और गिरिजा (पार्वती) के मन्दिर होते थे।

उमर-बिन-ए-हश्शाम को तत्कालीन अरबी जनता बड़े आदर से अबुल हाकम यानी अग्रगण्य विद्वान कहा करती थी। विद्वान को हाकम यानी एक प्रकार से "वैद्य" कहना वैदिक परम्परा है। क्योंकि संस्कृत में "विद-विन्द" यानी "जानना", इसी कारण वैद्य यानी जानकार विद्वान। वैद्य को कवि-राज की उपाधि इसी अर्थ से दी जाती है। क्योंकि संस्कृत वैदिक परम्परा में "कवि" शब्द से विद्वान और आदर्श आचरण के व्यक्ति का भाव प्रकट होता है।

चाचा उमर बिना हश्शाम से महंमद की शत्रुता होने के कारण विरोधियों ने अबुल हाकम की बजाय उसे अबु जिहल यानी "बुद्दू" कहना आरम्भ कर दिया।

सैर उल् ओकुल के पृष्ठ २५७ पर दूसरी एक महत्त्वपूर्ण कविता है। वह लबी बिन-ए-अख्तब-बिन-ए-तुर्फा की लिखी हुई है। महंमद से २३००

वर्ष पूर्व वह कवि जीवित था। उस प्राचीनकाल में यानी ईसा से लगभग १७०० वर्ष पूर्व लबी ने चारों वेदों का उल्लेख कर उनकी बड़ी प्रशंसा की है।

उस प्राचीनकाल में अरबों को वेदों के अतिरिक्त और कोई धर्मग्रन्थ ज्ञात नहीं था। अत: इससे यह अनुमान निकलता है कि उस समय संस्कृत-भाषी वैदिक क्षत्रियों का विश्व में शासन था। क्योंकि यथा राजा तथा प्रजा। जिसके हाथ में अधिकार हो उसी का धर्म प्रजाजनों में फैलता है, यह इतिहास का नियम है।

आजकल के यूरोपीय क्रुस्ती विद्वानों की ऐतिहासिक दृष्टि बड़ी संकुचित है। वे मानवी सभ्यता को और वेदों को बहुत प्राचीन नहीं मानते। The History of Mankind नाम के UNESCO (राष्ट्रसंघ का शैक्षणिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक संगठन) द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ के खण्ड १, भाग २ में ऋग्वेद ईसापूर्व १२०० वर्ष से अधिक पुराना नहीं हो सकता ऐसा अनुमान व्यक्त किया गया है। मैक्समुलर का वह अनुमान था। वही आजकल के पाश्चात्य प्रणाली के लगभग सारे ही विद्वान वगैर स्वतंत्र विचार किए दोहराते रहते हैं।

लबी बिन-ए-अख्तब-बिन-ए-तुर्फा यह नाम लिखने की पद्धति ही अरबों की वैदिक परम्परा का प्रमाण है। क्योंकि वैदिक परम्परा में ही पुत्र-पौत्र-प्रपौत्र ऐसी तीन पीढ़ियों का उल्लेख करने की प्रथा है। सारे वैदिक संस्कारों में तीन पीढ़ियों का उल्लेख किया जाता है। "बिन" शब्द से फलाने का पुत्र ऐसा भाव होता है। अत: लबी अख्तब का पुत्र था और अख्तब तुर्फा का पुत्र था।

वेदों की स्तुति में लबी की कविता नीचे उद्धृत है—

अया मुबरेकल अरज युशय्या नोहा मीनार हिन्द ए
वा अरदकल्लहा मन्योनैफेल जिकरतुन ॥१॥
वहलतिजली यातुन अयनाना सहाबी अखा-आतुन जिक्र।
वहाजयही योनज्जलूर-रासु मिनल हिवतुन ॥२॥
याकुलूनल्लाहा या अहलल अरफ अलमीन कुल्लहुम
फत्तबे-५ जिकरतुल वेद बुक्कुन मालम योनज्जयलतुन ॥३॥

वहोवा अलमस साम वल् यजुर मिनल्लहे तनाजिल्लन् ।
फा-एं नोम या अखिगो मुतिया वे योबस्स हेरियोना जतुन ।।४।।
वा इसा नैन हुमा ऋग् अथर नसयहीन का आ खुबतुन् ।
वा असानत अला उदन वबोवा मशा ए-रतुन ।।५।।

ऊपर कही दो कविताओं को भी तत्कालीन अरबी समाज में बड़ी मान्यता मिली थी और उन्हें इस्लामपूर्व काव्य में पारितोषिक प्रदान किए गए थे । सोने के थाल पर लिखकर वे कविताएँ काबा मन्दिर के अन्दर दीवारों पर लटकाई गई थीं । महादेव और वेदों की प्रशंसा के काव्य जिस काबा मन्दिर में लटकाए जाते हैं वह काबा सनातन वैदिक धर्म का ही मन्दिर हो सकता है ।

इस कविता का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार होगा—

हे भारत की पवित्र भूमि तुम कितनी सौभाग्यशाली हो ।
क्योंकि ईश्वर की कृपा से तुम्हें दैवी (आध्यात्मिक) ज्ञान प्राप्त है ।।१।।
वह दैवी ज्ञान चार प्रकाशमान ग्रन्थद्वीपवृत् सारों का मार्गदर्शक है ।
क्योंकि उनमें भारतीय दिव्य पुरुषों की वाणी समाई है ।।२।।
परमात्मा की आज्ञा है कि सारे मानव उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करें ।
और वेदों के आदेशानुसार चलें ।।३।।
दैवी ज्ञान के भण्डार हैं साम और यजुर जो मानवों की देन हैं ।
उन्हीं के आदेशानुसार जीवन बिताकर मोक्षप्राप्ति होगी ।।४।।
दो और वेद हैं ऋग् और अक्षर, जो भ्रातृता सिखाते हैं ।
उनके प्रकाश से सारा अज्ञान अन्धकार लुप्त हो जाता है ।।५।।

इस कविता में भी "हिन्द" और "हिन्दतुन" इनका उल्लेख बड़े गौरव से हुआ है । कविता में वेदों के प्रति और शिवजी के प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्तिभाव व्यक्त किया गया है ।

इसका कारण यह था कि वैदिक ऋषि-मुनियों के गुरुकुल सर्वत्र थे और भारत के नालन्दा, तक्षशिला आदि स्थानों पर जैसे बड़े विद्यालय थे वैसे ही विश्व के कोने-कोने में वैदिक विद्वानों द्वारा चलाये जाते थे । ऐसे विद्यालय बुखारा, समरकन्द, अलेक्जेण्ड्रिया, काहिरा, बगदाद, इस्तम्बूल, अथेन्स, कॉरिन्थ, जेरुसलेम, रोम, पेरिस, लन्दन, स्टॉकहोम आदि नगरों में थे ।

लवी ने स्पष्ट लिखा है कि भाईचारे की शिक्षा अरबों को वेदों की सिखलाई के कारण प्राप्त हुई थी। अत: इस्लाम के नाम पर जो भाईचारे का ढिंढोरा पीटा जाता है वह सही नहीं है। मुसलमान लोग विधर्मियों को काफिर कहकर उनका जो तिरस्कार करते हैं और उन पर अत्याचार करते आए हैं वह इस्लाम की सिखलाई का दृश्य परिणाम है।

काबा पर और यात्रियों पर हमला करने का महंमद का उद्देश्य धर्म-प्रसार नहीं अपितु अधिकार और सम्पत्ति प्राप्त करने का था, यह निष्कर्ष नीचे दिए गए मुद्दों से हम सिद्ध करेंगे—

१. महंमद का ही अनुकरण इतिहास में अन्य सारे आक्रमणकारी महंमदों ने किया है—जैसे महंमद बिन कासिम, महंमद गजनवी, महंमद गोरी इत्यादि।

२. छल-बल से सारे लोगों को मुसलमान बनाना यह इस्लाम की सैनिक-शक्ति बढ़ाने का एक तात्कालिक उपाय था। जबरन मुसलमान बनाए गए लोगों के द्वारा अन्य लोगों को मार-पीटकर मुसलमान बनाया जाता था। इससे अशान्ति और अत्याचार बढ़ते थे।

३. धन और अधिकार प्राप्ति की लालसा के कारण ही इस्लाम का नारा लगाया गया। यह बात और एक प्रमाण से सिद्ध होती है कि सभी मस्जिदों के धर्मोपदेश में मुसलमानों को भड़काने वाले और उकसाने वाले ही भाषण दिए जाते हैं। और मस्जिदों से विधर्मियों के जुलूस आदि पर पत्थर फेंके जाते थे।

कुराण और हादिथ में महंमद की वाणी नहीं है

प्रखर इस्लामी प्रचार के कारण लोग यह मानकर चलते हैं कि कुराण और हादिथ में महंमद की वाणी है। यह सही नहीं है। महंमद के नाम से उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों ने सम्पत्ति और अधिकार की लालसा से कुराण और हादिथ ग्रन्थों में जो चाहे लिखवा दिया। "महंमद की मृत्यु के २० वर्ष पश्चात् कुराण लिखा गया और २२० वर्ष पश्चात् हादिथ ग्रन्थ लिखा गया", ऐसा The Rationalist Association of New South Wales, 58 Regent Street, Chippendale, N. S. W.

2008 Australia) की पुस्तिका में दर्शाया गया है।

महंमद की मृत्यु के २० वर्ष पश्चात् कुराण लिखा जाना असम्भव है। क्योंकि वेदपाठियों जैसी परम्परागत सारी कुराण मुखोद्गत् करने की प्रथा महंमद के जीवनकाल में प्रस्थापित नहीं हुई थी। इस मुद्दे का अधिक विवरण हम इसके पूर्व भी इस ग्रन्थ में दे चुके हैं।

हादिथों की बाबत् तो वह और भी अशक्य है। क्योंकि महंमद की मृत्यु के पश्चात् २२० वर्षों तक महंमद के जीवनकाल के उद्गार किसके ध्यान में रह सकते हैं ?

महंमद के जीवनकाल में समय-समय पर प्रसंगानुकूल महंमद के मुंह से निकले उद्गार हादिथ में ग्रन्थित किए गए हैं ऐसी मुसलमानों की धारणा बनाई गई है। उन उद्गारों के आधार पर इस्लामी परम्परा के विवादों का निर्णय दिया जाता है। अतः कुराण के बाद हादिथ ग्रन्थ का इस्लामी परम्परा में बड़ा महत्त्व माना जाता है।

हादिथ ग्रन्थ की शैली तो पूर्णतया अविश्वसनीय है। उदाहरणार्थ पृष्ठ-पृष्ठ पर उसमें ऐसा लिखा होता है कि अहमद ने महंमद को कहा, महंमद ने बद्रुद्दीन से कहा, बद्रुद्दीन ने सद्रुद्दीन से कहा, सद्रुद्दीन ने लकीर अहमद से कहा…लकीर अहंमद ने फकीर महंमद से कहा—कि "एक बार महंमद (पैगम्बर ने फलाने को ऐसा कहा था कि…जो भोजन मेरे लिए लाए हो उसमें लहसुन या प्याज डले हों तो मैं वह नहीं खाऊँगा)"।

इस प्रकार महंमद का प्रत्येक संस्मरण सौ-पचास व्यक्तियों की कड़ियों में से होते-होते सही लिखा जाना इसलिए असम्भव है कि इतने माध्यमों द्वारा होता हुआ प्राप्त सन्देश मूल सन्देश से पूर्णतया भिन्न या विपरीत होगा यह दैनन्दिन अनुभव की बात है।

इससे प्रतीत यह होता है कि कई मुसलमानों ने धन कमाने हेतु या निजी महत्त्व बढ़ाने हेतु कपोलकल्पित संस्मरण लिख मारे हैं और ऐसे कपोलकल्पित संस्मरण हादिथ ग्रन्थ में संकलित किए गए हैं। क्योंकि महंमद का प्रत्येक वचन कौन-कौन से सौ-पचास व्यक्तियों की शृंखला से उतरा है यह कौन कह सकता है ? इतने सारे मध्यस्थों के नाम विशिष्ट क्रम में कौन ध्यान में रख सकता है ? इतने सारे सौ-पचास नाम भी ध्यान में रखना

और साथ ही इतने माध्यमों से घूमते-घामते आनेवाला सन्देश भी महंमद के मुख से जैसा उतरा वैसा ज्यों-का-त्यों सैकड़ों वर्ष के पश्चात् हादिथ ग्रन्थ में उतारा जाना असम्भव है।

हादिथ ग्रन्थ नकली संस्मरणों का कपोलकल्पित संकलन होना कोई आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि इस्लामी इतिहास में नकली तवारीखों की भरमार है। जैसे शाहजहाँ के दरबारी दस्तावेजों में या समकालीन तवारीखों में "ताजमहल" का नाम तक नहीं है तथापि ताजमहल शाहजहाँ द्वारा यों बना और त्यों बना इसका मनगढ़न्त वर्णन कई मुसलमानों द्वारा लिखा हुआ प्राप्य है। अतः इस्लामी परम्परा में हेराफेरी, झूठे दावे, नकली दस्तावेज, अविश्वसनीय तवारीखों आदि की भरमार है।

इस्लामपूर्व इतिहास का नाश

ईसाई और इस्लामी नेताओं ने ईसापूर्व और महंमद पूर्व वैदिक संस्कृति का इतिहास इसलिए नष्ट किया कि लोगों को और किसी संस्कृति का प्रलोभन और ज्ञान रहे ही नहीं।

अतः जब खलीफाओं ने देखा कि वेद और महादेव आदि की प्रशंसा की कविताएँ अब भी किसी-किसी लुटेरे के घर अटाले में पाई जाती हैं तो उन्होंने बचे-खुचे साहित्य को भी इकट्ठा कर नष्ट करा देने की एक दुष्ट और धूर्त योजना बनाई। उन्होंने यह घोषित करवाया कि "हसन-अल-रशीद" को उन प्राचीन कविताओं में बड़ी रुचि है। अतः जिस किसी के पास इस्लामपूर्व साहित्य पड़ा हो वह उस साहित्य को खलीफा के दरबार में ला दे। वह साहित्य धन देकर खरीदा जाएगा।" धन के लालच से लुटेरों ने अटालों में निकम्मा पड़ा हुआ वह साहित्य ला-लाकर खलीफा के दरबार में भेंट किया और जो कुछ थोड़ा-मोड़ा पैसा उसके बदले में मिला वह लेकर वे चले गये। तत्पश्चात् वह साहित्य नष्ट करा दिया गया। इस प्रकार मुसलमानों द्वारा महंमदपूर्व सारा इतिहास नष्ट कराया गया।

तथापि सृष्टि का नियम है कि एक बार जो वस्तु या भाव या शब्द आदि प्रकट हुए हों उन्हें पूर्णतया नष्ट करना कठिन कर्म होता है। उसी नियम के अनुसार अतिगुप्तता से मनुष्यवध करने वाला अपराधी भी कभी-न-कभी

पकड़ा ही जाता है।

अत: इस्लामपूर्व अर्बस्थान की वैदिक संस्कृति की वे कविताएँ अभी भी कहीं-कहीं प्रकट होती रहती हैं। भारत का सन् १९४७ में जो विभाजन हुआ उसके पूर्व पंजाब में अरबी भाषा में B. A. आदि उपाधि पाने के लिए जो अभ्यासक्रम था उसमें छात्रों को पढ़ाई जानेवाली पुस्तकों में एक काव्य-संग्रह के अन्तर्गत वे कविताएँ होती थीं। किन्तु मुसलमानों ने वह भी कहीं गायब करवा दी हैं। तथापि तुर्कस्थान, ईरान, इराक, ईजिप्त आदि नगरों के ग्रन्थालयों में अभी भी बहुत कुछ उस प्रकार का साहित्य उपलब्ध हो सकता है यदि कोई सच्चे मन से उसका शोध करे।

इस्लामी लेखकों की धूर्त खूबी

मुसलमानों ने इस्लामपूर्व वह जो साहित्य नष्ट किया उसके स्थान पर उन्होंने कुछ नकली साहित्य (कविताएँ आदि) भी रचा और उसे इस्लाम-पूर्व साहित्य कहकर चला दिया। वह इतना निरर्थक या निकम्मा है कि उससे धोखा खाकर पाठक यह कल्पना कर लें कि इस्लामपूर्व अरबी कवि हर प्रकार से निकम्मे थे।

इस प्रकार प्राचीन मौलिक साहित्य नष्ट कर उसके स्थान पर नकली साहित्य की भरमार करना यह (इस्लाम के इतिहास में बाएँ हाथ का खेल रहा है। कुछ प्रमाण में ईसाइयों ने भी यही किया।

अत: मुसलमानों में इतिहास लिखने या प्रवास वर्णन आदि लिखने की बड़ी मौलिक परम्परा रही है यह जो धारणा प्रचलित है उससे धोखा नहीं खाना चाहिए। तथाकथित इस्लामी ऐतिहासिक साहित्य अपने आपमें एक बड़ा धोखा होता है। इसमें झूठ की भरमार होती है।

चन्द गिने-चुने मुसलमान व्यक्ति ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने इस्लाम की इस प्रकार की धोखाधड़ी से तंग आकर इस्लाम धर्म त्याग दिया और इस्लाम की हेराफेरी का भण्डा फोड़ा। ऐसे ही एक व्यक्ति गोरखपुर के एक पीर के वारिस ज्ञानेन्द्र सूफी थे जो बाद में आर्यसमाज के प्रचारक बन गए।

एक जर्मन विद्वान Brocklemann ने इस्लामपूर्व अरबी साहित्य की सूची बनाई है। उसमें सैर-उल-ओकुल काव्यसंग्रह का नाम ही अन्तर्भूत नहीं

है। किन्तु उज्जयिनी से विक्रम संवत् २००० का जो स्मरण अंक प्रकाशित हुआ था उसमें राजा विक्रम् की प्रशस्ति की अरबी कविता उद्धृत है और दिल्ली के लक्ष्मीनारायण मन्दिर की दीवार पर दो अरबी कविताएँ लिखी हैं वे भी उद्धृत हैं। हो सकता है कि Brocklemann की **सूची** तैयार होने से पूर्व ही इस्तंबूल नगर का ग्रन्थालय जल जाने के कारण सैर-उल्-ओकुल ग्रन्थ नष्ट हो गया हो। तुर्कस्थान के एक ग्रन्थालय में भीषण आग का उल्लेख हमने इसी ग्रन्थ में किया है। इसी कारण Brocklemann की सूची में सैर-उल्-ओकुल का नाम अन्तर्भूत नहीं है।

रांची (मेश्रा) में जो Birla Technical Institute है उसमें हरवंशराय ओबेराय नाम के प्राध्यापक Humanities विषय पढ़ाते थे। उनके पास ईराक सरकार द्वारा प्रकाशित इस्लामपूर्व अरबी कविताओं की पुस्तक थी। सन् १९८५-८६ के आस-पास उनका देहान्त हो गया। मेरे एक मित्र ने उनके पास वह पुस्तक देखी थी। मैंने हरवंशराय ओबेराय को उस ग्रन्थ की Xerox प्रतिलिपि मुझे भेजने के लिए या पढ़ने के लिए पुस्तक उधार देने के लिए कई बार पत्र भेजे, सन्देश भी भेजे, किन्तु अन्त तक वे टालते ही रहे। अब पता नहीं वह पुस्तक उनके परिवार ने सुरक्षित रखी भी है या नहीं। अन्य विद्वान वह प्राप्त करने का यत्न करें।

काबा का वर्णन लिखने वाले यूरोपीय प्रवासी

यद्यपि मुसलमान लोग विधर्मियों को काबा के ३५ मील के घेरे से बाहर ही रखते हैं लेकिन कई यूरोपीय गोरे लोग समय-समय पर काबा परिसर में चोरी छिपे या अन्य रीति से हो ही आए हैं। कुछ ने उस निजी प्रवास का वर्णन भी प्रकाशित करवाया है। कई विधर्मियों को वहाँ के क्रूर मुसलमान पहचानकर मार भी डालते हैं। इसी से मुसलमानों के अपहरण का पता चलता है। वे जानते हैं कि काबा मन्दिर का उन्होंने सनातन-धर्मियों से अपहरण किया है। अतः उनके मन में सदा भय रहता है कि उनसे वह मन्दिर कभी भी छीना जा सकता है। उस भय से वे अन्यधर्मियों को वहाँ प्रवेश नहीं देते।

Ludovico Barthema ऐसा एक यूरोपीय व्यक्ति था जो काबा

देखकर जीवित वापस आ सका। उसने सन् १०५३ में काबा को भेंट देकर जो प्रवास-वर्णन लिखा था वह सन् १५५१ में प्रकाशित हुआ।

प्रथम अँग्रेज व्यक्ति जिसने इस्लाम के कब्जे के पश्चात् काबा को भेंट दी वह था Joseph Pitts। वह Algiers के युद्ध में अरबों के हाथ लगा। उसका इतना दुर्भाग्य रहा कि अरबों ने उसे गुलाम बनाकर सन् १६७८ में बेचा। इस्लाम और ईसाइयों के धर्म वस्तुत: अधर्म कहलाने चाहिएँ क्योंकि वे दोनों सैकड़ों वर्ष अन्य मानवों को गुलाम बनाकर भेड़, बकरी जैसा बेचते रहे। इससे और अन्याय या अधर्म क्या हो सकता है ? जिस अरब ने Joseph Pitts को खरीदा था वह मक्का नगर में रहता था। वहाँ से Pitts जेद्दा नगर स्थित आंग्लदूतावास के आश्रय में पहुँचा। सन् १८६२ में H. Bicknell नाम का एक अंग्रेज और सन् १८८० में T. F. Keene नाम का दूसरा अंग्रेज काबा हो आए। सन् १८७७ में स्पने निवासी Juan Badia Seblis ने अपने आपको अल्पकाल के लिए मुसलमान घोषित कर काबा की यात्रा की। सन् १८१६ में दो खण्डों में छपे उसके प्रवास वर्णन का शीर्षक है Travels of Ali Bay।

काबा का भीतरी भाग

उस प्रवास वर्णन के पृष्ठ ८६ पर उसने लिखा है कि "काबा मन्दिर में भूमि स्तर के नीचे एक पूरी मंजिल संगमरमर की बनी है। काबा के अन्दर एक बहुत बड़ा कक्ष (Hall) है। उस कक्ष के मध्य में दो स्तम्भ हैं। प्रत्येक स्तम्भ का घेरा लगभग दो फुट है। कीमती वस्त्र से छत ढकी है। उसी प्रकार भूमि से लगभग पाँच फुट ऊँचाई तक दीवारें भी परदे से ढकी हैं। वह गुलाबी रेशम वस्त्र है। उस पर फूलों की आकृतियों वाली चांदी की कशीदाकारी बनी है। फूलों की किनार सफेद रेशम की बनी है।

"उस कक्ष के उत्तरी कोने में कायम बन्द करा दिया गया एक जीना है जिससे काबा की छत पर चढ़ा जा सकता है। उस कोने के पास ही बाहर की तरफ दीवार में (शिवलिंग) संगे अस्वद (काला प्रस्तर) चिनवा दिया गया है। उसके सामने एक संगमरमरी भाग है जिसमें बैठकर प्रार्थना करना आध्यात्मिक महत्त्व रखता है। महंमद उसी में प्रार्थना किया करता था।"

पृष्ठ ६५ से १०३ में उसी ग्रन्थ में लिखा है कि "मक्का नगर स्थित प्राचीन घर भारतीय-ईरानी (यानी वैदिक सनातनी) पद्धति की नक्काशी से सुशोभित किए गए हैं। मक्का में कोई फूल विक्रेता नहीं है। कोई चित्रकार, मूर्तिकार या जूते दुरुस्त करने वाले चर्मकार भी नहीं हैं। तुर्कस्थान और ईजिप्त से जूते वहाँ आयात होते हैं। मक्का में कभी कोई संगीत सुनाई नहीं देता।"

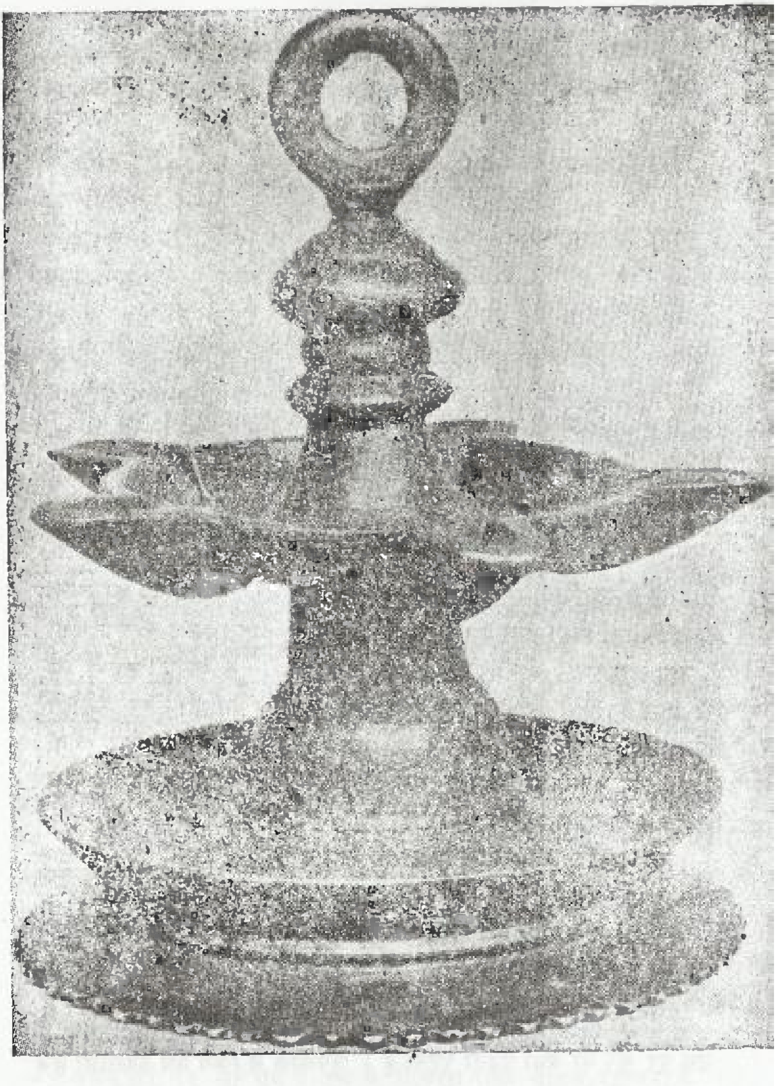
अरबों में केवल स्त्रियों को ही बुर्का नहीं चढ़ाया जाता अपितु दरगाहें, मसजिदें आदि भी पर्दे से ढके रखे जाते हैं। विश्व की सारी दरगाहों और मसजिदों में ऐसे ही पर्दे दिखाई देते हैं। इसका कारण है कि वे प्राचीन हिन्दू मन्दिर होने से उनके शिलालेख, मूर्तियों के चिह्न आदि गुप्त रखे जाएं। काबा मन्दिर की दीवारों पर संस्कृत शिलालेख होने की सम्भावना है।

काबा में भूमिस्तर के नीचे की मंजिल इस कारण पवित्र समझी जाती है कि वहाँ अनादिकाल से एक शिवलिंग होता था। शिवमन्दिरों में प्राय: दो स्तरों पर शिवलिंग होते हैं—एक भूमिस्तर की निचली मंजिल में और दूसरा ऊपर की मंजिल में। अधिकतर मसजिदें और दरगाहें ऐसे कब्जा किए हुए शिवमन्दिर हैं। भूमिस्तर के नीचे शिवलिंग प्राय: जल में प्रस्थापित होता था।

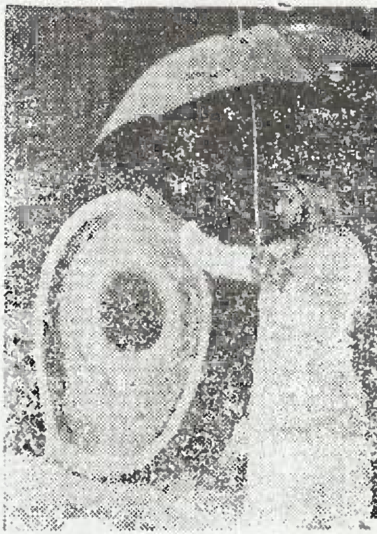
ऊपर कहे वस्त्र को गुलाबी कहा है। वह वस्तुत: वैदिक भगवे रंग का वस्त्र है। फूलों की नक्काशी भी इसी कारण है कि उस मन्दिर में जब वैदिक देवमूर्तियाँ होती थीं तो उन पर फूल चढ़ाए जाते थे।

सऊदी अर्बस्थान में इस्लामपूर्व काल में घरों और मन्दिरों में अष्टधातु के ऐसे दीप होते थे। सऊदी अर्बस्थान से प्राप्त यह दीप ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन में प्रदर्शित है। सुना जाता है कि काबा के मन्दिर के अन्दर अनादिकाल से ऐसे ही एक दीप में गाय के घी से पवित्र दिव्य ज्योति उसी प्रकार सर्वदा प्रज्ज्वलित रहती है जैसे वैदिक (हिन्दू) मन्दिरों में।

"अलाउद्दीन और उसका मायावी (जादुई) दीप" शीर्षक की कथा यद्यपि इस्लामी मानी जाती है परन्तु वह वास्तव में इस्लामपूर्व समय की है जब अरबों के देवमन्दिरों में दीप जलाए जाते थे। वह ज्योति ईश्वरीय चेतना और प्रकाश की द्योतक होती है।



अष्टधातु का दीप



यह है वह शिवलिंग जो काबा मन्दिर की दीवार में बाहर की तरफ आधा चिनवा दिया गया है। उसका आधा गोलाकार भाग दीवार में फँसा है, शेष आधे भाग की गोलाई दीवार के पृष्ठभाग के बाहर उभरी हुई है। ऊपर का शुभ्र आवरण मढ़े हुए चाँदी के पत्तर का है। उस मढ़े हुए सफेद भाग के मध्य में जो गोल काला भाग दीखता है वह इसलिए खुला रखा है कि भक्तगणों को पता लग सके कि चांदी से ढके भाग के नीचे शिवलिंग का पाषाण किस प्रकार का है।

यह आकाश से गिरा उल्का प्रस्तर कहा जाता है। जामुन जैसा काला-लाल उसका रंग है।

शिवलिंग के नीचे की आधारशिला महंमद द्वारा किए हमले में टूट-फूट गई।

दीवार में आधे चिनवाए गए इस शिवलिंग पर कोई छत न होने से उस पर धूप या वर्षा पड़ती रहती है। धूपकाल में जिस वर्ष इस्लामी हज् यात्रा पड़ती है उस समय यात्रियों को परिक्रमा मार्ग पर लगे तपे प्रस्तरों

का ताप सहन करना पड़ता है। वैदिक मन्दिरों में भी यही समस्या होती है क्योंकि मन्दिर के प्रांगण के अन्दर जूते ले जाने पर प्रतिबन्ध लगा होता है।

उस शिवलिंग को अरबी में "संगे अस्वद" यानी "काला प्रस्तर" कहा जाता है। अस्वद यह संस्कृत "अश्वेत" का अपभ्रंश है।

काबा के मन्दिर के अन्दर अनादिकाल से भगवान शेषशायी विष्णु नवग्रह तथा अन्य वैदिक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ होती थीं।



इस्लामपूर्व सऊदी अरब से पाया यह गोमुख ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन में प्रदर्शित है।

जलस्रोतों पर लगे ऐसे गोमुख से निकला पानी वैदिक परम्परा में पवित्र समझा जाता है। इस्लामपूर्व वैदिक प्रथा में गौ को बड़ा पवित्र

माना जाता था। इसी कारण कुराण के एक अध्याय का शीर्षक "बकर" (यानी "गाय") है। यद्यपि उस अध्याय में गौ सम्बन्धी कोई उल्लेख नहीं है। बकर-ईद भी गो-पूजा का दिन होता था। बकर (यानी गाय)और ईद (यानी पूजा)। मुसलमानों में कोई ऐसे ज्ञानी नेता उत्पन्न होने की



आवश्यकता है जो उन्हें समझा सके कि उनके रीति-रिवाज, त्योहार, व्रत आदि सारे प्राचीन ईशालयम् (यानी देवालय) परम्परा के हैं।

इस्लामी नाम "अबु बकर" (संस्कृत "अभय बकर") "गौ का रक्षण-कर्ता" इस अर्थ का है।

हंसवाहिनी सरस्वती की यह मूर्ति सऊदी अरबस्थान से प्राप्त ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन में प्रदर्शित है। इस्लामपूर्व काल में काबा में वैदिक देवताओं की कई मूर्तियां थीं जिनकी मिट्टी या प्रस्तर की बनी ऐसी प्रतिमाएँ उत्सवों, मेलों और बाजारों में बिकती थीं। चित्र में ऐसी ही एक मूर्ति दिखाई गई है। महाभारतीय युद्ध तक (यानी ईसापूर्व लगभग ३८१४ वर्ष तक) विश्व में सर्वत्र केवल वैदिक धर्म ही था। अत: मूर्तियां बड़ी अच्छी बनती थीं। तत्पश्चात् इस्लाम की स्थापना तक कला की अधोगति होते-होते इस्लाम ने मूर्तिकला और चित्रकला को नष्ट कर दिया। अत: इस्लामी परम्परा कला की विध्वंसक रही है न कि सम्बर्द्धक। अत: चित्र में दिखाई गई मूर्ति अलंकृत और सुशोभित नहीं है।

पुरुषोत्तम नागेश ओक
की खोजपूर्ण रचनाएं

- भारत का द्वितीय स्वतन्त्र्य समर
- भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें
- विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय
- ताजमहल मन्दिर भवन है
- ताजमहल तेजोमहालय शिव मन्दिर है
- भारत में मुस्लिम सुल्तान
- आगरा का लाल किला हिन्दू भवन है
- दिल्ली का लाल किला लाल कोट है
- वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास
- फतहपुर सीकरी हिन्दू नगर है
- लखनऊ के इमामबाड़े हिन्दू भवन हैं
- क्या भारत का इतिहास भारत के शत्रुओं द्वारा लिखा गया है?
- हास्यास्पद अंग्रेजी भाषा
- क्रिश्चियनिटी कृष्ण-नीति है
- कौन कहता है अकबर महान था?

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी.डी. चैम्बर, 10/54, देशबन्धु गुप्ता रोड,

करोल बाग, नई दिल्ली-110005

फोन : 23553624, 23551344